ISSN : 2319-7137 **Volume : 09/Issue : 05**
Jan-June-2019

INTERNATIONAL
LITERARY QUEST

An International Multidisciplinary Peer Reviewed Refereed Research Journal

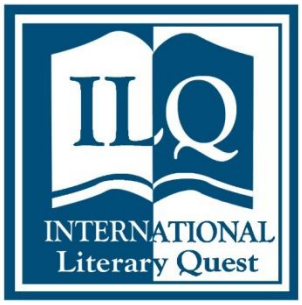

Chief Editor

Prof. Ashok Singh
Hindi Department
Banaras Hindu University

Editor
Dr. Vikash Kumar
Dr. Surendra Pandey

©सम्पादक

प्रधान सम्पादक
प्रो0 अशोक सिंह
सम्पादक
डॉ0 विकास कुमार
डॉ0 सुरेन्द्र पाण्डेय
उप सम्पादक
डॉ0 नलिनी माथुर (एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, भगिनी निवेदिता कालेज दिल्ली विश्वविद्यालय)
डॉ0 विनय कुमार शुक्ल (असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभागाध्यक्ष, रामानुजप्रतापसिंह देवशासकीय स्ना.महा.,बैकुण्ठपुर,कोरिया,छ.ग.)
सुनील कुमार सिंह (असिस्टेंट प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, अर्मापुर स्ना. महाविद्यालय, कानपुर)
कार्यकारी सम्पादक
डॉ0 सच्चिदानन्द चौबे (प्राचार्य, हंसराज राम लालदेई स्ना. महाविश्वविद्यालय, झुरिया, भगिनी, गोरखपुर)
मोहम्मद आदिल (असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, भवन्स मेहता पी.जी. कालेज, कौशाम्बी, उ.प्र.)
आफताब आलम (शोध छात्र, प्रा.भा.इ.सं. पुरातत्त्व विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय)
सह सम्पादक
डॉ0 अजीत कुमार राय (गाजीपुर)
डॉ0 नीतू टहलानी (पूर्व शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय)
सुदर्शन चक्रधारी (शोध छात्र, प्रा.भा.इ. सं. पुरातत्त्व विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय)
प्रबन्ध सम्पादक
डॉ0 रिपुंजय कुमार सिंह (पूर्व शोध छात्र, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय)
डॉ0 रविशंकर पाण्डेय (रोहतास, बिहार)
राणा अवद्यूत कुमार (शोध छात्र, भोजपुरी अध्ययन केन्द्र, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय)
विधि परामर्शदाता
डॉ0 रणजीत सिंह चौहान
अधिवक्ता, सर्वोच्च न्यायालय
ISSN : 2319-7137
मूल्य : रु0 250.00
सम्पादकीय पता
डॉ0 विकास कुमार
सिविल लाइन, तकिया रोड,
सासाराम, रोहतास (बिहार)
ई-मेल : internationalliteraryquest@gmail.com
मो0 : 09470828492, 9934468661
वेबसाइट- www.internationalliteraryquest.in
कम्पोजिंग
सुधीर कुमार, 7408996394
मुद्रक :
राजैरिया ऑफसेट
जगतपुरी, दिल्ली-110093

नोट : सभी पद अवैतनिक एवं अव्यावसायिक हैं। प्रकाशित लेखों एवं उद्धरणों का दायित्व स्वयं लेखकों का है। लेखों एवं उद्धरणों से सम्बन्धित किसी भी वाद-विवाद के लिए लेखक स्वयं जिम्मेदार होगा।

संपादक मण्डल

प्रो0 अनीता सिंह

अंग्रेजी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्रो0 रवीन्द्रनाथ सिंह

प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

डॉ0 प्रभाकर सिंह

हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

डॉ0 एस0 आर0 जयश्री

महात्मा गांधी कॉलेज, तिरुवन्तपुरम्, केरल

प्रो0 बी0 गनेशन

बैंगलोर विश्वविद्यालय, कर्नाटक

डॉ0 मिकी निशिओका

एसो0प्रो0 रिसर्च डिवीजन ऑफ एशियन, लैंग्वेजेज एण्ड कल्चर III रिसर्च इंस्टिच्यूट ऑफ वर्ल्ड लैंग्वेजेज, ओसाका यूनिवर्सिटी, जापान

प्रो0 कीम उ जो

भारतीय अध्ययन विभाग, हाइकू यूनिवर्सिटी, दक्षिण कोरिया

प्रो0 आरिफ नजीर

हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी

डॉ0 सुनीता सिंह

शिक्षा संकाय, ली0 मोयने कॉलेज, सायराक्यूस, न्यूयार्क, अमेरिका

डॉ0 मृत्युंजय सिंह

एसो0 प्रो0, हिन्दी विभाग, एस0पी0 जैन कॉलेज, सासाराम, बिहार

डॉ0 सावित्री सिंह

संस्कृत विभाग, महिला महाविद्यालय, सासाराम, रोहतास, बिहार

डॉ0 दिग्विजय सिंह

हिन्दी विभाग, के0डी0बी0 डिग्री कॉलेज, दुबहर, बलिया

डॉ0 प्रिया सिंह

राजनीतिशास्त्र विभाग, गुलाब देवी महिला, पी0जी0 कॉलेज, बलिया

डॉ0 विकास कुमार सिंह

असि0 प्रो0, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

डॉ0 राजकुमार उपाध्याय मणि

असि0 प्रो0 एवं विभागाध्यक्ष, प्रयोजनमूलक हिन्दी, सरगुजा विश्वविद्यालय, अंबिकापुर, छत्तीसगढ़

डॉ0 वर्षा सिंह

असि0प्रो0 अंग्रेजी विभाग, देशबन्धु कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

अनुक्रम

1.	उपन्यासों में चित्रित सामाजिक समस्याएँ **डॉ0 विकास कुमार**	7–10
2.	Critiquing Knowledge Formation: The Idea of Education in Amitav Ghosh's *The Glass Palace* and *In an Antique Land* **Dr. Lakshmi Priya N.**	11–21
3.	हिंदी- अनुसंधान का इतिहास **पवन भारती**	22–26
4.	निराला का भाषागत संघर्ष **डॉ0 स्मिता कुमारी**	27–30
5.	रह गई दिशाएँ इसी पार **डॉ0 रवीन्द्र कुमार यादव**	31–33
6.	केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' का रचना संसार **प्रीति पाण्डेय**	34–38
7.	विमर्शों के दौर में समकालीन आदिवासी कविता **डॉ0 अफरोज बेगम**	39–43
8.	Relationship between social maturity and stress among secondary level students **Shailja Gupta**	44–49
9.	जैन धर्म का ऐतिहासिक लेखन **सुनील कुमार सिंह**	50–54
10.	रमणिका गुप्ता की कविताओं में दलित–चेतना **कुमारी आभा**	55–60
11.	भट्टिकाव्य के चतुर्दश अंक में प्रयुक्त क्रियापद की समीक्षा **डॉ0 दिव्या शुक्ला**	61–62
12.	शैलूष : नट जीवन की कथा–व्यथा **अश्विनी कुमार पाण्डेय**	63–67
13.	मोतिहारी जिला में सीप बटन उद्योग की ऐतिहासिक गौरव गाथा **डॉ० मधुरेन्द्र कुमार**	68–76
14.	भारत की शक्ति का उभरता हुआ स्वरूप एवं क्षेत्रीय चुनौतियाँ **डॉ0 रोहताश जमदग्नि**	77–78
15.	Analysis and Prevention of Enterprise Financial Risk under the New Tax Policy **DR.BACHHA KUMAR RAJAK**	79–89
16.	रामनरेश त्रिपाठी और लोकसाहित्य **संजीव कुमार पाण्डेय**	90–96
17.	चांदायन का गोबर–वर्णन खंड **तारा कुमारी**	97–100
18.	वायुपुराण में वर्णित मगध के तीर्थस्थल **डॉ0 गंगेश 'गुंजन'**	101–104
19.	चन्द्रगुप्त : इतिहास और कल्पना **डॉ0 राजकुमार**	105–107
20.	Evolution of Settlements **Dr. Birendra Kumar**	108–114
21.	Physical Features **Dr. Archana Singh**	115–119
22.	Morphogenesis of the Cultural Landscape **Dr. Shailendra Kumar**	120–124
23.	स्वास्थ्य एवं मनोरंजन **डॉ0 रामाकान्त प्रसाद**	125–129

24.	मुगलकालीन स्रोत : एक संक्षिप्त विवरण **आदित्य कुमार सिंह**	130–136
25.	हिन्दी साहित्य में नारी (चित्रा मुद्गल के उपन्यासों में चित्रित नारी मनोविज्ञान के विशिष्ट सन्दर्भ में) **राजेश सिंह**	137–144
26.	Samagra Shiksha Abhiyan – A Paradigm Shift in Pre-Primary Education **Md. Asad Ali**	145–148
27.	भारतीय साहित्य और अनुवाद **अनिता देवी**	149–151
28.	विद्यालय जाने वाले बच्चों के समायोजन एवं आत्म–विश्वास पर अलगाव के प्रभाव का अध्ययन **डॉ. अमर कुमार**	152–157
29.	जगत् के मूल तत्त्व और उससे सृष्टि की उत्पत्ति का प्रमाण **धर्मेन्द्र कुमार**	158–165
30.	दलित चिन्तन की वैचारिकी और सर्जनात्मक साहित्य **डॉ. हिमांशु कुमार**	166–170
31.	रस एवं रसानुभूति की प्रक्रिया **डॉ0 रामकृष्ण यादव**	171–175
32.	कबीर : युगीन सन्दर्भ **डॉ. बीरेन्द्र कुमार**	176–181
33.	भारतीय उच्च शिक्षा – एक विश्लेषण **डॉ. शशि कुमार पाण्डेय**	182–186
34.	महाकवि कुंजन के काव्य में व्यंग्य **डॉ0 संध्या कुमारी**	187–190
35.	HUMAN RIGHTS IN INDIA, SOCIAL INCLUSION IN GLOBALISED ERA AND CHALLENGES FACED **DR. MRS. JYOTIKA ROY**	191–197
36.	Rural India in Globalized World **Dr. Ashima Ghosh**	198–203
37.	Capital Market Practices & Role of SEBI **MD. ZAFAR ALAM**	204–208
38.	मृणाल पाण्डे के साहित्य में प्रेम, विवाह एवं प्रेम त्रिकोण **कंचन द्विवेदी**	209–218
39.	शिक्षण अभिरुचि एवं शिक्षा के क्षेत्र में ICT के उभरते आयाम **डा0 सतीश चन्द्र तिवारी**	219–221
40.	**पंच परमेश्वर: मूल्य और नैतिकता का आख्यान** **मनीष कुमार शर्मा**	222–224
41.	शिवप्रसाद सिंह तथा उनका आंचलिक बोध **डॉ0 सुरेन्द्र पाण्डेय**	225–230
42.	विदेसिया का तुलनात्मक अध्ययन **डॉ0 विशु मेंघनानी**	231–235
43.	Assessment of Working Capital for Finance **Dr.Amrendra Kumar**	236–242
44.	परतंत्रता के बीच चेतना का स्वरूप **डॉ0 नविता चौधरी**	243–251
45.	मानसिक विकलांगता **डॉ0 आमोद कुमार सिंह**	252–259
46.	बिहार का बंटवारा और राजनीति परिदृश्य में बदलाव : एक अध्ययन **डॉ० रूपक कुमार**	260–266
47.	Criminal Behavior **Dr. Urmila Kumari**	267–275
48.	''वैदिक चिंतन एवम् वेदों के रचनाकाल का संक्षिप्त परिशीलन'' **डॉ0 विमलेश कुमार सिंह यादव**	276–279

49.	गाँधीजी का जीवन परिचय **कुमार रमन किरण**	280–285
50.	भारत में गठबन्धन सरकारें और उसकी चुनौतियाँ **प्रिय रंजन**	286–290
51.	अनुवाद : संदर्भ और प्रयोग **डॉ0 विजयकुमार रोडे**	291–295
52.	तहसील सैदपुर, जनपद– गाजीपुर की जलवायु की दशाएं **डॉ0 अशोक कुमार सिंह**	296–300
53.	मोहन राकेश के 'आधे अधूरे' नाटक में आधुनिक–बोध **पंकज**	301–304
54.	भोजपुरी प्रदेश का लोकजीवन एंव लोकत्व **डॉ0 गंगा उपाध्याय**	305–308
55.	Jahangir as a patron of justice **Dr. Ananta Kumari**	309–313
56.	Love, Sex, Lust and Melancholy in the short Stories of Kamala Das: An Analysis **Dr. Tripurari Kumar**	314–320
57.	**आर्थिक उदारीकरण कि व्याख्या : भारतीय अर्थव्यवस्था में** डॉ ० संतोष कुमार	321–324
58.	**सचेतन कहानी : एक समीक्षात्मक विवेचन** **डाँ. शिल्पी कुमारी**	325–329
59.	संविनय अवज्ञा आन्दोलन **डा0 बिरेन्द्र कुमार**	330–333
60.	कर्ण के चरित्र का उद्धार मानवता की स्थापना का प्रयास है **डा0 नवीन कुमार**	334–335
61.	Women empowerment challenges (with special reference to minorities) **Dr. Md Javed Khan**	336–340
62.	विद्यापति की पदावली मे गीतात्मकता के तत्त्व : एक अवलोकन **प्रभा नन्दा**	341–344
63.	HISTORY AND GROWTH OF DICGE **Dr. Pravir Kumar Singh**	345–347
64.	भारतीय लोकतंत्र में मतदान का बदलता स्वरूप : एक अवलोकन **डॉ० रवीन्द्र कुमार**	348–352
65.	*Sir Walter Scott as a King of Romancers: A Critical Analysis* **Subhash Kumar**	353–360
66.	Use of Symbolism in the Works of J.M. Synge and W.B. Yeats **Udhyami Kumari**	361–365
67.	स्वराज दल **डॉ0 कुमारी संगीता**	366–369
68.	Life and Mission of Babu Jagjiwan Ram: A Brief Study **Talat**	370–376
69.	Rural credit policy **Dr. Pravir Kumar Singh**	377–379
70.	रूसी की व्यावसायिक आचार एवं नीति **पुष्पा कुमारी**	380–384
71.	भारत में स्त्रियों की प्रस्थिति एवं प्रमुख समस्याएँ **श्रीधर दयानिधि**	385–388
72.	**वेदों का सामान्य परिचय** **डॉ0 सुधा कुमारी**	389–395

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

उपन्यासों में चित्रित सामाजिक समस्याएँ

डॉ0 विकास कुमार*

जो प्रवृत्तियाँ उपन्यासों के भौतिक विषय पर आधारित होती हैं, वे वस्तुगत प्रवृत्तियाँ कहलाती हैं अर्थात् जो प्रवृत्तियाँ सामाजिक परिस्थितियों के फलस्वरूप उत्पन्न होती हैं, जैसे आठवें दशक के विभिन्न सामाजिक विषमताओं के कारण सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक परिस्थितियों पर व्यंग्य और आक्षेप की प्रवृत्ति उत्पन्न हुई हैं उन्हें वस्तुगत प्रवृत्ति कहते हैं। यह प्रवृत्ति इस दशक के उपन्यासों में तीव्र रूप से प्रकट हुई है। लेखकों ने प्रायः अपना मत पात्रों के माध्यम से परोक्ष रूप में व्यक्त किया है। उन्होंने सामाजिक विषमताओं के प्रति तीक्ष्ण कटाक्ष किए हैं। जब ये विषमताएँ असहनीय हो जाती हैं, तब जनता इनके प्रति विक्षुब्ध होकर विद्रोह और क्रान्ति करती हैं।

इस दशक के उपन्यास व्यक्ति के आत्म संकट, सामाजिक परिवर्तन की स्थितियाँ सत्ता और श्रम के संघर्ष तथा आम आदमी की जिन्दगी की पहचान में सर्वथा सफल है। इस अवधि का लेखक अधिक आक्रामक सामाजिक जीवन की विसंगतियों के कारण आक्रोश से भरा हुआ तथा युवा पीढ़ी की जुझारू मानसिकता को तोड़ने वाली सत्ता के विभिन्न चेहरों की पहचान में सजग और सतर्क है। यह प्रवृत्ति इस दशक के उपन्यासों में दृष्टिगोचर होती है, पर बहुत कम। उपन्यास के अन्त में शासक वर्ग प्रायः विद्रोह को निर्दयता से कुचल देता है। साथ ही इस युग के विभिन्न व्यावसायिक वर्गों की समस्यायें एवं उनकी प्रतिक्रियाओं का भी अध्ययन हुआ है। इस वर्ग में सबसे अधिक प्रताड़ित, पीड़ित, शोषित वर्ग नारी वर्ग है, जिसे अपनी नौकरी के दौरान भिन्न यातनाओं को सहना पड़ता है। इसके साथ ही अन्य पेशे के लोगों की समस्याओं और उनकी प्रतिक्रियाओं का भी इस दशक के उपन्यासों में निरूपण हुआ है। वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन करने के लिए इसे निम्न श्रेणियों में विभक्त करना आवश्यक प्रतीत होता हैः-

1. आर्थिक स्वरूप
2. राजनीतिक स्वरूप
3. राष्ट्रीय स्वरूप
4. पारिवारिक स्वरूप
5. वैयक्तिक स्वरूप
6. आदर्शवादी स्वरूप एवं
7. यथार्थवादी स्वरूप

1. आर्थिक स्वरूप का सामान्य सर्वेक्षण- आज के इस भौतिक युग में समाज में आर्थिक व्यवस्था का अधिक महत्व है। समाज की जैसी आर्थिक व्यवस्था होती है उसी के अनुसार समाज के लोगों का जीवन स्तर और रहन-सहन भी होता है। वर्तमान युग में व्यक्ति अत्यन्त अन्तर्मुखी हो गया है। अब वह राष्ट्र, समाज या परिवार के बारे में नहीं सोचता है, बल्कि केवल अपने स्वार्थ की सोचता है। इस प्रवृत्ति का विकास वर्तमान

* सम्पादक–International Literary Quest एवं World Translation

युग की यान्त्रिकता, नीरसता, जड़ता सम्बन्धी की शिथिलता आदि के कारण हुआ है। अतः आज के मानव का दृष्टिकोण व्यापक न रहकर संकीर्ण हो गया है। अष्टम् दशक के प्रतिनिधि हिन्दी उपन्यासों में वर्तमान आर्थिक व्यवस्था के स्वरूप को भली-भांति चित्रित किया गया है।

दूसरी ओर मुद्रास्फीति, अनाचार, भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद, कालाबाजारी आदि के कारण मनुष्य को भिन्न आर्थिक विषमताओं का सामना करना पड़ रहा है। कई व्यक्ति बेरोजगार भी हैं, अतः वे रोजगार पाने के लिए निम्न से निम्न कार्य करने को तैयार हैं। आर्थिक विषमता केकारण मजदूरों, कार्यालय के कर्मचारियों आदि को भी अपनी जीविका या आर्थिक स्थिति को मजबूत करने के लिए अपने वसूल तोड़ने पड़ते हैं या परिस्थितियों से समझौता करना पड़ता है। दूसरी ओर कुछ लोग अपनी अर्थ पिपासा को शान्त करने के लिए अपनी बेटी, बहन या पत्नी तक को बेच डालते हैं।

आज की वर्तमान आर्थिक व्यवस्था के कारण ही एक ओर तो लोग झुग्गी-झोपड़ियों में कीड़े-मकोड़ों की भांति जीवन जी रहे हैं, दूसरी ओर ऊँची-ऊँची अट्टालिकाओं में अपार-विलास और वैभव युक्त जीवन जीने वाले लोग हैं। अधिकांश लोगों के पास भयंकर शीत से बचने के लिए कपड़े भी नहीं हैं, जबकि कुछ लोगों के पास वातानुकूलित कक्ष और कारें हैं। अब आदमी- आदमी की तरह नहीं बल्कि जानवर की तरह जी रहा है। जिस तरह कुत्ते कहीं भी फुटपाथ पर सो जाते हैं, उसी तरह आदमी को भी देखा जा सकता है मुम्बई जैसे बड़े महानगरों में प्लेटफार्म तथा फुटपाथों पर कुत्तों के समान पड़े रहते हैं। .....''मालूम नहीं कहाँ.....किस जगह तोड़ दिए गए झोपड़े मालूम है सिर्फ इतना कि एक पीली सुबह जब सोने वालों ने आंखें खोली.....गन्दी बस्ती को घेर लिया नीली वर्दी ने चारों तरफ से एक लम्बे बेंत और डंडे। नीली गाड़ियाँ। खाकी वर्दियाँ और अफसर। सुना दिया गया हुक्म। तोड़ दिए गए झोपड़े। पीली रोशनी में नंगी हो गयी.....दुनिया कालिख लगे बर्तन.....गुदड़ियां.....रोते हुए बच्चे।''[1]

वर्तमान आर्थिक व्यवस्था की कमियों के कारण आज किस तरह से लोगों की कामनाएं उनके मन के भीतर ही घुंट-घुंट कर दम तोड़ रही हैं इसका यथार्थ चित्रण ''कटरा की आर्जू'' में हुआ है। कवि बदुल हसन नायाब की सगाई ठीक है, लेकिन सगाई इसलिए नहीं हो पा रही है कि उनके पास ''वलीमें'' (रस्म) पूरा न करने के लिए पैसे नहीं है- ''और सच्ची बात यह है कि उसकी शादी उसकी तरफ से वलीमें के कारण रूकी हुई थी और झम्सू मियां की तरफ से दहेज के कारण। माना कि मास्टर के अब्बा सिर्फ लड़की मांग रहे हैं पर फिर भी शम्सू मियां का भी तो कुछ फर्ज था। दहेज तो हजरत ने अपनी बेटी को भी दिया था। कौन कहे कि मौला अली ने कह दिया था कि दहेज नहीं मिलेगा तो बारात लौटा ले जायेंगे....और इस वलीमें और दहेज के चक्कर में मारी जा रही थी मास्टर बद्रुल और शहराज की मुहब्बत।''[2]

आठवें दशक में मानव का अत्यधिक नैतिक पतन हुआ है। इसके लिए काफी हद तक मुद्रास्फीति, भ्रष्टाचार सभी वर्गों द्वारा अर्थ को अत्यधिक महत्ता देना आदि जिम्मेदार है। 'धरती धन न अपना' में चौधरी चमारों का अत्यधिक शोषण करते हैं और साथ ही उनका अपमान करते हैं। नन्दसिंह इससे इतना तंग आ जाता है कि वह ईसाई बन जाता है। उसे ईसाई बनाने के लिए पादरी उसके बेटे को नौकरी दिलाने का तथा धन देने का लालच देता है। यही मूल कारण है कि जिससे वह अपना धर्म परिवर्तन कर लेता है। इस प्रसंग पर डा0 बिशनदास टिप्पणी करते हुए कहते हैं- ''जरूरतमंद की जब जरूरतें पूरी नहीं होंगी तो उन्हें पूरा करने के लिए वह सौ तरह के पापड़ बेलेगा।''[3]

'प्रिया' में लेखिका ने प्रिया की मां के कथन द्वारा स्पष्ट बताया है कि आज के युग में भावनाएं नहीं बल्कि कठोर आर्थिक धरातल सर्वोपरि है। प्रिया देवदास से शादी करना चाहती है। पर देवदास की आर्थिक

स्थिति खराब है। अतः उसका चरित्र अच्छा होने पर भी उसकी माँ यह सम्बन्ध स्वीकार नहीं करती है। वह कहती है- ''औरत को प्यार से अधिक सुरक्षा चाहिए....एक ठोस छत सिर के ऊपर और ठोस जमीन का टुकड़ा पैरों के नीचे। घोंसले आकाश में नहीं बनाये जाते।''[4]

सभी जनतांत्रिक अधिकार प्राप्त होने पर भी आर्थिक परिस्थितियों के कारण किस तरह से लोगों को न्याय नहीं मिल पा रहा है और आर्थिक सुदृढ़ता के बल पर किस तरह से लोग अमानुषिक अत्याचार कर रहे हैं, इसका यथार्थरूप हमें ''महाभोज'' में दिखाई देता है। जोरावर सिंह के अपराधों के खिलाफ तमाम प्रमाण होने पर भी आर्थिक कमजोरियों के कारण विसू उन्हें न्यायालय तक नहीं पहुंचा पाता है। विसू का पिता हीरा पुलिस अधीक्षक से बता रहा है कि....''हाँ मतारी लड़त रही। छोटे-छोटे लरिकन का पेट काटि के पढ़ावा साहेब....अब हाथ पांव नहीं चलत एहीं से मतारी बकत रही....कोसत रही।'' फिर भर्राये गले और रूँधी हुई आवाज में कहा..... पर जब से गवा है, आंखिन में आंसू नहीं टूटत। रोय रोय के आंधी होय गई है। सब दिन अपने को कोसत है- दैया रे। हमहिन लड़ि-लड़ि के अपने विसू को मारि डाला। दूइ-दूइ रोटी का तरसाय दीन।''[5]

'दूसरी तरफ' में दिखाया है कि आज के युग में नर-नारी सन्तान उत्पत्ति के पहले अपनी आर्थिक स्थिति को परखते हैं। आज की महंगाई में यदि वे उसकी परवरिश करने के काबिल हों, तभी वे सन्तान उत्पन्न करते हैं। लन्दन के रहने वाले मीना और बलबीर भी यही करते हैं। वे दोनों शादी के तुरन्त बाद सन्तान नहीं चाहते क्योंकि वे अपनी गृहस्थी को सुदृढ़ बनाना चाहते हैं। अतः मीना 'लूप' लगवा लेती है। मीना को बाद में यह सही भी लगता है। वह सोचती है- ''विवाह के बाद जल्दी से बच्चा होने से उसका काम करना मुश्किल हो जाता। 'बेबी सिस्टर' ढूंढ़ना भी कठिन काम था।''[6]

समाज की वर्तमान आर्थिक व्यवस्था के कारण ही ''नाच्यौ बहुत गोपाल'' की निरगुनियाँ अपने पिता से भी उग्र में बड़ मुसुरियादीन से ब्याही जाती है। आर्थिक सुदृढ़ता के कारण एक ओर तो सेठ के परिवार के सभी पाप छिपे रहते हैं, दूसरी ओर इसी पैसे के लिए एक मेहतर अपनी जवान बीवी को उसकी इच्छा के विरूद्ध अपने एक अधिकारी को खुश करने के लिए भेजना चाहता है- ''मजलूम और गरजमन्द आदमी सब कुछ कर सकता है। और तेरी इज्जत है ही कहाँ? कुतिया, रंडी और गरीब की जोरू की क्या इज्जत होती है। मेरा जी न दुखाओ, कहे देता हूँ, नहीं तो भगवान कसम ऐसा ऊब गया हूँ जिनगी से कि तुझे मारकर आप फांसी पर चढ़ जाऊंगी।''[7]

'टपरेवाले' में प्रधानतः झोपड़-पट्टियों में रहने वाली एक लड़की पचिया को घर के राशन और अपनी मां को दवाई के लिए अपनी अस्मत बेचनी पड़ती है। ''उसे अन्दर की चोट से अधिक पच्चीस रुपये का राशन अच्छा लग रहा था।''[8]

'क्लोज-अप' पूरा उपन्यास बम्बई की फिल्मी जिन्दगी पर आधारित है जहां नारी आर्थिक लाभ के लए अपनी आबरू तक नीलाम करने में हिचकती नहीं है। अयोध्या की पत्नी शारदा एक और सेठ के यहां चली जाती है क्योंकि वह ज्यादा पैसे वाला है। वह स्वयं इसका कारण जनता है- ''मेरा घर छोड़कर एक सेठ के यहां बैठ गयी है। अच्छी पार्टी फांसी है न उसने।''[9]

'बसंती' में दिल्ली के उन मजदूरों का वर्णन है जो इमारतें बनाते हैं। पर उनकी बत्तियाँ हमेशा गैर कानूनी होती हैं और सरकार उन्हें हमेशा की तरह नष्ट कर देती है। उसी बस्ती का एक बेरोजगार नौजवान भी सरकार के साथ मिलकर अपनी ही बस्ती तोड़ने लगता है ताकि रोटी का जुगाड़ हो सके, वह कहता है-

''सरकार तो इन्हें तोड़ेगी ही। हम अपनी मजदूरी क्यों छोड़ें।''[10] यहाँ निम्नवर्ग के अति यथार्थवादी दृष्टिकोण को लेखक ने दिखाया है जो किसी भी तरह से अपनी रोटी कमाना चाहता है।

इस तरह हम देखते हैं कि अष्टम् दशक के प्रतिनिधि उपन्यासों में आर्थिक स्वरूप को भली-भाँति चित्रित किया गया है।

संदर्भ :

1. मुरदाघर : जगदम्बा प्रसाद दीक्षित, पृ0सं0 8
2. कटरा की आर्जू : डा0 राही मासूम रजा, पृ0सं0 68
3. धरती धन न अपना- जगदीशचन्द्र, पृ0सं0 86
4. प्रिया- दीप्ति खंडेलवाल, पृ0सं0 99
5. महाभोज : मन्नू भंडारी, पृ0सं0 112
6. दूसरी तरफ : महेन्द्र भल्ला, पृ0 70
7. नाच्यौ बहुत गोपाल : अमृतलाल नागर, पृ0सं0 21
8. टपरवाले : कृष्णा अग्निहोत्री, पृ0 37
9. क्लोज अप : सत्येन्द्र, पृ0 236
10. बसन्ती : भीष्म साहनी

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

Critiquing Knowledge Formation: The Idea of Education in Amitav Ghosh's *The Glass Palace* and *In an Antique Land*

Dr. Lakshmi Priya N. *

The Glass Palace which speaks about the colonial legacy focuses on readings on colonial patterns of suppression and further abuse. The major concern of Ghosh has been to bring out the underlying layers of exploitation at different levels. He presents us an array of pre-colonial, colonial and postcolonial situations where he tries to divulge into those familiar yet unnoticeable truths where concepts like education gets a different manifestation. The narrative provides us with images of various representations of education. The English education has been the most used and the most cunning means of exploitation methods of the British. By providing English education and leading those 'fortunate' few to the labyrinths of knowledge and power British was successful in creating a counter section of populace with a hegemonic mind set. They were led away by the pomp and splendor, luxury and the modesty it provided. They seldom realized their 'in between ness' in their urge for a privileged life. These people were the real strategic strength of the British. The British used the dreams and aspirations of this select few to subjugate an entire nation. Ghosh attempts to bring out these oft forgotten realities of intellectual slavery. He drives our conscience to the paths of disturbing realizations. Most of the characters we come across represent various levels of intellectual/emotional slavery. Man power has always been used by the British to expand their empire. But they could do it only through laying claim of their emotional aspirations and intellectualattributes.

In The Glass Palace, the District Collector of Ratnagiri, Beni Prasad Dey, educated at Cambridge is a forerunner in this respect. Though he himself a victim of the colonization he is never portrayed in such a manner. He believes in the conceited notions of the Empire and the white man's burden and submits himself to the supremacy of the empire. He consciously becomes the spokesperson of the Raj. Ghosh reveals the imperialist presence in India through him. The text introduces himthus,

* **Assistant Professor of English, Mahatma Gandhi College, Thiruvananthapuram, Kerala**

> The collector who arrived in 1905 was an Indian, a man by name of Beni Prasad Dey. He was in his early forties […] he was dressed in finely-cut Savile Row Suits and wore gold-rimmed eye glasses […] the Queen had seen many collectors come and go, Indian and English: she thought of them as her enemies and gaolers, upstarts to be held in scant regard.(105)

He seems to mock himself when at times he refers to the British "our teachers, the collector began-it was a running joke with him to speak of his Bristish Colleagues as amadergurujon" (136). Indian soldiers in the British army presented through the character Arjun, is yet another section of the population narrated through to bring out the under currents of educational bargaining. Dinu's accounts of Arjun reflect his new cultivated English-made self. The linesaccount,

> Arjun had lost his somnolence, and his pattern of speech was no longer so garbled and indistinct as they had once been. This itself was an interesting paradox, for Arjun's vocabulary seemed now to consist mainly of Jargon intermixed with assorted bits of English and Punjabi slang-everyone was now either a 'chap' or 'yaar'.(276)

These young men are so carried away by the veil of power and position that they regard them as more worthy than others and believe themselves to be the 'real citizens' of the country. Usually they were just 'brothers' but at times they were also much more, even the 'First' true Indians.' Look at us they would say, Punjabis, Marathas, Bengali's, Sikhs, Hindus, Muslims. Where else in India would you come across a group such as ours-where region and religion don't matter-where we can all drink together and eat beef and pork and think nothing of it.?" (278)

Arjun seems to be overwhelmed by the luxuries his job provided. Narrative records him assaying,

> Every meal at an officers' mess […] was an adventure, aglorious infringement of taboos. They ate food that none of them had ever touched at home: bacon, ham and sausages at breakfast; roast beef and pork chops for dinner. They drank whisky, beer and wine, smoked cigars, cigarettesand cigarillos. Nor was this just a matter of satisfying appetites: every mouthful had a meaning-each represented an advance towards the evolution of a new, more complete kind of Indian.(279)

He continues,

> We understand the west better than any of you civilians, 'Arjun liked to say. 'We know how the minds of the westerners work. Only when every Indian is like us will the country become truly modern" (280)

Ghosh's technique of minor narration is in its most ironical expression in such observations and comments by Arjun. He shows how a generation of young Indians and their thoughts and perceptions were diplomatically led astray by the British.

Education also becomes a reason of counter-power. The second half of the narrative which moves across the 20th century postcolonial Burma upholds this notion of awareness and resistance related to power. The anti-democratic attitudes and situations that plugged Burma faced resistance from various quarters, the most demanding being the one from the university student community. The strikes and demonstrations of 1988 that they held against the atrocities of General Ne Win is a marked example of their powerful resistance backed by their university student life. The education/awareness/right that these student communities claim is the major causes that group them together.

In an Antique Land which speaks about the network of relations spread across continents and centuries gather the multifaceted dynamics of the human existence. Though digging up the long-forgotten history and inventing a province and a populace seem to be the core criterion of the author, a close reading unveils a description of every sphere of human document. The characters used by Ghosh function as a real spokesman of a generation or an attitude. Ghosh has molded characters to suit his politics. The book itself is a result of the author's education, in the academic sense of the term. Ghosh while narrating his life in Egypt as a research scholar gives us a firsthand information of the field work undertaken by him as a researcher of social anthropology. In the process he befriends many common villagers; each being a representative of varying educational realizations.

Ghosh questions the process of education. The text introduces two characters Ustaz Sabry and Ustaz Mustafa, both teachers by profession and therefore the title Ustaz before the name. These two people signify entirely conflicting manifestation of the process of education though both of them claim to have a proper college/university education. Ustaz Mustafa, a law graduate from the University of Alexandria, is more culturally narrow minded than the illiterate fellaheen. His attitude towards Ghosh, his questions regarding Indian

life, religion and culture leave Ghosh helpless to vindicate himself or his nation's culture and way oflife.

> I have read all about India, said Ustaz Mustafa, smiling serenely […] 'there is a lot of chilly in the food and when a man dies his wife is dragged away and burnt alive […]what is this 'Hinduki' thing? I have heard of it before and I don't understand it. If it is not Christianity nor Judaism nor Islam what can it be? Who are its prophets?'(47)

Ustaz Mustafa can't believe Ghosh when he says Hinduism doesn't have a prophet. He urges Ghosh to drop his beliefs and convert himself to Islam. "Tomorrow, he said, 'I will take you with me to the grave yard and you can watch me reciting the Quran on my father's grave. You will see then how much better Islam is than this 'Hinduki' of yours." (51) The character Ustaz Mustafa invokes a dilemma regarding the concept of education. Ghosh knowingly or unknowingly leads us to ponder on the attribute of the concept of education. Is imparting theoretical textual borderline details called knowledge/education? or is it leading our intellect beyond cultural specificity. Ustaz Mustafa who is an educated man in the modern sense of the term is actually an agent of religio-cultural prejudice. The same issue further questions the notion of textual/printed details/knowledge. These types of textual awareness end in generalizing the multifaceted dynamic realities of a nation or its people. Education is reminiscent of the process of translation where the source concepts of life and living are only partially imparted to a new arena.

The corresponding character Ustaz Sabry represents a different reality. He appears to be more broadminded and self-suggestive of the specific realities happening around the globe. Youngsters find him more acceptable and informative and the text shows how college students as well as the common fellaheen get together in his house for daily casual chats as well as serious discussions. These youngsters question the old order of beliefs and customs. The elder generation considered Iman Ibrahim a well-informed man. But for the younger generation Imam is just a representative of the old-world order which is narrow and blind in their perceptions. For the new generation it was Ustaz Sabry who was a figure of respect and not Imam Ibrahim. Ghosh remembers a conversation that he once had with the character,Ismail.

There was no one in the village he admired more, he said: no one from whom he had learned as much, nobody he dearly wished to emulate. It was Ustaz Sabry, for instance, who had first thought of raising money for the

Afghans: in a speech at the mosque, he had talked of how Muslims were being slaughtered by Communists in Afghanistan, and the men of the village were so moved they raised quiet an impressive sum of money for themujahideen.(146). Ismail remembers another occasion where,

> in a speech on superstitions and mistaken beliefs he had eloquently condemned the custom that women observed, of leaving offerings at the graves of dead relatives. He had described the practice as unlawful and contrary to the spirit of Islam, and his speech was so powerful and convincing that the men went straight home from the mosque, and forbade the womenfolk to do it again. (146)

Ustaz Sabry represents a group or a generation who is ready to move across the socio/cultural religio/political specificities. Nabeel and Ismail are the representatives of the younger generation for whom education has a different manifestation. They tend to use education/university degree as a means to get a white collar job and get settled in their own home land. The process of education is here exploited for personal luxury. It is used just as a tool to attain ones owns means of survival and nothing solid to live on and base their attitudes on. Nabeel and Ismail don't desire anything more or anything less from their education. The textaccounts,

> When I first meet them, that night at Ustaz Sabry's house they were still students at an agricultural training college in Damanhour. They had only a short while to go and once in possession of their degrees they would each be entitled to a job in the Agricultural ministry (144)

The narrative set in the 1980's shows most of the youngsters going for university education and some others moving out of the country to grab the job opportunities in war torn Iraq. Those who move out seem to be lucky in making a fortune. We find Jabir back home after his college days frustrated for not getting a proper job while his brother who had migrated to Iraq seems to be in a good position. Nabeel and Ismail too drop their long cherished dream of getting a government job in their home country and follow the foreign trail. The established notion of theoretical education that these people claimed to have earned doesn't seem to help. All that come to use is their manpower. Then arrative seems to ask, is it worth to claim a systematic, certificate dependent, university education in this over demanding world for persistent endurance? Again Ghosh offers no solution, but opens up fields of debate.

The parallel 12th century narrative often has traces of education and scholarships mentioned. Nothing is mentioned about their method of educational patterns. But these medieval merchants/travelers seemed to have obtained a much broader sense of the world view through their experiences and travel. The all embracing nature of their travel zone of the medieval era itself is a manifestation of the tolerance and brotherhood of these medieval lives. The letters Ghosh useas reference points further reflect their awareness. The textrecords,

> they were a group of people whose travels and breadth of experience and education seem astonishing even today […] they were neither aristocrats nor soldiers nor professional scholastics [...] Most of them were small traders running small family business. Yet, despite their generally modest circumstances a majority of the men were endowed with a respectable level of education and some were among the most learned scholars of their time. (56)

Ghosh gives us sufficient details to illustrate that his principal character Abraham Ben Yiju too was a man of letters though he chooses trading as a living. Talking about Ben Yiju's father he says,

> He was called Perahya […] and he was a Rabbi, a respected scholar and a scribe. He may have dabbled in business, like most scholars of his time, but the family's circumstances seem to have been modest, and in all likelihoodhis principal bequest to his sons lay in the excellent education he provided them with. (154)

He further adds.

> Abraham Ben Yiju was certainly well enough educated to have become a scholar himself and he was very well versed in doctrinal and religious matters. His personal inclinations, however, appear to have tended towards the literary rather than the scholastic: he was an occasional poet, and he wrote a clear, carefully crafted prose, with some arresting images hidden under a deceptively plain surface.(154)

There is a constant juxtaposition between formal education and the means of living. Even when education becomes a tool of power dominance does itcreate sustainability? What is the direct link between the concepts of formal education (power) and knowledge? The narrative problemitizes the relation and

proceeds to look in to how formal textual education is deterritorialized in the narratives as awareness/ commonsense/survival instincts showing locally specific, culturally plural altermodernways of survivaltactics. Amitav Ghosh when embarking in the rendering of such particularly localized representation patterns is deliberately following the act of performing the native/ local/individual and there by resisting all the forms of grandworldview.

The little practices of resistive performance also function through the negation of the dominant/universal systems of knowledge and instead brings in local legends, stories, customs and beliefs as the particular label markers of history. In *In anAntiqueLand*Amitav Ghosh questions the cunningness of western systems of knowledge to revamp the 'knowledge' calendar. Ghosh shares his experience of visiting a library to collect information on Sidi Abu Hasira, a legendary figure, after his unfortunate experience of having been interrogated by the police during his sightseeing at a place where there was a recent mowlid celebrated in memory of Sidi Abu Hasira. He says,

> Looking through libraries , in search of material on Sidi Abu-Hasira, I wasted a great deal of time in looking under subject headings such as 'religion' and 'Judaism'-but of course that tomb, and others like it, had long ago been wished away from those shelves, in the process of shaping them to suit the patterns of Western Academy. Then, recollecting what my interrogator had said about the difference between religion and superstition, it occurred to me to turn to the shelves marked 'anthropology' and 'folklore'. Sure enough. It was in those regions that my efforts met with their first rewards.(342)

The narrative resists the idea of beliefs of a region been generalized as superstition or folklore by the Western intelligentsia. In the text by bringing out every concrete realizations of the belief patterns in the form of daily customs or age-old legend tales Ghosh reweaves perceptions and piously performs the act of inventing the idea of thelocal.

In an Antique Land provides a fascinating account of customs and traditions of medieval Egypt and South India. The synchronization of myths, legends, folk/local beliefs, and many other specific details of living that the narrative lays before allure us to the assorted alleyways of existence. The customs that find a mention in the text range from daily beliefs and practices to age old traditions. The text offers references of two major mowlids that has been celebrated in contemporary Egypt. OnebasedonthememoryofSidiAbu-

Hasiraandtheotherbeingcelebratedonthe legend Sidi Abbas of Nakhlatain. Ghosh, during his stay in Egypt wholeheartedly takes part in these mowlids. He is accompanied by village boys who inform him on the back stories and legends in relation to the mowlids. The narrative shares most such local legends in a comprehensivemanner. Once, Jabir takes Ghosh to a mowlid, a fair in honour of a saint's birthday. Ghosh shares the legend of Sidi Abbas of Nakhlatain, in whose honor the mowlid was being celebrated. The narrative details,

> Sidi 'Abbas had lived in Nakhlatain long, long ago, long before anyone could remember, and he had been famous throughout the region for his godliness and piety [..] Such was his fame that a large crowd gathered in his village when he died, and so many people were witness to the miraculous events that graced his funeral. Trying to lift the Sidi's bier, the men of the village found, to their amazement, that they couldn't move it at all […] It was only when the Sidi's son lent a hand that the body began to move, but even then, it was not he who moved the body: the Sidi had moved of his own volition.(65)

Lot of local stories squeeze in to age old oral legends and as age spans these stories also become part of the legends and add color to the miraculous segments. The text records the villagers as complimenting lot of miracle stories to the legend. The narrative continues to comment.

> Once […] for instance some thieves who were escaping with a herd of stolen water-buffalo were frozen to the ground, buffaloes and all, when they drew abreast of the Sidi's tomb. Such was Sidi's power that anything left touching the tomb was safe: farmers who were late going home in the evening would
>
> even leave such valuable things as their wooden ploughs leaning against its walls, knowing that they would not be touched. (66)

During Ghosh's second visit to Egypt he comes across another mowlid. He says,

> it so happened that my visit coincided with one of the region's annual events, a mowlid dedicated to the memory of a saintly figure known as Sidi Abu- Hasira, whose tomb lies on the out skirts of Damanhour […] The mowlid was a wonderful spectacle, I was told; there would be lights everywhere, stalls with pistols and air guns, swings and carousels; the streets would be lined

> with kebab shops and vendors carts and thronged with crowds.(329)

Ghosh says that the legend behind this mowlid was also very similar to other prominent ones about other holy men. The difference that he notes is the syncretic nature if this celebration.

> The Sidi had been born in to a Jewish family in the Maghreb, it was said, but he had transported himself to Egypt through a miracle that later found commemoration in his name: he had crossed the Mediterranean on a rush mat, which was why he was called 'Sidi Abu- Hasira', ' the saint of the mat'.(329)

Ghosh ironically presents the paradox of the modern world when he shares the unreasonable occurrence he had to face from the authority at the spot. Ghosh arrives at the site just after a mowlid. He is seized by the authorities at the site who cannot understand why an Indian should be interested in the shrine. Ghosh says that the officer couldn't understand why he was there. Narrativeshares,

> 'What was it that interested you about the place?' he asked again. 'What exactly took you there?'
>
> 'I was just interested, 'I said. 'That's all.
>
> 'But you're not Jewish or Israeli.' He said. You're Indian-what connection do you have with the tomb of a Jewish holy man here, here in Egypt?' (339)

Ghosh further opines,

> He was not trying to intimidate me; I could tell he was genuinely puzzled. He seemed so reasonable and intelligent, that for an instant I even thought of telling him the story of Bomma and Ben Yiju. But then it struck me, suddenly, that there was nothing I could point to within his world that might give credence to my story-the remains of those small, indistinguishable, intertwined histories, Indian and Egyptian, Muslim and Jewish, Hindu and Muslim, hadbeen partitioned long ago. (339)

The text is illuminated by stories and sub stories of local colors and beliefs. These stories lead us to the dynamic alleyways of village life which largely depends on local beliefs and manners. The resolute reminder and the textual celebration of the locally hued secular festivities as ways of life is placed

in contrast to the modern-day global, overall grandeur projections of segmented establishments. The mini politics of individual existence and the representations of personally political free will negating the omniscient notions are portrayed through the functions of local stories. These stories enact the role of alternate/minorhistories. Ghosh seems to be curious of the mowlids and celebrations. But he also throws up a discussion when he presents an opposing idea to these mowlids through the perception of Ustaz Sabry and other younger generation who seem to be part of the educated 'knowledgeable' class.

> Later the teachers got together and decided that the time had come to call a halt to the extravagances of the mowlid. The celebration of mowlids for local saints was not a part of the true practice of Islam, Ustaz Sabry argued; such customs only served to encourage superstition and religious laxity. Besides, the fellaheen wasted a lot of money on the mowlid each year, money they had worked hard to earn, and which they would have done better to spend on fertilizers and insecticides.(141)

The author probably doesn't agree with them for he also questions the objective of the western academicia in deciding the knowledge labels when they fix the details of such stories/legends under the heading superstition rather than religion. For Ghosh, probably, it's not a matter of religion/superstition. For him it's just a way of life; of survival and resistance. He seems to proclaim that whatever may be the idea behind it, such small, localized, imaginary/factual/legendary tales that share a collective existence is a necessity for our daily independent socio-cultural existence. Within the narrative he performs the act of resistance to the dominant over crashing waves of the westernized hegemonies by deliberately giving color to these alternate tales of local flavor. Through the sharing of such stories and sub stories Ghosh directly points to the lack of the local in today's global modernity and a need for a shift from opposing the western methods of modernity to finding local alternatives of the concept. i.e., a move beyond resistance to parallel inventions of alternatives. Michael Hardt and Antonio Negri in their *Commonwealth* observes the concept further as they opine,

> Altermodernity has a diagonal relationship with modernity. It marks conflict with modernity's hierarchies as much as does antimodernity but orients the forces of resistance more clearly toward an autonomous terrain". It extends beyond hostility and conflict. There is no fixed identities, but rather a process of transformation "in to a revolutionary becoming […] which moves

> beyond the static opposition between modernity and antimodernity and emerges as a dynamic, creative process. The passage from antimodernity to altermodernity is not defined by opposition but by rupture and transformation.(102-4)

Amitav Ghosh with his unique sensibility of inclusiveness and plurality has been a vehement critic of power dominance and euro centeredness in all facets of socio-cutural and political readings. This continued disruption of the same that he aims at through his narratives is his politics as a creative writer. While negating and cancelling out all preconceived notions of colonial modernity and westernized knowledge production he makes the readers ponder over the need to invent or assert our own native realities hitherto masked by the hegemonic power plays. The narratives of Amitav Ghosh is a critique of all kinds of hegemonic representations and productions which lead to the formations of history, culture and knowledge.it lures us to follow alternate ways of perceiving and living the everyday with a sense of pluralistic inclusiveness.

Works Cited

Ghosh, Amitav *In an Antique Land.* New York: Vintage Books, 1992. Print.

---. *The Glass Palace*. London: HarperCollins, 2000.Print.

---. *The Hungry Tide*. London: HarperCollins, 2004. Print.

Hardt, Michael, Antonio Negri. *Empire.* Cambridge: Harvard University Press, 2000.

---. *Multitude: War and Democracy in the age of Empire*. London: Penguin Books, 2005. Print.

---. *Commonwealth*. Cambridge: Harvard University Press, 2009.Print.

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

हिंदी- अनुसंधान का इतिहास

पवन भारती*

अद्यावधि उपलब्ध हिंदी के शोध ग्रंथों से यह पता चलता है कि सबसे पहले हिंदी साहित्य तथा भाषा पर विदेशी विश्वविद्यालयों में शोधकार्य शुरु हुए। शोधकर्ता भी अहिंदीभाषी ही थे। आरम्भिक शोध-ग्रंथ विषय-विस्तार, विश्लेषण-स्थूलता, विवेचन शैली की साहित्यिकता तथा समन्वित शैली तथा शोध- व्यवस्था की अनिश्चितता के कारण परवर्ती शोधकार्यों के स्वस्थ, प्रगतिशील तथा आदर्श शोध-मार्ग प्रशस्त करने में असमर्थ रहे हैं। इन आरम्भिक प्रयासों ने परवर्ती शोधकार्यों के प्रचार-प्रसार को प्रश्रय दिया है। शोध-परम्परा-प्रजनन की दृष्टि से इनका विशेष महत्त्व है, शोध-तकनीक की दृष्टि से नहीं।

सर्वप्रथम फ्लोरेंस विश्वविद्यालय के स्नातक श्रीयुत लुइजि पिओ तेसीतरी (एल. पी. टेसीटरी) ने सन 1911 ई. में ईटेलियन भाषा में ' इल रामचरितमानस ए इल रामायण` विषय पर एक लेख लिखा। प्राच्य विद्वानों ने इस लेख की भूरि-भूरि प्रशंसा की। प्रशंसा से प्रेरित होकर फ्लोरेंस विश्वविद्यालय ने तेसीतरी को शोध-उपाधि से सम्मानित किया। यह स्पष्ट नहीं हो सका है कि उक्त उपाधि उक्त लेख के मूल्यांकन के बाद दी गई थी अथवा मानद उपाधि थी। हिंदी-क्षेत्र के शोध-विषय का लेखन दूसरा शोधकार्य लन्दन में सन 1918 ई. में श्री जे. एन. कारपेंटर ने दाथियोलॉजी ऑफ तुलसीदास (तुलसीदास का धर्मदर्शन) विषय पर प्रस्तुत किया। ` हिन्दुस्तानी फॉनेटिक्स` विषय पर श्री मोहिउद्दीन कादरी द्वारा प्रस्तुत तीसराअ शोध-प्रबन्ध है। लन्दन विश्वविद्यालय ने सन 1930 ई. उक्त विषय पर शोध-उपाधि प्रदान की। यह उर्दू भाषा में प्रणीत शोध-ग्रंथ रहा है।

श्री बाबूराम सक्सेना ने सन 1930 ई. में ` इवोल्यूशन ऑफ अवधी` (अवधी का विकास) विशय पर प्रयाग विश्वविद्यालय में शोध-प्रबंध प्रस्तुत किया। इस शोध-विषय पर उनको डी.लि. की उपाधि प्राप्त हुई। यह पहला हिंदी का शोध-प्रबंध था जो किसी हिंदी विश्वविद्यालय में प्रस्तुत किया गया था। काशी हिंदी विश्वविद्यालय में भारतीय भाषाविज्ञान के प्रोफेसर टर्नर की प्रेरणा से उक्त शोदह-प्रबंध शुभारम्भ किया गया था। यह शोध-प्रबंध संस्कृत-विभाग में प्रस्तुत किया गया था। सन 1934 ई. में श्री पीताम्बरदत्त बडथ्वाल ने हिंदू विश्वविद्यालय काशी में ` दा निर्गुन स्कूल ऑफ हिंदी पोएट्री` (हिंदी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय), शोध-प्रबंध पर

* **हिंदी अधिकारी मुम्बई पत्तन न्यास, मुम्बई**

डी. लिट. की उपाधि प्राप्त की थी। यह हिंदी विषय पर हिंदी-विभाग में प्रस्तुत किया गया पहला शोध-प्रबंध माना जाता है। सन 1934 ई. में ही जनार्दन मिश्र ने ` सूरदास का धार्मिक काव्य` शोध विषय पर कोनिग्सबर्ग विश्वविद्यालय से शोध-उपाधि प्राप्त की थी। श्री धीरेंद्र वर्मा का शोध-प्रबंध ` द लॉग ब्रज` (ब्रज भाषा) सन 1935 ई. पेरिस विश्वविद्यालय से डी. लिट. की उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ। उक्त शोध-प्रबंध के संख्यायन तथा विषय- से यह पता चलता है कि सन 1911 ई. से लेकर 1935 ई. तक कुल सात शोध-प्रबंध लिखे गए। इनमें तीन विदेशी थे। इनमें से दो शोध-उपाधियां हिंदी-विश्वविद्यालय द्वारा प्रदान की गईं। तीन शोध-प्रबंध भाषा-विज्ञान के विषयों को लेकर लिखे गए। पाँच शोध-प्रबंधों के शोध-विषय भक्तिकाल से सम्बंधित थे। पहला शोध-प्रबंध तुलनात्मक था। दूसरे शोध-प्रबंध का शोध-विषय धर्मदर्शन से सम्बंधित था। इनमें से दो डी.लिट. के लिए प्रस्तुत किए गए थे। एक डी.डी (डॉक्टर ऑफ डिवाइन) के लिए तथा शेष पीएच.डी के लिए स्वीकृत हुए थे। विदेशों विद्वानों ने विदेशी विश्वविद्यालयों में हिंदी के शोध विषयों पर शोध-प्रबंध लिखे। इस अवधि तक हिंदी विइश्वविद्यालयों में हिंदी साहित्य तथा भाषा के अध्ययन-अध्यापन का गौरवपूर्ण पद प्राप्त नहीं हुआ था। हिंदी ही नहीं अन्य विषयों में भी शोधकार्यों का अविकसित रूप था। इसे शोधकार्य का आरम्भ काल कहते हैं। हिंदी अनुसंधान का द्वितीय काल सन 1937 से 1947 तक माना जाता है। इसे हिंदी-शोध का विकास-काल कह सकते हैं। इस अवधि में काशी, प्रयाग, नागपुर, पंजाब और आगरा पांच विश्वविद्यालयों में हिंदी साहित्य, हिंदी-भाषा, हिंदी-संस्कृति, काव्यशास्त्र, काव्यधारा तथा विशिष्ट साहित्यकारों पर शोधकार्य सम्पन्न हुए । सन 1946-47 ई. में कलकत्ता, पटना और लखनऊ 3 विश्वविद्यालयों में हिंदी- शोधकार्य और समारम्भ हुए, इस प्रकार कुल 8 विश्वविद्यालयों में हिंदी-विषयक शोधकार्य किए जाने लगे। इस अवधि में कुल मिलाकर 29 शोध-प्रबंध लिखे गए। साहित्य-संस्कृति काव्यधारा तथा विशिष्ट साहित्यकारों से सम्बंधित शोधकार्य अधिक लिखे गए। भाषाविज्ञान तथा काव्यशास्त्र पर बहुत कम शोधकार्य प्रणीत हुए। ये शोधकार्य विषय-निर्वाचन,तथ्य-नियोजन तथा शोध-तकनीक की दृष्टि से प्रथम-काल के शोधकार्यों से अधिक स्पष्ट, निश्चित तथा श्रेयस्कर हैं। शोध-प्रक्रिया. शोध-व्यवस्था तथा शोध-प्रविधि की दृष्टि से इस समय के शोध-प्रबंध अधिक प्रामाणिक तथा वैज्ञानिक हैं। सन 1948 से हिंदी अनुसंधान का विस्तारकाल आरम्भ होता है। सन 1947 के भारत-स्वाधीनता-जागरण के बाद भारत्वासियों का अंग्रेजी के प्रति ममत्व कम हुआ। हिंदी के अध्ययन-अध्यापन की अभिरुचि का निर्माण तथा विकास हुआ। हिंदी के शोध-छात्रों की संख्या में वृद्धि हुई। अनेक नवीन हिंदी विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई। हिंदी-अनुसंधान कार्य भी परिणाम में अभिवृद्धि

को प्राप्त हुआ। सन 1947 तक क्षेत्रीय शोधकार्यों को प्रश्रय नहीं मिला था। स्वाधीनता के बाद भारतवर्ष के अनेक विश्वविद्यालयों में भाषविज्ञान का अध्ययन आरम्भ हुआ। क. मु. हिंदी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ, आगरा, मैसूर, पूना, कलकत्ता, रायपुर, जबलपुर, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा आदि केंदों पर भाषाविज्ञान-विषयक शोधकार्य सम्पन्न हो रहे हैं। यांत्रिक ध्वनिविज्ञान पर भी कुछ केंद्रों पर कार्य हो रहे हैं। पाठानुसंधानविषयक शोधकार्य भी किए जा रहे हैं। पटना तथा प्रयाग विश्वविद्यालयों में पाठानुसंधान के एक प्रश्न-पत्र को एम.ए.(हिंदी) कक्षाओं में अनिवार्य कर दिया गया है। अभी भी लोकसाहित्य तथा लोकभाषा का शोध-क्षेत्र उत्साही तथा कर्मठ शोधार्थियों की बाट जोह रहा है। प्रत्येक जनपद के लोकगीतों, लोकनाट्य, लोकवार्ता तथा लोकगाथा विषयक मान्यताओं तथा जीवन-मूल्यों की योजनाबद्ध पद्धति से स्पष्ट किया जा सकता है। भाषावैज्ञानिक शोधकार्यों के लिए उपयुक्त प्रशिक्षण की आवश्यकता है। इस क्षेत्र में अभी तक जो कुछ शोधकार्य हुए हैं उनका शोध-मूल्य नगण्य ही है। अखिल भारतीय स्तर पर भाषा-शोध को संरचना, तुलनात्मक, ऐतिहासिक, क्षेत्रीय तथा यांत्रिक पद्धति से समारम्भ किया जा सकता है। इस प्रकार के योजनाबद्ध पद्धति से सम्पन्न शोधकार्यों द्वारा भारतीय संस्कृति के सजातीय तथा निजातीय रचना-सूत्र स्पष्ट तथा स्थापित किए जा सकते हैं। इस काल में अंतर्विधायी शोधकार्यों का समारम्भ भी हुआ है। यद्यपि अभी तक इन अंरर्विषयी शोधकार्यों का निश्चित स्वरूप निर्धारित नहीं हो सका है। उक्त शोधकार्यों के अतिरिक्त मनोभाषावैज्ञानिक, समाजभाषावैज्ञानिक तथा राजनीति भाषावैज्ञानिक शोधकार्यों का न के बराबर श्रीगणेश हुआ है। कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के भाषाविज्ञान-विभाग में मनोभाषा-विज्ञान तथा समाजभाषाविज्ञान के स्नातकोत्तर स्तर पर प्रश्न-पत्र भी पढाए जाते हैं। राजनीतिभाषावैज्ञानिक शोधकार्यों का अभी तक समारम्भ नहीं हुआ है। इसके समारम्भ की आवश्यकता है।

इस अवधि में काव्यशास्त्रीय, जीवनवृतीय, प्रभावपरक, सांस्कृतिक, शैली-वैज्ञानिक आदि शोधकार्यों का आरम्भ हो गया है। शैली-वैज्ञानिक शोधकार्यों का अभी भी स्वरूप निश्चित नहीं हो पाया है। प्रवृतिपरक, व्यक्तित्व-कृतित्व सम्बंधी, समाजशास्त्रीय, मनोवैज्ञानिक, विशिष्ट साहित्यकार, रचनाओं के संबंध में, वाद सम्प्रदाय, धर्म-दर्शन आदि के शोधकार्य भी हो रहे हैं। अभी भी अनुवाद वैज्ञानिक तथा कोश वैज्ञानिक शोधकार्यों को नितांत आवश्यकता है। कोशविज्ञान पर तो कुछ शोधकार्य हुए भी हैं यद्यपि उनका शोधमूल्य मानक पद्धति से परी ही है परंतु अनुवाद विज्ञान संबंधी शोधकार्यों का नितांत अभाव है। अनुवाद विज्ञान के सिद्धांतों का निर्धारण, उनका विभिन्न रचना-सूत्रों के स्पष्टीकरण में प्रयोग तथा काव्यानुवाद अपने में एक

समस्याएं हैं जो शोध-जगत में नवीन शोध-पद्धति का सूत्रपात कर सकती है। हिंदी-क्षेत्र में वीरगाथाकाल के विषयों पर बहुत कम शोधकार्य हुए हैं। भक्तिकालीन विषयों पर सर्वाधिक शोधकार्य हुए हैं। भक्तिकाल में भी अकेला तुलसी पर ही विभिन्न प्रकार के शोधकार्यों की संख्या संतोषजनक है। कबीर, सूर तथा प्रेमाख्यानक काव्यों पर भी पर्याप्त शोधकार्य हुए । रीतिकाल के कवियों तथा उनकी रचनाओं पर भी काफी शोधकार्य हुए हैं। आधुनिक हिंदी साहित्य में पद्य तथा गद्य दोनों प्रकार की विभिन्न काव्यधाराओं पर पर्याप्त मात्रा में शोधकार्य हो रहे हैं। भारतेंदूयुगीन, द्विवेदीयुगीन, छायावादी, प्रयोगवादी, प्रयोगवादी तथा नयी कविता आदि के विविध विषयों पर विभिन्न पद्धतियों से अंनेक शोधकार्य हो रहे हैं। गद्य-साहित्य में उपन्यास पर सबसे अधिक शोधकार्य हुए हैं तथा हो रहे हैं।, कहानी, नाटक, एकांकी, आलोचना, निबंध, यात्रा-साहित्य और पत्रकारिता आदि अनेक विधाओं पर भारतवर्ष के अनेक विश्वविद्यालयों में शोधकार्य हो रहे हैं। हिंदी का विश्व-राजनीति में महत्व बढने तथा विश्व-भाषा बनने की प्रतियोगिताओं में अग्रसर होने के कारण शोध-दायित्व और बढ जाता है। रूस, अमेरिका, ब्रिटेन, मारीशस, ग्वाना, ट्रिनिडाड आदि विदेशों में हिंदी-अध्ययन-अध्यापन का कार्य विकसित हो रहा है अत: हिंदी-शोधकार्यों को विभिन्न दिशाओं में प्रगतिशील बनाना है। उपर्युक्त विवेचित शोधकार्यों का स्वातंत्र्य भावना की दृष्टि से दो भागों में बांट सकते हैं- 1. स्वाधीनता-पूर्व के शोधकार्य 2. स्वाधीनता-बाद के शोधकार्य प्रथम प्रकार के शोधकार्य गुणात्मक दृष्टि से उत्तम होते हुए भी परिमाणात्मक दृष्टि से सीमित रहे हैं। इन कार्यों की प्रकृति, प्रकार्यता तथा रचनाविधान को देखने से पता चलता है कि विषय-विस्तार, शोध-मूल्यों की अस्पष्टता, शोध-नियमों की अनिश्चितता तथा शोध-प्रविधि की अनभिज्ञता इनका दूषण रही है। हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, अवधि भाषा का विकास, ब्रज भाषा आदि शोध-विषय इतने विस्तृत कि शोधार्थी सूक्ष्म तथा निश्चित नियमनिर्धारण में न्याय नहीं कर सकता है। आज सूक्ष्म तथा गहन शोधकार्यों का समारम्भ हुआ है। नवीन शोध-पद्धतियों का आविष्कार हुआ है। अनेक शोध-क्षेत्र प्रकाश में आए हैं। शोध-प्रक्रिया, व्यवस्था तथा प्रविधि स्पष्ट हुई हैं। वर्तमान हिंदी क्षेत्र में अभी तक जो शोधकार्य हुए हैं वे हिंदी साहित्य तथा हिंदी-भाषा के बाह्य स्वरूप तक ही सीमित हैं। इनके पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता है। निश्चित शोध-पद्धतियों को आधार बनाकर अथवा निस्संग संरचना विश्लेषण करके आदर्श शोध-मूल्यों की स्थापना की आवश्यकता है। निश्चित तथा वैज्ञानिक शोध-प्रक्रिया, प्रामाणिक तथा वैज्ञानिक प्रविधि, क्रमिक तथा तार्किक शोध-व्यवस्था सभी वर्तमान शोधकार्यों के आदर्शीकरण के लिए अपेक्षित हैं। यही नहीं हिंदी शोध-जगत में आदर्श तथा मानक शोध-नियमों की अपरिहार्य आवश्यकता है

ताकि शोध-प्रबंधों की विश्लेषणपद्धति तथा विवेचनशैली में स्पष्टता, प्रामाणिकता,निश्चितता तथा पूर्णता स्थापित हो सके। वर्तमान हिंदी, शोध-क्षेत्र को व्यवसायी प्रवृत्ति से बचाने की आवश्यकता है। पदप्राप्ति, धनप्राप्ति की भावना से किए जाने वाले शोधकार्यों पर अंकुश लगाने की आवश्यकता है। शोधकार्य पवित्र ज्ञानप्राप्ति तथा ज्ञानविस्तार की भावना से किए जाने चाहिए। हिंदी शोध-पर्यवेक्षकों तथा शोध-परीक्षकों को ईमानदारी, निष्ठा, अनवरत साधना तथा प्रगाढ अध्ययन और प्रशिक्षण के द्वारा हिंदी-शोधकार्य को प्रभावी तथा उच्च स्तरीय बनाना है। हिंदी शोधकार्य केवल मानक बनकर हिंदी शोध जगत का गौरव न बढाए अपितु विश्व शोधमूल्यों को भी प्रोत्साहित तथा प्रेरित करे। इस ज्ञान-साधन के पवित्र मंदिर में मनसा, वाचा, कर्मणा, सेवा-परायण, शोधार्थी, शोध-निरीक्षण तथा शोध-परीक्षकों को ही प्रवेश करना चाहिए। सस्ती लोकप्रियता चाहने वाले तथा अर्थाभिलाषी शोधार्थियों को इस क्षेत्र को अपवित्र नहीं करना चाहिए।

संदर्भ-ग्रंथ-सूची

1. अनुसंधान और आलोचना- डॉ. नगेंद्र, प्रकाशक- नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी सडक, दिल्ली, प्रथमसंस्करण दिसम्बर 1961ई.।
2. अनुसंधान का विवेचन- डॉ. उदयभानसिंह, हिंदी साहित्य संसार, दिल्ली-6 प्रथम संस्करण 1962 ई.।
3. अनुसंधान की प्रक्रिया- सम्पादक- डॉ. सावित्री सिन्हा, डॉ. विजेंद्र स्नातक, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
4. अनुसंधान का स्वरूप-सम्पादिका- डॉ. सावित्री सिन्हा, प्रकाशक श्री रामलाल पुरी, आत्माराम एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली- 6
5. अनुसंधान का व्यावहारिक स्वरूप- डॉ. उर्वशी जे. सूरती, प्रकाशक- हिंदी ग्रंथ रत्नाकर,(प्रा.) लि. हीराबाग बम्बई-4 प्रथम संस्करण 1973।
6. भारतीय पाठालोचन की भूमिका- डॉ. एस. एम. कन्ने, अनुवादक डॉ. उदयनारायण तिवारी, मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, संस्करण 1971 ई.
7. शोध-प्रविधि- डॉ. विनय मोहन शर्मा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस 23, दरियागंज, नयी दिल्ली प्रथम संस्करण 1973 ई.।
8. शोध और समीक्षा- डॉ. सुरेश चंद्र गुप्त, रवींद्र प्रकाशन, पाटनकर बाजार ग्वालियर, 1036 दिल्लीगेट, आगरा, प्रथम संस्करण, 1967ई.।

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

निराला का भाषागत संघर्ष

डॉ0 स्मिता कुमारी*

तुलसीदास के बाद हिन्दी साहित्य में निराला ही एक ऐसे कवि हैं जिन्होंने भारतीय काव्य मनीषा को ठीक से समझकर उसे युग अनुरूप प्रेरणादायी बनाया था। जैसे तुलसी ने फारसी के आतंक से हिन्दी को मुक्त कर भाषा के स्तर पर इतने प्रयोग किए कि वह हिन्दी साहित्य के लिए उपयोगी बन गयी। उन्होंने संस्कृत की कठिन शब्दावली को सहज और जनप्रिय छन्दों में ढाला यही कारण है कि रामचरित्र मानस के प्रत्येक काण्ड का प्रारम्भ वे बोधगम्य संस्कृत में करते हैं। निराला ने भाषा और छनद के स्तर पर हिन्दी में जो प्रयोग किए उन्हें तुलसीदास के प्रयोग से जोड़कर देखना उचित है। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के युग के बाद और विशेषकर सरस्वती के प्रकाशन का वह कालखण्ड जो आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी युग के नाम से जाना जाता है। निराला भी इसी कालखण्ड में लेखन प्रारम्भ करते हैं। द्विवेदी जी जिस हिन्दी को विकसित करने में लगे रहे महाप्राण निराला जैसे अनेक साहित्यकारों और साहित्य प्रेमियों ने अपना सर्वस्व अर्पण किया। उसी हिन्दी को आग बढ़ाने का दायित्व वर्तमान पीढ़ियों का है। यह पितृऋण हमारे ऊपर है। इससे उऋण हुए बिना न तो हमारी मुक्ति है और न ही राष्ट्र की। हिन्दी जिस रूप में आज हमारे सामने है उसमें निराला का बहुत बड़ा योगदान है। ही ग्रंथि से पीड़ित हिन्दी समाज को अपनी भाषा और साहित्य पर इसलिए स्वाभिमान होना चाहिए क्योंकि उसके पास विश्व का सबसे बड़ा कवि तुलसीदास है। उन्हें इसलिए भी गौरव होना चाहिए क्योंकि उनके पास सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला जैसा साहित्यकार और पत्रकार उपलब्ध है। लेकिन यह दुःखद पक्ष है कि आज हिन्दी भाषी समाज इन मूल्यवान बिन्दुओं पर विचार नहीं कर रहा है। हमारा सोच इस स्तर तक कैसे पहुँच गया। इस विचार करते हुए निराला ने सुधा पत्रिका के सम्पादिकीय में सन् 1935 में लिखा था। हिन्दी साहित्यकारों ने हिन्दी के पीछे तो अपना सर्वस्व कर दिया है पर हिन्दी भाषियों ने उनकी तरफ वैसा ध्यान नहीं दिया शतांश भी नहीं। वे साहित्यिक इस समय जिन कठिनता का सामना कर रहे है। उसे देखकर किसी भी सहृदय की आँखों में आँसू आ जाएँगे। बदले में उन्हें अनधिकारी साहित्यकों से लाँछन और असंस्कृत जनता से अनादर प्राप्त हो रहा है। सुधा जून 35 समां टि 2 निराला का जन्म 21 फरवरी 1899 में महिषादल में हुआ था। यह स्थान आज के बंगलादेश में आता है। यह समय देश की आजादी के लिए संघर्ष का समय था। अंग्रेज की रणनीति का यह महत्वपूर्ण हिस्सा रहा है कि वे जहाँ भी शासन करते थे। वहाँ की भाषाओं को नष्ट कर देते थे। डॉ0 रामविलास शर्मा लिखते हैं साम्राज्यवाद से जहाँ बन पड़ा उसने न केवल भाषाओं का वरन् उन्हें बालने वाली जातियों का भी नाश किया। अमेरीकी माहद्विपों में आजतक और इनका जनों की सभ्यताएँ अत्यन्त विकसित थीं। अब वहाँ उनके ध्वंसावशेष ही रह गए हैं। रेड इंडियन जनों से उनकी भूमि छीन ली गयी। अमेरिकी विश्वविद्यलयों में उनकी भाषाएँ शिक्षा का माध्यम नहीं है। अमेरिकी नीग्रो अंग्रेजी बालते हैं उनके पुरखे कौन सी भाषा बालते थे। यह वे नहीं जानते। दक्षिणी अफ्रिका रोडेशिया आस्ट्रेलिया न्यूजीलैण्ड जहाँ भी साम्राज्यवादियों से बन पड़ा उन्होने गुलाम बनाए हुए देशों के मूल निवासियों का नाश किया उनकी भाषाओं और संस्कृतियों का दमन किया। निराला की साहित्य

* पीएच. डी. (हिन्दी), बी.एन. मंडल, विश्वविद्यालय, मधेपुरा

साधना भाग पृष्ठ एक महान् चिन्तक की तरह निराला अपने समय की स्थिति पर निगाह रखे हुए थे तथा अपनी कविताओं और लेखों के द्वारा भारतीय जनमानस को यह बता रहे थे कि अंग्रेजी की पक्षधरता उन्हें कहाँ से जाएगी। सन् 1930 में सुधा के सम्पादकीय में उन्होंने लिखा भारतवर्ष अंग्रेजों की साम्राज्य लालसा सर्वप्रधान ध्येय रहा है। यहाँ कि सभ्यता और संस्कृति अंग्रेजों की सभ्यता से बहुत कम मेल खाती थी पर सात समुद्र पर से आकर इतने विस्तृत और इतने सभ्य देश में राज्य करना जिन अंग्रेजों को अभीष्ट था वे बिना अपनी कूटनीति का प्रयोग किए कैसे रह सकते थे। अंग्रेजों की नीति हुई भारत के इतिहास को विकृत कर दो और हो सके तो उसकी भाषा को मिटा दो। चेष्टाएँ की जाने लगी। भारतीय सभ्यता और संस्कृति तुलना में नीची दिखायी जाने लगी। हमारी भाषाएँ गँवरू असाहित्यिक और अविकसित बताई जाने लगी। हमारा प्राचीन इतिहास अंधकार में पड़ा हुआ जन समाज समझने लगा कि कुछ है अंगेजी सभ्यता है अंग्रेजी साहित्य है और अंग्रेज हैं निराला हिन्दी और संस्कृत के लिए निरन्तर संघर्ष करते रहे अनामिका नाम की कविता संग्रह में मित्र के प्रति कविता में उनके भाव देखे जा सकते हैं जला है जीवन यह आतप में दीर्घकालसूखी भूमि सूखे तरू सूखे शिक्त आलावबन्द हुआ गूँज धूलि धूसर हो गए कुंज किन्तु पड़ी व्योमउर बन्धु नील मेध माल। जो काम देश की आजादी के लिए क्रांतिकारी लोग अपने स्तर पर कर रहे थे। और इससे भी अधिक वे दोनों स्तरों पर काम कर रहे थे। पूरे स्वतंत्रता आंदोलन में किसानों का जो एक मात्र आंदोलन हुआ था। इस आंदोलन में निराला ने महत्पूर्ण भूमिका निभाई थी। निराला के जीवन पर केन्द्रित पुस्तक निराला की साहित्य साधना भाग 1, 2, 3 में डॉ. रामविलास शर्मा ने निराला के भाषागत संघर्ष का सुन्दर चित्रण किया है। इस पुस्तक के विषय में कहा जाता है कि किसी कवि पर केन्द्रित विश्व की उत्कृष्ट रचना है। डॉ. रामविलास शर्मा लिखते हैं जला है जीवन यह निराला का जीवन जला है हिन्दी का जीवन जला है। निराला के मन की आशाएँ उल्लास विषाद् निराशा वीरतापूर्ण कर्म त्रास दुःस्वप्न यह सब कुछ कहीं न कहीं हिन्दी के इस आन्तरिक संघर्ष से जुड़ा हुआ है। निराला के बिना हिन्दी यह संघर्ष नहीं समझा जा सकता इस संघर्ष के बिना निराला नहीं समझे जा सकते न व्यक्तित्व न कृतित्व। निराला का जीवन हिन्दीमय है हिन्दी उनके लिए साहित्य साधना का माध्यम है अपने में यह साध्य है। भारत देश और इस देश की जनता की तरह निराला की आस्था श्रद्धा सर्वाधिक प्रेम का अधिष्ठान है भाषा। असहय पीड़ा के क्षणों में वह सारा दुःख यह हिन्दी का प्रेमोपहार कह कर स्वीकार करते हैं। (निराला की साहित्य साधना भाग 2 पृष्ठ 172) हिन्दी को लेकर निराला उस समय के सबसे बड़े नेताओं से भी बातचीत कर अपनी चिन्ताएँ व्यक्त करते रहे। उन्होंने महात्मा गाँधी से भी हिन्दी के विकास को लेकर बातचीत की। गाँधी जी हिन्दी के प्रबल पक्षधर थे। स्वतंत्रता आन्दोलन में लगे हुए नेताओं में गाँधी ही एक ऐसे व्यक्ति थे जो राजनैतिक आजादी को भाषागत आजादी से जोड़कर देख रहे थे और यह कह रहे थे। मेरा नम्र लेकिन दृढ़ अभिप्राय है कि जब तक हम भाषा को राष्ट्रीय और अपनी भाषाओं प्रान्तों में उनका योग्य स्थान नहीं देंगे तब तक स्वराज्य की सब बातें निरर्थक हैं। सन् 1935 में इन्दौर म दिए गए भीषण से गाँधी के इसी देश में आज का ज्ञान आयोग यह मानता है कि बिना अंग्रेजी के राष्ट्र का विकास असम्भव है। ज्ञान आयोग और चाहे जो कुछ भी सोचे किन्तु उसका यह सोच गाँधी और निराला की भाँति राष्ट्र के उन्नयन की बात नहीं सोच रहा है। इसी भाँति वे पंडित जवाहरलाल नेहरू से भी हिन्दी के चिन्तन को लेकर आमने सामने हुए। इस घटना का चित्रण करते हुए डॉ0 रामविलास शर्मा ने लिखा है। यह चित्रण उस समय का है जब रावी नदी के तट पर पूर्ण स्वाधीनता की प्रतिज्ञा ली गई थी जिसकी खुशी में पूरे देश में कार्यक्रम आयोजित हो रहे थे जिनमें भाग लेने के लिए राष्ट्रीय नेता पूरे देश का भ्रमण कर रहे थे जनता से विदा

होने और गाड़ी के चलने पर जब नेहरू भी भीतर आकर बैठे तब निराला ने शुरू किया आपसे कुछ बातें करने की गरज से अपनी जगह से यहाँ आया हुआ हूँ। नेहरू ने कुछ न कहा। निराला ने अपना परिचय दिया। फिर हिन्दुस्तानी का प्रसंग छेड़ा सूक्ष्म भाव प्रकट करने में हिन्दुस्तानी की असमर्थता जाहिर की।फिर एक चुनौती दी मैं हिन्दी के कुछ वाक्य आपको दूँगा जिनका अनुवाद आप हिन्दुस्तानी जबान में कर देंगे मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ। इस वक्त आपको समय नहीं। अगर इलाहाबाद में आप मुझे आज्ञा करें तो किसी वक्त मिलकर मैं आपसे उन पंक्तियों के अनुवाद के लिए निवेदन करूँ जवाहरलाल नेहरू ने चुनौती न की समय देने में असमर्थता प्रकट की। निराला ने दूसरा प्रसंग छेड़ा। समाज के पिछड़ेपन की बात की ज्ञान से सुधार करने का सूत्र पेश किया। हिन्दु मुस्लिम समस्या का हल हिन्दी के नये साहित्य में जितना सही पाया जायगा। राजनीतिक साहित्य में नहीं निराला ने अपने व्यावहारिक वेदान्त कर गुर समझाया। जवाहरलाल नेहरू डिब्बे में आई बला को देखते रहे उसे टालने की कोई कारगर तरकीब सामने न थी। डिब्बे में आर एस पंडित भी थे। दोनों में किसी ने बहस में पड़ना उचित न समझा। लेकिन निराला सुनने नहीं सुनाने आये थे। बनारस की गोष्ठी में जवाहरलल के भाषण पर वह सुधा में लिख चुके थे तब वह व्यक्ति सामने था जो अपने हिन्दी साहित्य संबंधी ज्ञान पर लज्जित न था जो स्वंय अंग्रेजी में लिखता था जो हिन्दी वालों को वाक्य करना चाहिए उपदेश देता था। इससे पूर्व पंडित नेहरू बनारस के एक सम्मेलन में कह आए थे कि हिन्दी साहित्य अभी दरबारी परम्परा से नहीं उबरा हैं यहीं पर उन्होंने यह भी कहा था कि अच्छा होगा कि अंग्रेजी साहित्य की कुछ चुनी हुई पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद करवाया जाए पूरे प्रसंग पर ही निराला पंडित जवाहरलाल नेहरू से बात कर रहे थे निराला ने कहा पंडित जी यह मामूली अफसोस की बात नहीं कि आप जैसे सुप्रसिद्ध व्यक्ति इस प्रान्त में होते हुए भी इस प्रान्त का राजनीतिक व्यक्ति ऐसा नहीं। सन् 1930 के लगभग श्री सुभाष बोस ने लाहौर के विद्यार्थियों के बीच भाषण करते हुए कहा था कि बंगाल के कवि पंजाब के वीरों के चरित्र गाते हैं। उन्हें अपनी भाषा का ज्ञान और गर्व है। महात्मा गाँधी के लिए कहा जाता है कि गुजराती को उन्होंने नया जीवन दिया है। बनारस के जिन साहित्यकों की मण्डली आपनी दरबारी कवियों का उल्लेख किया कि उनमें से तीन मैं जानता हूँ। तीनों अपने अपने विषय के हिन्दी के प्रवर्तक हैं। प्रसाद जी काव्य और नाटक साहित्य के प्रेमचन्द्र जी कथा साहित्य के और रामचन्द्र जी शुक्ल आलोचना साहित्य के आप ही समझिए कि इनके बीच आपका दरबारी कवियों का उल्लेख कितना हास्यास्पाद हो सकता है। एक तो हिन्दी के साहित्यिक साधारण श्रेणी के लोग हैं एक हाथ से वार झेलते दूसरे से लिखते हुए दूसरे आप जैसे बड़े–बड़े व्यक्तियों की मैदान में वे मुखालिफत करते देखते हैं। हमने जब काम शुरू किया था हमारी मुखालिफत हुई थी। आज जब हम कुछ प्रतिष्ठित हुए अपने विरोधियों से लड़ते साहित्य की दृष्टि करते हुए तब किन्हीं मानी में हम आपको मुखालिफत करते देखते हैं। यह कम दुर्भाग्य की बात नहीं साहित्यिक के लिए। हम वार झेलते हुए सामने आए ही थे। कि आपका वार हुआ। हम जानते है कि हिन्दी लिखने के लिए कलम हाथ में लेने पर बिना हमारे कहे फैसला हो जायगा कि बड़े से बड़ा प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ एक जानकार साहित्यिक के मुकाबले कितने पानी में ठहरता है। लेकिन यह तो बताइए जहाँ सुभाष बाबू अगर मैं भूलता नहीं अपने सभापति के अभिभाषण में शरत्चन्द्र के निधन का जिक्र करते हैं वहाँ क्या वह है जो आपकी जुबान पर प्रसाद का नाम नहीं आता मैं समझता हूँ आपसे छोटे नेता भी सुभाष बाबू के जोड़ के शब्दों में कांग्रेस में प्रसाद जी पर शोक प्रस्ताव पास नहीं कराते। क्या आप जानते है कि हिन्दी के महत्व की दृष्टि से प्रसाद कितने महान् हैं जवाहरलाल एकटक निराला को देखते रहे। ऐसा धाराप्रवाह भाषण सुनाने वाले जीवन में ये उन्हें पहले व्यक्ति मिले थे अगला स्टेशन अभी

आया न था। सुनते जाने के सिवा चारा न था निराला को प्रेमचन्द्र याद आये बोले प्रेमचन्द्र जी पर भी वैसा प्रस्ताव पास नहीं हुआ जैसा शरतचन्द्र पर । नेहरू ने टोका नहीं जहाँ तक याद है प्रेमचन्द्र जी पर तो एक शोक प्रस्ताव पास किया गया था। निराला ने अपनी बात स्पष्ट की जी हाँ यह मैं जानता हूँ लेकिन उसकी वैसी महत्ता नहीं जैसी शरत्चन्द वाले की है। आखिर अयोध्या स्टेशन आ गया। निराला ने आखिरी बात कही अगर मौका मिला तो आपसे मिलकर फिर साहित्यिक प्रश्न निवेदित करूँगा। नेहरू ने इसका कोई उतर न दिया। नमस्कार करके निराला उतरे और अपने डिब्बे में आ गये। प्लेटफार्म महात्मा गाँधी की जय पंडित जवाहरलाल नेहरू की जय से गूँजता रहा (निराला की साहित्य साधना भाग पृष्ठ क्रमांक 398 से 320) निराला के लिए ने तो कोई व्यक्ति बड़ा था और न ही पद। उनके व्यक्ति की यह सबसे बड़ी ताकत थी कि वे किसी से डरते भी न थे। भाषा और साहित्य के लिए किसी से भी भिड़ सकते थे और भिड़े भी। वर दे वीणा वादिनी। सरस्वती वन्दना से हमारे सांस्कृतिक कार्यक्रम शुरू होते है। इस वन्दना में प्रयुक्त नवगति नवलय तालछन्द नव नव पर नव स्वर दे मॉगने वाले इस अमर गायक की वेदना अभी भी हिन्दी भाषी समाज और हिन्दी के पक्षधर पूरी नहीं समझ सके है। निराला ने माँ सरस्वती से सारी नवीनता हिन्दी के लिए ही मॉगी थी क्योंकि उनके लिए जीवन का एकमात्र उद्देश्य हिन्दी भाषा और उसका साहित्य था अपने जीवन की संध्या में वे कहते हैं ताक रहा है भीषम पितामह थे। इन प्रसंगों में हिन्दी को सम्मानजनक स्थान दिलाने के लिए महाभारत अभी शेष है। इससे लड़ते रहना ही निराला के प्रति सादर कृतज्ञता होगी।

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

रह गई दिशाएँ इसी पार

डॉ0 रवीन्द्र कुमार यादव*

'रह गई दिशाएँ इसी पार' प्रसिद्ध कथाकार संजीव का प्रयोगशील उपन्यास है। यह प्रयोगशीलता कई स्तरों पर चलती है। इन प्रयोगों के बीच वृहत्तर मानव समाज उनकी चिन्ता के केन्द्र में है। उनकी चिन्ता और चिन्तन सार्वजनिक है। वे अब तक के बनाये अपने ही दायरे को तोड़ते हैं। बल्कि कहना चाहिए कि हिन्दी कथा साहित्य के दायरे को तोड़ते हैं। दार्शनिक की तरह पूरी तार्किकता के साथ नए समाज का स्वप्न देखते हैं। संजीव वर्तमान मनुष्य की नियति का ही प्रश्न नहीं उठाते, बल्कि उसके अब तक के विकास को भी रेखांकित करते हैं, उसकी यात्रा की खोज करते हैं। वैज्ञानिक की तरह नहीं साहित्यिक वैज्ञानिक की तरह। वे अभ्यास में नई संभावनाओं को गढ़ने की कोशिश करते हैं।

टेस्ट ट्यूब बेबी के बहाने जन्म, मृत्यु, धर्म, विज्ञान तथा ईश्वर एवं मनुष्य के सम्बन्धों पर दार्शनिक एवं वैज्ञानिक की तरह खुलकर बहस करते हैं। जीवन और मृत्यु किसी ईश्वर की देन नहीं बल्कि यह शुद्ध वैज्ञानिक फार्मूले पर आधारित है। ''जिस तरीके से एक स्पर्म एग (अण्डे) से मिलकर भ्रूण बनता है या यह पुरूष और स्त्री में जीवन धारा के रूप में शुरू से प्रवाहित हो रहे क्रम का एक प्रस्थान बिन्दु भर है। उसी तरह मौत भी चेतना या मस्तिष्क के रूक जाने को कहें या हर पल होने वाली लघु मृत्युओं का समुच्चय।

आस्था और धर्म का मनुष्य के जीवन से जुड़ाव है। आम व्यक्ति बिना आस्था के नहीं रह सकता, ''आस्थाहीन होकर हम कैसे रह सकते हैं? रिश्ते न भी हो तो भी हमें ईजाद कर लेने होंगे। ईश्वर न भी हो तो ईश्वर भी। धर्म ने जहाँ एक ओर मनुष्य को जीवन जीने का मार्ग बताया, वहीं धर्म के ठेकेदारों ने पूँजीपतियों के साथ मिलकर एक नये भ्रष्टाचार को जन्म दिया। धर्म की असली रोशनी को मद्धिम करने वाले ठगों और बाबाओं ने भोलीभाली जनता को बरगलाकर हमेशा से अपना उल्लू ही सीधा किया। ''एक स्वामी जी ने कहा आप अभेदानन्द या किस्नू को कैसे रोक पायेंगे, जबकि खुद आप आँख की दवा के नाम पर डिस्टिल्ड वाटर देते हैं। किस्नू बिजारिया और अभेदानन्द इसी ठग और बाबाओं के प्रतिनिधि चरित्र हैं, जो मासूम जनता को धर्म और ईश्वर के नाम पर लूटते हैं। विज्ञान मनुष्य के जीवन में क्रान्तिकारी बदलाव लाया है। उसने जहाँ एक ओर मनुष्य का जीवन सुविधाजनक बनाया वहीं मनुष्य और मनुष्य के सम्बन्धों में परिवर्तन कर दिया।''[1]

'रह गई दिशाएं इसी पार' हिन्दी उपन्यास की परम्परा में अलग ढंग का उपन्यास है। या यों कहना चाहिए कि उपन्यास लेखन में एक नया मोड़ है। यह वैज्ञानिक खोज का नया उपन्यास है।

प्रेम, सेक्स, अजरता, अमरता और अनन्न के रहस्यों पर घूमती यह पृथ्वी कई सवाल छोड़ती है। आहार, निद्रा, मैथुन के बीच घूमते मनुष्य के जीवन में सेक्स, कार्य है या कारण, काम (सेक्स) कार्य है या कारण? कारण तो भी कार्य क्या है। सृष्टि इंसान ही है जिसके लिए काम

* 9452474141

सिर्फ सृष्टि के लिए नहीं, जीवन की आनन्द भरी पूर्णता के दीगर बातों के लिए इस्तेमाल होता है। प्रेम और सेक्स पर विज्ञान का अलग ही दर्शन है– ''विज्ञान का दर्शन कहता है कि जीवन स्वयं में एक रासायनिक संघटन और समीकरण मात्र है, और सभी जीवन स्थितियाँ रासायनिक संघटकों का विचलन मात्र है।..... न, यह प्रेम नहीं, सेक्स है।''[2]

क्या प्रेम सेक्स से अलग होता है? स्त्री पुरूष के जैविक आकर्षणों में सेक्स ही प्रेम है। प्रेम, सेक्स अजरता और अमरता का प्रश्न सृष्टि के प्रारम्भ से ही गहन चिन्तन का विषय रहा है। विश्व के करीब–करीब सभी प्राचीन धर्मो और सभ्यताओं में मृत्यु के पार पहुँचने की कल्पना की गई है। हिन्दू पौराणिक मिथकों में तो देवताओं को अजर और अमर बताया गया है। अमरता का आकांक्षा उद्योगपति बिस्नू बिजारिया का भी है। वह एक ऐसे वर्ग से आता है जो धन के लिए किसी भी हद तक जा सकता है।

नैतिकता का प्रश्न उसके लिए हद दर्जे का बेमानी प्रश्न है। मनुष्यता को शर्मशार करके, कमाए गये धन को समाजसेवी संस्थाओं से लेकर मन्दिरों, मठों में दिल खोलकर दान देता है। अमर होने के लिए बड़े–बड़े वैज्ञानिक अपनी प्रयोगशाला में रखता है। अनेक कोशिशों के बावजूद न कोई अजर रह पाता है और न अमर। लाशों की बदबू को न चंदन ढक पाता न डीप फ्रीज, न वैज्ञानिक और आध्यात्मिक मिथ।'' (भूमिका राजेन्द्र यादव)[3]

''संजीव जिस वातावरण को रचते हैं उसमें डूब जाते हैं। वे नारा नहीं देते, जीवन से नारा लेते हैं। अन्दर से आवाज आती है।''[4] इसलिए जिन्दगी को जीने के लिए विज्ञान के साथ सामाजिक विज्ञान की भी जरूरत को महसूस करते हैं। उनके पास कथा कहने का जीव वैज्ञानिक फार्मूला है। जिन्दगी से जुड़े अहम्, मसले को व्यक्त करने की छटपटाहट है। मानवता को बचा लेने की बेचैनी है, लेकिन डाली (क्लोन) को जिस तरीके से समय नष्ट कर डालता है। उसी तरह से समय आज तक किसी की पकड़ में नहीं आ पाया। व्यक्ति या कोई भी सत्ता समय सापेक्ष होती है। ''चाणक्य, मनु, शंकराचार्य, मुहम्मद साहब, वाशिंगटन, फ्रैंकलिन, जेफरसन या रैले जैसे लोग काफी सचेत बुद्धिजीवी थे। जाति, धर्म, सेक्स और स्वामी का सवाल आने पर बड़ों–बड़ों का आसन डोल जाता है।''

विवेकानन्द में भी जाति और स्वधर्म के प्रति कलर ब्लाइन्डनेस था। पर वे ऐसे क्यों थे, इसका कोई जवाब मुझे नहीं मिलता सिवाय इसके कि हर व्यक्ति अपने समय की संतान होता है। मूल्य सापेक्ष होता है।''[5]

इक्कीसवीं सदी में लोग एक–दूसरे से पूछने लगे– ''तुम कौन हो और मैं कौन हूँ। किसी भी चीज का स्पष्ट नहीं होना ही जीवन है, जिन्दगी इत्तेफाक है। हर खुशी इत्तेफाक है। कल भी इत्तेफाक था आज भी इत्तेफाक है।

मिथक, इतिहास, विज्ञान, प्रौद्योगिकी एवं मनुष्य से जुड़ी बड़े से बड़े और सूक्ष्म से सूक्ष्म को चिन्तन में रखते हुए उपन्यास की निर्मिति हुई है।''[6]

''विज्ञान और प्रौद्योगिकी ने मनुष्य के आपसी सम्बन्धों को बदलकर रख दिया है। बदलते समय में मनुष्य के रिश्ते तेजी से बदले और जटिल हुए। मनुष्य इस आइस वर्ग की तरह हुआ जिसका एक भाग ऊपर और सात भाग पानी में होता है। उसके अंदर चल रहे परिवर्तनों को पकड़ना इतना आसान नहीं है। अतुल बिजारिया यानि जिम टेस्ट–ट्यूब बेबी है। वह सब वैसा है

और नहीं भी है। भावनाओं की तीव्रतम् आवेग में नहीं भी है। भावानाओं की तीव्रतम आवेग में भी वह निर्वेद, निस्संग और अजनबी है।''[7]

जीवन, मृत्यु, अजरता, अमरता, इतिहास, विज्ञान, टेक्नोलॉजी और अनन्त के रहस्यों पर जिस तरीके से बात की गई है, वह पाठक के चिन्तन के धरातल को और विस्तृत करेगा। मनुष्य के लिए विज्ञान की जरूरतों का जो डंका पीटा जाता है। उसकी सीमाओं की ओर स्पष्ट संकेत किया गया है। कई संदर्भों और अर्थों में संजीव का लेखन अपने समय की मुकम्मल तस्वीर खींचता है। उनके पास कथा कहने का वैज्ञानिक फार्मूला है। सब कुछ व्यक्त करने का जिन्दगी से जुड़े हर पहलू का। ''कहने का मन तो यहीं करता है कि भारतीय पाठक के लिए यह पच्चीस–पच्चास साल पहले संभव कर दी गई रचना है और निश्चय ही विचलित करने वाली कृति है– शायद आसानी से पचाई भी नहीं जा सकेगी।''[8]

छियालीस छोटे–छोटे अध्यायों में विभक्त उपन्यास में बिम्बों, प्रतीकों, और मिथकों की भरमार है। दिमाग एक बार झनझना जाता है। वातावरण को इस प्रकार संयोजित किया गया है कि उसके अंदर से शब्द फूटते हैं। वे बोलते हैं, बातें करते हैं आम–आदमी की तरह गद्य में कविता का रस है। संजीव की भाषा में एक ही बेटा है और वह बीमार रहता है और सात समन्दर पार रहता है। उपन्यास में शिल्प के स्तर पर लगातार प्रयोग है। इसको व्यक्त करने के लिए शब्द कम पड़ जाते हैं, अपनी विषय वस्तु और प्रयोगशीलता के कारण संभव है कि 'रह गई दिशाएँ इसी पार' के बाद हिन्दी उपन्यास अपने नये कलेवर में करवट लेगा।''[9]

संवेदनात्मक रूप से यह बहुत बड़े फलक का उपन्यास है। व्यक्ति के रूप में संजीव की अपनी प्रत्यक्ष चिन्ताएँ हैं और स्पष्ट धारणाएँ भी, इन्हीं के कारण वे जीव वैज्ञानिकों द्वारा क्लोंनिंग और जैनेटिक्स के क्षेत्र में की जाने वाली अभूतपूर्व उपलब्धियों को मानवीय सम्बन्धों के जटिल संसार में पनपने वाली विकृतियों की संज्ञा देते हैं।

संदर्भ सूची :

1. संजीव, रह गई दिशाएँ इसी पार, पृ0 309
2. संजीव, रह गई दिशाएँ इसी पार, पृ0 49
3. भूमिका, राजेन्द्र यादव, पृ0 2012
4. संजीव, रह गई दिशाएँ इसी पार, पृ0 102
5. संजीव, रह गई दिशाएँ इसी पार, पृ0 285
6. संजीव, रह गई दिशाएँ इसी पार, पृ0 202
7. भूमिका, राजेन्द्र यादव, पृ0 297
8. भूमिका, राजेन्द्र यादव, पृ0 297
9. भूमिका, राजेन्द्र यादव, पृ0 116

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' का रचना संसार

प्रीति पाण्डेय*

केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' की रचनाओं का फलक व्यापक है। जिसे हम निम्न ढंग से विस्तृत रूप में देख सकते है। जो निम्न है–

कलेजे के टुकड़े– यह प्रभात जी की प्रथम रचना है। इसमें प्रेम में असफल होने पर कवि के कोमल हृदय पर निराशा की गंभीर संवेदना को स्वानुभूति एवं अन्तर्व्यथा के ढंग पर प्रस्तुत किया है। शायद। कलेजे पर जो आघात पड़ा उसी से इसका शीर्षक 'कलेजे के टुकड़े' रखा।

मेरे मन की कचट हाय!
तेरे गीतो का स्वर हो,
ज्वाला में जीना ही
मेरे जीवन को वर हो।

''वस्तुतः कलेजे के टुकड़े में सभी छायावादी प्रवृत्तियाँ अन्तर्निहित है। कवि ने प्रेम की अभिव्यंजना में रस–पेशल एवं ध्वन्यार्थक शब्दों की योजना की है। वस्तुतः यह काव्य प्रेम और विरह का अन्तर्दर्शन है। जिसमें कवि ने प्रेम की प्राणवत्ता तथा विरह की वेदनाभूति का समन्वयात्मक रूप प्रस्तुत किया है।''[1]

इस तरह की रचनाएँ छायावादी बड़े कवियों में प्रायः दिख जाएगी। प्रसाद, निराला, पंत की रचनाएं गहरी संवेदना से जुड़ी हुई है।

ज्वाला– इसमें उस समय चल रहे राष्ट्रीय आन्दोलन को तीव्र धार देने के लिए 'सत्ताइस अग्निमानों' का संग्रह है। इसकी पहली कविता 'क्रांति' है और अंतिम कविता 'मौत का नाच' है। इसमें क्रांतिकारी, चिंनगारियों को ओजस्वी रूप में प्रस्तुत करने के कारण इसका नाम 'ज्वाला' रखा। इससे अंग्रेजी सरकार भयभीत होकर 1929 ई0 में इस पर अंग्रेजी सरकार ने प्रतिबंध लगा दिया। 'ज्वाला' की कविताओं का मूल स्वर विद्रोह और क्रांति की भावनाओं से सराबोर है। 'ललकार' कविता में कवि ने तो स्वयं आत्म परिचय भी दिया है–

''मैं लिये कृपाण खड़ा हूँ महाभयंकर!
आँखों से क्रोध उगलता हूँ प्रलयंकर!
छिपता है पापी कायर सा रवि भय से।
काँपता त्रिभुवन मेरे यौवन की जय से।
है चमक रहा मेरा केशरिया बाना।
दूँगा हाथी को तोड़ न आगे आना।''[2]

वीर रस, ओजगुण में प्रस्तुत रचना अपने शीर्षक को सार्थक करती है।

* शोध छात्रा (JRF), हिन्दी स्नातकोत्तर अध्ययन एवं अनुसंधान विभाग, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर (म0प्र0)

श्वेतनील– इसमें कुल 'पचपन कवितायें' संकलित है। इसके दो भाग है। प्रथम भाग में चौदह कविताएं शीर्षक युक्त है और दूसरे भाग में इकतालीस कवितायें शीर्षक–विहीन संग्रह में है। जिस प्रकार कवि सुमित्रानंदन पंत ने स्वर्ण किरण, स्वर्णधूलि नाम से दार्शनिक चेतना से ओत–प्रोत रचना की उसी प्रकार 'श्वेतनील' में कवि 'प्रभात' की मेधा दार्शनिकता से आवृत्त हो गयी है। जिसमें बाह्य जगत की स्थितियों का गम्भीर दार्शनिक शैली में चित्रण किया है। जो उसकी वैचारिक गहराइयों का प्रमाण है। डॉ0 सूरजपाल शर्मा के अनुसार– ''श्वेतनील के अधिकांश गीतों में प्रेम, जीवन, मृत्यु, जगत तथा अज्ञात और अनन्त की अभिव्यक्ति है। कतिपय गीतों में छायावादी रहस्यात्मकता तथा तज्जन्य कौतूहल एवं विस्मय के भावों की अभिव्यक्ति हुई है।''[3]

इसमें युग धर्म का चित्रण है, अष्टमसर्ग में दशरथ और कैकेयी का संवाद है। विक्षिप्तता, अन्यमनस्कता कुम्हलायें हुए पुष्पों के सदृश पड़ी कैकेयी को देखकर दशरथ एकदम चौंक पड़ते हैं और उसकी इस अन्तर्व्यथा का कारण पूछते है–

''बोले कैकेयी से– मैं।
अब समझा, तुम हर्ष विकल हो
सोच रही हो अलक प्रभासा।
शोभित कैसे राजमहल हो।''[4]

कैकेयी कारण बताती है कि आर्यावर्त के इस राष्ट्र देवता के चरणों में सेवा के लिए राम को समर्पित करने का दशरथ से आग्रह, निवेदन करती है। मोहाविष्ट दशरथ प्रथम तो नूं–नच करते है परन्तु बाद में कर्त्तव्य को पहचान कर युग के राम को युग को समर्पित कर देते है। इस महाकाव्य के 'नवम् सर्ग' में चेतना, कर्तव्य, सेवा, शासन, ज्ञान, अनुशासन आदि को मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। 'दशम् सर्ग' में ममता का वर्णन है।

''जीवन वीणा की झंकार।
ममते! तेरी शक्ति अपार
तू स्नेह की तन्द्रिल रात।
तू भावुकता शोभा–स्नात।''[5]

'एकादश सर्ग' में प्राकृतिक वर्णन है। 'द्वादश सर्ग' में भरत का अयोध्या–आगमन, भरत–कैकेयी संवाद, कर्तव्य और भावना का विवेचन हुआ है। 'त्रयोदश सर्ग' में चित्रकूट की प्राकृतिक शोभा और रमणीयता का चित्रण किया गया है।

''चित्रकूट सब जिसे मानते।
स्वर्ग खण्ड भूतल का
चित्रित है सौन्दर्य जहाँ, नभ।
जल, थल, अनिल अनल का।''[6]

स्पष्ट है कि इस महाकाव्य में कवि राष्ट्रीय आन्दोलन से रूबरू था। उसे देश की स्वतंत्रता संघर्ष के आलोक में इस महाकाव्य का सृजन किया जो कि पूर्व के महाकाव्यों और आगे के रामकाव्य परम्परा (संशय की एक रात– नरेश मेहता) से सर्वथा भिन्न दृष्टिकोण लेकर प्रस्तुत हुआ है। कवि ने कैकेयी के परम्परागत लांछित और गर्हित चरित्र को परिष्कृत करके उसे उदात्त

एवं राष्ट्रमाता का रूप दिया है। कैकेयी मानवता मंगल के लिए हृदयस्थ वात्सल्य को दबाकर यहाँ तक कि वैधव्य को अंगीकार करके अपना सर्वस्व निछावर करती है।

स्वर्णोदय– स्वर्णोदय गीतिनाट्य को 1951 ई0 में तीन भावपूर्ण काव्य नाटक को संकलित करके प्रस्तुत किया है। इसमें 'स्वर्णोदय', 'अंगुलिमाल', 'मानव निश्चय ही लौटेगा' शीर्षक रचनाएं है। 'स्वर्णोदय' में संस्कृति, भारत, मानवता इन तीन पात्रों को प्रतीकात्मक ढंग से लेकर वर्तमान विश्व का चित्रण किया गया है। इसमें कवि ने अहंकार–प्रतिशोध, हिंसा–प्रति–हिंसा की ज्वाला में शांति की ध्वजा को समस्याओं के निराकरण का मूल माना है। दूसरा संकलन 'अंगुलिमाल' है, जो कोसलदेश के एक जघन्य, क्रूर हत्यारे अंगुलिमाल की नृशंसता, हिंसावृत्ति, रक्तपिपासा का वर्णन है। जिसने समस्त राज्य में अपने दुष्कृत्यों से हा–हाकार मचा दिया है। इसी अन्तराल में तथागत बुद्ध वहाँ पहुँचते है और अंगुलिमाल उनके शांत, प्रशान्त तेज से प्रभावित हो बुद्ध की शरण में आ जाता है। इस संग्रह का तीसरा काव्यनाटक 'मानव निश्चय लौटेगा' शीर्षक से है। इसमें आत्मा, छाया और मानव तीन प्रतीकात्मक पात्र है, जिनके माध्यम से लेखक ने वर्तमान मानव की दुर्दान्त वृत्ति, हिंसा और रक्त पिपासा का चित्रण है। ध्वंस, हत्या, भीषण अग्निकाण्ड, लूट, अपहरण, बलात्कार, रक्तपात करने हेतु मानव विज्ञान का आश्रय ग्रहण करता है। भारत को विश्व मानवतावादी संस्कृति के 'स्वर्णोदय' का अग्रदूत है।

तप्तगृह– इस प्रबन्धकाव्य में प्राचीन भारतीय इतिहास के हर्यकवंश के दो शासक बिम्बिसार और अजातशत्रु का आख्यान लिया गया है। इसमें कवि ने आधुनिक युग की दो पीढ़ियों के संघर्ष की कथा को मनोवैज्ञानिक भावभूमि पर अभिव्यक्त किया है। इसकी भूमिका में कवि स्वयं कहता है– ''मैंने इस पुस्तक को इतिहास की घटनाओं से बोझिल बनाना उचित नहीं समझा और बिम्बिसार की कथा के सबसे मार्मिक अंश को ही अपने प्रबन्ध का आधार बनाया।''[7]

इस मनोवैज्ञानिक प्रबन्ध को 11 सर्गों और 115 पृष्ठों में प्रस्तुत किया है। इसमें महात्मा बुद्ध के धर्मचक्र को इतिहास सम्राटों पर प्रभावी बनाया है– ''कवि ने मानव मन की संचालिका सूक्ष्म अन्तवृत्तियों का चित्रण मनोवैज्ञानिक आधार पर किया है। भावनाओं को घात–प्रतिघात, दो पीढ़ियों के संघर्ष वात्सल्य एवं दाम्पत्य प्रेम की बड़ी ही वैविध्यपूर्ण अभिव्यक्ति प्रस्तुत कृति में हुई है।''[8]

ऋतंबरा– ऋतंबरा महाकाव्य को कवि ने 16 सर्गो और 160 पृष्ठों में प्रस्तुत किया है। जिसमें मानव की संस्कृति के विकास का काव्यात्मक रूपक है। प्रसाद ने कामायनी को 1935 ई0 में आधुनिक काल का प्रथम आधुनिक महाकाव्य के रूप में प्रस्तुत किया तो, प्रभात जी ने ऋतम्बरा को आजादी के एक दशक बाद 1957 ई0 में प्रस्तुत किया। इसमें सृष्टि के आदि पुरुष मनु और आदिम नारी शतरूपा के माध्यम से अब तक की मानव सभ्यता के विकास की काव्यमय व्याख्या है। यह महाकाव्य वैदिक दर्शन 'ऋत' पर आधारित है जिसमें सृष्टि की उत्पत्ति और विकास का निरूपण बौद्धिक और दार्शनिक धरातल पर हुआ है। इसके माध्यम से हम मानवता की अविच्छिन्न परम्परा का अनवरत और सतत विकास प्रस्तुत करते है। कवि स्वयं कहता है– ''मानवता की इस अनन्त परम्परा के मूल्य में जो शाश्वत सत्य अथवा धर्म विद्यमान है, उसकी मुखर व्याख्या वैदिक शब्द 'ऋत' में मिलती है। 'ऋत' सृष्टि का आदि और धारक सत्य है। वह एक ऐसा पवित्र नियम है, स्वयं प्रकाशित एवं दीप्त जो समस्त अस्त–व्यस्तताओं और विशृंखलताओं को हटाकर उनकी मंगलमयी चेतनाओं से स्पन्दित नवनिर्माण को उतारता है। .....

भविष्य के मंदिर में मानवता इसी 'ऋत' को वरण करेगी। तभी उस विश्व मानव परम्परा का नवनिर्माण होगा जिसकी चर्चा आजकल संसार में प्रबल रूप से होने लगी है।''[9]

इस महाकाव्य के प्रथम सर्ग में कवि लिखता है–

''आदि नहीं था, अन्त नहीं था, था अनादि का ही विस्तार।
आदि अन्त की परिभाषा, का निश्चित हुआ न था आकार।।
आदि अन्त दोनों चिर–सहचर, काल छन्द के दो अनुवाद।
एक घनाच्छादित रहस्य के दो विज्ञापन, दो संवाद।।''[10]

स्पष्ट है कि लेखक ने भौतिक और आध्यात्मिक दोनों ही ढंगों से जीवन के विकास क्रम को प्रस्तुत किया है। शिवप्रिया महापात्र के शब्दों में– ''जीवन में चेतना का महत्व मानव की असीम अपरिमेय एवं अविजित आत्मशक्ति का परिचय, सृष्टि के उपादानों का परस्पर अन्तर्सम्बन्ध आदि दार्शनिक प्रश्न तथा जीवन के कर्म और पौरुष की महत्ता, विभिन्न सामाजिक व आध्यात्मिक विडम्बनायें आदि अनेक प्रश्नों को उठाया है। आणविक युग के सन्दर्भ में उन पर विचार किया है तथा उनका आशावादी दृष्टिकोण से उत्तर देने का प्रयास किया है।''[11]

इस पौराणिक महाकाव्य में कुल 16 सर्ग है। अंतिम सर्ग केवल चार पंक्तियों का है। इसमें ईक्षण, विकल्प, समाधि, पृथिवी, व्यवधान, नाम से प्रारंभिक 6 सर्गों में प्रलय के पश्चात् सृष्टि की उत्पत्ति की कथा है। जिसमें अविकल, अवृत्त, अनादि, सीमाहीन ज्योतिष्मान परब्रह्म के विराट रूप सर्वान्तव्यापी, अनादि प्रालेय जल और उस पर उदित होने वाले 'करुण कंज' ब्रह्मा की निराशा और समाधि पंचभूतों की आतुर पुकार, जल द्वारा पृथ्वी पर पलय और बाद में सृजन का चित्रण पौराणिक आख्यानों के आधार पर हुआ है। तत्पश्चात् मनु, शतरूपा, उल्लास, मिलन, जीवन–गीत पाँच सर्गों में ब्रह्मा के मानस पुत्र और कर्म के प्रतीक मनु एवं कलारूपिणी शतरूपा के मिलन और सहयोग से सृष्टि के नवनिर्माण की कथा का आख्यान है। शांत रस प्रधान, सीमित पात्रों की योजना से प्रस्तुत पौराणिक आख्यान से निबद्ध यह श्रेष्ठ महाकाव्य है। इसका कथानक व्यक्ति विशेष से सम्बन्धित न होकर अखिल ब्रह्माण्ड एवं समग्र मानवता से सम्बन्धित है, और इसका मूल स्वर विनाश नहीं अपितु सृजन है। आदि पुरुष मनु और शतरूपा के सहयोग से सृष्टि के सृजन की प्रक्रिया प्रस्तुत है। मानव चेतना और मानव–संस्कृति के विकास की यही गाथा ऋतम्बरा के कथानक का आधार है। इसमें उदात्त, माधुर्य गुण और प्रभावोत्पादक भाषा शैली का परिपाक है।

''भारतीय और पाश्चात्य मतो के अनुसार उसमें प्राचीन लक्षण ढूँढ़ना भारी भूल होगी। महाकाव्य के लिए अपेक्षित उदात्तता, प्रभान्विति, जीवन्त पात्र योजना, सशक्त कथानक और गरिमामयी शैली आदि गुण उसमें विद्यमान है, जिनके कारण 'ऋतम्बरा' मानव संस्कृति के विकास का पूर्ण प्रफल्ल महाकाव्य है। इतना अवश्य है कि इसमें कार्य सूत्रों की अन्विति एवं सुसम्बद्धता का अभाव अवश्य खलता है, जिसके कारण कथा विस्तार में अपेक्षित व्यापकता नहीं आ पाई, फिर भी उसमें मानव जीवन के लिये एक महान और ऊर्जस्वित सन्देश निहित है।''[12]

बैठो मेरे पास– यह एक मुक्तक काव्य है जो चतुष्पदियों में प्रस्तुत है। प्रत्येक चतुष्पदी में 'बैठो मेरे पास' वाक्य को दुहराया गया है। इसमें कवि प्रभात का जीवन दर्शन, गहरी अनुभूति से अनुप्राणित वर्णों और शब्दों में अनन्त सौन्दर्य की आभा बिखेर रहा है।

समुद्यत राष्ट्र– इसमें 136 पंक्तियों में ध्वजगीत प्रस्तुत है। आजादी के 17 साल बाद 1964 में यह राष्ट्र की वंदना के साथ मानवता का जयघोष करता है। इसमें न केवल राष्ट्र की

ऐतिहासिक विभूतियों का वंदनगान है अपितु, राष्ट्र रक्षण के लिए हमारे दृढ़ संकल्पों को भी प्रस्तुत करता है। ध्यातव्य है कि 1962 में भारत–चीन युद्ध पर दिनकर ने स्वयं 'परशुराम की प्रतीक्षा' लिखी और कवि प्रभात ने समुद्यत राष्ट्र लिखा।

सेतुबन्ध– इसमें कवि प्रभात ने छियासठ शीर्षक युक्त कविताओं का संकलन किया है। यह बीसवी सदी के छठे–सातवें दशक की प्रकृति और परिवेश को प्रस्तुत करती रचना है। इसमें कवि ने क्लिष्ट शब्दों, जटिल पदो, वर्णविन्यास और सामासिक शैली का प्रयोग करके इसकी भाषा को बोझिल बना दिया है। इसमें दार्शनिकता, वैचारिकता, चिंतन प्रधानता, गीतात्मकता की प्रधानता है। संगीतात्मकता, लयात्मकता और माधुर्य मिश्रित प्रवाह इसका प्रधान गुण है। सेतुबन्ध की कविताओं को समझने के लिए कवि की शब्दावली में पाठक को किरण बनना पड़ेगा। यहाँ मिट्टी का चंदन घोल–घोल सोने का तिलक लगाने वाला सूक्ष्म भावों का चितेरा कवि मानव के प्रगति मार्ग में अवरोधो को हटाकर समाधान विछा रहा है। उसके आगे का क्रम रूकता नहीं, यद्यपि जीवन के ज्वारों की कोई सीमा नहीं है।''[13]

शुभ्रा– नवगीत अंदोलन के दौर में कवि प्रभात ने साठ गीतों का संकलन 'शुभ्रा' नाम से किया है। इसमें छायावादी भावबोध। अज्ञात के प्रति प्रेम, जिज्ञासा, मानोचित क्रिया–कलापों से युक्त प्रकृति चित्रण रहस्यात्मकता, प्रणयानुभूति, लाक्षणिक भाषा इन गीतों की विशेषता है– ''मैंने ऐसा अनुभव किया कि संग्रहीत गीतों की पंक्तियों में एक आंदोलन है, एक कम्पन्न है। किसी में मस्तिष्क का किसी में हृदय का, किसी में दोनों का सम्मिलित ताल है। .....किसी भी गीत के लिये ऐसी सांध्वनिकता अपेक्षित है, तभी वह सार्थक होगा।''[14]

संदर्भ :

1. डॉ0 सूरजपाल शर्मा, केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' उनकी प्रतिभा और कला, ईशान प्रकाशन, मेरठ, संस्करण–2002, पृ0 97
2. केदारनाथ मिश्र 'प्रभात', ज्वाला संग्रह, नवभारत प्रकाशन, पटना, संस्करण–1978, पृ0 38
3. डॉ0 सूरजपाल शर्मा, केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' उनकी प्रतिभा और कला, ईशान प्रकाशन, मेरठ, संस्करण–2002, पृ0 87
4. वही, पृ0 88
5. वही, पृ0 83
6. वही, पृ0 85
7. केदारनाथ मिश्र 'प्रभात', कैकेयी महाकाव्य, पृ0 35
8. वही, पृ0 87
9. वही, पृ0 107
10. वही, पृ0 103
11. केदारनाथ मिश्र 'प्रभात', तप्तगृह, पृ0 1, विहार पब्लिशिंग हाउस, कालिका प्रेस, पटना, संस्करण–1971
12. डॉ0 सूरजपाल शर्मा, केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' उनकी प्रतिभा और कला, पृ0 102
13. केदारनाथ मिश्र 'प्रभात', ऋतम्बरा महाकाव्य, पृ0 4 (भूमिका), नवभारत प्रकाशन, पटना, संस्करण–1966
14. वही, पृ0 3

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

विमर्शों के दौर में समकालीन आदिवासी कविता

डॉ. अफरोज बेगम*

21 वीं सदी विमर्शों का दौर रहा है और इस समय अनेक विमर्श हमारे सामने उभरकर आये हैं। जैसे दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, अल्पसंख्यक विमर्श इत्यादि। हम यह अनुभव कर रहे हैं कि 21 वीं सदी में जो लोग हाशिये पर थे, वे आज केन्द्र में आने लगें हैं। और हाशिये से केन्द्र की ओर आने की यात्रा आदिवासी विमर्श की अपनी अलग कहानी ही कहती है। आज हमें दलित विमर्श, स्त्री विमर्श के समान आदिवासी विमर्श की गूँज भी सुनायी देने लगी है। इसकी छटपटाहट ने हमें सोचने को विवश कर दिया है।

समकालीन कविता में आदिवासी विमर्श अपनी प्रामाणिकता एवं यथार्थता में जीवंत अनुभूतियों एवं सशक्त अभिव्यक्तियों का सर्वाधिक महत्वपूर्ण विमर्श रहा है। यह विमर्श कल्पित न होकर यथार्थ चेतना से अनुप्रणित है। यह विमर्श आदिवासी जीवन की सम्पूर्ण यथार्थ गाथा है। प्रकृति का संरक्षण ही आदिवासियों के जीवन का मूल उद्देश्य रहा है। आदिवासियों के सम्पूर्ण समाज का अस्तित्व प्रकृति पर और उसके संसाधनों पर आश्रित है। जहाँ एक ओर प्रकृति ने आदिवासियों को संरक्षित किया है वहीं आदिवासियों ने प्रकृति को भी।

आदिवासी साहित्य में हमें जिन मुख्य स्वरों की अनुगूँज सर्वाधिक स्पष्ट रूप से सुनायी पड़ती है, वह है– अपने परिवेश के छिनने तथा आत्मनिर्वासन होने के खतरे। ''आदिवासी समाज का वह हिस्सा है जो अपने रहन–सहन, खान–पान आदि के कारण दूसरे वर्गों से भिन्न नजर आता है या कहा जा सकता है कि वह अन्य समुदायों का हिस्सा बनने से कतराता है, वह अपनी पहचान बनाये रखने के लिए जद्दोजहद करता है। विमर्शों के इस युग में आदिवासी विमर्श महत्वपूर्ण हो गया है, जिसके कारण आदिवासी समाज आदिम युग से वन जंगलों में निवास करने के कारण 'वनवासी' कहलाये जाते हैं। भारत में यह आदिवासी जनजाति के रूप में जाना जाता है।''[1]

वैश्वीकरण के दौर में आज आदिवासियों पर संकट गहरा रहा है। उन्हें उनकी पहचान स्थान तथा भाषा से अलग किया जा रहा है। इसी के चलते वह अपने को असुरक्षित महसूस कर रहे हैं ''आदिवासी समाज पेड़, प्रकृति, जंगलों के नीचे ही स्वयं को जुड़ा हुआ महसूस करते हैं। किन्तु वैश्वीकरण के दौर में आदिवासी समाज के सामने अपने अस्तित्व का संकट गहराता जा रहा है उन्हें जल, जंगल, जमीन से काटने का प्रयास किया जा रहा है। किसी भी समाज को जबरन मूल स्थान, मूल भाषा तथा मूल पहचान से अलग किया जाता है, तो उस समाज में असुरक्षा की भावना पनपती है, स्वयं के अस्तित्व को बनाये रखने के लिए संघर्ष करता है और यही संघर्ष एक सीमा के बाद आन्दोलन का रूप लेता है। इसी आन्दोलन में वह अपने शोषण के प्रति विरोध दर्ज कराता है।''[2]

आदिवासी समाज पिछले एक दो दशक से चर्चा में आया है, उसका कारण 'विस्थापन' रहा है। आदिवासी विमर्श इसलिए और अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है कि शासन तथा राजसत्तओं

* सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सगर (म.प्र.)

द्वारा चलाए जा रहे अनेक योजनाओं जैसे ऑपरेशन ग्रीन हंट, भूमि अधिग्रहण कानून आदि में आदिवासी समूह सर्वाधिक मजबूती के साथ संघर्षरत है।

आदिवासी इलाकों में बाहरी तत्वों की घुसपैठ बड़ी समस्या रही है। यहीं से आदिवासी जीवन की पवित्रता छेड़खानी केवल आदिवासियों के अस्तित्व का संकट नहीं है, बल्कि सम्पूर्ण मानव तथा पशु–पक्षियों जगत के लिए भी खतरा है ग्रेस कुजूर अपनी कविता 'हे समय के पहरेदारो!' में कहती हैं–

''इसलिए फिर कहती हूँ
न छोड़ो प्रकृति को
एक दिन
मांगेगी
हमसे
तुमसे
अपनी तरूणाई का
एक–एक क्षण
और करेगी
भयंकर.....बगावत
और तब
न तुम होगे
न हम होंगे।''[3]

आदिवासी समाज अपनी सांस्कृतिक गतिविधियों को सभ्य समाज के समानान्तर तथा राजनैतिकों द्वारा व्यवहृत मुख्यधारा के अन्दर आकर सुरक्षित नहीं रख पा रहे हैं। उनकी संस्कृति को सुरक्षित और बचाने के लिए उन्हें उनके हाल पर ही रहने के लिए छोड़ देना चाहिए। 'एक और जनी शिकार' कविता आदिवासियों की विलुप्त होती संस्कृति को बयाँ करती है।–

''अब कहाँ है वह अखरा?
किसने उगाए हैं वहाँ
विषैले नागफनी
बार–बार उलझता है जहां
तुम्हारी 'तो लोगों' का फुदंना।''[4]

आदिवासी स्वभावतः बहुत भोले होते हैं। वे शोषक वर्ग की चालबाजियों तथा चालाकियों को नहीं समझ पाते हैं। ऐसी स्थिति में समकालीन आदिवासी कविता ऐसे शोषकों की साजिश को बखूबी पहचानने लगी है। निर्मला पुतुल अपनी कविता 'चुड़का सोरेन से' में लिखती हैं–

''उन खतरनाक शहरी–जानवरों को

पहचानो चुड़का सोरेन

पहचानों

पॉव पसारे जो तुम्हारे ही घर में

घुसकर बैठे हैं।

तुम्हारे भोलेपन की ओर में
इस पेचदार दुनिया में रहते
तुम इतने सीधे क्यों हो चुड़का सोरेन ??''[5]

समकालीन आदिवासी कविता आदिवासी स्त्री जीवन की विडम्बनाओं, पीड़ाओं की अभिव्यक्ति भी करती है–

''कैसा बिकाऊ है तुम्हारी बस्ती का प्रधान
जो सिर्फ एक बोतल दारू में रख देता है
पूरे गॉव को गिरवी
और ले जाता है कोई लकड़ियों के गट्ठर की तरह लादकर
अपनी गाड़ियों मे तुम्हारी बेटियों को।''[6]

समकालीन आदिवासी कविता आदिवासियों के अस्तित्व संकट पर सवाल भी उठाता है। किन्तु ''आदिवासियों को तो यह भी पता नहीं है कि उन पर यह अस्तित्व का संकट क्यों है? वे भौंचक्का है, किन्तु मौन। इसलिए आदिवासी साहित्य के तेवर अलग होंगे।''[7] अस्तित्व संकट को लेकर निर्मला पुतुल 'अपने घर की तलाश में' लिखती है–

धरती के इस छोर से उस छोर तक
मुट्ठी भर सवाल लिये मैं
दौड़ती–हॉफती–भागती
तलाश रही हूँ सदियों से निरन्तर
अपनी जमीन, अपना घर
अपने होने का अर्थ।''[8]

एक बेहतर जिन्दगी जीने के लिए उद्बोधन गीत के माध्यम से भी समकालीन कविता आदिवासियों में चेतना और जागृति पैदा करना जानती है। तभी तो वह सभी तरह की साजिशों के खिलाफ उन्हें उठ खड़े होने के लिए प्रोत्साहित करती है–

''उठो कि अपने अंधेरो के खिलाफ उठो
उठो अपने पीछे चल रही साजिश के खिलाफ
उठो, कि तुम जहाँ हो वहाँ से उठो
जैसे तूफान से बवण्डर उठता है
उठती है जैसी राख में दबी चिनगारी।''[9]

विकास के नाम पर आदिवासियों को लगातार ठगा जा रहा है। उनके जीवन का अधार रही प्राकृतिक सम्पदा उनकी पुश्तैनी भूमि सांस्कृतिक धरोहर उनसे छीनी जा रही है। यह गम्भीर संकट सिर्फ आदिवासियों को झेलना पड़ रहा है। 'खून को पानी कैसे लिख दूँ' कविता इसी बात

को जग जाहिर करती नजर आती है, जिसमें विकास और एहसान के नाम आदिवासी वर्ग बहला फुसलाकर ठगा जा रहा है–

''तो नहीं चाहिए हमें उनका एहसान
उठा ले जाएँ वे अपनी व्यवस्था
ऐसा विकास नहीं चाहिए हमें
नहीं चाहिए ऐसा बदलाव
नहीं चाहिए !!!''[10]

आदिवासी समाज की विलुप्त होती संस्कृति की लड़ाई लड़ना ही आदिवासियों के लिए गीत बन गया है। आदिवासी कवि 'भुजंग मेश्राम' कहते हैं–

आज ना गोरे हैं
न सपनों की आजादी
ना तूं है
है केवल बीहड़ों में फैलता असंतोष
होठों पर तेरा नन्हा–सा गीत
ऊलगुलान !ऊलगुलान !ऊलगुलान।
जे बन गया है हमारी संस्कृति की लड़ाई।''[11]

'आदिवासी और यह दौर' कविता में हरिराम मीणा ने सम्पूर्ण आदिवासी समाज सरल सहज स्वभाव से परिचय कराते हुए लिखते हैं–

''जानते हैं अब भी लड़ना
मगर नहीं जानते लड़ें किस से
ये तो बांसुरी ही बजाते रहे जंगल में
मानकर कि 'हमारी ही है जंगल'
लड़ कौन रहे हैं इनके पक्ष की लड़ाई
– इधर भी, उधर भी।''[12]

मशीनीकरण एवं बाजारीकरण के दौर ने आदिवासियों से उनके रोजगार छीने हैं। न केवल उनकी कुशलताएं बल्कि उनकी नींद एवं इच्छाएं भी छीन लिए हैं। हरिशंकर अग्रवाल इसी पीड़ा को अपनी कविता में व्यक्त करते हैं–

''मशीन छीन रही है/ उनके हाथऔर कुशलताएँ उनकी नींद /और इक्कीसवी सदी और कविताओं में उनकी पीड़ा को कहाँ दर्ज करें।''[13]

संक्षेप में कहा जा सकता है कि समकालीन आदिवासी कविता ने आदिवासी समाज के जीवन स्तर दुःख, दर्द, अस्तित्व संकट विस्थापन का संकट, उनके जल, जमीन, जंगल के छीननें की पीड़ा, उनकी विलुप्त होती संस्कृति की व्यथा उनके स्त्रियों की पीड़ा तथा मशीनीकरण के कारण उनके रोजगारों को छीनना जैसे कई समस्याओं को मुखतिब कराकर उन्हें उनके हक और अधिकारों को दिलाने की लगातार कोशिश में एक मुहिम छेड़ा है और यह मुहिम ही उनके अस्तित्व को बनाये तथा बचाये रखेगी। और यह विमर्श तब तक चलता रहेगा, जब तक कि आदिवासी समाज में स्वयं के अन्दर जागृति चेतना के साथ सभ्य समाज में भी यह जागृति चेतना नहीं पैदा होगी।

सन्दर्भ सूची :

1. वाङ्मय त्रैमासिक पत्रिका अक्टूबर 2013 मार्च 2014 सम्पादक– डॉ. फीरोज अहमद पृ.सं. 160
2. वही पृ सं. 160
3. 'समकालीन आदिवासी कविता' सम्पादक हरिराम मीणा, अलख प्रकाशन पृ. 25–26
4. वही पृ. सं. 19
5. 'नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द' निर्मला पुतुल, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन पृ.सं. 22
6. वही पृ.सं. 20
7. 'समकालीन आदिवासी कविता' सम्पादक हरिराम मीणा, पृ.सं. 11
8. 'नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द निर्मला पुतुल, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन पृ.सं.30
9. वही, पृ.सं.14
10. वही, 'खून को पानी कैसे कह दूँ', पृ.सं.35
11. 'समकालीन आदिवासी कविता', 'आरे मेरे बिरसा' सम्पादक हरिराम मीणा, अलख प्रकाशन, पृ.सं.34
12. वही आदिवासी और यह दौर, पृ.सं. 108
13. वही, 'बाजार', पृ.सं.103

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

Relationship between social maturity and stress among secondary level students

Shailja Gupta[*]
Dr. P.K. Astalin[**]

Abstract-The present study focused on finding out the relationship between social maturity and stress among secondary level students. The sample comprised of a group of 210 students from four government schools studying in class 9th of Uttar Pradesh Board of Allahabad district. 130 male students and 80 female students were taken in the sample. Simple random sampling method was used for data collection. For measuring social maturity, Dr.Nalini Rao's Social Maturity Scale and for stress, Dr. Zaki Akhtar's Student Stress Scale were used. Mean, t-test and product moment correlation were used in statistical methods. The findings indicated that male and female students were differ in social maturity while Hindi and English medium students have no difference in social maturity. The gender differences not affected the level of stress of the students. Hindi and English medium students were not differ in level of stress. There was negative but non-significant relationship found between social maturity and stress among secondary level students. Thus it indicated that the students with high social maturity have less stress.

Key words-Social maturity, stress, secondary level students

Introduction-The secondary level group of the students consist age group of 14-16 years. It is period of adolescence in which the children become physically, psychologically, emotionally as well as socially matured (Hurlock, 1980, Santrock, Yussen,1987 Verma, 1979, Musen and Conger, 1990). In adolescence, on the one hand children are moving towards becoming a responsible social citizen, on the other hand they also have a feeling of stress and rebellion at their peak. Therefore, at this stage, adolescents should adopt moral and socially acceptable qualities while controlling their emotions. Stress is simply defined as the body's non-specific response or reaction to demands made on it, or to disturbing events in the environment (Rosenham and Seligman, 1989, Selye, 1976). Excessive stress results in increased prevalence of psychological problems like depression, anxiety, substance abuse and suicide ideation (Bansal and Bhave, 2006, Arria et al., 2009). Development is an essential aspect for the individual as well as the process of socialization. It is depending upon the maturation and learning which is concerned with the force, inside as well as outside of the individual (Kumar, 2013).The social maturity is a term used in two ways. Firstly, in reference to the behavior that conforms to the standards and expectations of the

[*] **Research Scholar, Department of Education, University of Allahabad**
[**] **Assistant Professor, Department of Education, University of Allahabad**

adolescents and secondly, in reference to the behavior that is appropriate to the age of the individual under observation (Srivastava, 1987).

Review of literature-Mathew and Jayan (2006) observed that boys and the girls of the age group of 15-17 years were not significantly different with respect to their academic stress. Singh and Upadhyay (2008) investigated academic stress in the context of age and sex differences among college students. They found that female students had more stress in comparison of male students. Hussain et al., (2008) observed the magnitude of academic stress was significantly higher among the public school students whereas government school students were significantly better in terms of their level of adjustment. Agarwal (2011) found no significant differences between academic stress of male and female adolescents. Athanimath and Yenagi (2011) found in their study that there was non- significant correlation between the social maturity and depression level among the students. They also concluded non- significant gender differences among the students on social maturity. Bartwal and Raj (2014) found no significant gender differences with regard to stress among rural and urban adolescents.Jayanthi et al., (2014) observed that parents and teachers' expectations were the main sources of academic stress among the adolescents, while adolescent girls had higher academic stress than boys. Chaudhary, (2014) conducted a study on social maturity of adolescents in relation to their gender and locality and founda significant gender differences on the basis of social maturity. They also reported that students belonging to rural area have higher social maturity than urban area students. Gupta, (2014) conducted a study on social maturity among male and female M.Ed. students and also observed that there is no significant difference in the social maturity level among male and female students. Singh conducted a study on psychological hardiness, stress and social maturity as correlates of well- being among adolescents and concluded that the adolescents with high social maturity have significantly better well- being in relation to stress. The result also indicated that interaction effect between stress and social maturity is not significant and it may be concluded that well-being is independent of stress across social maturity.

Statement of the problem-The problem for the present study is 'Relationship between social maturity and stress among secondary level students'.

Objectives- The objectives are as following: -

1) To study the social maturity with respect to gender among secondary level students.
2) To study the social maturity with respect to types of schools among secondary level students.
3) To study the stress with respect to gender among secondary level students.
4) To study the stress with respect to types of schools among secondary level students.
5) To find out the relationship between social maturity and stress among secondary level students.

Hypotheses-The hypotheses are as following: -

1) There exists no significant difference in social maturity of secondary level students with respect to their gender.
2) There exists no significant difference in social maturity of secondary level students with respect to types of schools.
3) There exists no significant difference in stress of secondary level students with respect to their gender.
4) There exists no significant difference in stress of secondary level students with respect to types of schools.
5) There exists no significant relationship between social maturity and stress among secondary level students.

Population and sample-All the secondary school students studying in class 9^{th} of Uttar Pradesh Board comprised of population of present study. The sample of the study comprised of a group of 210 students from four government schools studying in class 9^{th} of UP Board of Allahabad district. Out of these 210 students, 130 students were male and rest of the, 80 students were female. The data was collected through simple random sampling method.

Tools and statistics used-Dr. Zaki Akhtar's Student Stress Scale and Dr. Nalini Rao's Social Maturity Scale were used for data collection. To analyze the data mean, t-test and product moment correlational methods were used by the researcher.

Analysis and interpretation of data-

1) Comparison of social maturity between male and female students-

Group	N	Mean	SD	t-ratio	Significance level	Table value
Male	130	218.767	35.84	3.043	.05	1.971
Female	80	234.569	37.14			

The result revealed that there exists significance difference in social maturity of secondary level students with respect to their gender i.e., male and female students are differ in social maturity. Here, the girls have high social maturity in comparison to the boys.

2) Comparison of social maturity between Hindi and English medium students-

Group	N	Mean	SD	t-ratio	Significance level	Table value
Hindi	90	224.31	37.13	0.2741	.05	1.971
English	120	225.74	37.45			

The result revealed that there exists no significant difference in social maturity of secondary level students with respect to types of schools i.e., Hindi and English medium students have no difference in social maturity.

3) Comparison of stress between male and female students-

Group	N	Mean	SD	t-ratio	Significance level	Table value
Male	130	180.907	32.08	1.739	.05	1.971
Female	80	188.696	30.12			

The result revealed that there is no significant difference in stress of secondary level students with respect to their gender i.e., there found no difference in stress of male and female students.

4) Comparison of stress between Hindi and English medium students-

Group	N	Mean	SD	t-ratio	Significance level	Table value
Hindi	90	180.719	26.47	1.263	.05	1.971
English	120	186.285	34.71			

The result revealed that there is no significant difference in stress of secondary level students with respect to types of schools i.e., Hindi and English students are not differ in level of stress.

5) Coefficient of correlation between social maturity and stress of secondary level students-

Variables	N	df	Correlation (r)	Significance level
Social Maturity	210		-0.029	
Stress				

The result revealed that there is negative but non-significant relationship between social maturity and stress of secondary level students.

Conclusions and suggestions-The conclusion is, from this study, that social maturity of girls is higher than social maturity of boys. Types of schools not affected the social maturity of the students. The level of stress also found similar in both male and female students. Types of schools also not affected level of stress of the secondary students. The last table value showed no significant relationship between social maturity and stress of students while in most of the studies it was found that high social maturity reduces the level of stress. This can happen because high social maturity helps in establishing good and strong social relationships, so that the individual's mental health is also good and he does not experience any stress.High social maturity allows the

individual to adjust to himself easily, which helps him to get the support of the people and due to this support he feels free from stress.

As suggestions I would like to say that many studies can be done by relating social maturity and stress to other variables. There is a need to throw much more light on this topic so that by identifying the level of stress in adolescents and young people, an attempt can be made to reduce their stress level through social support so that they can lead a happy and successful life.In order to make adolescents stress free, there is a need to adopt better methods of teaching- learning process and co- curricular activities. For proper social development of adolescents, they need to provide a better social environment so that they can become worthy citizens of the society.

References: -

1. Agrawal, A. (2011), Impact of academic stress upon academic achievement and mental health of the adolescents. International Journal of Management and Social Sciences, Vol. 1, No. 1.
2. Arria, A.M. et al, (2009), Suicide ideation among college students: A multivariate analysis. Arch Suicide Res., 13: 230-46.
3. Athanimath, J.S. and Yenagi, G. (2011), Social maturity and depression levels among 2nd PUC science students. Journal of FARM SCIENCES, Vol. 24, No. 4.
4. Bansal, C.P. and Bhave, S.Y. (2006), Stress in adolescents and its management. In: Bhave, S.Y., Ed. Bhave's textbook of adolescent medicine. New Delhi: Jaypee Brothers Medical Publishers, pp. 844-53.
5. Bartwal, R.S. and Raj, A. (2014), Academic stress among school going adolescents in relation to their social intelligence. Indian Streams Research Journal, 4 (2), pp. 1-6.
6. Chaudhary, P. and Madhuri, Social Maturity of Adolescents in Relation to Their Gender and Locality: A Comparative Analysis. Scholarly Research Journal for Humanity Science and English Language, Vol. 1, Issue 6, Oct.-Nov. 2014.
7. Gupta, R.P. (2014), Study of social maturity among male and female M.Ed. students. Abhinav National Monthly Refereed Journal of Research in Arts and Education, Vol. 3, Issue 3.
8. Hussain, A. et al, Academic stress and adjustment among high school students. Journal of the Indian Academy of Applied Psychology, April 2008, Vol. 34, Special issue 70-73.
9. Jayanthi, P. et al, (2014), Academic stress and depression among adolescents: A cross- sectional study. Indian Pediatrics Journal, Vol. 15, March 2014, pp. 217-219.
10. Kumar, D. and Ritu (2013), Social maturity of senior secondary school students in relation to their personality. Asian Journal of Multidimensional Research, Vol. 2, Issue 8, ISSN 2278-4853.

11. Mathew, B. and Jayan, C. (2006), Academic stress and coping styles among +2 students. Indian Psychological Res., 66(1), pp. 41-48.
12. Singh, L., Psychological hardiness, stress and social maturity as correlates of well- being among adolescents. Department of Education and Community Services, Punjab University, Punjab, India.
13. Rosenham, D.L. and Seligman, M.E. (1989), Abnormal Psychology, 2nd edition, pp. 463-465.
14. Selye, H., Harper and Row (1976), Stress without distress, In: Serban G. (eds) Psychopathology of Human Adaptation. Springer, Boston, MA, Online ISBN 978-1-4684-2238-2.
15. Singh, A. and Upadhyay, A. (2008), Age and sex differences in academic stress among college students. International Journal of Social Science, 24(1), pp. 78-88.
16. Srivastava, S. (1987), Three paths of adult development: conservers, seekers and achievers. Journal of Personality and Social Psychology, 80, pp. 995-1010.

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

जैन धर्म का ऐतिहासिक लेखन

सुनील कुमार सिंह*
प्रवीण मिश्रा

जैन धर्म में तीर्थकरों को अत्यधिक महत्व दिया जाता है। तीर्थकर शब्द जैन धर्म में उन 24 व्यक्तियों के लिए प्रयोग किया जाता है, जिन्होनें अपने तप के माध्यम से आत्मज्ञान प्राप्त किया हो तथा मानव कल्याण के लिए तीर्थ की रचना की हो, जिसके माध्यम से सामान्य प्राणी संसार की मोह माया से मुक्त हो सके। जैन धर्म में जिन 24 तीर्थकरों का उल्लेख किया गया है, वे सभी क्षत्रिय कुल में उत्पन्न मानें जाते है। महावीर स्वामी से पूर्व 23 तीर्थकरों ने जैन धर्म की स्थापना एवं प्रचार किया। आदि तीर्थकर ऋषभदेव ने जैन धर्म की स्थापना की तथा इसके प्रमुख सिद्वान्तों का निरुपण किया। ऋषभदेव का मानना था कि "मनुष्य अपनी आत्मशक्ति का विकास कर के परमात्मा की अवस्था को प्राप्त कर सकता है तथा आत्मशक्ति को प्राप्त करने का साधन अहिंसा एवं सत्य का साक्षात्कार करना है। इन्होनें आगे कहा कि हर मानव में परमात्मा का निवास होता है।"

श्रमण परम्परा में आदि पुरुष ऋषभदेव को माना जाता है। जिस कालखण्ड में ऋषभदेव हुए, वह मानव इतिहास का प्रारम्भ था। इस कारण उनकों प्रगार्य, तथा वेदपूर्व माना जाता है। ऋषभदेव का उल्लेख जैन साहित्य के अतिरिक्त ऋग्वेद एवं अन्य वैदिक साहित्य में प्राप्त होता है। ऋषभदेव ने आदि मानव को जीना सिखाया, भाषा प्रदान किया तथा कृषि आदि उपयोगी कलाओं का प्रारम्भ किया। इनके द्वारा धार्मिक अन्तर्विरोधों को रचनात्मक मोड देने का कार्य किया। इन्होनें अहिंसा के द्वारा व्यक्ति की स्वतंन्त्रता को प्रतिष्ठापित किया तथा भेद विज्ञान के द्वारा जगत की सत्यता की उजागर करने का कार्य किया। प्राचीन साहित्य में इनकों योगी, केशी, आदिनाथ, हिरण्यगर्भ आदि नामों का उल्लेख किया गया है। नाथ संप्रदाय में ऋषभदेव को ही आदिनाथ नाम से आदिगुरु स्वीकार किया जाता है। इनका प्रतीक चिन्ह वृषभ को माना जाता है।

जैन परम्परा के अनुसार जैन धर्म के दूसरें तीर्थकर अजितनाथ का जन्म प्रथम तीर्थकर के जन्म के 12 लाख पुव्व हुआ था। इनका जन्म स्थान अयोध्या को माना जाता है। इनको भी इक्ष्वाकु वंश से ही सम्बन्धित माना जाता है। इनकी माता का नाम विजया तथा पिता का नाम जिनशत्रु था। इनकों सम्मेद पर्वत पर कैवल्य की प्राप्ति हुयी। इनका प्रतीक चिन्ह गज को माना जाता है। इनकी ऊॅचाई 450 धनुष मानी जाती है। अजितनाथ ने अपने देशकाल एवं परिस्थितियों के अनुरुप जैन धर्म को परिष्कृत करने का कार्य किया।

जैन परम्परा में चर्तुथ तीर्थकर अभिनंदन जी को माना जाता है। इनका जन्म स्थान अयोध्या में माना जाता है। इनके पिता का नाम संवराराज तथा माता का नाम सिद्वार्था देवी मिलता है। बारह वर्ष की कठोर तपस्या के पश्चात पौष शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी को इनको कैवल्य प्राप्त हुआ। इनकों निर्वाण की प्राप्ति सम्मेद पर्वत पर हुयी थी। इनका प्रतीक चिन्ह वानर को माना जाता है।

* नेहरु ग्राम भारती मानित विश्वविद्यालय, प्रयागराज

जैन परम्परा में पॉचवे तीर्थकर सुमतिनाथ को माना जाता है। इनका जन्म साकेतपुरी (अयोध्या) में हुआ था। इनके पिता का नाम मेघरथ या मेघप्रभ तथा माता का नाम सुमंगला मिलता है। चैत शुक्ल पक्ष की एकादशी को इनकों कैवल्य की प्राप्ति हुयी। सुमतिनाथ को निर्वाण सम्मेद पर्वत शिखर पर प्राप्त हुआ। जैन धर्मावलंबियों के अनुसार इनका प्रतीक चिन्ह चकवा था।

जैन धर्म के छठें तीर्थकर पद्यमप्रभुजी को माना जाता है। इनका जन्म वत्स (कौशाम्बी) में हुआ था। इनके पिता का नाम धरणराज तथा माता का नाम सुसीमा देवी मिलता है। इनकों चैत शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा को कैवल्य प्राप्त हुआ। इनकों सम्मेद पर्वत शिखर पर निर्वाण प्राप्त हुआ। इनका प्रतीक चिन्ह कमल को माना जाता है।

जैन धर्म के सातवें तीर्थकर सुपार्श्वनाथ को माना जाता है। इनका जन्म वाराणसी में हुआ था। इनके पिता का नाम प्रतिस्थिसेन तथा माता का नाम पृथ्वीदेवी मिलता है। फाल्गुन कृष्ण पक्ष की सप्तमी को आपको कैवल्य प्राप्त हुआ। फाल्गुन कृष्ण पक्ष की सप्तमी को इनकों सम्मेद पर्वत शिखर पर निवार्ण की प्राप्ति हुयी। जैन परम्परा के अनुसार इनका प्रतीक चिन्ह स्वस्तिक को माना जाता है।

जैन धर्म के आठवें तीर्थकर चन्द्रप्रभु को माना जाता है। इनका जन्म पौष कृष्ण पक्ष को चन्द्रपुरी में हुआ था। इनके पिता का नाम राजा महासेन तथा माता का नाम सुलक्षणा मिलता है। फाल्गुन कृष्ण पक्ष की सप्तमी को इनकों कैवल्य प्राप्त हुआ। भाद्रपद की कृष्ण पक्ष की सप्तमी को आपकों सम्मेद पर्वत शिखर पर निर्वाण प्राप्त हुआ। जैन परम्परा के अनुसार इनका प्रतीक चिन्ह अर्द्धचन्द्र को माना जाता है।

जैन परम्परा में नौवें तीर्थकर पुष्पदंत को माना जाता है। इनका उल्लेख सुविधिनाथ के नाम से भी मिलता है। इनका जन्म इक्ष्वाकु कुल में काकांदी में हुआ था। इनका पिता का नाम सुग्रीव राज तथा माता का नाम रमारानी मिलता है। इनकों कार्तिक कृष्ण पक्ष की तृतीया को सम्मेद पर्वत शिखर पर कैवल्य की प्राप्ति हुयी। इनकों निर्वाण भी सम्मेद पर्वत शिखर पर ही प्राप्त हुआ। जैन मत के अनुसार इनका प्रतीक चिन्ह मकर को माना जाता है।

जैन परम्परा में दसवें तीर्थकर शीतलनाथ को माना जाता है। इनका जन्म माघ कृष्ण पक्ष की द्वादशी कों बद्धिलपुर में हुआ था। इनकें पिता का नाम दृढरथ तथा माता का नाम सुनन्दा मिलता है। कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी को इनकों कैवल्य की प्राप्ति हुयी। इनकों सम्मेद पर्वत शिखर पर निर्वाण प्राप्त हुआ। इनका प्रतीक चिन्ह वत्स को माना जाता है, जो किस सभी जैन साधुओं के वक्ष स्थल पर स्थापित किया गया है।

जैन परम्परा में ग्यारहवें तीर्थकर श्रेयांसनाथ जी को माना जाता है। इनका जन्म इक्ष्वाकु वंश में हुआ था। इनके पिता का नाम विष्णुराज तथा माता का नाम विष्णुदेवी मिलता है। इन्होनें अपने माता पिता की आज्ञा को स्वीकार करके गृहस्थ जीवन को अपनाया तथा एक लम्बें समय तक राजा के रुप में अपनी प्रजा की सेवा की। अपनें पुत्र को अपना उत्तराधिकारी बना कर इन्होनें वैराग्य धारण किया। जैन मत के अनुसार इनको वैराग्य की प्रेरणा ऋतुओं में होनें वाले परिवर्तनों को देखकर हुयी। श्रेयांसनाथ को सम्मेद पर्वत पर निर्वाण की प्राप्ति हुयी। श्रेयांसनाथ का प्रतीक चिन्ह गैडा को माना जाता है, जो कि एक शाकाहारी एवं शक्तिशाली जानवर होता है।

जैन धर्म के बारहवें तीर्थकर वासुपूज्यनाथ को माना जाता है। इनका जन्म चम्पापुरी के राजा वासुपूज्य के यहॉ हुआ था। इनकी माता का नाम जयादेवी मिलता है। वासुपूज्यनाथ जी

बाल्यावस्था से ही वैराग्य जीवन में प्रवेश करना चाहते थे। इन्होनें अपना राज्य छोडकर वैराग्य धारण किया।वासुपूज्य नाथ जी अहिंसा पर अत्यधिक जोर देते थे। इनका प्रतीक चिन्ह भैसा को माना जाता है। इनकें धर्म परिवार में 62 गणधर मानें जाते थे।

जैन परम्परा में तेरहवें तीर्थकर विमलनाथ को माना जाता है। इनका जन्म कम्पिल्य में हुआ था। विमलनाथ जी ने राजपद का दायित्व निभाया था, बाद में इन्होनें राजपद छोडकर सन्यांस धारण कर लिया। इनकों सम्मेदपर्वत पर निर्वाण प्राप्त हुआ था। विमलनाथ का प्रतीक चिन्ह शूकर को माना जाता है, जो कि मलिनता का प्रतीक माना जाता है।

भगवान अनंन्तनाथ को जैन धर्म का चौदहवॉ तीर्थकर माना जाता है। जिन्होनें अपने पूरे जीवन काल में सत्य एवं अहिंसा के नियमों का पालन किया। इनका जन्म अयोध्या में इक्ष्वाकु वंश के राजा सिंहसेन के यहॉ हुआ था। इनकी माता का नाम सुयश देवी मिलता है। इन्होनें गृहस्थ जीवन को स्वीकार किया तथा एक लम्बें समय तक राज्य का संचालन भी किया। इनको सम्मेद पर्वत शिखर पर निर्वाण प्राप्त हुआ। इनका प्रतीक चिन्ह बाज को माना जाता है, जो कि अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए व्याकुल रहता है।

जैन धर्म का पन्द्रहवॉ तीर्थकर धर्मनाथ को माना जाता है। इनके पिता का नाम भानु तथा माता का नाम सुव्रत मिलता है। इनकों पौष पूर्णिमा को कैवल्य की प्राप्ति हुयी तथा सम्मेद पर्वत पर इनकों निर्वाण प्राप्त हुआ। इनका प्रतीक चिन्ह वज्र को माना जाता है, जो कि मजबूती का प्रतीक माना जाता है।

जैन धर्म के सोलहवें तीर्थकर शांतिनाथ को माना जाता है। इनका जन्म हस्तिनापुर में इक्ष्वाकु वंश में हुआ था। इनकें पिता विश्वसेन हस्तिनापुर के राजा थे, तथा इनकी माता का नाम आर्या मिलता है। इनकों सम्मेद पर्वत पर कैवल्य की प्राप्ति हुयी थी। जैन परम्परा के अनुसार इनका प्रतीक चिन्ह हिरण्य मिलता है। जो कि शांन्ति एवं ममता का प्रतीक है।

जैन परम्परा में सत्राहवें तीर्थकर कुंथनाथ जी को माना जाता है। इनका जन्म हस्तिनापुर में इक्ष्वाकु वंश में हुआ था। इनकें पिता हस्तिनापुर के राजा सूर्यसेन तथा इनकी माता का नाम श्रीकांता देवी मिलता है। इनकों सम्मेद पर्वत पर कैवल्य की प्राप्ति हुयी। जैन मत के अनुसार इनका प्रतीक चिन्ह बकरा माना जाता है।

जैन धर्म के अठाहरवें तीर्थकर अरहरनाथ जी को माना जाता है। इनका जन्म हस्तिानपुर के इक्ष्वाकु वंश में हुआ था। इनके पिता का नाम सुदर्शन तथा माता का नाम मित्रसेन देवी मिलता है। इनकों सम्मेद पर्वत पर निर्वाण की प्राप्ति हुयी। जैन परम्परा के अनुसार इनका प्रतीक चिन्ह तगरकुसुम (मत्स्य) को माना जाता है।

जैन परम्परा में उन्नीसवें तीर्थकर मल्लिनाथ को माना जाता है। इनकें पिता का नाम कुभराज तथा माता का नाम प्रभावती (रक्षिता) मिलता है। इनका जन्म स्थान मिथिला में माना जाता है। इनकों सम्मेद पर्वत पर निर्वाण की प्राप्ति हुयी। इनका प्रतीक चिन्ह कलश को माना जाता है।

जैन धर्म के बीसवें तीर्थकर मुनिसुव्रतनाथ को माना जाता है। इनके पिता का नाम सुमित्र तथा माता का नाम प्रभावती मिलता है। इनका जन्म स्थान राजगढ को माना जाता है। इनकों सम्मेद

पर्वत पर निर्वाण की प्राप्ति हुयी। जैन परम्परा के अनुसार इनका प्रतीक चिन्ह कूर्म को माना जाता है।

जैन परम्परा में तेइसवें तीर्थकर पार्श्वनाथ को माना जाता है। पार्श्वनाथ की ऐतिहासिकता असदिग्ध मानी जाती है। पार्श्वनाथ का काल 877 ई0 पू0 से 777 ई0 पू0 माना जाता है। पार्श्वनाथ को निर्वाण महावीर स्वामी के जन्म से लगभग 250 वर्ष पहले माना जाता है। महावीर स्वामी एवं महात्मा बुद्व के समय में पार्श्वनाथ की परम्परा के साधुओं के व्यापक प्रभाव का उल्लेख तत्कालीन समाज में देखने को मिलता है। आवश्यक सूत्र निर्युक्ति में वर्णन मिलता है कि जब महावीर स्वामी कुमारक सत्रिवेश पधारें तो उद्यान में ध्यानावस्थित हो गए। महावीर स्वामी के शिष्य गोशालक जब नगर में गए, तो वहॉ उन्होनें कूपनय नामक एक कुंभकार की शाला में पार्श्वनाथ परम्परा के आचार्य मुनिचन्द्र अपनें शिष्यों के साथ वहा पर उपस्थित थे। जैन साहित्य आगम में भी उल्लेख मिलता है कि पार्श्वनाथ परम्परा के अनुयायी श्रमण केशिकुमार अपने बहुत से शिष्यों के साथ महावीर स्वामी के संघ में प्रविष्ट हुए। इनकें साथ महावीर स्वामी के गणधर गौतम का विस्तृत वार्तालाप हुआ। इस वार्तालाप में प्रमुख रुप से इस बात पर विचार किया गया कि पार्श्वनाथ ने चतुर्याम धर्म का उपदेश दिया था, जबकि महावीर स्वामी पंच महावव्र का उपदेश दे रहे है। आगम साहित्य में ही एक स्थान पर उल्लेखित किया गया है कि महावीर स्वामी के माता पिता भी पार्श्वनाथ परम्परा से सम्बन्धित थे। महावीर स्वामी ने परवर्ती काल में अपने धर्म संघ की स्थापना की, परन्तु उन्होनें सदैव यह स्वीकार किया कि उनके एवं पार्श्वनाथ के विचारों में कोई अन्तर नही है। जो कुछ भी पार्श्वनाथ ने कहा, वह उन्ही का प्रचार कर रहे है।

महात्मा बुद्व के जीवन से सम्बन्धित बौद्व साहित्य त्रिपिटक से यह निश्चित होता है कि बोधि प्राप्त से पूर्व महात्मा बुद्व पार्श्व परम्परा से सम्बद्व रहे थे। मज्झिम निकाय के महासिंहनाद सुत्त में वर्णन मिलता है कि महात्मा बुद्व ने अपने शिष्य सारिपुत्र से कहा कि " बोधि प्राप्त होने से पूर्व मै दाढी एवं मछों का लुचन करता था, खडा होकर तपस्या करता था, बिना वस्त्रों के घूमता था, हथेली पर भिक्षा लेकर भोजन करता था। बैठे हुए स्थान पर आकर किसी के द्वारा दिए गए अन्न को स्वीकार नही करता था। इसके साथ किसी के निमंत्रण को भी स्वीकार नही करता था। इस विवरण के आधार पर अनेक विद्वानों का मानना है कि महात्मा बुद्व कुछ समय के लिए पार्श्वनाथ की परम्परा में रहे थे।

डा0 रामधारी सिंह दिनकर ने अहिंसा धर्म की परम्परा में पार्श्वनाथ का योगदान महत्वपूर्ण रहा है। उन्हानें लिखा है कि "श्रीकृष्ण के समय से आगे बढनें तथा महात्मा बुद्व के लगभग ढाई सौ वर्ष पूर्व हम जैन तीर्थकर पार्श्वनाथ को अहिंसा का सन्देश जनसाधारण में प्रचारित करते हुए पाते है। पार्श्वनाथ से पूर्व अहिंसा केवल मुनियों के आचरण से सम्बन्धित थी, परन्तु पार्श्वनाथ के प्रयासों से सत्य अस्तेय तथा अपरिग्रह के साथ अहिंसा को मिलाकर उसे सर्वसाधारण की व्यावहारिक परम्परा में डालने का कार्य किया। पार्श्वनाथ के इन चारों मुख्य उपदेशों को चातुर्याम धर्म के नाम से जाना जाता था।

जैन धर्म के चौबीसवें एवं परम्परा के अन्तिम तीर्थकर महावीर स्वामी को माना जाता है। महावीर स्वामी का काल ईसा0 पूर्व छठी शताब्दी माना जाता है। महावीर स्वामी ने अपनें समय की परिस्थितियों को ध्यान में रखकर ब्रहाचर्य व्रत का अलग से उल्लेख किया है। जैन धर्म ग्रन्थों में महावीर स्वामी के पूर्वजन्मों का उल्लेख मिलता है। जैन ग्रन्थ कल्पसूत्र में महावीर स्वामी के 26 पूर्व जन्मों के बारे में विवरण प्राप्त होता है। महावीर स्वामी का जन्म 527 ई0 पूर्व माना जाता

है। कल्पसूत्र के अनुसार महावीर स्वामी 72 वर्ष तक जीवित रहे। आधुनिक शोध के अनुसार महावीर स्वामी का जन्म वैशाली में हुआ था। यह स्थान वर्तमान समय में वासुकुंड के नाम से जाना जाता है।

महावीर स्वामी के माता पिता तीर्थकर पार्श्वनाथ की परम्परा के अनुयायी थे। महावीर के पिता का नाम सिद्वार्थ मिलता है, जो कि ज्ञातृवंशीय कुंडपुर के राजा थे। उनकी माता का सम्बन्ध लिच्छवि वंश से था। जैन पुराणों में महावीर की माता को चेटक का सम्बन्धी बताया गया है। उत्तर पुराण में उनकों राजा चेटक की पुत्री तथा आवश्यक चूर्णि में राजा चेटक की बहन कहा गया है। आचरांग सूत्र एवं कल्पसूत्र की परम्परा के ग्रन्थों में वर्णित है कि महावीर स्वामी का जीव पहले ब्राहाण कुंडग्राम के ब्राहाण ऋषभदत्त की पत्नी देवनन्दा के गर्भरुप में उत्पन्न हुआ था। 82 रात्रियॉ बिताने के पश्चात उनकों त्रिशला के गर्भ में प्रतिष्ठित किया गया। विभिन्न पुराणों एवं महाकाव्यों में जन्मोत्सव का काव्यात्मक विवरण मिलता है।

मक्खलि गौशाल ने नियतिवाद का प्रवर्तन किया। इनका मानना था कि मानव को सुख एवं दुख की प्राप्ति उसके नियति है तथा कोई व्यक्ति कोई भी कार्य कर ले, उसमें कोई परिवर्तन नही हो सकता है। अर्थात पुरुषार्थ को कोई महत्व नही है। इस संप्रदाय का मानना था कि मानव के सामर्थ्य से कुछ नही होता, पुरुषार्थ से कुछ नही होता, जो होना है वो होकर रहेगा। मानव अपने प्रयासों से उसमें कोई भी परिवर्तन नही कर सकता। मानव अपने स्वभाव एवं नियति से सुख एवं दुख का उपभोग करता है।

संदर्भ सूचीः–

1. जम्बूद्वीप प्रप्ति 3.67 उत्तराध्यनटीका 18, पृ. 247–अ। देखिए दीघनिकाय 1, अम्बटसुत्त 1, पृ. 77 यहां चक्क, हत्थि, अस्स, मणि, इत्थि, गहपति और परिणायक रत्नों का उल्लेख है।
2. दशवैकालिक चूर्णी 1, पृ. 49 आदि।
3. ज्ञातृधर्मकथा 8। ध्यान रखने की बात है कि श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार (कल्पसूत्रटीका 2, प2 32 अ 42 अ) स्त्रियो द्वारा निर्वाण प्राप्त करने के दस आचार्यों मे किया गया है। दिगम्बरो के अनुसार मल्लि को मल्लिकुमार माना गया है और इस परम्परा में स्त्रीमुक्ति का निषेध है।
4. वृहत्कल्पभाष्य 4.4334–46
5. प्रश्नव्याकरण 16, पृ. 85–अ–89अ।
6. पृ.89–91। शुकसप्तति में भी यह कहानी मिलती है, 15, पृ 56 रिचार्ड श्मित द्वारा सम्पादित, लीपलिंग, 1893। अपनी पत्नी की गुलामी करने वाले छह अधम पुरूषों के लिये देखिये निशीथभाष्य 13.4451।

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

रमणिका गुप्ता की कविताओं में दलित–चेतना

कुमारी आभा*

भारत का 'दलित' काफी पिछड़ा हुआ है। वह समाज का बोझ को ढ़ोता हुआ शोषित, पीड़ित, लांछित, अपमानित, हजारों वर्षो से मर–मर कर जीने को मजबूर है। आजादी के पहले तक उसे इंसान के रूप में किसी ने नोटिस नहीं की। आजादी के वर्षो बाद जब हासिए पर खड़ा दलित पढ़–लिखकर कुछ समझदार हुआ तो अपनी पीड़ा स्वयं साहित्य के माध्यम से व्यक्त करना शुरू किया। तब अन्य साहित्यकारों ने दलित विमर्श का आन्दोलन शुरू किया। वैसे दलित के प्रति संवेदना निराला एवं प्रेमचन्द साहित्य में भी मिलती है। लेकिन उसमें वह तीखापन नहीं दिखता है, जो दलित द्वारा लिखे गए साहित्य में मिलता है। तब यह प्रश्न उभरकर सामने आया कि सहानुभूति का साहित्य प्रभावी है या अनुभूति का। भोगे हुए यथार्थ की तुलना सहानुभूति से करना ठीक नहीं। लेकिन सहानुभूति के संवेदना यदि प्रगाढ़ हो तो उसे किसी तरह से नकारा नहीं जा सकता। रमणिका गुप्ता की रचनाओं को इसी संदर्भ में मूल्यांकन करना समीचीन होगा।

रमणिका गुप्ता का व्यक्तित्व एवं कृतित्व आम आदमी के भोगे हुए यथार्थ से कहीं भी कम नहीं है। एक अभिजात्य परिवार में जन्म लेकर भी वे आम आदमी के जितना करीब हैं उतना अन्य साहित्यकार नहीं। इस दृष्टि से वे अन्य कवियों को पीछे छोड़ती प्रतीत होती हैं। उनका दलित प्रेम मात्र कविता एक सीमित नहीं बल्कि उसे जीवन में उतारने की भरपूर चेष्टा भी की हैं।

बचपन में माता–पिता से अधिक नौकर–चाकर के करीब रही। शायद उनका वही साहचर्य दलित प्रेम के बीच के रूप में अंकुरित हुआ और निरन्तर रसोईया के लिए दलित लड़का भी चुना। जब वे पति के स्थानान्तरण के साथ धनबाद आई तो उनका सम्पर्क आदिवासी दलित कोयला मजदूरों से हुआ। कोलियरी क्षेत्र में शोषित, पीड़ित, लांछित, अपमानित कोयला मजदूर, ठीकेदार, मुंशी, पलहवान आदि के द्वारा प्रताड़ित हो रहे थे। वे उन गरीब दिहाड़ी मजदूरों पर तरह–तरह के जुल्म ढाते थे। रमणिका गुप्ता को मजदूरों का यह शोषण और जुल्म असह्य लगा। वे उनके हित में स्वयं हस्तक्षेप करना शुरू की। मजदूरों का यूनियन बनाकर हड़तालें करवाई जिसके परिणाम स्वरूप उन्हें भी प्रताड़ना झेलना पड़ा। उन्होंनें अपनी कविताओं में उसका यथार्थ वित्रण प्रस्तुत किया है जो काफी संवेदनात्मक और सम्प्रेषणीय है।

कोयला खदानों में दिहाड़ी मजदूर जी–तोड़ परिश्रम करते हैं, रात–दिन खटते हैं फिर भी उन्हें भूखे सोना पड़ता है–

" दिन में दम भर ड्यूटी करती
घर की भी रखवाली करती
खाद–खदान में खटती मैं
काम से कभउ न डरती मैं
दिन देखूँ न रात मैं
फिर भी भात की हाँड़ी खाली।"[1]

* शोध छात्रा, हिन्दी–विभाग, वीर कुँवर सिंह, विश्वविद्यालय, आरा

आजाद भारत के गुलाम दलित का ऐसा वेबाक चित्रण अन्यत्र दुर्लभ है। क्या गुजरती होगी उन मजदूरों पर जब खाली पेट अगले दिन काम पर जाते होंगे। उनसे काम लेने वाले तो अनेक थे पर उनके अंदर झांकने वाला कोई नहीं था। रमणिका गुप्ता को यह उपेक्षा सालती है। वह उनके लिए संघर्ष भी करती है आन्दोलन भी चलाती और अपनी लेखनी से उनकी पीड़ा को व्यक्त भी करती हैं। हद तो तब होती हैं जब मजदूरनी अपने दुध मुँह बच्चे को भूख से छटपटाते हुए देखती है और दूध पिलाने की कोशिश करती है। तभी मुंशी ठीकेदार की गाली उसकी पीड़ा को और भी गहरा कर देती है। रमणिका गुप्ता उसे व्यक्त करते हुए लिखती हैं–

''मलकट्टे संग कोयला काटूँ,
पत्थर, बोल्डर माटी काटूँ,
चट्टे–पे चट्टे दिन भर साजूँ,
भट्टे से कोयला झोंकूँ मैं,
मुए मनेजर से खाती मैं,
दूध पिलाने पर भी गाली।''[2]

दिहाड़ मजदूर काम से जी नहीं चुराते 'निराला की वह तोड़ती पत्थर' में वह पीड़ा नहीं झलकती जो रमणिका गुप्ता की इन पंक्तियों में दिखाई देती है। हो क्यों न ? पूरा परिवार सुबह से शाम तक निरन्तर खटने के बावजूद पेट नहीं भरता है। जेब सदा खाली ही रहती है–

''जनी भरद हम दोउ खटते
फिरउ न पेट हमर के भरते
सास–ससुर भी खटते दम– भर
तउ कापड़ बिन जाड़ा कटते।''[3]

बिना कपड़े के ठंड में ठिठुरते मजदूरों को देखकर प्रेमचन्द के 'पूस की रात' याद आती है। हल्कू के पास तो पुराना चादर भी था। इन बेवश मजदूरों के पास तो वह भी नहीं था। अभावों की इस पीड़ा को देखकर कठोर–से–कठोर व्यक्ति का भी कलेजा काँप उठता है। रमणिका गुप्ता जैसे ममतामयी कवयित्री के लिए यह असह्य था। वे तड़प उठती हैं–

सर्वे मुंशी घूस माँगते
चौका वासन खाली–खाली।''[4]

एक तो कोढ़ ऊपर से खाज। कितना भयावह होता होगा उसे झेलना। भूखे–नंगे उन दलित मजदूरों से कमीशन माँगना अत्याचार की सीमा को पार करना है। जब कभी वे कमीशन नहीं देते तो मुंशी ठीकेदार खदान बंद करने की धमकी देते हैं। जब काम करके भी पेट नहीं भरता तो बिना काम वे कैसे जीते। लाचारी जो न करा दे। वे उन्ही मुंशी–ठीकेदार से सूद पर उधार लेकर पेट भरते हैं। वे लिखती हैं–

''कमीशन खा के करे दलाली,
देश को करते धन से खाली,
खानों में लगवाते ताली।''5

जब मजदूरों के करूण क्रन्दन को मुंशी–ठीकेदार नहीं सुनते तब रमणिकाजी दहाड़ते हुए इन्कलाबी नारा बुलंद करती हैं–

''हैमर सब्बल हाथ में लेके
चल ताला खोलें
चल हल्ला बोलें
चल हमला बोलें।''[6]

उन दलितों की पीड़ा तब और गहरी हो जाती है जब इनके दूध मुँहें बच्चे भी मेहनत मजदूरी करने को लाचार हो जाते हैं। जिस उम्र में सामान्य जनों के बच्चे खिलौना से खेलते हैं, स्लेट–पेंसिल लेकर गुरू जी के कृपा पात्र बनते हैं, उस उम्र में दलितों के बच्चे नन्हीं–नन्ही अंगुलियों से कालीन को सजाते संवारते हैं। कालीन के रंगों पर सुन्दर नक्काशी करते हैं। माता–पिता से मिलने को लालायित रहते हैं। फिर भी हृदयहीन ठीकेदारों की निर्दयता के कारण उनकी आस पानी के बुलबुलों की तरह टूट जाती है–

''हम बाल श्रमिक
कालीन की गाँठों में बाँध रहें,
निशि–दिन
पिता का आसरा
माँ का विश्वास
कट–कट जाती है लेकिन
कच्चे धागे सी
घर लौटने की सारी आस।''[7]

ये बच्चे काम के घंटो में बंधे नहीं होते, सुबह जगने से रात सोने तक लगातार खटते रहते हैं, फिर भी वाजिब हक नहीं मिलता–

''कालीन की गाँठों में बंधे
हमारे नान्ह–नान्ह सपनों के बदले
कभी कभार मुंशी
घर देता है हमारी नान्ह–नान्ह हथेलियों पर खुचरा देके।''[8]

'भजदूरायण' शीर्षक कविता में मजदूरों की व्यथा–कथा को उकेरती ये पंक्तियाँ आदिवासी दिहाड़ी मजदूरों के जीवन को प्रतिविम्बित करती हैं–

''हमें चाहिए रोजी
हमें चाहिए रोटी
हमें चाहिए अमन
चाहिए कारखाने का नित खुला गेट
यही हमर जरूरत
ज्न्दा रहने की शर्त
इसलिए कारखाने के गेट पर''[9]

लिख दो मजदूरी की रामायण बड़े–बड़े खानदानी रईसों, राजे–महराजे का रामायण लिखा गया पर मजदूरी करने वाले दलितों पर किसी ने कुछ नहीं लिखा। कोई धर्मगुरू भी उसके अधिकार के लिए खड़ा नहीं हुआ। वह तो खेतों–खलिहानों में पैदा होता है–

इस देश में,
कितने मजदूरों की माँ है,
जो बता पाएगी,
उसका बेटा किस खेत में जन्मा
उसपर साल आते ही
जमींदार का कब्जा हो जाता है
या छीन लेता है महाजन
कहाँ खड़ा है कोई
धर्मगुरू आज तक उसके लिए।''[10]

गाँधी जी को लगा कि बिना आम आदमी को मिलाए आजादी संभव नहीं है। इसलिए उन्होंने 'दलित' को हरिजन नाम देकर उन्हें अपने साथ खड़ा करने की कोशिश की–

''वर्ण को मानने वाले
धर्म को मानने वाले
गाँधी ने अछूत को दिया नाम
'हरिजन'।[11]

उसके अलग महाराष्ट्र में ज्योतिबा फुले अछूतों की बराबरी की लड़ाई लड़ रहे थे। शिक्षा और जमीन में सबकी भागीदारी का आन्दोलन चला रहे थे। इसी समय डॉ0 अम्बेडकर का उदय हुआ। वे वे मनुवादी शिकंजे से अछूतों का उद्धार चाहते थे–

''अम्बेडकर– अपनी जमात को
मनुवादी शिकंजे से
मुक्त कराने को आतुर
अंग्रेजों की गुलामी या
ब्राह्मणवादी व्यवस्था की
वर्णवादी गुलामी
उनके लिए थे दोनों समान।''[12]

अम्बेडकर को इस बात का अंदेशा था कि जिन मनुवादियों ने अछूतों को सभी अधिकारों से वंचित कर जानवर से भी बदतर जीवन जीने को मजबूर किया था तब स्वराज प्राप्ति पर वे और बर्बर हो जाएँगे। उन्होंने साइमन कमीशन की सिफारिश की थी जिसे वर्णवादी गाँधी ने डटकर विरोध किया–

''साइमन'कमीशन का
गाँधी ने डटकर किया विरोध
राष्ट्रीय आन्दोलन सामन्त और सवर्णो के हाथ।''[13]

गाँधी जी को मनुवादियों के अत्याचार का अहसास नहीं था अथवा जानकर भी अनजान बना रहना चाहते थे ताकि सवर्ण बिना नाराज हुए उनका साथ दे सके। उनका तो बस एक ही लक्ष्य था–

''बस एक लक्ष्य

अंग्रेज भगाओ
देश आजाद कराओ
आजादी के बाद गुलामी का
नहीं था उन्हें अंदाज
सवर्ण उनपर जो कहर ढाते
इसका भी नहीं था एहसास।''[14]

गाँधी और अम्बेडकर का द्वन्द्व इतिहास का एक काला अध्याय है जहाँ अम्बेडकर अछूतों को इंसान बनाने की लड़ाई लड़ रहे थे, और गाँधी सिर्फ ऊपर से केवल मरहम पट्टी लगाकर हजारों वर्षो के घाव को छिपाना चाहते थे। अम्बेडकर पेशा चुनने की आजादी चाहते थे लेकिन गाँधी उसे वर्णव्यवस्था के खिलाफ मानकर उसे बनाए रखना चाहते थे। हद तो तब हो गई जब गाँधी वर्णव्यवस्था के पक्ष में अनशन पर बैठ गए और अम्बेडकर को द्विविधा में उलझा दिए–

''एक तरफ उनकी वह जमात,
जो सदियों से वंचित अछूत,
जो सदियों से बर्बरता झेलती
जो दलित होने को अभिशप्त
जो चुप रहने को मजबूर
जो गुलामी को भाग्य मानती
स्वाभिमान रहित मनुष्य योनि में जन्मी।''[15]

मनुष्यता के अधिकारों से वंचित रमणिकाजी सामन्तवादी और पूँजीवादी दोनों मानसिकता के खिलाफ थी। वे जानती थी कि सामंती मनुष्यवादी सोच पूँजीवाद में बदलने वाली नहीं हैं। क्योंकि उनके वे शास्त्रीय हथियार वही बने रहेंगे। वे स्वहित को राष्ट्रहित से ऊपर मानते हैं। वे लिखते हैं–

''समाज की व्यवस्था का विधान उसके हाथ
दण्ड उसके हाथ
शास्त्र–शस्त्र शिक्षा सब उसके पास
देश में गुलामी लाना
जिसका इतिहास जिसने देश को न देश
न ही राष्ट्र माना,
बस अपना स्वाहित पहचाना
उसका लक्ष्य अपनी जात
अपनी जमींदारी सर्वोपरि।''[16]

रमणिकाजी का जीवन स्वयं संधर्षों का जीवन रहा है। दलित आदिवासियों के हक के लिए नित नया संधर्ष करना और मुक्त करना ही उनके जीवन का एक मात्र लक्ष्य रहा। इस क्रम में उन्हें कई बार मौत का भी सामना करना पड़ा है। मौत से जुझते हुए वे लिखती हैं–

''रात–दिन खटते, झोपड़ों में रहते,
पत्ते उबाल खाते, चूहे की बिल से,
धान बटोर लाते, जिन्दगी के नाम पर,

मृत्यु को जीने वाले, अनगनित मजदूरों का,
विद्रोह होना बाकी था।
भाग्य और भगवान के नाम पर,
सामंती जुल्म को, पाप फल मानकर,
हजारों गुलामों का बंधुआ किसानों का
बिखरे मजदूरों का, मुक्त होना बाकी था,
भला मैं कैसे मरती।''[17]

'नीलकंठ निराला' की तरह विष पीकर दलित आदिवासी बेसहारा मजदूरों की लड़ाई अभिजात्य कुल में जन्मी–पली बढ़ी रमणिका के लिए एक आदर्श था जो पल–पल मरते–जूझते संघर्ष करते रही। अपनी लेखनी से दलित आदिवासियों की हृदय विदारक पीड़ा की इजहार करती रही। सामन्तों, पूँजीपतियों, ठीकेदारों, मुंशियों, पहलवानों एवं यूनियन नेताओं की लाठी–गोली की प्रहार सहते हुए अन्याय और जुल्म का प्रतिकार करती रही। इस तरह उनका जीवन ही दलित चेतना का साहित्य है और उनका साहित्य ही दलित चेतना का जीवन है। यदि यों कहा जाए कि रमणिका गुप्ता का साहित्य सहानुभूति का साहित्य न होकर स्वानुभूति का साहित्य है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। रमणिका गुप्ता का पूरा साहित्य दलित एवं आम आदमी का साहित्य है जो अनादि काल से लेकर आज तक शोषित, पीड़ित, लांछित, अपमानित जीवन जीता रहा है।

संदर्भ–सूची :

1. भीड़ सत्तर में चलने लगी है–रमणिका गुप्ता–उमेश लेजर प्रिंटर्स, नई दिल्ली–2009–पृष्ठ सं0–15
2. वही, पृष्ठ सं0–18
3. वही, पृष्ठ सं0–19
4. वही, पृष्ठ सं0–19
5. वही, पृष्ठ सं0–29
6. वही, पृष्ठ सं0–29
7. वही, पृष्ठ सं0–34
8. वही, पृष्ठ सं0–55
9. कैसे करागे बँटवारा इतिहास का–रमणिका गुप्ता–नवलेखन प्रकाशन, हजारीबाग–2012 पृष्ठ सं0–19
10. वही, पृष्ठ सं0–22
11. आदिम से आदमी तक–रमणिका गुप्ता–शुभम् प्रकाशन,नई दिल्ली–1997–पृष्ठ सं0–118
12. वही, पृष्ठ सं0– 118
13. वही, पृष्ठ सं0–119
14. वही, पृष्ठ सं0–120
15. वही, पृष्ठ सं0–121
16. वही, पृष्ठ सं0–124
17. भला मैं कैसे मरती–रमणिका गुप्ता–अभिरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली–1997–पृष्ठ सं0–49

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

भट्टिकाव्य के चतुर्दश अंक में प्रयुक्त क्रियापद की समीक्षा

डॉ0 दिव्या शुक्ला*

संस्कृत साहित्य के अमूल्य साहित्य रत्नों में महाकवि श्री भट्टि विरचित 'भट्टिकाव्यम्' का विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह काव्य केवल काव्यविधा के महाकाव्य के रूप में ही नहीं अपितु व्याकरण के ज्ञान व आचार्य पाणिनि के व्याकरण सम्बन्धी शब्दों का सुन्दर प्रयोग के उदाहरणस्वरूप पद–पद पर दृष्टिगत होता है। ग्रन्थकर्त्ता ने स्वयं ही इसे स्वीकृत किया है –

दीप–तुल्यः प्रबन्धोऽयं शब्द–लक्षण–चक्षुषाम्।
हस्तामर्ष इवान्धानां भवेद् व्याकरणादृते।। 22/23

'भट्टिकाव्यम्' 22 सर्ग में निबद्ध है, इसे प्रकीर्ण, अधिकार, प्रसन्न व तिङन्त युक्त चार काण्ड में विभक्त, प्रसाद गुण युक्त, रामकथा रूपी अमृत को पल्लवित कर महाकाव्य का रूप प्रदान किया गया है।

किसी भी साहित्य को पाठक व श्रोता तक सम्प्रेषित करने हेतु उसमें प्रयुक्त प्रत्येक पदों का विशेष महत्त्व है तथा इन पदों में क्रियापदों का विशेष महत्त्व लक्षित होता हे। 'भट्टिकाव्यम्' में महाकवि ने क्रियापदों पर विशेष ध्यान दिया है। महाकवि द्वारा तिङन्त क्रियापदों का प्रयोग वैचित्र्य तो अद्भुत ही है। क्रियापदों का भिन्न–भिन्न रूप देखने को मिलता ही है साथ ही साथ किसी–किसी सर्ग में एक ही लकार में प्रयुक्त क्रियापदों की प्रचुरता दृष्टिगत होती है। उदाहरणार्थ 14वें सर्ग में लिट् लकार, 15वें सर्ग में लुङ् लकार, 16वें सर्ग में लृट् लकार, 17वें सर्ग में लङ् लकार, 18वें सर्ग में लट् लकार, 19वें सर्ग में लिङ् लकार, 20वें सर्ग में लोट् लकार, 21वें सर्ग में लृङ् लकार, 22वें सर्ग में लुट् लकार का प्रयोग बहुलता से प्राप्त होता है।

क्रियापदों में लिट् लकार सम्मत क्रियापदों का प्रयोग ग्रन्थ में कवि ने बड़े ही चातुर्य के साथ किया है। क्रियापदों का प्रयोग अद्भुत है ही साथ ही कवि ने राजनीति–शिक्षा, व्यवहार–शिक्षा, नीति–शिक्षा, धर्मनीति–शिक्षा सम्बन्धी तथ्यों का कवि ने बड़े ही चातुर्यता के साथ सुन्दर ढंग से किया है।

क्रियापदों में लिट् लकार के प्रयोग सम्बन्धी 'भट्टिकाव्यम्' में लगभग सभी सर्गों में प्राप्त होता है किन्तु 'भट्टिकाव्यम्' के चतुदर्श सर्ग में लिट् लकार सम्बन्धी क्रियापदों का प्रयोग व सुन्दर विलास कवि द्वारा किया गया है।

चतुदर्श सर्ग में भगवान श्रीरामचन्द्र की सेना द्वारा समुद्र पर पुल बनाकर लंका में पहुँचने के पश्चात् रावण द्वारा माया से निर्मित रामजी के कटे शिर से सीता को मूर्च्छित कर युद्ध के लिये अपनी सेना को भेजने की कथा को कवि ने अपने वैयाकरणिक विद्वता के साथ लिट् लकार युक्त क्रियापदों के प्रयोग से सुन्दर रूप प्रदान किया है।

उदाहरणार्थ–

कम्बूनथ समादध्मुः कोणैर् भेर्यो निजघ्निरे ।
वेणून् पुपूरिरे, गु´जाजुगु´जः कर घट्टिताः।[2]

---

* प्रवक्ता, संस्कृत विभाग, एन0सी0डी0सी0, गोरखपुर

तात्पर्य यह है कि युद्ध रावण की आज्ञा मिलने के पश्चात् सैनिकों द्वारा शंख बजाये, डंडों से नगाड़े पीटने लगे, वंशी बजाने लगे। अंगुलियों के रगड़ पाकर युद्ध के बाजे बनजे लगे। उपर्युक्त पद्य में चार क्रियापद है – समादध्मुः, निजघ्निरे पुपूरिरे, जुगु´जुः। ये सभी क्रियापद लिट् लकार के है तथा इन क्रियापदों का प्रयोग कवि ने बड़े ही सुन्दर ढंग से किया है।

कवि ने विभिन्न धातुओं के लिट् लकार का कवि ने बड़े ही उत्कृष्ट ढंग से यथास्थान किया है। एक अन्य उदाहरण द्रष्टव्य है –

'ईक्षांचक्रेऽथ सौमित्रिमनुजज्ञे बलानि च।
नमश्चकार देवेभ्यः पर्ण–तल्पं मुमोच च।[3]

उपर्युक्त पद्य में राम ने लक्ष्मण को देखा, सेना को (युद्ध के लिए) आज्ञा दी, देवों को नमस्कार किया तथा पर्णशय्या को छोड़ा। इस पद्य में ईक्षांचक्रे, नमश्चकार, मुमोच क्रियापदों का प्रयोग किया गया हे। ये तीनों क्रियापद लिट् लकार में ही प्रयुक्त किये गये है। जिसमें ईक्षांचक्रे में ईक्षां उपपद पूर्वक कृ धातु का आत्मनेपद में लिट् लकार, नमश्चकार में नमः उपपदपूर्वक कृ धातु का परस्मैपद में लिट् लकार, तथा 'मुमोच' पद मृच्छृ धातु का लिट् लकार में प्रयुक्त हुआ है।

ददाल भूर् नभो रक्तं गोष्पदप्रं ववर्ष च।
मृगाः प्रससृपुर वामं, खगाश् चुकुविरेऽशुभम्।।[4]

तात्पर्य यह है कि रामजी की सेना रामजी आज्ञा पाकर वानर–सेना की उत्साहपूर्वक गर्जना देकर मानों पृथ्वी फट गयी, आकाश ने गौ के खुर डूबने भर रूधिर् बरसाया। मृग दाहिने से बाँये चल गये तथा पक्षी अशुभ शब्द करने लगे। इस पद्य में ददाल, ववर्ष, प्रससृ, चुकुविरे क्रियापद प्रयुक्त हुआ है तथा ये सभी क्रियापद लिट् लकार के सुन्दर उदाहरण है जिससे पद्य की उत्कृष्टता द्रष्टव्य है। लिट् लकार का इस तरह का प्रयोग प्रायः कम ही देखने को मिलता है।

'भट्टिकाव्यम्' के एक ही पद्य में कहीं–कहीं अत्यधिक लिट् लकार में प्रयुक्त क्रियापद से युक्त पद्य भी प्राप्त होता है। उदाहरणार्थ –

जग्लौ, दध्यौ, वितस्तान् क्षणं प्राण न विव्यथे।
दैवं निनिन्द चकन्द देहे चाऽतीव मन्युना।।

उपर्युक्त पद्य में सीता का वर्णन प्राप्त होता है। वह म्लान हो गयी, ध्यानपरायणा हो गयी, शब्द करने लगी। क्षणभर मूर्च्छित हो गयी, व्यथिन हो गयी भाग्य कोसने लगी, चिल्लाने लगी तथा शोक से अत्यन्त जल उठी। इसमें जग्लौ, दध्यौ, वितस्तान, विव्यथे, निनिन्द, चक्रन्द, देहे का प्रयोग किया गया है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि भट्टिकाव्य के चतुदर्श सर्ग में लिट् लकार का सुन्दर प्रयोग महाकवि द्वारा किया गया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ :

1. भट्टिकाव्यम्, 22/33
2. तदेव, 14/2
3. तदेव, 14/18
4. तदेव, 14/20
5. तदेव, 14/60

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

शैलूष : नट जीवन की कथा–व्यथा

अश्विनी कुमार पाण्डेय*

घुमंतू प्रजातियों में नट एक ऐसी प्रजाति है जिससे सभ्य समाज का रोजमर्रा के जीवन में परिचय होता रहता है। कभी बस्ती के पास पड़े खुले मौदान में ये कुछ दिनों के लिए बस जाते हैं, कभी सड़क के किनारे झुग्गी–झोपड़ी डालकर बाँस की खपच्चियों से चीज़ें बना–कर बेचने का कारोबार करते दिखाई पड़ते हैं और उन्हीं सब चीज़ों को बेच कर अपनी जीविका को चलाते है। असली शहद, जड़ी बूटी, देशी हींग और न जाने क्या–क्या अल्लम–गल्लम चीज़ें उनके पास देखने को मिल जाती है। सभ्य समाज (तथाकथित) से वार्तालाप में सक्षम होते हुए भी ये सब समाज से जुड़ नहीं पाते। दंगल लड़ना, लड़ाना, आल्हा गाना, रस्सी पर करतब दिखाना, गोदने गुदवाना ये वो पहचान हैं। जिनसे नट प्रजाति पहचानी जाती है। ऊँची आवाज में गाती हुई औरतें, नशे में आँख लाल किये हुए मर्द, नंग–धडंग धूमते बच्चे, यही नट जाति का अपना संसार है।

नटों को देखकर आनन्दित होना, चकित होना, उनसे दंगल के दांव सीखना और उनसे हँसना–बोलना सभ्य समाज सदियों से करता चला आ रहा है लेकिन उनका मर्म समझना, उनके दुख दर्द को उकेरकर शब्दों में पिरोकर सलीके से प्रस्तुत कर देने का काम सभ्यों में भी जागरूक साहित्यकार ही कर सकता है और ये काम पूरी तन्यमता और एकाग्रता से कथाकार शिव प्रसाद सिंह ने अपने उपन्यास "शैलूष" में किया है जो उनका चौथा उपन्यास है। "शैलूष" से पूर्व भी उन्होंने नटो के जीवन पर लिखा है लेकिन ये भी सच है कि नटो के जीवन पर इससे पूर्व एवं इसके पश्चात इतने विस्तार से किसी अन्य साहित्यकार ने नही लिखा है और अगर लिखा भी गया हो तो मेरी नजर में अभी तक नही आया हैं। उपन्यास "शैलूष" की भूमिका "आत्मन" में शिव प्रसाद स्वयं लिखते हैं–

शैलूष में आप ध्यानपूर्वक देखें तो लगेगा कि आपके एकदम निकट–परिवेश में हक के लिए लहूलुहान होने पर भी लड़ाई जारी है। कल्पना करके कि मुझे एक सकारात्मक उपन्यास लिखना है, मैंने शैलूष नहीं लिखा।" शैलूषों के हक की लड़ाई मैंने 10 वर्ष की उम्र में अपने चाचा की छावनी गोसाईपुर में देखी। शैलूषों के डेरे तो हर वर्ष गर्मी के दिनों में उतरते ही थे। मैंने उनको वहां भी देखा इनकी लड़ाई में मैं हमेशा शरीक रहा। वह लड़ाई मेरे जेहन में उतरती चली गयी। नये रूप में सर्वथा रूप बदल–बदल कर एक ही दृश्य दिखता रहा– पराजय, पुलिस के डंडों के नीचे लहूलुहान होते जरायम पेशे वाले शैलूष मुझे रात में भी मेरी चादर खींचकर चिल्लाते रहते– "कब तक हमारी कथा–व्यथा को छिपाये रहोगें।" मैं उन दुःस्वप्नों को बिना कागज पर उतारे शांति नहीं पा सकता था"।[1]

लोक संस्कृति की पृष्ठभूमि पर आधारित एक महत्वपूर्ण उपन्यास शैलूष है। इस उपन्यास में नटों के जीवन संघर्ष को परत–दर–परत उरेक कर रख दिया है। इस उपन्यास में खानाबदोश नटों के जीवन में घटने वाली तमाम घटनाओं को, वाह्य शाक्तियों के उत्पीड़न, अत्याचार, दबाव

* असिस्टेन्ट प्रोफेसर, हिन्दी–विभाग, हलीम मुस्लिम पी0जी0कालेज, कानपुर नगर

और अन्याय तथा छल कपट और जीवन की संवेगात्मक सच्चाइयों और मानवीय संवेग का सहज चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

शैलूष की कथा बनारस के निकटवर्ती क्षेत्र कमालपुर और रेवतीपुर की है जो चंदौली जिले का एक कस्बा है। वहीं से लगभग दो मील की दूरी पर स्थित परती जमीन पर डेरा बनाये हुए नटो की बस्ती की कहानी है।[2]

वास्तव में नटो का जीवन पूर्णतः यायावरी है, उनका जीवन आकाश वृत्ति पर निर्भर होता है। वे भूखे प्यासे रहकर भी कई दिनों तक अपना जीवन निवर्हन कर सकते हैं, उनका जीवन कभी कभी इतना कष्टप्रद हो जाता है कि कई दिनों तक एक दाना भी गले से नहीं उतरता। ये असम्भव सा कार्य तो लगता है किन्तु परिस्थितियों को वश मे ंकरना ये कबीला खूब जानता है।

"शैलूष" के मुख्य पात्र जुडावन चाचा, सावित्री (सब्बो चाची), सुरजितवा, सुधाकर, धुरफेंकन तिवारी, रूपा, रेवती आदि हैं।[3]

"शैलूष" की नायिका सावित्री उपन्यास का केन्द्र है जो ब्राह्मण पुत्री होते हुए भी नट युवक जुडावन के प्रति आकर्षित होती है। सब्बो चाची के नाम से नटों के साथ जीवन व्यतीत कर देती है। उनके भले के लिए बलिदान करती है और उनके उत्थान एवं सम्मान के लिए संघर्ष। आजीवन नटों के साथ रहते हुए भी सावित्री की कुलीन गरिमा एवं गौरव कहीं भी आहत नहीं होता। नटों के लिए भूमिस्वामित्व के संघर्ष में सावित्री का नेतृत्व देखने योग्य है।

यह उपन्यास न सिर्फ, नट जीवन की कथा–व्यथा है अपितु एक नारी के त्याग, समर्पण एवं बलिदान की गाथा भी है, जो आकर्षणपाश में बँधकर नटों के बीच जीवन तो गुजार देती है लेकिन सदैव उनके उत्थान और उनमें व्याप्त कुरीतियों को दूर करने के लिए प्रयासरत भी रहती है। ये उपन्यास हिन्दी का प्रथम सकारात्मक या विधेयात्मक (प्राजिटिव) उपन्यास माना गया है। इसमें स्वयं एवं अह ंके लिए संघर्ष, लहूलुहान हो जाने के बाद भी सत्त रूप से चलता रहता है।

"शैलूष" या नटों को कबीलाई जाति के रूप तक पहुंचाने में उनकी निम्न जातीय उपेक्षा, तिरस्कार की असंख्य परतों को उधाड़ने में उपन्यासकार ने तथाकथित कुलीन, उच्च जातीय ब्राह्मण एवं अन्य सामन्त वर्ग का जो मिला जुला अत्याचार तथा अमानुविय व्यवहार माना है वह किसी विद्वेष का द्योतक न हो कर शैलूषों के जीवन की यथातथ्य झांकी प्रस्तुत करने में सहयोगी सिद्ध हुआ है। डॉ0 अमित अवस्थी के अनुसार इस कृति पर ब्राह्मण विरोधी होने का मिथ्यारोप दुराग्रह के अतिरिक्त कुछ भी नहीं कहा जा सकता।[4]

शिव प्रसाद सिंह स्वयं अपनी भूमिका "आत्मन" में कहते हैं–

"बन्धु मैं किसी जाति पर लदे निरर्थक बोझ को जबरदस्त झटका मारकर चकनाचूर करने के प्रयत्न में तल्लीन हूँ और रहूँगा। लोगों ने अचानक यह मान लिया कि ब्राह्मण विरोधी कृति है। इसे ब्राह्मण विरोधी वहीं कहेगें जो तथ्य नहीं जानते।

"शैलूष" में शिवप्रसाद सिंह ने नट समुदाय की एक विशेषता जो उनमें सामान्य रूप से पायी जाती है, और तथाकथित सभ्य समाज में असमान्य रूप से घटित भी हो जाने पर विष का घूंट बनकर रह जाती है। का जीवंत चित्रण किया है। और वो विशेषता अर्न्तजातीय और अर्न्तधर्मी वैवाहिक सम्बन्ध के लिये मनुष्य होना पर्याप्त है। ऐसा दर्शाती है। उनके लिए हिन्दू, मुस्लिम, उच्च वर्ग निम्न वर्ग कोई माइने नहीं रखता। इसका उदाहरण है अमरित और ताहिरा की शादी,

लल्लू काका के दादा रज्जब आदि। एक घर में जुडावन, बेला, ननंकू, मुकुल, देविका, मूंगा और जुवेदा व ताहिरा धर्मनिरपेक्षता और जाति निरपेक्षता के सहज उदाहरण है।

बोलो, मजदूर बाबा की जै
बोलो, मन बाबा की जै
बोलो, नथिया बंजारिन की जै
शैलूष–6

बनाफर, नट, बंजारे कहलाने वाले इस समुदाय का सम्बन्ध एवं रीति रिवाज आदिवासियों से भी मिलता जुलता है। सावित्री के संस्कार और नटों की स्वाभाविक प्रवृत्ति ने नटों को इतना सशक्त कर दिया था कि कमिश्नर सारस्वत साहब जिन्हें उनके प्रेम एवं सम्मान के कारण सावित्री हुजूर बेटे कहकर बुलाती एवं बात करती है। रूपा एवं ताहिरा के छुरी कौशल को देखकर कह उठते है।

वाह मौसी, रूपा का छुरा ताहिरा के छुरे की बेट में धंस गया है। "वाह रे नथिना बंजरिन। तुम लोगों को दुनिया की कोई भी ताकत हरा नहीं सकती।" एक ओर बंजारा संस्कृति और दूसरी ओर मौसी का संस्कार, तुम लोगों को मोहक बना चुका है। आदिवासी अगर रहेगें। वे लड़ेगें, मरेगें पर अपना हक भी वसूलेगें।

शिवप्रसाद सिंह के विचारों में साम्यवाद और समाजवाद का पुट मिलता है। "शैलूष" में भी इन्हीं विचारों की झकल मिलती है। स्वयं को हरिजन का प्रतीक माने जाने पर प्रसन्न होकर "आत्मन" में लिखते है।

मेरे एक जागरूक पाण्डे उपाधि धारी बंधु ने मुझ पर बहुत नाराज होकर खत लिखा। उन्होनें लिखा कि मैं भारपाटरानी (देवरिया) का रहने वाला हूँ। मेरे गांव से बहुत निकट है तिवारी पुरवा, वहाँ एक शिवप्रसाद हरिजन रहता है। हम उसको उसी का प्रतीक मानते है। आपने मुझे अलग कर दिया। अगर आज लोहिया होते तो हम जश्न मनाते।

"शैलूष" ने शिवप्रसाद को विवादास्पद भी किया और प्रसिद्ध भी। इस कृति के प्रकाशन के बाद लेखक को कटु आलोचनाओं का सामना करना पड़ा। वो स्वयं स्वीकारते हैं सर्वाधिक मानसिक तनाव उन्हें इसी कृति से मिला।

भाषा के जादूगर कहे जाने वाले शिव प्रसाद स्वीकारते है।

"कभी लोगों ने मुझे भाषा का जादूगर कहा, अब वो जादूगरी बिलाय गयी। अब तो मैं भाषा का "शैलूष" हूँ।

शिव प्रसाद ने "शैलूष" में एक बड़े काम का बेड़ा उठाया और उसमें सफल भी रहे। उन्होनें दर्शा दिया कि कर्म से आदमी बड़ा होता है जन्म से नहीं। उन्होनें पुरानी मान्यताओं और परम्पराओं पर कठोर अधात किया जिसके फलस्वरूप मिलने वाली कठिनाइयों एवं आलोचनाओं के समक्ष अडिग रहे। उन्होनें अपने उपन्यास में समझा दिया कि समस्त मानव एकस्तरीय हैं। शोध किया जाये तो सिद्ध हो जायेगा कि एक ही बस्ती में बसने वाले एक उच्च और निम्न वर्ग के आदमी के पूर्वज एक ही है।

शिवप्रसाद सिंह का "शैलूष" भाषा के साथ शैलूषी व्यवहार करता है। इस उपन्यास में बुल्लेशाह की पंक्तियां, उर्दू के शब्द रिहाइश, तमाशा, इश्तेहार जिल्ले सुव्हानी इत्यादि उपर्युक्त

जगहों पर प्रयुक्त किये है जहाँ नटों की भाषा में अक्खड पन, सावित्री की भाषा कुलीनगौरव, जुड़ावन की भाषा का फक्कड़पन आदि उपन्यास को एक आकर्षक रंग प्रदान करते हैं।

मानव प्रवृत्ति की रंगीनियत भी इस उपन्यास में देखने को मिलती है। नौजादिक पाण्डे जहां उपन्यास के एक हिस्से तक आदर्श सोच एवं प्रवृत्ति का युकव प्रतीत होता है वहीं अंत तक पहुंचते पहुंचते इसमें मानव स्वभाव की दुर्वलता छलक पड़ती है और बना बनाया व्यवहारिक वैभव भरभरा कर गिर पड़ता है। नटों के जीवन संघर्ष, जगह जगह लोकगीत की पंक्तियों के रूप में उजागर हुए हैं, जिससे मनुष्य स्वभाव की परतें, धर्म एवं जाति की सीमाओं को तोड़ती घटनाएं, भूस्वामित्व के लिए संघर्ष, नीच–ऊँच की भावना जगह–जगह दिखायी पड़ती है, उच्च पद पर आसीन होते हुए तथा उच्च वर्ग में जन्मे होने के बाद भी उच्च मानसिकता का परिचय देते हुए कमिश्नर सारस्वत साहब जिनके निकट मनुष्य विचारों से उच्च होता है। इस उपन्यास का विशेष आकर्षण है।

शिवप्रसाद सिंह को लोक का ज्ञान जबरदस्त है जो इस उपन्यास के माध्यम से उजागर हुआ है। इन्होंने लोक प्रचलित छंद, अल्हा के माध्यम से भारतीय संस्कृत और सभ्यता से आम जनता को तल्लीनता से जोड़ कर और अधिक निकटता प्रदान की है। बशीर द्वारा जुड़ावन कवीले को आल्हा गाने की चुनौती देने पर नन्हकू और वशीर के बीच हुए आल्हा के दंगल का एक उदाहरण दृष्टव्य है।

दगी सलामी आल्हा दल में तोपन बत्ती दई लगाय।
धुवा उडानों आस मान लों, चहु दिसि रही अधियारी छाय।।[9]

रेवतीपुर में पुतली नाच के माध्यम से सब्बों मौसी द्वारा किया गया प्रहसन पूरे शैलूष उपन्यास की कथा व्यथा है। इस प्रहसन ने सम्पूर्ण इतिहास बता दिया है और सभी की पोल खोल दी है। स्वांग में गायी जाने वाली ऐसी जीवंत पंक्तियां पाठक को स्वांग परम्परा से परिचित कराती है।

यह साली तब परती थी,
सारी जनता डरती थी
धूरे राजा की चलती थी
परती जोत एलान किया।
कल्लू हरिजन की जान लिया
बोल–बोल साले भिस्ती बोल
क्या मैं सबका किस्सा कह दूँ
कह दूँ बाते खोल के।
ले भाई सुन ले बाते पोल की।[10]

इस प्रकार हम देखते है कि शिव प्रसाद जी ने इस उपन्यास के माध्यम से वर्ण व्यवस्था, वर्गभेद को बखूबी दिखाने की कोशिश की है तथा अपने इस उपन्यास में मक्कारों तथा चालाक लोगों से छले जा रहे मासूम कवीलाई और निचले तपके के लोगों की आवाज को बुलंद किया है। उन्होने अपनी शोध दृष्टि से बनाफर नटों के सामान्य जीवन जीने का ताना बाना बुन कर इनके मन की पीड़ा को बाहर निकालने के लिए समकालीन व्यवस्था के कानून कायदों की हदों को लाँध कर इतिहास की पृष्ट भूमि लगा कर नट जीवन का यह मंच तैयार किया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शैलूष–शिव प्रसाद सिंह– भूमिका नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली प्र0सं0–1989, पृ0सं0 15
2. समर्पण, पृ0सं0 15
3. शिव प्रसाद सिंह का कथा साहित्य संवेदना एवं शिल्प–डा0 अमित अवस्थी, पृ0सं0–244
4. शिव प्रसाद सिंह का कथा साहित्य संवेदना एवं शिल्प–डा0 अमित अवस्थी, पृ0सं0–64
5. शिव प्रसाद सिंह शैलूष–भूमिका पृ0सं0–14
6. शिव प्रसाद सिंह शैलूष–भूमिका पृ0सं0–147
7. शिव प्रसाद सिंह शैलूष–भूमिका पृ0सं0–203
8. शिव प्रसाद सिंह शैलूष–भूमिका पृ0सं0–15
9. शिव प्रसाद सिंह शैलूष–भूमिका पृ0सं0–151
10. शिव प्रसाद सिंह शैलूष–भूमिका पृ0सं0–274

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

मोतिहारी जिला में सीप बटन उद्योग की ऐतिहासिक गौरव गाथा

डॉ० मधुरेन्द्र कुमार*

मेहसी मोतिहारी जिला का एक प्रखण्ड है इसका इतिहास बहुत ही गौरवशाली रहा है। मोतिहारी आज पूर्वी चम्पारण का एक जिला है। विभाजन से पूर्व यह चम्पारण जिला के अर्न्तगत आता था। चम्पारण का इतिहास पूरे विश्व में प्रसिद्ध है। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने यहीं से सत्याग्रह आन्दोलन शुरू किया था। 1917–18 जिसके फलस्वरूप 'तीनकठिया' नामक जबरण नील की खेती कराने की प्रथा समाप्त हुई। तीनकठिया के अर्न्तगत 3/ बट्टा 20 (20 कट्ठा मे 3 कटठा) भूभाग पर नील की खेती करनी पड़ती थी जो जमींदारों द्वारा जर्बदस्ती थोपी गई थी। गाँधी जी के 'सत्याग्रह' के कारण इस प्रथा का अंत हुआ। कभी नील की खेती के लिए जाने वाला जिला अब अच्छी किस्म की चावल गुड़ के लिए प्रसिद्ध है। चम्पारण को विभाजित कर 1917 में दो जिला बनाया गयां पश्चिम चम्पारण वं पूर्वी चम्पारण। पूर्वी चम्पारण का मुख्यालय मोतिहारी है। पूर्वी चम्पारण में 27 प्रखण्ड हैं। जिसमें मेहसी भी एक महत्त्वपूर्ण प्रखण्ड है। मेहसी में कुल 13 पंचायत हैं। स्वतंत्रता संग्राम में मेहसी का भी अपना गौरवशाली इतिहास रहा है। मेहसी में वीरशेखर आजाद, तपि चन्द्र राम, गंगा राम, कमला लाल, मोहन तिवारी, भिखारी भगत, सुरज मिश्र, खेदु मिस्त्री आदि क्रांतिकारी दल के सदस्यों ने अगस्त क्रांति में बढ़–चढ़कर हिस्सा लिया था। मेहसी की पवित्रा धरती पर 21 फरवरी 1869 ई0 में एक महान विभूति श्री भुलावन लाल जी का एक कायस्थ परिवार में जन्म हुआ था। इस महान विभूति ने अपने बल पर मेहसी का कायाकल्प कर दिया। वे बचपन से ही अपनी विलक्षण बुद्धिमता के लिए प्रसिद्ध थे। अपनी अपूर्व कुशलता और लोकप्रियता तथा अपनी सूझ–बूझ के कारण तात्कालीन अंग्रेज सरकार ने प्रसन्न होकर सन् 1925 ई0 में राय साहब की उपाधि द्वारा सम्मानित किया। यह उन दिनों की दुर्लभ सफलता की परिचायक थी।

आज मेहसी राय भुलावन साहब के नाम से भी जानी जाती है। क्योंकि मेहसी के ऐतिहासिक गौरव में इनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। आर्थिक उत्थान के लिए उद्योगों को बढ़ावा का श्रेय इन्हीं विभूति को जाता है। इन्होंने नई सड़क का निर्माण करवाया। 1918 में हाई स्कूल की स्थापना की स्वास्थ्य, सपफाई की ओर ध्यान दिया, अस्पताल खोलकर नव जीवन का संचार किया। आज मेहसी का सिप बटन उद्योग इन्हीं के नाम से जाना जाता है। शहर से 48 किलोमीटर पूर्व में स्थित मेहसी सीप बटन उद्योग के लिए पू रे भारत में ही नहीं वरण विश्व स्तर पर प्रसिद्ध हो चुका है। उसके जन्मदाता स्थानीय निवासी श्री भुलावन लाल जी ही थे।

मेहसी सीप बटन उद्योग की भी एक रोचक कला है। एक दिन बुढ़ी गंडक नदी में दशहरा के दिन श्री भुलावन लाल जी स्नान कर रहे थे। उसी समय एक अपेक्षित सीप पर नजर पड़ी।

सूर्य की रौशनी में चकमक करते हुए सीप का रूप अत्यन्त आकर्षक दृष्टिगोचर हुआ। झट आपने कुछ सीपों को चुनकर इकठ्ठा किया और घर लाकर पत्थर पर रगड़–रगड़ कर बटन

* **रिसर्च फेलो, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर**

के अनुरूप बनाया और लोहार की सहायता से उसमें छिद्र कर अपने कुर्ते में उसका उपयोग किया, साहस, उत्साह और नई सूझ की एक लहर दौड़ गयी, विचारों की श्रृंखला सम्मुख आ गई, कैसे चिकना और सुन्दर बनाया जाय। श्री मोती लाला घोप जो अमृत बाजार पत्रिका के सम्पादक थे, उनके पास कुछ ऐसे बटन भेजे गये जिन्होंने उन बटनों को बाजार के लायक अयोग्य समझा। पत्राचार और सम्पर्क–स्थापन का कार्य चलता रहा, अमेरिका, इंग्लैंड से लिखा–पढ़ी का कोई सफलता नहीं मिला। श्री अम्बिका चरण जो खान इंजीनियर उन दिनों जापान में अध्ययनार्थ गये थे, बड़े सहायक सिद्ध हुए। उन्होंने जापान से बटन बनाने के कल–पुर्जे के प्राक्कलित मूल्य भेजे और प्रायः 200 रुपया की माँग जापान से कल भेजने के लिये की। बड़ी कठिनाइयों के बाद यह कल मेहसी आ सकी, परन्तु विशेषज्ञ–चालक की अनुपस्थिति में यह काम हिमालय पहाड़ की चढ़ाई सदृश प्रतीत होने लगा। किसी प्रकार ढ़ाका के श्रीयुत सेन को बुलाकर आपने मशीन चालू करवाया और बटन का उत्पादन आरम्भ हुआ। एक हजार की पूँजी से आरम्भ होने वाला बटन उद्योग का जो रूप आज मेहसी में है, सबों के समक्ष है, हाथ कंगन को आरसी क्या? क्षेत्र के चार हजार मजदूरों को रोटी देने वाला यह उद्योग मेहसी की निधि है, उसे अमर बनाने वाला बड़ा साधन है।

समय के साथ बटन निर्माण की प्रक्रिया ने एक उद्योग का रूप अपना लिया और इस समय लगभग 160 बटन फैक्ट्री ही मेहसी प्रखण्ड के 13 पंचायतों में चल रहा था। मात्रा 1000 रुपये में पूंजी से पहली बटन फैक्ट्री सन् 1908 में स्थापित की जिसका नाम तिरहुत मुन बटन फैक्ट्री दिया गया। प्रथम विश्वयुद्ध तक जापान के बटन से काफी प्रतियोगिता हुई लेकिन युद्ध के समय जापान के बटन का पतन हो गया था। तथा मेहसी का बटन उद्योग चर्म पर पहुँच गया। प्रथम विश्व युद्ध के समाप्ति के पश्चात् जापान के बटन का बाजार में फिर से अधिकार हो गया। सरकारी आँकड़ों के अनुसार द्वितीय विश्व युद्ध में जापान के बटन को प्रतिबंधित किया गया। भारतीय बाजार में तथा विदेशी बाजार में मेहसी बटन की मांग बढ़ने लगी। 24 लाख सालाना बटन का उत्पादन होता था। लगभग दस हजार लोग इस उद्योग में कार्यरत थे। यह आंकड़ा यह बतलाता है कि उस समय मेहसी का ऐतिहासिक गौरव कितना था।

उस समय के व्यापारी मुख्यतः दो प्रकार के उद्योग में लगे थे, पहला जो Oyster seep नदी से इक्ट्ठा करते थे तथा दूसरा ऐसे लोग थे जो Oyster seep के निर्माण में लगने वाले कच्चे माल के निर्माण से सम्बन्धित थे। वित्तीय कमी के कारण बटन उद्योग पर साहुकारों का कब्जा हो गया तथा विश्व बाजार की प्रतिस्पर्धा में यह बाजार पिछड़ गया। मेहसी के सीप बटन उद्योग पर साहुकारों का पूर्णतः अधिकार हो गया। इस प्रकार धीरे–धीरे यह उद्योग पतन की ओर अग्रसर हो गया और यह आज मेहसी का गौरव बर्बाद हो चुका है। वर्त्तमान में यह उद्योग सरकार से सहयोग नहीं मिल पाने के कारण बेहतर स्थिति में नही है। आज मेहसी गाँव का सीप बटन उद्योग अपनी गौरवशाली इतिहास को खोता जा रहा है। इसका एक मुख्य कारण सरकारी उपेक्षा भी है। इस उद्योग के गौरव को पुनः किस प्रकार स्थापित किया जाए यही मेरे शोध का दूसरा अध्याय है।

सन् 1908 में श्री भुलावन राय साहब सीप बटन के उत्पादन हेतु जो मशीन का नमुना जापान से लाए थे वह पैर से चलने वाला मशीन था, जिसका नाम लतगन्जा मशीन था। उस समय यह मशीन इन्होंने मुजफ्फरपुर बटलर कारखाना से बनवाया गया था। जिसका चित्र इस प्रकार है।

लतगन्जा मशीन

इस मशीन की यह विशेषता थी की ये पैर द्वारा संचालित होता था। साथ ही प्रदूषण भी कम होता था। इससे एक बार में एक सिप से एक बटन ही तैयार किया जाता था। फिर उसे घिसाई वाले मशीन पर घिसा जाता था। इस प्रकार एक बटन को बनाने में कई प्रक्रियाओं से होकर गुजरना पड़ता था। कहने का तात्पर्य यह है कि इस समय सीप से तैयार बटन राष्ट्रीय तथा अर्न्तराष्ट्रीय बाजार में धूम मचाए हुए था। इसमें इसका इतिहास गौरवशाली था। यद्यपि इस समय इसकी उत्पादन की सुविधाएँ उपलब्ध नहीं थी, आज इसका गौरव कैसे पुनः वापस हो इस हेतु हमें अनेक बातों पर ध्यान देना होगा। जो इस प्रकार हैः–

- सुधार का दृष्टिकोण
- आवश्यक सुविधाएँ को उपलब्ध कराने का दृष्टिकोण
- उत्पादन स्तर में वृद्धि करने के दृष्टिकोण
- उचित लाभ प्राप्त कराने का दृष्टिकोण
- सीप बटन उत्पादन को बाजार उपलब्ध कराना।
- उचित मूल्य दिलाना।
- लाभदायकता स्तर में वृद्धि को बढ़ाना।

आज हमारे देश में सीप बटन के उत्पादन पर ध्यान नहीं दिया जाता है क्योंकि यह असंगठित कुटीर उद्योग है। यदि हम उपरोक्त सारी बातों पर ध्यान दे तो इस उद्योग का गौरवशाली इतिहास दोहराया जा सकता है। जिसका वर्णन इस प्रकार हैः–

सुधार का दृष्टिकोणः

मेहसी का सीप बटन उद्योग जो आज जीवित है, परन्तु दम तोड़ रहा है। क्योंकि इसके आधुनिकता पर ध्यान नहीं दिया जा रहा है। जिस कारण इसका तैयार बटन बाजार में मांग उत्पन्न नहीं कर पर रहा है। चीन द्वारा उत्पादित बटन काफी आकर्षक होता है तथा सस्ता होता है। जबकि हमारे यहाँ कम उत्पादन होने के कारण महंगा होता है। यह आवश्यक है कि इसके क्वालिटी में सुधार किया जाए तथा आधुनिक मशीन मंगवाकर क्वालिटी तथा उत्पादन को बढ़ाया जाए तथा लाभ को कम किया जाए। तभी हम राष्ट्रीय एवं अर्न्तराष्ट्रीय बाजार में प्रतियोगिता कर सकेंगे तथा इसका गौरवशाली इतिहास बना सकते हैं। अतः इस क्षेत्र में सुधार का दृष्टिकोण होना आवश्यक है।

आवश्यक सुविधाएँ उपलब्ध कराने का दृष्टिकोणः

सुधार के दृष्टिकोण के पश्चात् यह आवश्यक है कि कुछ आवश्यक सुविधाएँ इस उद्योग के लिए उपलब्ध कराई जाए जैसे– बिजली, पानी, सड़क, परिवहन, कुशल श्रमिक, उत्तम क्वालिटी का कच्चा माल आदि। इन सुविधाओं के अभाव में सुधार का दृष्टिकोण सफल नहीं हो सकता है। यदि कच्चा माल अर्थात् उत्तम क्वालिटी का सिप उपलब्ध न हो तो तैयार माल की गुणवत्ता प्रभावित होगी जिसका प्रभाव बाजार पर पड़ेगा और मांग कम हो जाएगी। बिजली, पानी के अभाव में उत्पादन प्रभावित होगा, क्योंकि बटन के काटने, घिसने तथा छेद करने और रंगाई करने आदि के लिए जिस मशीन का प्रयोग किया जाता है वह पैर से नहीं बिजली से चलती है।

बिजली के स्थान पर अगर हम डीजल का प्रयोग करते हैं तो बहुत की लागत बढ़ जाती है। कुशल कारीगर के अभाव में अच्छी गुणवत्ता वाली बटन तैयार नहीं की जा सकती है। साथ ही सीप की भी बर्बादी होती है जो कि माल के उत्पादन तथा मूल्य को प्रभावित करता है।

अच्छे सड़क तथा यातायात के अभाव में तैयार माल को बाजार तक पहुँचाना संभव नही होता है। जिस कारण माल गोदामें में ही परा रह जाता है तथा पूँजी विनियोग हो जाता माल देरी से बाजार में पहुँचता है तथा माल बिक्री होकर पूँजी वापस होने में समय लगता है जिस कारण व्यापारियों को पूँजी पर ब्याज देना पड़ता है, जिससे व्यापारी को लाभदायकता प्रभावित होती है और व्यापारी इस उद्योग की ओर आकर्षित नहीं होते हैं। यदि इन सभी आवश्यक सुविधाओं को उपलब्ध करा दिया जाए तो व्यापारी इस उद्योग की ओर आकर्षित होंगे तथा इस उद्योग का गौरवशाली इतिहास बनेगा तथा आनेवाले दिनों में युवावर्ग भी इस ओर आकर्षित होंगे।

उत्पादन स्तर में वृद्धि करने का दृष्टिकोणः

यदि उपरोक्त वर्णित उपलब्ध कराने का दृष्टिकोण उपलब्ध हो तो निश्चय ही उत्पादन स्तर में वृद्धि होगी, जिससे उत्तम गुणवत्ता वाली सिप बटन का उत्पादन होगा। उत्पादन स्तर में वृद्धि होने से लागत में कमी आएगी और बाजार में इसकी मांग बढ़ेगी। मांग बढ़ने से श्रमिको की कमाई बढ़ेगी। इनका रहन–सहन का स्तर सुधरेगा। नये–नये उत्पादक इस क्षेत्र में आएंगे। अतः उत्पादन स्तर में वृद्धि करने का दृष्टिकोण ही इस उद्योग को गौरवशाली बना सकता है।

उचित लाभ प्राप्त कराने का दृष्टिकोणः

यदि लाभ न हो तो व्यापार सम्भव नहीं है। अतः उचित लाभ का दृष्टिकोण भी अपनाना चाहिए। लाभ होने से ही व्यापारी इस ओर आकर्षित होंगे। यदि उत्पादन लागत कम हो और गुणवत्ता पूर्ण बटन का उत्पादन हो इसका बाजार में मांग अत्यधिक हो, बटन की लागत कम हो उत्पादन से लेकर बिक्री प्रक्रिया निरन्तर चलता रहे तो लाभ अवश्य होगा। लाभ होने पर ही कारीगरों, व्यापारियों, उत्पादकों सभी वर्ग इस ओर आकर्षित होंगे। लाभ व्यवसाय का जीवन होता है। सीप बटन उद्योग में लाभ होगा तभी इसका गौरव बचेगा तथा इस ओर समाज का ध्यान आकर्षित होगा।

सिप बटन उत्पादन को बाजार उपलब्ध करानाः

सीप बटन उत्पादन की बिक्री हेतु बाजार उपलब्ध कराना आवश्यक है। यह कुटीर उद्योग चूंकि असंगठित है इसलिए इसका कोई स्थायी बाजार नहीं है। अतः यह आवश्यक है कि सीप बटन उत्पादन के लिए एक स्थायी बाजार बनाई जाए। मेहसी भ्रमण के क्रम में मैंने यह पाया कि इस उद्योग के लिए बाजार की समस्या है। पूछने पर मजदूर व्यापारियों ने बताया कि मेहसी उत्पादन स्थल है तथा गोविन्दपुरी दिल्ली में इसका बाजार है। कहने का तात्पर्य यह है कि व्यापारी स्थाई बाजार के अभाव में अपने माल को दिल्ली स्थित बाजार में बेचने को विवश है। यदि देश के अन्य शहरों में भी बाजार उपलब्ध होता तो व्यापारी को जहाँ अधिक लाभ हो ता वही अपना माल बेचते। अतः आवश्यकता इस बात की है कि देश स्तर पर बटन उत्पादन के लिए बाजार उपलब्ध कराया जाए तभी इस उद्योग को गौरव प्राप्त होगा।

उचित मूल्य दिलाना :

यदि सीप बटन का बाजार स्थाई होगा या संगठित होगा तो इसका असर यह होगा कि इसका उचित मूल्य प्राप्त होगा जिससे लाभदायकता स्तर में भी वृद्धि होगी। व्यापारियों को कम से कम उचित मूल्य अवश्य मिलना चाहिए ताकि सीप बटन उत्पादन में लगने वाली लागत को पूरा किया जा सके, साथ ही साथ इतना लाभ भी प्राप्त हो कि इस उद्योग में आकर्षण बना रहे। संगठित बाजार न होने के कारण आज उचित मूल्य भी प्राप्त नहीं होता है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि राज्य, देश स्तर पर एक संगठित बाजार तैयार हो ताकि उचित मूल्य प्राप्त हो सके तथा इसका इतिहास भी गौरवशाली हो सके।

लाभदायकता स्तर में वृद्धि को बढ़ानाः

सीप बटन उद्योग का आकर्षण युवाओं तथा व्यापारियों में तभी बढ़ेगाा जब लाभदायकता का जो स्तर है इसे बढ़ाया जाए। उद्योग में उचित लाभ का दृष्टिकोण अपनाना आवश्यक तो है ही साथ ही साथ लाभदायकता स्तर में वृद्धि को भी बढ़ाना चाहिए। लाभदायकता स्तर में वृद्धि होने से व्यापारी, मजदूरों के लिए कल्याणकारी योजनाएँ चला सकते हैं। मजदूरों को आवश्यक मूलभूत सुविधाएँ भी प्रदान कर सकते हैं। लाभदायकता के स्तर को तभी बढ़ाया जा सकता है जबकि सीप बटन का गुणवत्ता पूर्ण उत्पादन हो तथा लागत कम हो।

सीप बटन का गौरवशाली इतिहास जो आजादी के पूर्व का आज यह ढ़लान पर है। सरकारी उपेक्षा के कारण इस उद्योग का विकास नहीं हो पा रहा है। मेहसी गाँव जो गंडक नदी के किनारे अवस्थित है। इसमें सीप बहुतायत मात्रा में पाये जाते हैं। पहले गंडक से सीप निकालने वाले एक विशेष जाति के लोग होते थे जो अब उपलब्ध नहीं है। जिस कारण गंडक से सीप निकालना मुश्किल होता है। बटन बनाने के लिए सीप को अपने देश या विदेशों से भी मंगाना पड़ता है जिसमें लागत अधिक हो जाती है और बटन बनाने की लागत भी बढ़ जाती है। जिस कारण बाजार में अन्य देशों के बटन के अपेक्षा इसकी मांग घट जाती है। साथ ही बटन आकर्षक नहीं होने से भी इसकी मांग कम हो जाती है। कहने का तात्पर्य यह है कि सीप से बटन बनता है तथा सीप से ही मोती बनता है। सीप से बटन बनाकर व्यापारी अधिक आय नहीं कमा सकते, जबकि सीप से ही मोती बनाकर लाखों कमा सकते हैं। यदि हमें मेहसी गाँव का गौरवशाली इतिहास दोहराना है तो सीप बटन उद्योगों को बढ़ावा देने के साथ–साथ मोती पर भी ध्यान देना होगा। आज इस प्रतिस्पर्धा के युग में टिकना तभी संभव है जब आपकी मांग की लागत कम हो व क्वालिटी उत्तम हो इसलिए यह आवश्यक है कि मेहसी गाँव में मोती के उत्पादन के लिए प्रशिक्षण दिया जाए तथा इस क्षेत्र में युवाओं को जोड़ा जाए। चूंकि इसमें कम लागत और मुनाफा ज्यादा होता है। जिस कारण किसान एवं बेरोजगार छात्र–छात्राओं को इस क्षेत्र में आगे आना चाहिए तथा इन्हें मोती उत्पादन पर तकनीकि प्रशिक्षण प्रदान करना चाहिए।

जब मैं शोध कार्य हेतु मेहसी गाँव का भ्रमण कर रहा था तो मैंने पाया कि सरकारी सहायता की कमी के कारण सीप बटन उद्योग नहीं फल–फूल रहा है। यद्यपि यहाँ इसकी पूरी संभावना है। मैंने यह भी पाया कि सीप बटन उद्योग की स्थापना में लागत अधिक आती है तथा मुनाफा कम होता है। जबकि सीप से मोती बनाने में लागत कम और मुनाफा ज्यादा होती है। अतः मेसी गाँव के गौरवशाली इतिहास को बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि सीप से सम्बन्धित इन दोनों उद्योग पर ध्यान दिया जाए। इससे जहाँ एक ओर सीप बटन उद्योग को जीवित रखा जा सकता है वहीं दूसरी ओर सीप से मोती पैदा कर माली हालत को सुधारा जा

सकता है। इस कारण अब मैं यहाँ सीप से मोती कैसे बनाया जा सकता है तथा कम लागत पर ज्यादा लाभ कमाया जा सकता है। इसका विश्लेषण कर रहा हूँ।

मोती एक प्राकृतिक रत्न है जो सीप से पैदा होता है। भारत समेत हर देश में मोतियों की माँग बढ़ती जा रही है, लेकिन दोहन और प्रदूषण से इनकी संख्याँ घटती जा रही है। अपनी घरेलू माँग को पूरा करने के लिए भारत अर्न्तराष्ट्रीय बाजार से हर साल मोतियों का बड़ी मात्रा में आयात करता है। पहले मो ती केवल समुद्र से ही प्राप्त होते थे बाद में इन्हें कृत्रिम रूप से झील, तालाब, नदी आदि में मोती की खेती करके भी बनाया जाने लगा है। मोती फारस की खाड़ी, श्रीलंका, बेनेजुएला, मैक्सिको, आस्ट्रेलिया तथा बंगाल की खाड़ी में पाए जाते हैं। भारत में मोती मुख्यतः दक्षिण भारत के तमिलनाडू राज्य के ततूतीकेरन तथा बिहार के दरभंगा जिले से प्राप्त होते हैं। वर्तमान समय में सबसे अधिक मोती चीन तथा जापान में उत्पन्न होते हैं। फारस की खाड़ी में उत्पन्न होने वाले मोती ही बसरे का मोती कहा जाता है जिसे सर्वोत्तम माना गया है। आजकल मोती कई रंगों में मिलते हैं। जैसे– श्वेत, श्याम, गुलाबी व पीत वर्ण व श्याम वर्ण के मोतियों को (तहीती) कहते हैं। ये काले रंग के मोती महिलाओं के गले में बहुत सुन्दर लगते हैं। आस्ट्रेलिया के हल्के पीत वर्ण के मोती दुर्लभ होते हैं इन्हें साउथ–पी पर्ल के नाम से जाना जाता है। अकोया नाम के मोती साधारण होते हैं।

तीन प्रकार के होते हैं मोतीः

केवीटी– सीप के अंदर ऑपरेशन के जरिए फारेन बॉडी डालकर मोती तैयार किया जाता है। इसका इस्तेमाल अंगूठी और लॉकेट बनाने में होता है। चमकदार होने के कारण एक मोती की कीमत हजारों रुपया में होती है।

गोनट– इसमें प्राकृतिक रूप से गोल आकार का मोती तैयार होता है। मोती चमकदार व सुंदर होता है। एक मोती की कीमत आकार व चमक के अनुसार 1 हजार से 50 हजार तक होती है।

मेंटलटीसू– इसमें सीप के अंदर सीप की बॉडी का हिस्सा ही डाला जाता है। इस मोती का उपयोग खाने के पदार्थों जैसे मो ती भस्म, च्यवनप्राश व टॉनिक बनाने में होता है। बाजार में इसकी सबसे ज्यादा मांग है।

मोती उत्पादन के तरीकेः

सीपों को इकठ्ठा करना– सबसे पहले तो सीपों को नदी, तालाबो से जमा करके उन्हें एक बड़े आकार के बर्तन या बाल्टी में रखा जाता है। इसके लिए आप आस पास के नदियों और तालाबों में से सीपों को इकट्ठा कर सकते हैं। या फिर नजदीकी मछुवारों से कम दामों में सीप खरीद सकते हैं।

अनुकूल बनाना– जमा किये गए सीपों का इस्तेमाल होने से पहले 2 से 3 दिनों तक उन्हें पानी में रखा जाता है, ताकि सीपों के माँसपेशियाँ ढीला पड़ जाए और उनका Surgery आसानी से किया जा सके। इसके लिए आपको यह ध्यान देना जरूरी है कि सीपों को पानी से ज्यादा देर बाहर नहीं रखे, नहीं तो ज्यादा देर तक जिन्दा नही रह पायेगी।

सर्जरी– मोती उत्पन्न करने के लिए सीपों का Surgery तीन तरह से किया जाता है।

सतह के केन्द्र की सर्जरी– इस प्रक्रिया में Surgical instruments की मदद से 4 से 6 एमएम साइज के फ्रेम बनाकर सीपों के सतह को अलग करके उसके अंदर इन फ्रेम को रखा जाता

है। इस Surgery में यह कोशिश किया जाता है कि Design वाले हिस्से को सरफेस की ओर रखा जाए फिर उसमें थोड़ा स्पेस छोड़कर सीप को बंद कर दिया जाता है।

सतह कोशिका की सर्जरी– इस प्रक्रिया में सीपों को दो भागों में (दाता और प्राप्तकर्त्ता कौड़ी) में बाटा जाता है। 1 st step में सीपों के cell में छोटी छोटी हिस्सों में कलम किया जाता है। इस Surgery में सीपों के किनारे पर सतह के एक पट्टी बनाई जाती है। इसमें 2/2 एम.एम. के दो छेद कर के इसके अंदर डिजाईन वाले फ्रेम को डाल कर इसे बंद किया जाता है।

प्रजनन अंगों की सर्जरी– इस प्रक्रिया में भी सीपों में भी सीपों को कलम किया जाता है। इस प्रक्रिया में सीपो के प्रजनन अंगों के किनारे को हला काट कर 2–4 एमएम का Nucleus को डाला जाता है। Nucleus और कलम दोनों के साथ आपस में जुड़े रह सके। Surgery करते समय इस बात का ध्यान रखा जाता है कि न्यूक्लीयिस कलम के बाहरी हिस्से से संपर्क करता रहे।

ऐसे बनता है मोती :

घोंघा नाम का एक कीड़ा जिसे मॉल्स्क कहते हैं, अपने शरीर से निकलने वाले एक चिकने तरल पदार्थ द्वारा अपने घर का निर्माण करता है। घोघे के घर को सीपी कहते हैं। इसके अन्दर वह अपने शत्रुओं से भी सुरक्षित रहता है। घोंघा की हजारों किस्में हैं और उनके शेल भी विभिन्न रंगों जैसे गुलाबी, लाल, पीले, नारंगी, भूरे तथा अन्य और भी रंगों के होते हैं तथा ये अति आकर्षक भी होते हैं। घोंघों की मोती बनाने वाली किस्म बाइवाल्वज कहलाती है, इसमें से भी ओएस्टर घोघा सर्वाधिक मोती बनाता है। मोती बनाना भी एक मजेदार प्रक्रिया है। वायु, जल व भोजन की आवश्यकता पूर्त्ति के लिए कभी–कभी घोंघे जब अपने शेल के द्वारा खोलते हैं तो कुछ विजातीय पदार्थ जैसे रेत कण कीड़े–मकोड़े आदि इस खुले मुंह में प्रवेश कर जाते हैं। घोंघा अपनी त्वचा से निकलने वाले चिकने तरह पदार्थ द्वारा उस विजातीय पदार्थ पर परतें चढ़ाने लगता है।

भारत समेत अनेक देशों में मोतियों की माँग बढ़ती जा रही है, लेकिन दोहन और प्रदूषण से इनका उत्पादन घटता जा रहा है। अपनी घरेलू माँग को पूरा करने के लिए भारत अर्न्तराष्ट्रीय बाजार से हर साल मोतियों का बड़ी मात्रा में आयात करता है। मेरे देश की धरती सोना उगले, उगले हीरे–मोती। वास्तव में हमारे देश में विशाल समुद्री तटों के साथ ढेरों सदानीरा नदियाँ, झरने और तालाब मौजूद हैं। इसमें मछली पालन के हमारे बेरोजगार युवा एवं किसान अब मोती पालन कर अच्छा मुनाफा कमा सकते हैं।

कैसे करते हैं खेती :

मोती की खेती के लिए सबसे अनुकूल मौसम शरद ऋतु यानी अक्टूबर से दिसम्बर तक का समय माना जाता है। कम से कम 10 गुणा 10 फीट या बड़े आकार के तालाब में मोतियों की खेती की जा सकती है। मोती संवर्धन के लिए 0.4 हेक्टेयर जैसे छोटे तालाब में अधिकतम 25000 सीप से मोती उत्पादन किया जा सकता है। खेती शुरू करने के लिए किसान को पहले तालाब, नदी आदि से सीपों को इकट्ठा करना होता है या फिर इन्हें खरीदा भी जा सकता है। इसके बाद प्रत्येक सीप में छोटी–सी शल्यक्रिया के उपरान्त इसके भीतर 4 से 6 मिली मीटर व्यास वाले साधारण या डिजायनदार बीड जैसे गणेश, बुद्ध, पुष्प आकृति आदि डाले जाते हैं फिर सीप को बंद किया जाता है। इन सीपों को नायलॉन बैग में 10 दिनों तक एंटी–बायोटिक और

प्राकृतिक चारे पर रखा जाता है। रोजाना इनका निरीक्षण किया जाता है और मृत सीपों को हटा लिया जाता है। अब इन सीपों को तालाबों में डाल दिया जाता है। इसके लिए इन्हें नायलॉन बैगों में रखकर (दो सीप प्रति बैग) बॉस या पीवीसी की पाइप से लटका दिया जाता है और तालाब में एक मीटर की गहराई पर छोड़ दिया जाता है। प्रति हेक्टेयर 20 हजार से 30 हजार सीप की दर से इनका पालन किया जा सकता है। अन्दर से निकलने वाला पदार्थ नाभिक के चारों ओर जमने लगता है जो अन्त में मोती की रूप लेता है। लगभग 8–10 माह बाद सीप को चीर कर मोती निकाल लिया जाता है।

कम लागत ज्यादा मुनाफा :

एक सीप लगभग 20 से 30 रुपए की आती है। बाजार में 1 मिली से 20 मिली सीप के मोती का दाम करीब 300 रुपये से लेकर 1500 रुपये होता है। आजकल डिजायनर मोतियों को खासा पसन्द किया जा रहा है जिनकी बाजार में अच्छी कीमत मिलती है। भारतीय बाजार की अपेक्षा विदेशी बाजार में मोतियों का निर्यात कर काफी अच्छा पैसा कमाया जा सकता है तथा सीप से मोती निकाल लेने के बाद सीप को भी बाजार में बेचा जा सकता हैं। सीप द्वारा कई सजावटी सामान तैयार किये जाते हैं। जैसे कि सिलिंग झूमर, आर्कषक झालर, गुलदस्ते आदि। वहीं वर्तमान समय में सीपों से कन्नौज में इत्र का तेल निकालने का काम भी बड़े पैमाने पर किया जाता है। जिससे सीप को भी स्थानीय बाजार में तत्काल बेचा जा सकता है। सीपों से नदी और तालाबों के जल शुद्धिकरण भी होता रहता है जिससे जल प्रदूषण की समस्या से काफी हद तक निपटा जा सकता है।

सीपों की देखभाल

सीप को Nylon के bag में 10 दिनों तक इन्हें antibiotic और natural पर रखा जाता है। कई बार antibiotic के लिए थोड़ा सा हल्दी का प्रयोग किया जाता है। रोजाना इन शीपों का inspection किया जाता है और जो सीप मर जाते हैं उनके body से nuclesu को निकाल कर सीप को बैग से बाहर निकाल देते हैं। 10 दिन के inspection के बाद जो सीपें बच जाती है उन्हें nylon के बैग में रखकर (1 बैग में 2 सीपें) इन्हें बांस या किसी अन्य पाईप के सहारे लटका कर इन्हें तालाब में 1 मीटर गहरे पानी में इन्हें छोड़ दिया जाता है। production को बढ़ाने के लिए तालाबों में Organic Abiotic खाद्य का प्रयोग किया जाता है। बीच–बीच में बैगों में रखे सीपों का inspection किया जाता है ताकि जो सीप मर गए हैं उन्हें बैग से निकाल कर बाहर किया जाता हैं सीपों के इन बैगों को 15 से 20 महीनों के अन्तराल में इन बैगों को साफ करने की आवश्यकता होती है।

सीपों से मोतियों को निकलना– सीपों के Pan अवधि 1.6 Year से लेकर 2 साल तक होती है, और इसके पूरा हेाने पर सीपों को तालाबों से निकाल कर, उनके कोशिका या प्रजनन अंगों से मोती को निकाला जाता है।

Estimate Costing ot Starting Pearl Farming:

अगर आपके पास 4000 sq. feet की जगह हो तो आप एक मोती उत्पादन से संबंधित लघु उद्योग का व्यवसाय शुरू कर सकते हैं। इसमें आपको निम्नलिखित की जरूरत होगीः–

टेबूल संख्या– 2.1

Material	Cost (in Rs.)
Structure Setup	Rs. 10,000 to 15,000
Surgical Sets (for 1 set)	Rs. 200 to 500
Jinda Ship-100	Rs. 1,500 to Rs. 2,500
Water Treatment	Rs. 1000
Food Wastage for Pond	Rs. 500
Miscellaneious	Rs. 3,000
Total Expenses	Rs. 20,000 to 22,000

स्रोत : फिल्ड सर्वे द्वारा।

यह सत्य बात है कि मोती की खेती करने के लिए आपको काफी धैर्य और सीखने की ललक हानी चाहिये। औसतन एक मोती की कीमत आपको रुपया 250 से लेकर रुपया 500 तक हो सकती है अगर आप किसी ऐजेन्ट के द्वारा बेचते हैं। परन्तु अगर आप इसे डायरेक्ट बाजार में बेचते हैं तो क्वालिटी की हिसाब से आपको आसानी से रुपया 600 से रुपया 800 मिल जायेंगे। अगर आप एक बार मोती बनाने की कला सीख जायें जाये तो मोती की खेती लाभदायक साबित हो सकती है।

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

भारत की शक्ति का उभरता हुआ स्वरूप एवं क्षेत्रीय चुनौतियाँ

डॉ. रोहताश जमदग्नि*

किसी भी राष्ट्र की विदेश नीति उसके राष्ट्रीय–हितों के व्यापक स्वरूप की पूर्ति के उद्देश्य से निर्मित होती है। जिसमें राष्ट्रीय–सुरक्षा राष्ट्र की सबसे बड़ी प्राथमिकता के रूप में राष्ट्र को उस मार्ग पर चलने के लिए बाध्य करती है, जो वास्तव में, इसकी क्षमता के आधार पर निर्धारित होता है। भारत की विदेश नीति में राष्ट्र–हितों के व्यापक स्वरूप की पूर्ति हेतु स्वतंत्रता मिलने के पश्चात ही ऐसे प्रयास किए गए जो भारत की सुरक्षा और उसकी क्षमता को सुदृढ़ एवं सुरक्षित कर सकें।

भारत की विदेश नीति में साम्यावादी विचारधारा का समर्थन, उसकी क्षेत्रीय अनिवार्यताओं का परिणाम रहा। जिसके प्रभाव में शीतयुद्ध काल में भारत की विदेश नीति को सोवियत संघ के पक्ष की विदेश नीति के रूप में अंगित किया लेकिन वर्तमान में, भारत न केवल एक उभरती हुई अर्थ–व्यवस्था है, बल्कि संसाधनों एवं तकनीकी के क्षेत्र में भी विकास के नए आयाम स्थापित कर रहा है। यही कारण है कि आज सयुंक्त राज्य अमेरिका जैसी आर्थिक–ताकतें भारत के साथ बहुपक्षीय सहयोग को निर्मित करने का प्रयास कर रही हैं।

पड़ोसी राष्ट्रों के संदर्भ में भारत की विदेश नीति हमेशा सहयोग एवं आपसी भाईचारे की समर्थक रही है। चीन के साथ सीमा–विवाद, निःसंदेह चिंता का विषय है लेकिन दोनों राष्ट्रों के मध्य संबंधों में अन्त–निर्भरता की परिस्थितियां निर्मित होने के कारण गतिरोध उस स्तर पर नहीं है, जिससे वर्ष 1962 जैसी स्थिति निर्मित हों। दोनों राष्ट्रों के मध्य द्वि–पक्षीय व्यापार वर्ष 2012 में 64 अरब डालर रहा, जिससे वर्ष 2015 तक 100 अरब डालर तक पहुंचाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। दोनों राष्ट्र द्वि–पक्षीय मामलों में इतने परिपक्व हो चुके हैं कि वे सीमा पर शांति को बहाल करना अपनी प्राथमिकता मान रहे हैं। चीन द्वारा घुसपैठ की लगातार कोशिशों के बावजूद भारत का रूख अत्यंत नरम है लेकिन वह उसकी कमजोरी नहीं है क्योंकि अग्नि–5, ब्रहमोश, एडमिरल विक्रमादित्य, विक्रांत एवं विराट उसकी सैनिक क्षमता के परिचायक हैं और यही कारण है कि आज चीन BRICS गठबंधन के माध्यम से विश्व–अर्थव्यवस्था के बहुध्रुवीयकरण के आगाज दे रहे हैं।

पाकिस्तान के साथ कश्मीर समस्या विवाद का सबसे बड़ा कारण है लेकिन पाकिस्तान के परम्परागत गठबंधन सहयोगी अमेरिका ने हाल ही में नवाज शरीफ की कश्मीर मामले में अमरीकी हस्तक्षेप की प्रार्थना को ठुकरा देना, इस बात को जाहिर करता है कि भारत रणनैतिक संबंधों में सफलतापूर्वक तरीके से अंतरराष्ट्रीय सद्भावना एवं विश्वास को प्राप्त करने में सफल हो रहा है। 26/11 के दोषियों को सजा देने के मामले में भी भारत की पहल काफी सराहनीय है। जिससे पाकिस्तान का वास्तविक चेहरा विश्व–समुदाय के समक्ष प्रकट हुआ है। बंग्लादेश के साथ द्वि–पक्षीय विवादों में निःसंदेह कमी आई है। तास्ती और फैनी नदी के जल बंटवारे की समस्या

* स्नातक (विज्ञ.), प्रशिक्षित स्नातक, कला निष्णात, दर्शन निष्णात, विद्यावाचस्पति, आर.के.एस.डी. (पी.जी.) महाविद्यालय, कैथल, चल चलायमान

का समाधान यू.पी.ए. सरकार की प्राथमिकता है लेकिन गठबंधन की राजनीति के प्रभाव में सकारात्मक कदम अपेक्षित रूप से नहीं उठाए जा सके हैं।

बर्मा, श्रीलंका, नेपाल एवं भुटान आदि राष्ट्रों के आचरण में चीन प्रभाव का तत्व स्पष्ट झलकता है लेकिन भारत की सामरिक क्षमता और उसकी दरियादिली के कारण अनेक प्रयास बोने साबित होते हैं। भारत की विदेश नीति विशिष्ट भाईचारे को वरीयता दे रही है, जिससे पारस्परिक विश्वास निर्माण की कड़ी में नये आयाम स्थापित किये जा रहे हैं अर्थात भारत को पड़ोसी राष्ट्रों के साथ संबंधों के व्यवस्थापन में कईं प्रकार की चुनौतियां दिखाई तो देती हैं लेकिन उनका स्वतः उन्मूलन भारत की क्षमता और उभरती हुई शक्ति के स्वरूप को प्रकट करता है। भारत द्वि–पक्षीय विवादों को बड़े संयम एवं सहनशीलता की नीति से हल करना चाहता है वहीं भारत की बहु–पक्षीय सुरक्षा को सशक्त आधार भी प्रदान कर सकता है।

संगोष्ठी में, मैं अपने शोध के इस विषय के व्यापक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अपनी परिकल्पना को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास करूंगा।

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

Analysis and Prevention of Enterprise Financial Risk under the New Tax Policy

DR.BACHHA KUMAR RAJAK*

Abstract

In order to better protect the development of private enterprises in China, China launched a larger tax reduction policy in 2019. Under the new tax pol- icy, enterprises can effectively adjust itself and it has important significance for enterprises to protect and control their own financial risk. This paper takes Shenzhen A Enterprise as an example, puts forward countermeasures to ensure that the enterprise can better develop and grow through the study of the new tax policy and the financial management of the enterprise.

Keywords

New Tax, Policy, Enterprise Financial Risk, Prevention

1. Introduction

Enterprise financial management refers to the possibility of deviating from the expected target in the process of financial operation, which belongs to the mi- cro-economic risk [1]. Enterprise financial management includes the risk of fi- nancial income and the risk of financial status. Financial income mainly refers to the ability of the enterprise to indebted and gain benefits from operation. The target deviation refers to the increase or decrease of financial income, and the variation or improvement of financial income. The uncertainties in financial ac- tivities have a great influence on the financial relations and expected profits and losses of enterprises. The broad sense of enterprise financial management refers to that in the process of operation, the economic consequences are uncertain, there may be profit or loss; the narrow sense of enterprise financial management mainly refers to loss.

Since 2019, China has implemented a new tax policy and the new round of in- itiatives has included four main aspects. The first is to implement preferential tax relief for small and micro enterprises. This policy has been issued to the pub-lic. The minimum threshold for small-scale VAT taxpayers has been raised, and the monthly sales volume has been adjusted from 30,000 Yuan to 100,000 Yuan, that is, if enterprise's monthly sales is less than 100,000 Yuan, it no longer has the obligation to pay value-added tax. The new policy relaxes small Low-profit enterprises standard

* **DEPARTMENT OF COMMERCE, LNMU DARBHANGA, BIHAR**
B.M.COLLEGE RAHIKA MADHUBANI

restrictions and increases its preferential margins. The re- laxed conditions are as follows: the total assets of enterprises are less than 50 million Yuan, the number of employees is less than 300, and the taxable income is less than 3 million Yuan [2]. Therefore, it is of great significance to study the financial management of enterprises under the new form of tax policy. This pa- per takes Shenzhen A Enterprise as an example, through analyzing its financial management status in recent years, and combining with the new tax policy, puts forward the countermeasures to promote the development of enterprise finan- cial management.

2.Company Profile and Organizational Structure

2.1.Company Profile

In 2001, Company A was established in 1202, Block B, Shandong Building, Nanhai Avenue, Nanshan District, Shenzhen City, Guangdong Province. It is a construction enterprise with professional qualification for foundation and basic works approved by Guangdong Provincial Construction Department. At present, the company's main business is: 1) Slope support and foundation pit support engineering; 2) Cast-in-place bored pile, Revolving Digging Cast-in-Place Bored Pile, grooving machine, static pressure pipe pile, hammering pipe pile, seismic sand-washing pile, and other foundation engineering construction; 3) composite foundation treatment engineering, including vacuum preloading, surcharge preloading, dynamic consolidation by drainage and other relevant combined method, cement mixing pile, CFG pile, high-pressure jet grouting pile, sleeve valve pipe grouting, etc. 4) Construction of steel trestle, steel platform, tempo- rary wharf and sightseeing Wharf. 5) Mechanical equipment leasing. 6) Basic testing.

2.2. Financial Status of Shenzhen A Company

2.2.1. Financing Activities

According to the relevant financial statements of A company, in 2016, the com- pany had 103.665.16 million fixed assets. In 2017 fixed assets increased to 112.233 million, and in 2018, fixed assets reached to 11.89.259 million, so it can be concluded that the company's financing activities are not bad and relatively stable.

2.2.2. Operational Activities

From the financial statements of A company, it can be seen that in recent years, the company has maintained the turnover days of accounts receivable in about 25 days and company A's accounts receivable turnover rate is relatively fast, may be the credit policy of A company is more stringent. Therefore, in the long run,it may affect the

expansion of enterprise scale, thus affecting the long-term prof- itability of the enterprise.

2.2.3. Revenue Distribution Activities

As can be seen from the A's financial statements: the profit available for distri- bution in 2016 was RMB14,988,735.3, the profit available for distribution in 2017 was RMB20,567,450.11, and the profit available for distribution in 2018 was as high as RMB25,008,313.46, which shows that Company A's profit increased an- nually.

2.3. Analysis of the Main Financial Ratio of Shenzhen A Company

2.3.1. Analysis of the Company's Solvency Indicators for 2018

As can be seen from **Table 1**, the liquidity ratio of A in 2018 is declining, indi- cating that the solvency of enterprises is declining. In the days of inventory turnover, the company maintained a low level, which can show that the compa- ny has a higher sales and profitability, and also has a certain strength in the abil- ity to repay short-term debt. From the aspect of asset-liability ratio, the company has increased from 8.5% at the beginning of the year to 11.43%. It can be seen that the enterprise's debt ratio has increased, which has a certain relationship with the reform of the enterprise in that year.

2.3.2. Analysis of Company Profitability Indicators in 2018

As can be seen from **Table 2**, the company's asset profit margin is basically maintained at 13%. As an engineering company, its overall profit margin is bas- ically at the average level of the industry. In terms of the net interest rate of shareholders' equity, the company is 14%, which is basically consistent with the profit margin of assets of the whole enterprise. In 2018, the company's sales in- terest rate dropped from 11% at the beginning of the year to 8%, and its net sales interest rate declined to a certain extent, indicating that the business operation process in 2018 was affected by the overall economic situation.

2.3.3.Analysis of the Operating Capability Indicators of the Company in 2018

As shown in **Table 3**, receivable turnover rate equals to net sales income on

Table 1. Analysis of corporate reparability indicators.

Current Ratio		Inventory Turnover Days	Asset-liability Ratio	
Early Year	Year End		Early Year	Year End
7.65	6.19	0.08	8.5%	11.43%

Table 2. Analysis of company profitability indicators.

Asset Profit Margin	Return on Shareholder's Equity	Sales Net Interest Rate	
		Early Year	Early Year
13%	14%	11%	8%

Open Journal of Business and
DOI: 10.4236/ojbm.2019.74133 1945Management

Table 3. Company A operating capability indicators in 2018.

Accounts Receivable Turnover Rate	Current Asset Turnover Rate	Total Asset Turnover Rate
3.56	2.25	1.53

credit/average balance of accounts receivable, the higher the turnover rate of ac- counts receivable, the shorter the turnover days of accounts receivable, indicat- ing that the faster the receivable is returned, the stronger the liquidity of ac- counts receivable, and the smaller the possibility of bad debts occurring in ac- counts receivable, but if the turnover rate of accounts receivable of an enterprise is too high, it may be due to the fact that the credit policy of the enterprise is too harsh, which may limit the size of the enterprise's sales and affect the long-term profitability of the enterprise [3].

The turnover rate of current asset equals to main business income/ the aver- age balance of current assets. The higher the turnover rate of current assets, the shorter the turnover days of current assets, which means that faster turnover of current assets has better utilization. The analysis of the overall turnover of cur- rent assets should be combined with the turnover of specific current assets such as inventory and accounts receivable and other specific liquid assets turnover situation [4].

Total assets turnover rate equals to main business income/average total assets. It has been known that the higher the total assets turnover rate, the shorter the total assets turnover days. which means that the faster the turnover of all assets of the enterprise, the more income the same assets will be earned, so the higher the management level of the assets [5]. The turnover rate of A company's total assets is only 1.53, so the management level of enterprises is not high.

2.4. Possible Financial Management of Shenzhen Company A

2.4.1.Analysis of Financial Management of Shenzhen A Company from Balance Sheet

As shown in **Table 4**, Asset-liability ratio is the ratio of total liabilities to total assets. It is an important index to measure the long-term repayment ability of A company. From the standpoint of creditors, the lower the asset-liability ratio is, the better results show. While from the debtor's point of view, if the interest paid by the capital involved is lower than the profit brought by its capital, the higher the asset-liability ratio is, the better. General experience tells us that the best as- set-liability ratio is close to 60%. From the calculation results can be seen that Company A for four consecutive years of asset-liability ratio is well below the 60% indicator, so it is learned that A company's long-term ability to repay for- eign debt will not occur financial management.

2.4.2.Analysis of Financial Management of Shenzhen A Company from Profit Statement

As can be seen from the **Table 5**, Company A's profits in recent years are decreas- ing year by year, which indicates that the profitability of the company is declining.

Table 4. Company A's asset-liability ratio statistics.

Year	2010	2016	2017	2018
Asset-Liability Ratio	10.22%	10.86%	8.5%	11.43%

Table 5. A company asset profit rate statistics.

Year	2016	2017	2018
Company Asset Profit Rate	19%	18.98%	13%

Therefore, A company should take certain measures to improve the profitability of the company. So that the company's competitiveness in the same industry can be improved.

2.4.3.Analysis of Financial Management of Shenzhen A Company from Cash Flow Statement

It can be seen from the **Table 6** that the repayment of current liabilities of en- terprises is still reliable, so A will not have financial management in cash flow.

3.Analysis of Financial Management of Shenzhen A Company

3.1.Project Cost

Shenzhen A Company should actively carry out technical innovation and equip- ment management in the process of bidding project construction. According to the design scheme and technical data required by customers, combined with the construction contract and the conditions of the construction site, to work out the most reasonable and effective construction program, as far as possible to shorten the duration, improve the utilization of equipment, adopt new technol- ogy to improve the construction quality in order to reduce the cost of the project. Equipment support department management personnel is to strengthen the management of machinery and equipment, construction materials and other engineering materials. In the process of purchasing, prices with quality should be compared, selecting products with reasonable quality and price, strictly man- aging in the process of using, avoiding material waste and equipment damage, saving engineering costs. The personnel cost of enterprises should also be strictly controlled, and the responsibility system should be implemented. Every post has a special person in charge. If something goes wrong, someone should assume responsibility, paying salaries according to the post, and determine the man- agement cost of the performance appraisal method of reward and punishment for the construction personnel by personal performance. Unreasonable expenses and waste are deducted from the wages of the persons responsible. After the project cost is compressed, the profit of the enterprise shall increase correspon- dingly, and the financial management of the enterprise shall be reduced from the aspect of capital.

3.2. Contract Management

Shenzhen A Company must carefully study the terms of the contract when signing

Table 6. A company cash current debt ratio.

Year	2016	2017	2018
Cash Current Debt Ratio	1.56	1.67	1.08

a contract with its customers and asking professional lawyers to give effective suggestions to avoid and eliminate possible economic disputes in the follow-up. When the contract involves the time and norms of project acceptance, the cal- culation of

project repayment and other breaches of contract clauses, it is neces- sary to clearly divide the economic responsibilities of both parties, not ambi- guous, and must implement the responsibilities to individuals. The clause of al- teration claim should be considered comprehensively to prevent the loss from being compensated when the alteration occurs in construction which is different from the design scheme. For unreasonable or unenforceable clauses, objections should be raised between the signing of the contract, so that customers can change the content of the clauses and reduce the financial management of their units.

3.3. Insufficient Internal Accounting Control System

Based on abiding by the relevant economic laws and regulations of the state, the accounting control system within Company A has many deficiencies in the fi- nancial management of the project construction process, which is formulated in accordance with its own business model and project management mode. The implementation of accounting basic work will enable accounting work to play an effective role in improving the company's business efficiency.

3.4. Changes in the Domestic Macro-Environment

The State to stimulate the development of construction industry has a certain regulatory effect on the economy. When the economy is overheated, the state will reduce the investment in the construction industry and restrict the devel- opment of the industry. At this time, the profit of A company will decrease dra- matically. Uncertainty factors such as policies and regulations issued by the state will also affect the financial situation of A company. When the economy is de- pressed, it will also increase the financial management of A company.

4.Analysis of Financial Management Countermeasure of Shenzhen A Company

4.1. Actively Establish a Perfect Risk Prevention Mechanism

Perfect risk prevention mechanism can make the management mechanism of A company run normally and effectively and can improve the operation efficiency of A company and the scientific nature of major decisions. Shenzhen A company has many problems like, a very unclear structure on property rights, ambiguous division of authority and responsibility between the board and the manager, bossy instructions of the supreme leader, inefficient operation of the wholecompany management, staff procrastination and strategic decision-making mis- takes and so on.

First of all, to improve the company's management structure, let the leaders of departments within the company check and balance each other's rights, super- vise

each other, establish a clear reward and punishment system and the right to dismiss, so that employees have a sense of crisis, do well and reward, do poorly may be to go to this job, stimulate them to work hard. Secondly, he implementa- tion of the corporate legal person system, once the system is established, it needs strict implementation and supervision. The separation of operation power and management power should be achieved so that the incentive mechanism and re- striction mechanism within the company can operate normally. Finally, to im- prove the management system of project funds, because the construction opera- tion of the project requires a large amount of capital operation, so the financial management of the project is the management focus of Company A.

In addition to improving the financial management prevention mechanism, financial management alert mechanism should also be strengthened, which is of great significance to the prevention and timely response of enterprise financial management and can fundamentally improve the ability of an enterprise to resist financial management. Market economy is free, there are many uncertain factors in the process of production and operation of enterprises, and there are great risks in the financial situation of enterprises. Therefore, it is necessary to estab- lish an early warning mechanism for financial management, which can not only discover the problems in the middle of financial management as early as possi- ble, but also deal with the crisis in time so as to make decisions, giving decision makers plenty of time to develop effective business strategies, control and man- age the expansion of corporate financial crises, and further reserve enough safety time for eliminating the crisis.

4.2.Establishing an Effective Management System and Structure within an Enterprise

Establishing an effective internal management system is an important measure to prevent and control the emergence of financial management in enterprises A. Effective management system can make the internal operation of the company scientific, standardized and institutionalized, so that the various processes in the process of production and operation can be carried out according to plan, can enhance the ability of enterprises to resolve financial management. Strengthen the research on the internal management system and emergency measures of Enterprise And create a set of scientific prevention and control institutions suit- able for the company. Secondly, it is necessary to establish an internal review system, which can help enterprises to carry out financial management and pre- vention and control supervision, so that the economic activities of enterprises can be fully audited and supervised, to find out the possible problems in the ac- counting system, to establish an efficient and convenient accounting system model, and to enhance the response capacity of the financial departments of en-terprises. Speed up the time of financial decision-making, reduce

financial man- agement, clear the responsibilities of each department in their own use, distribu- tion, management responsibilities, do not overstep the authority to operate.

4.3.Enhancing the Financial Management Awareness of Policymakers and Financial Personnel

As the steerer of the enterprise, whether the decision-maker can avoid the storm of financial management is closely related to the wisdom of the decision-maker and the correct understanding of financial management. A enterprise all pro- duction and operation activities and financial management of all work need its decision-makers and accounting personnel to fully cooperate. In order to achieve the goal of preventing and controlling the financial management of enterprise A, first of all, the decision makers and the managers of rough and fast departments should strengthen the precautionary consciousness of financial management, and then the relevant personnel of various departments of enterprise A should be strengthened. Popularize certain financial knowledge, especially the training of financial management consciousness in the working, so that they can under- stand the possible links and forms of financial management, how to prevent and resolve financial management, financial management hazards and other know- ledge, and strengthen the ability of enterprise managers and normal employees to control risks.

4.4.Continuous Improvement of the Quality of Financial Personnel

Modern enterprises raise the awareness of financial management prevention and control of managers and ordinary employees, at the same time, higher require- ments for the comprehensive quality of financial personnel was put forward. Fi- nancial personnel should not only be familiar with the knowledge of finance, law, financial economy and management, but also charge up the knowledge of financial prevention. With the continuous development and growth of enter- prises, new opportunities and challenges have been put forward to the managers and financial personnel of Company A. Firstly, their comprehensive qualities are required. They should integrate information according to market conditions, product research and development and internal financial conditions, constantly improve their lack of knowledge in some respects and to improve their man- agement and ability to deal with financial management crises.

4.5. Establishing a Reasonable Capital Structure

Capital structure refers to the proportion relationship between equity funds and liabilities funds in the company’s own source. Shenzhen A company’s internal liabilities account for a high proportion of all funds, which makes the cost of corporate liabilities high, and the heavy burden makes their solvency too low, so their ability to

deal with financial management is naturally poor. Therefore, it is urgent to establish a reasonable capital structure.

4.6. Strengthen the Enterprise's Response Ability

The audit department of A company should give full play to its auditing and supervising function, make a comprehensive financial management evaluation of the company's project investment, fixed assets investment and external invest- ment, and determine which are systemic investment risks and which are non-systemic investment risks. Once the specific situation of these risks is rec- ognized and then can make the right strategic decisions and invest in projects where financial management is manageable and can generate strong profits for the business.

4.7. Strengthen the Daily Funds Management

Shenzhen A company should clearly understand the current profitability and the total amount of idle funds, annual investment in capital projects, and so on, ra- tionally arrange the use of funds, reduce the occupation of worthless funds, and accelerate the turnover of company funds. Reduce the proportion of the compa- ny's liabilities in the total amount of funds, improve debt solvency, and con- stantly adjust the capital structure, so that limited capital can create unlimited economic benefits.

4.8. Collaborate with other Companies to Decentralize Financial Management

Risks and benefits are proportional to a certain extent. Cooperation with other companies can enhance the financing capacity of Shenzhen A Company. Tour- ists and other companies can share the financial management that may arise from investment risks. However, when Shenzhen A Company shares financial management with other companies, it will lose the huge profits obtained by solely undertaking the project. Shenzhen A company should find its own choice between risk and benefit according to its own economic strength, capital capaci- ty, technology research and development ability, and combining with the cha- racteristics of the project itself.

4.9. Promoting Risk Control of Engineering Projects

Under the condition of market economy, Shenzhen A Company is facing mul- tiple risks. To develop rapidly and sustainably, enterprises need to have strong ability to resist financial management and control risks. Project risk refers to the possibility of negative consequences in dazzling management process. Risk con- trol is the analysis and treatment of possible uncertainties, including risk identi- fication, analysis and

evaluation, and countermeasure research and implementa- tion, according to the environment and expected management objectives of en- gineering risks.

5. Conclusion

With the implementation of China's new tax policy, enterprises have new preferential policies in terms of value added tax and social security fees, which is very beneficial for the development of enterprises. On the basis of the development in 2018, the A company should combine with the new tax policy, strengthen the financial management of enterprises, and put forward better management plans according to the development of enterprises, so as to lay a solid foundation for promoting the long-term development of enterprises.

Due to the rapid development of the market, this paper mainly based on the accounting situation of company A in 2018, which is one-sided. In the future development of the company, the financial situation will change, and the rele- vant policies will also change. Therefore, in terms of financial management strategy, it should be analyzed according to the development at that time in or- der to achieve good results.

Conflicts of Interest

The author declares no conflicts of interest regarding the publication of this pa- per.

References

[1]Tian, L. (2019) Use Electronic Information Technology to Innovate Financial Management and Services. *Information and Computers* (*Theory*), **1**, 71-72.

[2]Shen, J. (2019) The Establishment and Perfection of Financial Management and Internal Control System in the New Era. *China's Collective Economy*, **4**, 130-131.

[3]Zhao, J.W. (2019) Research on Financial Risk Management of Construction Enterprises. *China's Collective Economy*, **4**, 150-151.

[4]Ye, F. (2019) Effect of Replacing Business Tax with Value-Added Tax on Financial Management of Telecommunication Enterprises and Countermeasures. *Economic and Trade Practice*, **2**, 85.

[5]Ding, C. (2019) The Application Research of Financial Analysis in Enterprise Financial Management. *Economic and Trade Practice*, **2**, 100-102.

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

रामनरेश त्रिपाठी और लोकसाहित्य

संजीव कुमार पाण्डेय*

आधुनिक हिंदी के लोक साहित्य विधा में विशिष्ट पहचान रामनरेश त्रिपाठी की है। इनमें जनसामान्य के प्रति प्रत्यक्ष परोक्ष रूप में देखने समझने सुनने गुनने की अवधारणा चलती रही है। यो तो रामनरेश त्रिपाठी हिंदी साहित्य में द्विवेदी युग में देश प्रेम, सत्कर्तव्य की प्रेरणा लेकर प्रवेश करते हैं, परन्तु छायावाद की रूमानियत प्रकृति चित्रण, मधुचर्या का प्रभाव इन पर भी पड़ा। प्रगति, प्रयोग नयी कविता में जाने के बजाय इन्होंने लोक को अपनी कार्यस्थली बनाकर ग्रामीण चेतना में ही अपनी चेतना की तलाश की, और विपुलमात्रा में ग्राम–साहित्य का निर्माण किया।

लोक साहित्य दो शब्दों 'लोक' और 'साहित्य' से बना है। अंग्रेजी में लोक को 'फोक' और साहित्य को 'लिटरेचर कहते हैं। 'फोक' शब्द को ग्राम जन और लोक नाम से भी जानते हैं।

रामस्वरूप चतुर्वेदी ने इसके बारे में लिखा– ''लोक साहित्य अपनी प्रकृति से एक सामूहिक अभिव्यक्ति है। वह न तो एक व्यक्ति की रचना है और न दूसरी और कोई व्यापक और बड़ा समाज उसकी सृष्टि कर सकता है। व्यक्ति और समाज के बीच छोटे–छोटे समूह, जातियाँ और वर्ग लोक–साहित्य की रचना और गायन में प्रवृत्त होते हैं। समूह में समाज की अपेक्षा वाह्य बन्धन कम होते हैं, पर आन्तरिक संवेदना कहीं अधिक गहरी होती है। समाज का संगठन समूह की तुलना में बहुत जटिल होगा और संवेदनात्मक स्तर पर उसकी अपेक्षा कम होगी। इस दृष्टि से व्यक्ति और समाज के दो सीमान्तों के बीच में अवस्थित समूह ही लोकसाहित्य के सृजन और संचरण को आवश्यक भावभूमि प्रदान करता है। बोली और लोकसाहित्य का मिलन–स्थल भी यही समूह (Community) है। जो व्यक्ति की अपनी आरम्भिक वैयक्तिकता और समाज की जटिलता के बीच की विकास–स्थिति है। मूलतः अपनी मौखिक प्रकृति के कारण बोली और लोक साहित्य इस अपेक्षया उन्मुक्त वातावरण में एक–दूसरे के सर्वथा उपयुक्त होते है।''[1]

डॉ0 हजारीप्रसाद द्विवेदी लोक का अर्थ ग्राम्य और नगरी परम्परा से जोड़ते हैं। उनकी सोच थी कि ग्राम्य क्षेत्रों में रहने वाली जो जातियाँ हैं, जन समुदाय हैं, वे अपनी ग्रामीण सुगंध को ग्राम्य अनुभूतियों को जनजीवन को रहन–सहन को अकृत्रिम ढंग से प्रस्तुत करते हैं वही लोक साहित्य है।

आज हम पश्चिमी सभ्यता या संस्कृति के वशीभूत होकर लोक की अवधारणा को कृत्रिम ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास करते हैं। लेकिन सच्चे अर्थों में यह लोक साहित्य नहीं है, क्या लोक साहित्य कृत्रिम जीवन, बनावटी आकृति, सजे संवारे गये सामान्य जन की भावनाओं को व्यक्त नहीं कर पाता। लोक साहित्य का मूल रूप जानना है तो भारतीय ग्राम्य क्षेत्र में विचरण करना होगा जहाँ वह जनसमुदाय के बीच व्यापक क्षेत्र में फैली होगी। राह चलते राहगीरों का गीत हो। आषाढ़ माह में धान बैठाने वाली औरतों या मजदूरों का गीत हो। श्रावणमास की कोदो या मक्के की गोड़ाई का गीत हो अथवा कजरी हो। भाद्रपक्ष में जन्माष्टमी का गीत हो या अश्विन (क्वार) मास में धान की कटाई मड़ाई, दशहरा का गीत हो या अपने पूर्वजों के लिए पितृपक्ष में

* शोध छात्र, हिन्दी विभाग, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर

सामान्य जन के समर्पण का गीत हो। सब में अकृत्रिम ढंग से हमारी संस्कृति या हमारे भाव प्रस्तुत होते हैं।

राह चलते राहगीर बाजारों मेलों, तिथियों त्योहारों में चलती महिलाओं के गीत, स्वागत के गीत, मौसम के आगमन, मौसम के परिवर्तन के बीच पहुँची हमारी संस्कृति को व्यापकता देने का प्रयास ये स्त्रियाँ करती है। जो जन सामान्य की अभिव्यक्ति का माध्यम बनती है। कहने को तो ये हमारी ग्राम्य परम्परा की वाहक हैं, परन्तु देखने में उनके स्वर्गिक उपवन को प्रस्तुत करने का ढंग भी है। हमारे ग्राम्य क्षेत्र में लोक गाथाएँ, व्रत, त्यौहार जन्म से लेकर उपनयन, विवाह संस्कार, खेत खलिहान, कोल्हू, चक्की के गीत कहावतें नीति कथाएँ आदि को समग्रढंग से प्रस्तुत करना ही लोक साहित्य है।

पं0 रामनरेश त्रिपाठी इस जनसामान्य ग्राम्य संस्कार के कुशल चितेरे रहे। इन्होंने लोक साहित्य को प्रस्तुत करने के लिए 'हमारा ग्राम–साहित्य' नाम से ग्रंथ का निर्माण किया। उनके मन–मस्तिष्क में लोक साहित्य इस प्रकार रची बसी कि उसका चित्रण करने के लिए, खेत–खलिहान, मजदूर–किसान, गाँव, देहात आदि की यात्राएँ करते थे। यदि उन्हें पता हो जाता था कि हमारे अवधी का कोई कवि दक्षिण भारत या बंगाल के दूर दराज में जीविकोपार्जन के लिए रह रहा है तो, रामनरेश त्रिपाठी उससे मिलने उसके साहित्य को लिपिबद्ध करने हेतु सशरीर उपस्थित होते थे।

त्रिपाठी जी ने अपने इस लोक साहित्य में सर्वोदय, सत्य, अंहिसा, अस्तेय, अपरिग्रह जैसे दार्शनिक तत्त्वों को स्थान दिया। इसके अतिरिक्त मानवतावाद, राष्ट्रवाद, स्वच्छन्दतावाद, गाँधीवाद, प्रकृतिवाद, वसुधैवकुटुम्बकम, स्वजातिगौरव, आत्मसम्मान, देशप्रेम, जीवन का सारस्वत मूल आस्था, अनास्था आदि को भी प्रस्तुत किया। ग्राम्य क्षेत्र में प्रचलित वैर, क्रोध, ईष्या, घृणा, ढ़ोंग, अंधविश्वास जैसी मान्यताओं को भी दिखाया। उन्होंने इसी लोक को प्रस्तुत करने के लिए 'ग्राम–साहित्य' शीर्षक से तीन भागों में लोक संस्कृति को प्रस्तुत किया। इन्होंने लोकसाहित्य को प्रस्तुत करने के लिए सच्ची लगन, निष्ठा, धैर्य से ग्राम्यगीतों का निरन्तर संकलन किया– इस हेतु इन्होंने निरन्तर यात्राएँ भी की। 1925 से 1929 तक गाँव–गाँव घूमते रहे।

1926 ई0 के सितम्बर महीने में त्रिपाठी जी ने अपनी गीत–यात्रा आरम्भ की। प्रयाग, जौनपुर, प्रतापगढ़, रायबरेली, मिर्जापुर, सुलतानपुर आदि जिलों के गाँवों में घूम–घूमकर उन्होंने गीत एकत्र करने आरम्भ किये। गीत–संग्रह का काम सरल नहीं था। स्त्रियों के गीतों को लिपिबद्ध करने में उन्हें अप्रत्याशित कठिनाइयों और कभी–कभी अपवादों का भी सामना करना पड़ा। आज की तरह ध्वन्यांकन बक्से भी कहाँ थे। पर्दे की प्रथा के कारण भी स्त्रियों के गीत उतारने में कठिनाई थी। इसके लिए वे मेले–ठेले में उनके झुंड के साथ कागज–पेन्सिल लेकर चलते। धान का खेत निराते समय मेड़ पर, छत कूदते समय छत पर और चक्की पीसने के समय रात के आखिरी पहर में गृहस्थ के घर के पिछवाड़े बैठकर उन्होंने गीत लिखे थे। जाड़े की रातों में बड़े–बूढ़ों के साथ अलाव के पास बैठकर उनसे बातें करते हुए और अर्धरात्रि में चलने वाले ईख के कोल्हू के निकट बैठकर थर–थर काँपते हुए गीतों को कागज पर उतारना किसी तपस्या से कम नहीं था। त्रिपाठी जी ने अनुभव किया, गीत एक ही स्थान पर पूर्णयता उपलब्ध नहीं होते, उन्हें कई स्थानों पर सुन–सुनकर पूर्ण करना होता है। यह श्रमसाध्य कार्य उनके जैसा दृढ़ प्रतिज्ञ समर्पित सारस्वत सपूत ही कर सकता था।''[2]

लोक साहित्य के संग्रह का कार्य जटिल होता है इसके लिए सबसे बड़ी समस्या है स्थानीय शब्दों का अर्थ जानना क्योंकि अकेले हिन्दी में 18 बोलियाँ है। इनमें चालीस से अधिक उपबोलियाँ हैं– ''कोस कोस पर पानी बदले, चार कोस पर बानी'' अर्थात प्रति चार कोश पर शब्द के अर्थ बदलते रहते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि अकेला मनुष्य कितनी भाषाएँ सीख सकता है। ''त्रिपाठी जी ने सन् 1925 में लोक–साहित्य के लिए यात्रा प्रारम्भ की और लगातार अट्ठारह वर्षों तक इस उद्देश्य पूर्ति के लिए सम्पूर्ण भारतवर्ष का भ्रमण किया। यात्रा में भोजन आदि की व्यवस्था न होने के कारण गुड और चने खाकर ही दिन काटना पड़ता था। इसका परिणाम यह हुआ कि मधुमेह (डायबिटीज) जैसे रोग उनके स्वास्थ्य का शत्रु बन बैठा। लोक–गीतों के लिए तो विशेष रूप से उनको कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। उन्होंने गीत एकत्र करने के लिए कई व्यक्तियों को वेतन देकर भी रखा, पर अधिकांश ने उनको ठगा। कई–कई गीतों के लिए तो दो–तीन रूपये तक भी देने पड़े।''[3]

अब और फिर जब भारत के विविध राज्यों में अपने लोग जो प्रवास कर रहे थे, जिन्हें तीन–चार–दशक बीत चुका था जिसमें मराठी, तमिल, तेलगू भाषा का प्रभाव आ चुका था, उनमें भी इसे प्रस्तुत करने के लिए उन भाषाओं को सीखना था।

1927 के अन्त में त्रिपाठी जी बम्बई गये, जहाँ उन्होंने मराठी और गुजराती गीतों का संग्रह किया। गुजरात में वे द्वारका, जामनगर, राजकोट, पोरबन्दर, सोमनाथ, जूनागढ़, गिरनार, गोंडल, मांडवी, पालिताना, बढ़वान, लिमडी आदि स्थानों पर गये और गीतों का संचयन किया। राजस्थान में अजमेर उदयपुर, जोधपुर, जयपुर, फतेहपुर, पिलानी आदि क्षेत्रों की यात्राएँ की। पिलानी में श्रीयुत धनश्यामदास जी बिडला ने 'गीत–संग्रह' में उन्हें चार हजार रूपये की आर्थिक सहायता प्रदान की। राजस्थान में उन्हें आशा से अधिक ग्राम–साहित्य का भंडार मिला। महाराणा प्रताप के साथी भीलों के वीर रसपूर्ण गीतों को इकट्ठा किया। राजस्थान से त्रिपाठी जी पंजाब होते हुए उत्तर–प्रदेश लौट आये।''[4]

त्रिपाठी जी ने विविध जन समुदायों के गीतों का संकलन किया। अहीरों के गीत दो प्रकार के होते है– एक विरहा जिसे गोरू चराते हुए गाते है। दूसरा विवाह आदि के अवसर पर गाते हैं। इसके लिए गोंडा, फैजाबाद, लखनऊ, लखीमपुर के अहिरों के अलग–अलग गीतों को प्रस्तुत किया है–

''कौन चिरैया पोथिया बाचे, कौन खेवत दरबार।
कौन चिरैया कै लम्बे टँगवा, कौन के चॉवर बार।।
मैना, चिरैया पोथिया बाचै सुगवा खेवै दरबार।
हंसा चिरैया कै लम्बे–लम्बे टँगवा बगुला कै चाँवर बार।। (गोंड़ा)
राम के बगिया सिता कै फुलवारी
लछिमन देवरा बइठ रखवारी
फिरे गये नेबुआ लटकि गई डारी।
तोरि–तोरि नेबुआ पठावैं ससुरारी।।
वोहि नेबुआ क बनै तरकारी।। (फ़ैजाबाद)
गाय चरावो सुपास न पावो, भैस चरावौं लम्बी दूर।
अपने बाप की छगड़ी चरावो, हिला हिला करे जी जाय।।
रहिउ करम की पातरि गोरिया भइउ गडिवनवा का जोय।
सारी राति पिया पहिआ ढ़केलै राति रतौधी होय।। (लखनऊ)

ताल में चमकै ताल की नेरूइया खेतवा में गेहूँ क बालि।
सभवा में चमकै पिया की पगड़िया अँगना छुलाछनि जाये।।''[5] (लखीमपुर)

रामनरेश त्रिपाठी ने स्थानीय गीतों लोक संस्कृति को इस तरह से लड़ियों में पिरोया कि वे लोकजन को ग्राम्यजन जीवन के लोगों के गले का कंठहार बन गए।

हमारा ग्रामीण जनजीवन अनेक जातियों समुदायों में इस तरह विभाजित है कि सभी की अपनी बोली सभी अपने गीत होते है।

कहारों के गीत कहरवा कहलाते है, तेलियों के गीत तेलियाड या तेली कहलाते है। गडेरियों के गीत का नाम का सिउरिया है। धोबियों के गीत हुडुक (एक बाजा) जो कासे या पीतल की कटोरी को जो उसे धातु की गुल्ली से पीटकर गाने के साथ बजाते हैं। चमारों के गीत उनके मुख्य वाद्ययंत्र मृदंग कटोरा और सींग हैं, उन्हीं को लेकर वे अपनी संस्कृति को प्रस्तुत करते हैं। यदि इन गीतों पर सूक्ष्मदृष्टि से नजर डाली जाए तो इनकी संस्कृति को अच्छी तरह से रामनरेश त्रिपाठी ने प्रस्तुत किया है। इन्होंने ''हमारा ग्राम्य साहित्य में इन जातीय समुदायों के गीतों को प्रस्तुत किया है। यथा– कहारों के गीत–

''गोरी घन सुअना पालो जी–गोरी घन ने।।टेक।।
बडोई जतन करि पिंजरा बनायो,
तामे घने तार लगाये जी।।
तुचा के कागद में पिंजरा मड़ाय दयो,
मेरो पंछी न कहूँ उड़ि जाय जी।।
राति दिन वाकी टहल करति है,
मेरो पंछी न कहूँ दुखिआय जी।।''[6]

तेलियों के गीत–

''विरहा गाना सहज है ग्यानी, जोड कै मिलाना काम।।
भाँग का खाना सहज है ग्यानी, लहरि बचाना काम।
जहँ पंच तह परमेसर भई, जहँ कुअँना तह कीच।
वहिय कीच का बना चउतरा,
हाँ, सब पंच नाववई सीस।।''[7]

गडरियों के गीत–

''बँगला में सौवै सिउरिया,
हम मेरा बँगला कैसा रै छवाया, खिन–खिन
बरसै रै मेघा, अरे अब बँगला तो तड़ाया है।
बूँदा तो मेरी छाती पै गिरि मेरे बालम।।''[8]

धोबियों के गीत–

''धोबी बेटी पानी को जाय राजा तो निकले शिकार को।।
धोबी बेटी पानी पिलाय प्यासे तो आए गजवन दूर के।
पियो राजा समुद्र झकोल हमरे हाथों का पानी विष भरा।।
समुन्द्र तो पीवें डांगर ढोर हम तो पीवैगे तुम्हरे हाथ का।।
जो तुम्हें धोबी का चाव घोवट घोओ हमारे बापकी।।''[9]

चमारों के गीत–

''नदिया बहिगा नारौ बहिगा बसु नदियन में पानी।।
कंछ मंछ घरियाल खाइ गयेन आधै दूध आधै पानी।।
हाड़ गले का मास गले का दूध गऊ से आई।
वही दूध कर निकलत मक्खन हाट बजार बिचाई।।''[9]

इन सबके अतिरिक्त रामनरेश त्रिपाठी ने हमारी मातृशक्ति, (माताओं एवं बहनों) के द्वारा देवी पूजा के लिए सबसे लोकप्रिय गीत शीतला माता का गाया जाता है। किसी मांगलिक अवसर पर महिलाएँ शीतला माता की पूजा करती हैं। उन्हीं की पूजा से मांगलिक कार्य शुरू होते हैं। कभी–कभी घर में किसी को चेचक (शीतल) निकलती है तो देवी की पूजा होती है। स्त्रियाँ गीत गाती है। इसका वर्णन भी रामनरेश त्रिपाठी ने ''हमारा ग्राम्य साहित्य'' में किया है–

''निमिया की डार मइया लगली हिंडोरवा की झूली–झूली।
मइया गावेली गीत, की झूली–झूली
झुलतै झूलत मइआ लगी पियसिआ कि चली भइलें।
मलहेरिया अवास कि चली भइलें।''[10]

रामनरेश त्रिपाठी ने पूर्वांचल की पावन पवित्र धरती से आगे बढ़कर देवभूमि उत्तराखण्ड की खूशबू ली है। वहाँ के लोगों के जनजीवन, ग्राम्य चेतना, पहाड़ पर रहने वाले लोगों का जनजीवन भी प्रस्तुत किया है। उनका मानना था कि पहाड़ पर बर्फीली रसीली भूमि पर रहने वाले लोग भी रसीले और बर्फीले होते हैं। परिणामतः इनकी बोली बानी भी रसीली होगी। उनके गीतों में प्रकृति इस कदर रची बसी होती है कि उनका जीवन अत्यन्त आकर्षक जनप्रिय होता है। वहाँ के तिथि, त्यौहार, उत्सव, विवाह आदि त्यौहारों मेले–ठेले में प्रचलित गीत बड़े ही आकर्षक लोकप्रिय होते हैं।

प्रकृति की सरसता पहाड़ियों के स्वभाव में व्याप्त हो जाती है। उत्तराखण्ड या उत्तरांचल दो मण्डलों में विभाजित है। एक गढ़वाल मण्डल है तो दूसरा कुमाऊँ मण्डल। गढ़वाल मण्डल में झूमैलो गीत सबसे लोकप्रिय है। जहाँ पर पहाड़ियों द्वारा कुछ गीत गाये जाते हैं–

''आई गेन रितु बौड़ी दांई जैसु फेरो।
उवा देसी उबा जाला उदा देसि उदो।
मोली गेन कई भाती का फूलौर डाले।
फूली गेन वणु मांझे ग्वीरालो बुरांसो।।
नाना भाँति गलीचा फूलू का बीछि गैने।''[11]

भारतीय ग्राम्य जनजीवन में सबसे बड़ी विशेषता ग्रामीणों द्वारा मेलों ठेलों में गाये जाने वाले गीत हैं। जब लोग मेला देखने जाते हैं तो उस समय उन लोगों द्वारा जो गीत प्रस्तुत होते है उसे राह के गीत भी कहा जाता है। ये गीत एक नहीं अनेक प्रकार के होते हैं, और इन गीतों में प्राकृतिक सुन्दरता का भी दृश्य मिलता है। रामनरेश त्रिपाठी ने ''हमारा ग्राम्य साहित्य'' में इसे प्रस्तुत किया है–

''आज मुझे रघुवर की सुधि आई।
आगे आगे राम चलत हैं, पीछे लछमन भाई।

जिनके पीछे चलत जानकी बिपति सही ना जाई।
सावन गरजे भादों बरसे पवन चलत पुरवाई।
काई वृच्छ तरे भीजत होंगे राम लछन दोनों भाई।''[12]

इनके ये गीत कभी–कभी तो बारहमासे के ढंग पर लिखे जाते हैं जैसे–

भादों जो आयों सुनो सखी, भादों गहिर गँभीर।
× × × ×
कातिक जो आयो मेरी सखी, कातिक में गङ्गा नहवाय।
× × × ×
अगहन जो आयो सुनो री सखी, अगहन में हँसली नथला।
× × × ×
पूस जो आयो सुनो री सखी, पूस उँमेटी है बाल
× × × ×
फागुन जो आयो सुनो, सखी, फागुन में होरिया खिलाय
× × × ×
चेत जो आयो सुनो री, चैत में फूली फुलवारि।।[13]

एक बात जो देखने में आती है कि लोक में केवल आचार–विचार, घर परिवार के सुखी ही नहीं गीत गाते है, अपितु भिखमंगों के भी गीत होते हैं। गाँवों में भिखमंगे बहुत घूमते रहते है। इनकी कई कोटियाँ है, कुछ तो खझड़ी बजा–बजा कर कुछ तो खाली हाथ भीख मांगते फिरते है, लेकिन इनके गीत प्रायः दया धर्म वैराग्य, भगवत भजन सम्बंधी होते हैं। इनके गीतों से गाँव वालों में स्फूर्ति और आत्मबल बढ़ता है। परिणामतः इन्हें बुलाकर इनके गीत सुनकर इन्हें कुछ–न–कुछ अर्पित करने का भाव रखते है। रामनरेश त्रिपाठी भिखमंगों के गीत भी प्रस्तुत करते हैं–

''जावोगे हम जानी, मन! तुम जावोगे हम जानी।।
चार सखी मिलि चली है बजारे एक तें एक सयानी।।
सौदा करी मनै ना भाई उठ गई हाट पछतानी।।
राज करंते राजा जैहैं कमलापत रानी।
वेद पढन्ते ब्रह्मा जैहैं जोग करंते ज्ञानी।।[14]

स्पष्ट है कि गीतों की भाषा बिल्कुल सीधी–सादी और सुबोध होती है। गीतों में प्रकृति के साथ तन्मयता का भाव होता है। वन, पर्वत, समुद्र, उपत्यका, तरंग देखकर उनके हृदय में अपार आनंद, उमड़ आता रहा होगा। बहुत सारी ऐसी वेदनाएँ और भाव प्रस्तुत होते हैं, जो हमारे जन–जीवन को आख्यायित करते है। इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण सोहर छंद है, जो हमारी वेदना का सबसे सशक्त व सटीक माध्यम है। जैसे–

गंगा जमुनवाँ के बिचवाँ तेवइया एक तपु करइ हो।
गंगा! अपनी लहर हमै देतिउ मैं मांझधार डूबित हो।।
की तोहिं सासु–ससुर दुख कि नैहर दूरि बसै।।
तेवई! की तोरे हरि परदेस कवन दुख डूबउ हो।
ना मोरे सासु–ससुर दुख नाहीं नैहर दूरि बसै।।
गंगा! ना मोरे हरि परदेस कोखि दुख डूबब हो।।[15]

सोहर– छंद में बालक के जन्म से लेकर मुंडन संस्कार, यज्ञोपवीत, विवाह आदि के संस्कार प्रस्तुत किए जाते हैं–

ऐ कनउपजा के ब्राह्मन हमरेहूँ आएहु।
पोथिया पतरवा लैके आएहु हमरे बरत–बन्ध।।
कैसे क तोहरे आइब घरवा नहिं चीन्हौं, नाम न जानौ।।[16]

कन्या और वर पक्ष के लोगों में जो उत्साह का भाव दिखाई पड़ता है वह हमारी लोक संस्कृति का चरमोत्कर्ष भी है।

इस प्रकार लोक उपवन में विविध पुष्प, पत्ते, पंखुड़ियाँ पराग का आलोडन–विलोडन उनकी खुशबू उनकी सुगन्ध इस प्रकार से व्याप्त है जिसे रामनरेश त्रिपाठी के माध्यम से अपनी लोक संस्कृति को गहराई से समझ सकते हैं। उसकी भीनी खूशबू न हमें केवल जीवंत बनाती है, अपितु हमारी कैफियत भी पूछती है।

संदर्भ :

1. लोक साहित्य : अभिव्यक्ति और अनुशीलन, सं0 रविनन्दन सिंह, पृ0 15, (बोली और लोक–साहित्य का अन्तःसम्बन्ध, रामस्वरूप चतुर्वेदी)
2. भारतीय साहित्य के निर्माता रामनरेश त्रिपाठी, डॉ0 इंदरराज वैद 'अधीर', पृ0 92, साहित्य अकादेमी, द्वितीय संस्करण–1993
3. रामनरेश त्रिपाठी और उनका साहित्य, डॉ0 राममूर्ति शर्मा, पृ0 301–02, आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–1972
4. भारतीय साहित्य के निर्माता रामनरेश त्रिपाठी, डॉ0 इंदरराज वैद 'अधीर', पृ0 92
5. हमारा ग्राम्य साहित्य, रामनरेश त्रिपाठी, पृ0 181–83, हिन्दी मंदिर प्रयाग, प्रथम संस्करण–1940
6. हमारा ग्राम्य साहित्य, रामनरेश त्रिपाठी, पृ0 190, हिन्दी मंदिर प्रयाग, प्रथम संस्करण–1940
7. वही, पृ0 198
8. वही, पृ0 200
9. वही, पृ0 206
10. हमारा ग्राम्य साहित्य, रामनरेश त्रिपाठी, पृ0 220, हिन्दी मंदिर प्रयाग, प्रथम संस्करण–1940
11. वही, पृ0 227
12. वही, पृ0 230
13. वही, पृ0 234
14. हमारा ग्राम्य साहित्य, रामनरेश त्रिपाठी, पृ0 237, हिन्दी मंदिर प्रयाग, प्रथम संस्करण–1940
15. वही, पृ0 243
16. कविता–कौमुदी (ग्रामगीत, भाग–3) संपा0 रामनरेश त्रिपाठी, पृ0 174, नवगीत प्रकाशन लिमिटेड बंबई, दूसरा संस्करण–1955
17. वही, पृ0 337

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

चांदायन का गोबर–वर्णन खंड

तारा कुमारी*

मौलाना दाऊद लिखित प्रबंध काव्य 'चांदायन' का गोबर ह्रदयस्थल है। इस समस्त काव्य का ताना–बाना इसी स्थल से जुड़ा हैं सहदेव यहाँ के राजा हैं इनकी महारानी फूला देवी है। इस महाकाव्य की नायिका चांदा सहदेव की पुत्री है। उज्जैन निवासी बाजुर भिक्षाटन करते हुए गोबर नगर पहुँचता है। धवलगृह के ऊपर चांदा को एक बार देखने के बाद मुर्च्छित होकर गिर जाता है। कई लोग आकर इसका उपचार करते हैं लेकिन वह ठीक नहीं हो पाता। वह कहता है कि मैं इसी गाँव में मारा गया हूँ। बधिक स्त्री ने मुझे विष भरे नेत्र बाण से मुझे मार दिया है। मुझे बहुत पछतावा हो रहा है कि धवलगृह पर खड़ी स्त्री को नहीं देखना चाहिए था। मैंने जब से उसे देखा है रात भर पीड़ा से जागता रहता हूँ। लगता है मैं गोबर में रहूँगा तो मर जाऊँगा इसलिए यह नगर छोड़कर जा रहा हूँ। यहाँ से जाने के बाद बाजुर राजपुर जाता है और वहाँ के राजा रूपचंद से चांदा का नख–शिख वर्णन करता है। फिर वह राजा गोबर पर चढ़ाई करता है और दोंनो और से भीषण युद्ध होता है। राजा रूपचंद चांदा को पाने के लिए यह सब कर रहा था बाद में महर सहदेव कमजोर पड़ने लगे, तो उन्होंने खबर भेजकर लोरिक को बुलवाया। तब सहदेव गोबर युद्ध जीत सके। लोरिक ने बाँठा को मारा जो राजा रूपचंद का मंत्री था। उसने राजा रूपचंद को भागने के लिए विवश किया। युद्ध जीतने के बाद लोरिक की जय जयकार हो रही थी वह हाथी पर बैठकर पूरे नगर में घूमता रहा। उसी समय चांदा ने लोरिक को धवलगृह से देखा। चांदा की लालसा लोरिक को नजदीक से देखने की थी। चांदा ने अपने पिता सहदेव से युद्ध जीतने के उपलक्ष्य में भोज का आयोजन करवाया जिसमें देश देशांतर के राजा महाराजा सहित अनेक वीर पुरूष आए। लोरिक भी इसमें आमंत्रित थे। चांदा खिरोधक साड़ी पहनकर सोलह श्रृंगार करके लोरिक को देख रही थी। जेवनार के समय लोरिक ने चांदा को देखा, उसे लगा किसी अप्सरा ने दर्शन दिया है, फिर वह खा नहीं सका, बेसुध हो गया। दासी वृहस्पति के सहयोग से लोरिक गोवर स्थित धवलगृह पर बरहा फेंककर चढ़ता है और चांदा का पुनदर्शन करता हैं। बाद में चांदा उसे लेकर हरदी पाटन चली जाती है। एक व्यपारी सुरजन गोवर में व्यापार करता है, वह हरदी पाटन जाने वाला है लोरिक की विवाहिता मैना और उसकी माँ खोलिन दोंनो सुरजन से लोरिक के वियोग का दुखड़ा रोती है। चांदा का विवाह सिउहर वामन से हुआ था अनमेल विवाह होने के कारण वह पुनः पितृगृह गोवर आ जाती है। कहने का तात्पर्य है कि चांदायन की सभी प्रमुख घटनाओं का तार गोवर नगर से जुड़ा हुआ हैं। कवि मौलाना दाऊद कहते हैं कि मैं उस गोवर नगर का वर्णन कर रहा हूँ जो सहदेव महर का स्थान है जहाँ अनेक कुँए और आम के पेड़ हैं–

गोवर कहौ महर कर ठाउं। कूवा बाइ बहुत अंबराउ।।[1]

वहाँ नारियल, अनार, अंगूर, नारंगी, कटहल, ताड़, जामुन, कैथ, बाँस, खजुर, वट, पीपल, इमली सहित अनेक ऐसे वृक्ष थे जिनका नाम कोई नहीं जानता था। वहाँ आम का बगीचा काफी

* शोध छात्रा, हिन्दी–विभाग, वीर कुँवर सिंह, विश्वविद्यालय, आरा

घना था जिससे रास्ता भी ठीक से नहीं चल पाता था। आम के पेड़ पर कई तरह के पंक्षी बैठते थे और सुरीली तथा सुहावनी आवाज करते थे। इस वन की स्थिति इस प्रकार थी–

अति घन फेर (रि) देशि अ (अं) बराइ (ई)।
बासहि (हि) पंखि कहू ते आइ(ई)।
चुहचुहाहि (हि) ते सूवा सारी।
कुहकुहाहिं (हि) ते कोकिल कारी।
पिऊ पिऊ पपिहा करें पुकारा।
नाचाहि (हिं)मोर सबद झनकारा।
महर पुकारि ले रि दह (हि) आइ (ई)।
आडुकि (पाडुकि) येक येक चिललाई।
हरियर आइ देस कर रहा।
काग रूद्र (रूक) बहु भाषा कहा।[2]

इन वनों के अलावे यहाँ कई तलाब, पुष्कर और कुंड बनवाए गए थे जिसमें अनेक लोग स्नान करते, पूजा–पाठ करते, हवन–मंत्र, योग–जाप आदि में मग्न रहा करते थे। यहाँ का पूरा वातावरण धार्मिक स्थितियों का सूचक था जिसे निम्नांकित पंक्तियों में देखा जा सकता है–

'तारा पोखर' कुंड 'खनाएं। मढ़ 'देवर' चहु पासि 'उठाए'।
'खूना'तपसी अछहिं तहां। 'अउ' भगवंतु 'रहइ तिन्ह महां।
मसवासी सिव मंडपु छाई। 'पुरूख नांउं' तेहि 'ठौर' न जाई।
भररा 'डवरू' डाक 'बजावा'। सबदु सुहाव 'नींद' सुनिआवा।
जोगी सहंस 'चारि तंह' गावहिं'। सींगी पूरहि भसम चढावाहिं।
सिद्ध पुरूख गुनआगर, देखि 'लुभाने' ठाउं।
कहत सुनत अस 'जानिय', 'दहु' चलि देखइं जाऊ।।[3]

गोवर में एक बड़ा सरोवर था उसमें एक हजार झरनों का पानी आकर गिरता था। उसकी गहराई अथाह थी। उसका पानी काफी स्वच्छ और चमकीला था जिसको पीने से कपूर की सुगन्ध आती थी। पानी भरने के लिए दो लाख कुमारिकाएं यहाँ आती थीं। प्रत्येक घाट पर पहरेदार बैठे रहते थे जिससे कोई भी इस सरोवर में न तो स्नान कर सकता था, न हाथ–मुँह धो सकता था। उस सरोवर में कई तरह के पंक्षी तैरते रहते थे। मछलियाँ जल के ऊपर फड़फड़ाती हुई दिखाई देती थीं। पंक्षियों में चक्रवाक, चक्रपाकी , बकुले–बकुलियाँ, जल कुक्कुटियाँ, क्रौंच, सारस, आदि आते–जाते रहते थे और अपनी मनमोहक आवाज से आस–पास के लोंगो की नींद हराम कर देते है। गोवर में एक ऐसी खाई थी जिसके ओर –छोर का पता नहीं चल पाता। उसका जल हरे रंग का था। वह इतना गहरा था कि ऊपर से झाँकने वाले लोग भय से पत्ते की तरह काँपने लगते थे। जो भी उसमें गिरा वह फिर लौटकर बाहर नहीं आया क्योंकि उसमें बड़ी–बड़ी मछलियाँ थी, मगर थे जो खा जाते थे। वहाँ का परकोटा श्वेत पत्थरों से बना हुआ था उसकी ऊँचाई लगभग एक सौ पाँच हाथ थी और उसकी चौड़ाई बीस हाथ थी। उसकी जैसी नक्काशी की गई थी उसे देखकर लोग चकित होते रहते थे। परकोटा में जितने बुर्ज थे उसपर ईगुर लगाया गया था। तेल की तरह चिकनाहट होने के कारण उसपर चींटी भी नहीं चढ़ सकती थी। उसमें बीस पौरियाँ लोहे की बनी थी जिसके कपाट पर सोना मढ़ा हुआ था कि सुबह से शाम तक घुमने पर भी उसका अंत नहीं होता था। उस परकोटे की

रखवाली करने के लिए अनेक पहरेदार लगाए गए थे जो रात–दिन पहरा देते रहते थे। गोवर में कई जाति के लोग रहते थे जो इस प्रकार है–

बामन खतिरी– बैस गोवारा। खांडरवार अउ अग्गरवारा।
बसहिं तिवारी अउ पंचवाना। धाकर जोसी अउ जजमाना।
बसहिं खंधाई अउ बनिजारा। जाति सरावग अउर पवारा।
सोनी बसहिं सुनार बिनानी। रावत लोग बसाए आनी।
ठाकुर बहुत बसहिं चौहाना। पाजा पौनी गिनत को जाना।[4]

यह नगर ऐसा था जिसमें काफी पढ़े–लिखे, विद्वान और पंडित थे। राजा के महल में कई बार विद्वानजनों की गोष्ठियाँ बुलायी जाती थी। कई लोग पान खाकर होठों को लाल करते हुए ऐसे चलते थे मानो वे दूसरों का मन मोह लेते थे। इनमें कई काफी रूपवान थे अपनी साज–सज्जा, पोशाक–पहनावा, बातचीत से लेकर आचार–व्यवहार में काफी निपुण थे। यहाँ के राजा विशिष्ट गुणों एवं पराक्रमशाली की पहचान कर उन्हें पुरस्कृत करते थे। अनेक राजकुमार अपने हाथ में खड़ग धारण करते थे जिससे समयानुसार वैरियों पर चलाया जा सके। यहाँ कई कुल के राजकुमार आते रहते थे और सबसे मिल जुल कर सद्भाव पूर्वक व्यवहार करके चले जाते। गोवर के राजा को देश के कई भागों से टैक्स आता रहता था जिससे अर्थ सम्बन्धी कभी कठिनाई किसी को नहीं झेलनी पड़ती। यहाँ का हाट काफी मशहूर था जिसमें मानव जीवन की समस्त आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त हो जाती थी। इसके आलावे हीरे–जवाहरात समेत सौन्दर्य –प्रसाधन की वस्तुएँ भी प्राप्त हो जाती थी। कवि ने गोवर के हाट का वर्णन निम्नांकित रूपों में किया है–

'सून' फूल 'हाटन्ह' सब फूला। 'जिउ बिमोहि गा' देखत भूला ।
अगरू चंदनु 'सबु' धरा विकाई' ।कूकू ' परिमल' सुगंध 'खंधाई'।
'बेना अउरू' कपूर' सूहावां। 'भेद' कस्तुरी महक सनावा।
पन 'उडांगर (अडागर)' सुरंग सोपारी। जैफर लौंग बिकाई 'छुहारी'।
'दौना' मरूवा 'कुदं' निवारी। गूदे 'हार' ति 'बेचाहिं; मारी ।
खांड 'चिरउंजी' दाख खुरूहरी बहुतइ लोग 'बेसाहि'।
हीर 'पवार' 'सोन मल' कापूर 'जत चाहिय सब आहिं।।[5]

यहाँ के हाट में खेल–तमाशा करने वाले आते थे जिनहें स्त्री –पुरूष बड़े चाव से देखते रहते । रामायण का पाठ भी कहा जाता, कही–कही बहुरूपियाँ कई रूपों को धारण कर घुमते नजर आ जाते। कई लोग राधा–कृष्ण का रूप धारण कर उनकी लीलाओं को दिखाते। नट–नटिन भी अपने नृत्य–गीत से लोगों का मनोरंजन करते। जुवा, ताश, मदारी आदि का भी उस हाट में खेल होता। गोवर नगर में हमेशा कुछ–न– कुछ मांगलिक कार्य होता रहता साथ ही प्रत्येक घरों में बधावा बजता। उस गढ़ के बाहर सिंहद्वार बना था जिसके दोनो ओर सिंह अपना मुँह खोले इस प्रकार दिखाई देते थे जैसे लगता ये अभी दौड़कर खा जाएंगे। कुशल कारीगर ने सूत से नाप– जोखकर प्रत्येक खंभों को बनाया था जिसके ऊपर चाँदी का पानी चढ़ाए जाने के कारण चमचम चमकता था। महर का द्वार इस प्रकार पच्चीकारी करके बनाया गया था कि आँखें उसी पर टिकी रह जाती थी। इस द्वार पर हमेशा पहरेदारी होती थी इसके लिए कुल आठ हजार पहरेदार लगाए गए थे वहाँ सैनिक इतना गश्ती करते कि एक चींटी भी महल में प्रवेश नहीं कर सकती थीं गोवर का राज प्रसाद धवलगृह हिगुल की पानी से लाल करके बनाया गया

था। उसमें सात चौखण्डियाँ थी सबके ऊपर कलश रखा गया था, जिसके ऊपर सोने का पानी चढाया गया था। महर की चौरासी रानियाँ थी सबके लिए अलग–अलग भवन बनवाये गए थे। महल में जितने खम्भे थे वे मणियों से सजाये गए थे। उनमें तारों के टिमटिमाने की आभा आती रहती थीं अगुरु, चंदन आदि सुवासित वस्तुओं अथवा पदार्थों के लेप से पूरा महल सुहावना बना रहता था और उसमें हमेशा सुगन्धि की वास बनी रहती थी। बहुत सारे लोग इस महल का ऐश्वर्य एवं सौन्दर्य देखकर यह सोचते कि यह कोई देव लोक है अथवा शिवपुरी कैलास है। इस राज महल में कुल चौरासी रानियाँ थी इनकी सेवा करने वाली प्रत्येक रानियों की इक्यासी –इक्यासी चेरियाँ थीं। सबका जेवनार अलग–अलग बनता था। इन सब रानियों के ऊपर यह महादेवी फूला रानी थी। सभी रानियों में प्रौढ़ा फूला देवी ही थी। सभी इनकी सेवा करती । सौन्दर्य प्रसाधन का समान इनके लिए इक्ट्ठा करके लाती। महर के यहाँ हाथी, घोड़ा, द्रव्य, अन्न, धन, वस्त्र इतना अधिक था जिसकी गणना नहीं की जाती। निम्नाकिंत पंक्तियाँ राज घराने की स्थिति व्यक्त करती हैं–

राइ महर रानी 'चउरासी' । इक इक के तर 'चेरि 'इकासी'।
बेगर 'बेगर' होइ जेवनारा। बेगर मंदिर सेज सेवारा।
पाट 'महादे' फूला रानी । सबइ 'अचेति वह अही सयानी।
अगर चंदन फूल 'अउ' पानू। कूकं मेद न 'बेरसहि' आनू।
अरथ दरब 'घोर अऊ हास्त (हस्ति) गिनत न आवइ काउ।
अन धन पाट 'पटोर मल' 'कउतुक भूला' राउ।।[6]

इस तरह गोवर नगर अपने काल में काफी समृद्ध था। उसकी ख्याति दूर–दूर तक फैली हुई थी। वह धन, ऐश्वर्य, बल एवं अपरिमित सम्पदा के लिए सदा याद रखा जाएंगा।

संदर्भ–सूची :

1. चांदायन– मौलाना दाऊद – प्रमाणिक प्रकाशन, आगरा–1967– पृष्ठ संख्या–16
2. वही, पृष्ठ संख्या–17
3. वही, पृष्ठ संख्या–18
4. वही, पृष्ठ संख्या–23
5. वही, पृष्ठ संख्या–25
6. वही, पृष्ठ संख्या–27

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

वायुपुराण में वर्णित मगध के तीर्थस्थल

डॉ0 गंगेश 'गुंजन'*

प्रयोज्य प्रवर्तित विषय प्रथमतः वायुपुराण, मगध और तीर्थस्थल इन तीनों बीज शब्दों के परिचय की माँग करता है। वायुपुराण अष्टादश पुराणों में एक है। यह रूद्र माहात्म्य का विषय आयत्त करता है। फिर वायुपुराण नामकरण क्यों? यह इसलिए कि वायु द्वारा कथित–अभिहित है। अतः इसका सहज संबंध शिवपुराण से जुड़ जाता है, क्योंकि शिव माहात्म्य का प्रकर्ष दृष्टिगोचर होता है। वायुपुराण चार खण्डों में विभाजित है– प्रक्रियापाद, अनुषंगपाद, उपोद्घातपाद और उपसंहारपाद। आचार्य बलदेव उपाध्याय ने इसका रचना काल विवेचकता के साथ लगभग 400 ईस्वी सन संकेतित किया है। मगध का उल्लेख वायुपुराण के चतुर्थ पाद उपसंहार पाद में हुआ है। इसकी पहचान आज की तारीख में बिहार के जिन जिलों– गया, नवादा, औरंगाबाद, जहानाबाद और अरवल से की जाती है; प्राचीन काल में बृहत्तर क्षेत्र था। "Britannica Ready Reference encyclopedia" में लिखा है कि मगध पूर्वोत्तर राज्य है भारत का, जिसमें बिहार और झारखण्ड आते हैं। छठीं शताब्दी में अंग राज्य को भी अपने में समाहित करता था। इसकी राजधानी पाटलिपुत्र थी। वायुपुराण मगध क्षेत्र की परिव्याप्ति पर मौन है, किन्तु उसके अन्तर्गत आने वाले तीर्थों से संकेत प्राप्त हो जाते हैं। तीर्थ की अवधारणा है कि मनुष्य जिसके द्वारा पाप मुक्त हो जाए– तरति पापादिकं यस्मात्। भारतवर्ष एक ऐसा दिव्य देश है जिसके प्रत्येक प्रांत, नगर–ग्राम तक में तीर्थ विद्यमानता है। जहाँ हम ससमारोह उमंग और उल्लास के साथ सेवन कर आत्मोद्धार करते हैं– पुरुषार्थ चतुष्टय में त्रि–सिद्धि–लाभ करते हैं। भारत का अणु से लेकर रेणु तक तीर्थस्वरूप है। यह वेदान्त की दृष्टि है। तीर्थों की विद्यमानता का महिमा गायन के बावजूद मगध के प्रति वेदों से लेकर पुराणों तक स्वस्थ दृष्टि का अभाव अखरता है। ऋग्वेद में मगध को कीकट कहकर पुकारा गया है– किं ते कृण्वन्ति कीकटेषु...। निरुक्तकार ने इसे (मगध/कीकट) अनार्यों का निवास कहा है– कीकटो नाम देशोऽनार्य निवासः। किन्तु, वायुपुराण इस दृष्टि के विरुद्ध है और विष्णु पुराण भी। पूर्व परम्परित दृष्टि का विखंडन भी इस निबंध का वेध्य होगा। मगध में तीर्थों का विवरण देते हुए उनकी सेवन–विधि और तत्फलों का भी निर्वचन इस निबंध का प्रयोज्य होगा।

मगध के तीर्थस्थल

वायुपुराण मगध के तीर्थस्थलों की एक संक्षिप्त, किन्तु अत्यंत महत्वपूर्ण सूची पाठकों को सौंपता है, वह है–

कीकटेषु गया पुण्या पुण्यं राजगृहं वनम्।
च्यवनास्याश्रमं पुण्यं नदी पुण्या पुनः पुनः।।[2]

अर्थात् सारे मगध प्रदेश के तीर्थों में गया नगरी सर्वाधिक पुण्य प्रदायिनी है, राजगृह नामक वन सभी वनों में अधिक पुण्यप्रद है, आश्रमों में च्यवन का आश्रम अधिक पुण्यप्रद है, नदियों में पुनपुना नदी सबसे अधिक पुण्यदायिनी है।

'कीकट' शब्द की व्युत्पत्ति के प्रसंग में कहा गया है कि शनैः द्रुतं वा कटति गच्छति।[3] यह मगध का वेदोक्त नाम है। यहाँ ध्यान देने की बात है कि 'कीकट' शब्द द्रुत गति का भी

* ग्राम+पोस्ट– केयाल, थाना– करपी, जिला– अरवल (बिहार) पिन– 804419

वाचक है यानी डायनेमिक (Dynamic) है। जो डायनेमिक है, वह कल्मष से भरा कथमपि नहीं हो सकता। इसीलिए उसे पुण्यप्रद धार्मिक भाषा में कहा जा सकता है। सम्पूर्ण मगध गतिशील होने से पवित्र है, क्योंकि यहाँ जड़ता नहीं, जागरण है। जागरण सदैव पवित्रता का शंखनाद है। इसीलिए विष्णुपुराण मगध को भारतवर्ष का अंग मानते हुए कहता है– धन्यास्तु ते भारत भूमिभागे।

वायुपुराण गया नगरी, राजगृह, च्यवनाश्रम और पुनपुन को आगे बढ़कर रेखांकित करता है। गया नगरी सर्वाधिक पुण्य प्रदायिनी है। इसकी हेतुमद्भवता इसमें है कि उसके प्रभाव से नरकवासी स्वर्ग–प्राप्ति करते हैं और स्वर्गवासी मोक्ष–प्राप्ति। नरकास्था दिवं यान्ति स्वर्गस्था मोक्षमाप्नुयु:[4]। गयासुर के नाम से इस नगरी का नामकरण हुआ है। यह पितरों का मुक्तिस्थल है। फल प्रभाव इतना है कि जो जीवन में गया की एक बार यात्रा कर लेता है अथवा वहाँ जाकर एक बार पिण्डदान अपने पितरों के निमित्त कर लेता है, उसके लिए जीवन में कुछ भी दुर्लभ नहीं रह जाता–

'सकृद् गयाभिगमनं सकृत्पिण्डस्य पातनम्
दुर्लभं किं पुनर्नित्यमस्मिन्नेव व्यस्थितिः।।[5]

गया में ऐसी कोई जगह नहीं है जहाँ पर कोई तीर्थ विराजमान न हो। यहाँ समग्र तीर्थों का समागम है। गया तीर्थ सभी तीर्थों से बढ़कर पुण्य तीर्थ है। वायुपुराण उन्मुक्त कंठ से घोषणा करता है–

गयायां न हि तत्स्थानं यत्र तीर्थ न विद्यते।
सान्निध्यं सर्वतीर्थानां गयातीर्थ ततोवरम्।।[6]

फल्गु नदी के तट पर अवस्थित विष्णुपद मंदिर है। महाराष्ट्र की विधवा महारानी अहल्याबाई ने इसे 18वीं शती के अंतिम भाग में बनवाया था। लगभग 12 वर्षों में जयपुर के शिल्पिकों ने इसे पूरा किया था। इसकी ऊँचाई 100 फुट है। मंदिर निर्माण क्रम में यह ध्यान रखा गया है कि भगवान् विष्णु के चरण–चिह्न अविकल रहें। उनके चरण तेरह–तेरह इंचों के हैं और उंगलियाँ उत्तराभिमुख हैं।

भगवान् विष्णु के दिव्य पद–दर्शन घोर पापों के त्वरित नाशक हैं। पितरों को दिया गया पिण्ड तो अक्षय फलकारक है। वायुपुराण इस मान्यता को अपनी उद्घोषणा से परम प्रामाणिक बना देता है–

एतद् विष्णु पदं दिव्यं दर्शनात् पापनाशनम्।
स्पर्शनात् पूजनाद्वापि पितृणां दत्तमक्षयम्।।[7]

रामशिला, अक्षयवट, वैतरणी नदी, ब्रह्मयोनि, पितामहेश्वर, मंगलागौरी, प्रेतशिला, धर्मारण्य, ब्रह्मसरोवर, गदालोल, फल्गु प्रभृति गयानगरी के अंतर्गत महत्वपूर्ण तीर्थस्थल हैं।

राजगृह वन–विहार की राजधानी पटना से 101 किलोमीटर दक्षिण–पूर्व में अवस्थित है। महाभारत के वन पर्व में इस पवित्र स्थल की महिमा गायी गयी है। कहा गया है कि यहाँ स्नान करने से व्यक्ति ब्रह्म–हत्या से मुक्त हो जाता है।

वायुपुराण में इसे पितरों के लिए उपयुक्त स्थल माना गया है– पुण्यं राजवनं गृहम्। यह स्थल और कई दृष्टियों से सेव्य है। यहाँ विश्वशांति स्तूप है, रज्जुमार्ग है, वेणुवन है और जरासंध का अखाड़ा है। गरम जल का झरना तो अद्भुत है जिसे औषधीय गुणों से युक्त भी कहा जाता है। पर्यटकों के लिए तो यह स्थल सर्वाधिक प्राणोपम प्रिय है।

च्यवनाश्रम– मगध के तीर्थ स्थलों में इसकी काफी प्रसिद्धि है। च्यवन ऋषि की जन्म कथा वायुपुराण में वर्णित है। भृगु–भार्या पौलोमी का गर्भ समय से पूर्व आठवें मास में व्याधिग्रस्त

होकर गिर पड़ा। गिर जाने (च्यवन) के कारण गर्भ–प्रसूत शिशु का नामधेय च्यवन पड़ा। यह तपःपूत स्थल च्यवनाश्रम है। च्यवनाश्रम की पहचान में विद्वान् मतैक्य नहीं हैं। पं0 हवलदार त्रिपाठी 'सहृदय' च्यवनाश्रम की पहचान में मधुस्रवा (मधुसरवाँ) को बताते हैं। इन्होंने अपने पक्ष–पोषण के लिए विचार–योग्य प्रमाण प्रस्तुत किए हैं। किन्तु स्व0 पं0 श्रीमोहन मिश्र एवं उनके पुत्र डॉ0 पतंजलि मिश्र ने च्यवनाश्रम और प्रीतिकूट, च्यवनाश्रम (देवकुंड) नामक ग्रंथों में देवकुंड (देवकुड़) को सबलता से स्थापित किया है। यह देवकुड़ जहानाबाद और औरंगाबाद (बिहार) की सीमा–संधि पर तथा औरंगाबाद मण्डलान्तर्गत गोह नामक थाने की उत्तरी भूमि पर पड़ता है। यहाँ एक तालाब है जिसे बहुत प्राचीन माना जाता है। इस तालाब के उत्तर में नातिदूरस्थ भूखण्ड पर भूतभावन भगवान् शंकर का दिव्य मंदिर है जिसमें शिवलिंग दीप्तिमान है। इन्हें बाबा दुग्धेश्वरनाथ के नाम से जाना जाता है। शिवरात्रि के अवसर पर यहाँ भारी मेला लगता है। ऐसी लोक–प्रसिद्धि है कि वैद्यनाथ धाम व वासुकीनाथ से भी जब श्रद्धालु भक्त अपनी मनोकामना–पूर्ति को लेकर मनोरथ भंग होते हैं तब यहाँ उनकी मनोकामनाएँ अवश्यमेव पूर्ण होती हैं।

पुनपुन– पुनः पुनाः का तद्भव रूप पुनपुन है। वास्तव में, आज पुनः पुनाः का लोक–प्रचलित नाम पुनपुन ही है। इसकी व्युत्पत्ति के प्रसंग में कहा गया है– पुनः पुनः पुनातीति पुनः पुनाः। अभिप्राय कि जन्म–मरण की बारम्बारता को तोड़कर जो स्थल प्राणी को मोक्ष–प्राप्ति करा दे।

भारत के सप्तकुल पर्वतों से निःसृत जिन नदियों का उल्लेख वायुपुराणादि ग्रन्थों में मिलता है, उनमें पुनः पुनाः (पुनपुन) का नाम कहीं नहीं है। ऋक्ष–प्रसूता नदियों में पिशाचिका का नाम आया है। इसकी पहचान पुनपुन से की जा सकती है। जो मृत पितर पिशाच–योनि धारण करते हैं। उनके लिए पिण्ड दान इसी नदी के जल में किया जाता है। अतः इसका नाम पिशाचिका पड़ा। उस पिशाच योनि से पवित्र कर मुक्ति देने के कारण पिशाचिका नदी ही पुनपुन कहलाने लगी। यों तो पुनपुन में सर्वत्र पिण्डदान किया जाता है किन्तु अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण इसके तीन स्थल प्रमुखता से चिह्नित हैं– पहला जम्होर, दूसरा देवहरा और तीसरा पुनपुन।

जम्होर शेरशाह महापथ के उत्तर और ग्रैंड कार्ड रेल लाइन से सटे दक्षिण में है। जम्होर की व्युत्पत्ति जम्भपुर से निष्पन्न है। कहा जाता है कि जम्भ नामक दैत्य का वध इन्द्र ने इसी स्थान पर किया था। इसलिए इन्द्र का नाम जम्भारि है। वसन्त पंचमी और कार्तिक पूर्णिमा के अवसर पर मवेशियों का बड़ा मेला जम्भोर में लगता है। यह उसका व्यापारिक उपयोग है। किन्तु पिंड दान की दृष्टि से परम कल्याणकारी माना गया है।

देवहरा दाऊदनगर–गोह मार्ग पर अवस्थित है। इस देवहरा में भी पितरों के लिए प्रारंभिक पिण्डदान करके तीर्थ यात्री गया जाते हैं। इस देवहरा से दो मील दक्षिण में स्थित एक मंदिर को देखने के लिए हैमिल्टन बुकानन गया था।

पटना से छह मील दक्षिण पटना गया रेल लाइन पर स्थित पुनपुन नामक नदी है। यहाँ रेलवे स्टेशन भी है। तीर्थयात्री श्राद्धादि कर्म द्वारा अपने पितरों को ब्रह्मपुर पहुँचाता है।

अन्त में, तीर्थयात्रा के प्रसंग में उसकी सेवन–विधि की चर्चा अनिवार्य प्रतीत होती है, क्योंकि उसके बिना सम्पूर्ण फल प्राप्ति संभव नहीं। पद्मपुराण के पाताल खण्ड में कहा गया है कि तीर्थों की ओर जाने वाले मनुष्यों के पाप उनके बालों पर आकर ठहर जाते हैं। अतः उनका मुण्डन करा लेना चाहिए– मनुष्याणां च पापानि तीर्थानि प्रति गच्छताम्। केशमाश्रित्य तिष्ठन्ति तस्मात् तद्वपनं चरेत्।।8

दूसरी बात कि मन से हरि स्मरण करते हुए तीर्थ यात्रा करनी चाहिए– मनसा च हरिं स्मरन्। नारदपुराण में कहा गया है कि हृदय कमल में भाव का संग्रह करके एकाग्रचित्त होकर तीर्थ सेवन करना चाहिए– भावं ततोहृत्कमले निधाय तीर्थानि सेवेत समाहितात्मा।

सबसे अहम बात है कि तीर्थयात्रा से पुरुषार्थ चतुष्टय में अर्थ को छोड़कर बाकी तीनों धर्म, काम और मोक्ष की ही प्राप्ति होती है।[9] अर्थ सामर्थ्य के बिना तीर्थ यात्रा संभव नहीं। यहाँ चिन्त्य है कि जो अर्थ शक्ति नहीं रखते, वे क्या करें? मार्ग एक ही बचता है कि भगवच्छरण होकर कहीं से किसी भी जगह पर हरि स्मरण से सभी तीर्थों के सेवन का फल प्राप्त किया जा सकता है। इसमें दो मत नहीं।

संदर्भ–सूची :

1. Britannica Ready Reference Encyclopedia- Encyclopedia Britannica (India) Pvt. Ltd., 2006, New Delhi, Vol. 6, Page 134.
2. वायुपुराण– 108.73
3. शब्दार्थकौस्तुभ, सम्पादक– स्व0 द्वारका प्रसाद शर्मा तथा तारिणीश झा, प्रकाशक– श्री रामनारायण लाल बेनी प्रसाद, इलाहाबाद– 211002, संस्करण–संवत् 2058, पृ0 334
4. वायुपुराण– 83.39
5. वही, 105.21
6. वही, 105.46
7. वही, 111.47
8. पद्मपुराण, पातालखण्ड– 21
9. तीर्थांक– विशेषांक– सम्पादक– श्री हनुमान प्रसाद जी पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी एम0ए0, शास्त्री, संस्करण–संवत् 2069, बारहवाँ (गीता प्रेस), पृ0 602

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

चन्द्रगुप्त : इतिहास और कल्पना

डॉ0 राजकुमार*

जयशंकर प्रसाद हिन्दी के ऐतिहासिक नाटककारों में सार्वधिक महत्वपूर्ण नाटककार माने जाते हैं। भारत के अतीत गौरव को अभिव्यक्ति देने वाले उनके ऐतिहासिक नाटक राष्ट्रीय एकता और देश–प्रेम की भावनाओं से ओत–प्रोत है। उनके द्वारा रचित नाटकों में सार्वधिक चर्चित ऐतिहासिक नाटक चन्द्रगुप्त है। ऐतिहासिक नाटक कोरा इतिहास नहीं होता, किन्तु नाटककार को बिना किसी कारण के इतिहास के तथ्यों में उलेट–फेर करने का अधिकार प्राप्त नहीं होता।

प्रसाद जी के नाटक उद्देश्य पूर्ण हैं तथा उन्होंने अपनी उर्वर कल्पना द्वारा उसे समसामयिक चेतना से जोड़कर रोचकता प्रदान की है। इतिहास, कल्पना और भावुकता का सुन्दर समन्वय 'चन्द्रगुप्त' नाटक, प्रसाद जी की नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा का महत्वपूर्ण अवदान है।

ऐतिहासिकता

'चन्द्रगुप्त' की अधिकांश घटनाएँ इतिहास सम्मत है। ''चन्द्रगुप्त ने विलासी शासक नन्द को सत्ताच्युत करने का प्रयत्न किया और असफल होकर वह पश्चिमोत्तर सीमा की ओर भागा।''[1] ''वहाँ उसकी भेंट चाणक्य से हुई। शिष्यत्व ग्रहण करके चन्द्रगुप्त ने चाणक्य से शिक्षा पाई।''[2] ''सिकन्दर के आक्रमण के समय चन्द्रगुप्त उससे मिला। पुरु के प्रति विद्रोह के लिए तक्षशिलाधीश आम्भी ने सिकन्दर से सिन्धु पार करते समय संधियाँ की।''[3]

''पुरू और सिकन्दर में युद्ध हुआ, पुरू की हार हुई परन्तु सिकन्दर को उसकी वीरता की लोहा मानना पड़ा। सिकन्दर ने फिलिप्स को सिन्धु और काबुल की निचली घाटी का क्षत्रप बनाया।''[4] परन्तु फिलिप्स की तभी हत्या कर दी गई। इतिहासकारो का मत है कि फिलिप्स की हत्या, चन्द्रगुप्त ने कराई थी। ''चन्द्रगुप्त मौर्य ने अपने गुरू चाणक्य की सहायता से नन्द को मारकर, मगध की गद्दी प्राप्त की। चन्द्रगुप्त 322–321 ई. पू. मगध के सिंहासन पर बैठा था।''[5]

सिकन्दर की मृत्यु के पश्चात उसका सेनापति सर्वशक्तिमान हो गया। उसके हृदय में भी भारत विजय की इच्छा उत्पन्न हुई। सिल्यूकस, चन्द्रगुप्त में युद्ध हुआ। जिसमें सिल्यूकस की पराजय हुई और उसने संधि स्वरूप चन्द्रगुप्त को काबुल घाटी, कन्दहार, हेरात, बिलोचीस्तान नामक स्थान तथा अपनी कन्या दी।''[6] यह ऐतिहासिक घटनाएँ ही 'चन्द्रगुप्त' नाटक की कंकाल है ,जिसके आधार पर इसकी रचना हुई ।

'चन्द्रगुप्त' नाटक के अधिकांश पात्र प्रसिद्ध ऐतिहासिक पात्र है। चन्द्रगुप्त, मौर्य नामक क्षत्रिय वंश का था। चाणक्य, तक्षशिला का स्नातक था। ''बौद्ध लोग उन्हें तक्षशिला निवासी

* असिस्टेंट प्रोफेसर, डी0ए0–वी0 पी0जी0 कालेज, सिविल लाइन, कानपुर

ब्राह्मण बताते हैं, वे कहते हैं कि घननन्द को मारकार चाणक्य ने चन्द्रगुप्त को राज्य दिया।''[7] 'मगध' का तत्कालीन शासक घननन्द था।'' नन्द एक निष्ठुर, मूर्ख और त्रासजनक राजा था, उसकी राजसभा बड़े–बड़े चापलूसों, मूर्खों से भरी रहती थी।''[8] राक्षस उसका प्रधानमंत्री था।

शकटार उसका प्राचीन मंत्री था। ''नन्द ने उसे बन्दी बनाकर, वररूचि नामक ब्राह्मण को अपना मंत्री बनाया।''[9] ''सिकन्दर ने तक्षशिलाधीश की सहायता से जेहलम को पार करके पोरस के युद्ध किया था।''[10] ''सिकन्दर तक्षशिला में दण्डमिस (दाण्डायन) से मिला था। सिल्यूकस ,सिकन्दर का सेनापति था, जो सिकन्दर के मृत्यु के पश्चात सीरिया का शासक बना।''[11] ''उसकी पुत्री का नाम ऐथिना (कार्नेलिया) था।''[12]

'चन्द्रगुप्त' नाटक में प्रसाद जी ने 306 ई.पू. से 326 ई. पू. की लगभग बीस वर्षों के अन्तर्गत घटित घटनाओं के आधार पर कथानक का निर्माण किया है। इस नाटक का कथानक सिकन्दर के आक्रमण के समय प्रारम्भ होता है। और सिल्यूकस के आक्रमण और उसकी पराजय के साथ ही समाप्त हो जाता है। यह दोनों घटनाएँ ऐतिहासिक है तथा इनके मध्य में भारत की आन्तरिक राजनीति में भी अनेक घटनाएँ घटित होती है।

चाणक्य और चन्द्रगुप्त मिलकर राजा नन्द का अन्त करके मगध पर कब्जा कर लेते हैं। यही ऐतिहासिक घटनाएँ नाटक का केन्द्रबिन्दु है। नाटक के सभी प्रमुख पात्र ऐतिहासिक है, यथा– चाणक्य , चन्द्रगुप्त, सिकन्दर, सिल्यूकस, फिलिप्स, आम्भिक, नन्द, राक्षस, शकटार, वररूचि, पर्वतेश्वर, दाण्डायन , आदि ।

कल्पना का सम्मिश्रण

ऐतिहासिक नाटकों के कंकाल में जान डालने के लिए कल्पना का मिश्रण आवश्यक है। इतिहास की आधार भूमि पर प्रसाद जी ने कल्पना की सहायता से भव्य नाटक का निर्माण किया है। पुरुष पात्रों में प्रखर व्यक्तित्व वाला सिंहरण कल्पित एवं आदर्श पात्र है। स्त्री पात्रों में अलका, सुवासिनी, कल्याणी, मालविका, लीला और नीला आदि भी कल्पित पात्र हैं। इनमें अलका का व्यक्तित्व सार्वधिक मुखरित है। अलका भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की सेनानी वीर महिला का प्रतिनिधित्व करती है। अन्य नारी पात्रों के द्वारा प्रसाद जी ने प्रणय भावना को ही अभिव्यक्त करने वाला आशय माना है।

प्रसाद जी उन ऐतिहासिक घटनाओं को जो पूर्ण रूप से उपलब्ध नहीं थी। उसको उन्होंने अनुमान एवं कल्पना के द्वारा पूर्ण किया है। किन्तु यह सब ऐतिहासिक परम्परा का ध्यान रखते हुए किया है। उन्होंने इतिहास की नवीन व्याख्या की है। नाटक में– चाणक्य और सिंहरण के वार्तालाप के बीच आम्भिक और अलका का प्रवेश। आम्भिक और सिंहरण के बीच वाद–विवाद, सहसा चन्द्रगुप्त का बीच में आकर हस्तक्षेप करना। अलका का सिंहरण के प्रति आकर्षण। मगध सम्राट् का विलास कानन का दृश्य, सुवासिनी और राक्षस का प्रेम–प्रसंग। मालविका, अलका और

यवन के बीच मानचित्र के लिए नोक–झोक, सिल्यूकस द्वारा बाघ से चन्द्रगुप्त की रक्षा का प्रसंग, दाण्डायन का चन्द्रगुप्त के लिए भविष्यवाणी, कार्नेलिया का भारत–भूमि के प्रति आगाध प्रेम, कार्नेलिया और फिलिप्स का प्रेम–प्रसंग, चन्द्रगुप्त द्वारा फिलिप्स से कार्नेलिया की अस्मिता की रक्षा, कार्नेलिया और चन्द्रगुप्त का प्रेम–प्रसंग, अलका और पर्वतेश्वर का प्रेम–प्रसंग, कल्याणी और पर्वतेश्वर का प्रेम–प्रसंग, कल्याणी द्वारा पर्वतेश्वर की हत्या का प्रसंग, मालविका और चन्द्रगुप्त का प्रेम–प्रसंग, चन्द्रगुप्त की रक्षा करते हुए मालविका की हत्या का प्रसंग, राक्षस–चाणक्य की परस्पर प्रतिस्पर्धा, चाणक्य और सुवासिनी का प्रेम–प्रसंग, शटकार द्वारा नन्द–वध का प्रसंग। ये सभी घटनाएँ प्रसाद जी की कल्पना से प्रसूत है।

प्रसाद जी ने इन काल्पनिक घटनाओं का समावेश एक विशेष प्रयोजन से किया है। एक ओर इन घटनाओं से कथानक का विस्तार हुआ है तो दूसरी ओर अतीत की पृष्ठभूमि पर समसामयिक जीवन की समस्याओं और राष्ट्रीय भावनाओं का अंकन किया गया है। सिंहरण और अलका काल्पनिक पात्र होते हुए भी कितने सजीव एवं वास्तविक लगते हैं। इन में राष्ट्र–भक्ति कूट–कूट के भरी हुई है। प्रसाद जी की उर्वर कल्पना ने ऐतिहासिक आधार पर चन्द्रगुप्त नाटक का भव्य प्रासाद खड़ा किया है। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि प्रसाद जी का यह नाटक ऐतिहासिक आधार पर निर्मित एक उत्कृष्ट नाट्य रचना है। इसमें इतिहास और कल्पना का सुन्दर सम्मिश्रण हुआ है। जिसका उद्देश्य भारत के अखण्ड शक्तिशाली साम्राज्य की स्थापना दिखाना है।

सन्दर्भ सूची

1. भगवत शरण उपाध्याय, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ0 113
2. राधाकुमुद मुखर्जी, चन्द्रगुप्त मौर्य और उसका काल, पृ0 36–37
3. डॉ0 रमाशंकर त्रिपाठी, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ0 94
4. भगवतशरण उपाध्याय, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ0 125
5. द्वारिका प्रसाद सक्सेना, प्रसाद के नाटकों में इतिहास, संस्कृति, दर्शन और कला, पृ0 19
6. डॉ0 रमाशंकर त्रिपाठी, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ0 94
7. जयशंकर प्रसाद ग्रंथावली, दूसरा खंड, चन्द्रगुप्त नाटक, कथा प्रसंग, पृ0 529
8. वही, पृ0 515
9. वही, पृ0 514
10. वही, पृ0 517
11. डॉ0 सत्यकेतु विद्यालय, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ0 330
12. जनार्दन भट्ट, बौद्ध कालीन भारत, पृ0 144

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

Evolution of Settlements

Dr. Birendra Kumar*

The present chapter is devoted to the analysis of evolution of settlements as conditioned by the geographical factors and historical process involved in the occupation and colonization of the Bhojpur plain.

1. Culturally[1] this area has ever served as a crucible in which two different commutation have been intermixed leading to the crystalization of new culture. The land occupance and setting patterns and resultant modifications of rural landscape in different periods have been traced out in the following chronological phases of Indian history which hold significance in the study region:

Ancient:

1. Pre-Aryan period (C. 1750 B.C. – 500 B.C.)
2. Buddhist period (C. 500 B.C. – 325 B.C.)
3. Post Buddhist period or (Hindu period) (A.D. 320- A.D. 1200)

Medieval:

4. Early Medieval period (A.D. 1200 – A.D. 1526)
5. Mughal period (A.D. 1526-1764)

Modern:

6. British period (A.D. 1764 – A.D. 1947)
7. Post Independence period (since A.D. 1947)

1. Pre-Aryan Period

Before the arrival of man in the Ganga vally, the region is believed to have been covered with forest. The people of negrito and proto- Australiod stocks were the earliest to occupy this region during the pre-historical period.[2] In pre-historic period shahabad was occupied by aboriginal races of whom the chief represented was the Bhar. Chero and Savers[3]. Rigveda refers that there were the Aryans who thinking themselves of superior race, contempluously called the

* **Former Research Scholar,P.G. Deptt. of Geography,Magadh Univ., Bodhgaya**

non-aryans as 'Dasyu' or 'Asuras', Rigveda also refers to numerious towns and forts build of stone in the non-Aryan kingdom.[4] Moreover, the presence of shiva temples in urban centres bears testimony to the fact that this region was earlier occupied by non-Aryans.

Vedic literature and other scriptures where in the study area is described as Karusdesh, is on of the oldest region of the world having evidences of human habitat. Buxar, an important place of the region both cultureally and historically, has been mentioned. Rigveda as the holiest of holy places on the earth. The Rigveda itself being as oldest 25000 B.C.[5] is sufficient to prove that this region has a definite history of human habitat and cultural succession. The Archaeological evidences through the excavation carried out in the Balan vally and the Ganga Valley have showed that rice cultivation has been carried out in Ganga Valley as early as 8500 years B.C.[6] The area formerly known as Karus Desh was so named after the name of Kaurs, the ninth son of Manu. The first human being created by Brahma to perpetuate the human race on the earth. The Vedas, prior being given literary from by Maharshi 'Vadrayan' subsequently known as 'Ved Vyas' were in the form of SHRUTIS for more than 2000 years during the period of 'Satwayug' and Treta the period of Ramayan and ever before its. Thus the history of Buxar goes back to as early as 15000 years B.C. Buxer was the Ashram of Viswamistra. He was disturbed in his yanga by the rakshis Todika, who was killed by Ram. Karus has also been mentioned in Mahabharat.7

It is clear from the above mentioned facts that the history of KARUS DESH starts with the more down of the human civilisation on the earth, because it is named after the son of Manu himself. Karus pradesh being part of Aryavarta was culturally one with the rest of Gang plain west of it forming today Uttar Pradesh and was under the dominance of people of solar line (Suryabanshis) who ruled the whole of Aryavarta for about 100 generations right from Manu to Rohitashwa, the son of Raja Harishchandra. The fort of Rohitashwa Garh established by Rohitashwa is the gloring proof of the dominance of people of Solar line in the region. As we know the origin of the river Karmanasa forming the western boundary of Karus in associated with the curse of the king Trisanku. Thus the existence of Rohstaswa garh and river Karmnasa are sufficient proof of the dominance of people of Solarline in the region.

After Kushambu, the grand son of Rama and son of Kush began to downfall of solar people and the dominance of Lunar people started.

In the Dwapar or the Mahabharat period Karus Pradesh was under the dominance of the aforesaid people of Lunar Line. In Mahabharat Dantbakra has been described as Karusadhipati (the king of Kurus).[8]

Thus there is no doubt that during the ancient period, much before the arrival of Aryan, this region was marked by advanced cultural features represented by the aboriginals, the Mediterranean Armenoids and later by the Dravidians. Thus dense and vast forest area was inhibited by the different tribal groups.

Eminent historian have stated that the valley of river Sindhu and its tributaries formed the earliest Aryan settlements in northern India is about 2500 B.C. Afterwards the Aryans advanced eastward into the fertile Ganga Valley forming one of the largest colonization in the vast area[9]. Though in small number the Aryans started agricultural pursuits[10] in this area. Aryans used the aboriginals as 'Dasas' (Laboures in cultivation and the forest cleanings. Since the study region was densely forested during past Aryans could not trespass freely into the interior parts of the region but they could occupy only the frings along the river Ganga and gradually started cultivating the land along valleys. By and by they cleared the woodlands and established settlements.[11] Historical records reveal that along the river coast, temporary wooden hamlets were built by Aryans with a view to remaining them at the elevated sites during usual floods.[12] Six major hierarchy of settlements have been absorbed during Aryan period starting from:

(i) Cattle ranch (Ghosa) to (ii) Barbarian settlement (Pali), (iii) fort settlement as protection unit (Durga) (iv) the village or the main rural settlement (Grama) around a significant nucleous us like fort, temple, tank, etc. (v) Township or Kasba (Pattana) and lastly the (vi) Cify a large town (Nagar).

The Aryan cities mostly had a squaridal plain. Ramayan mentions four and Mahabharat about six squars in the cities.[13] These cities enjoying water and street light Facilities, were almost walled. They also had special provision of defence and high watch towards and gets.[14]

Buchanan has identified that present 'Masar' village, located six miles went of Arrah town was a big city of 'Mahasara' as mentioned by chinese pilgrim Hieun-Tsuabg,[15] The 'Mahasara' city was undoubtedly established during Aryan period, because the inhabitants of this city did not have faith in lord Budha. Naturally the area around was settled closely in the expanding cleanings and developing rice growing areas in the vallys.

2. Buddhist Period

The real charge in the ancient and primitive culture of the study area appears to have started in the sixth centyry B.C. The Brahadratta dynasty was overthrown by a new dynasty i.e. Haryanka, founded by Bimbisera, Ashwaghosh in his Buddhacharita disecribes Bimbisva as being a section of the Haryanka family.[15] After his successores, Ajatshatru and Udai, the Nag dynasty came into existance founded by Sisunag whose nine successor are said to have ruled for 163 years.

During this period, well organised village communities were developed. It can be well assumed by locking into the rums and remains of the ancient times that during the Buddhist period, the fertile Ganga Vally was occupied by civilized communities whose temples and sculptures even today, bear testimony to their former grandeur.[16]

As regards there native and anatomy during the Buddhist period early settlements in the form of compact and self sufficient villages evolved mainly along the river banks in the study region. Rivers were the main source of the drinking water supply and chief means of transport. The defense and security measure against the sudden attacks of enemy tribes and wild animals was most essential such settlement frequently consisted of 100 to 150 agricultural families of 'Sudra Caste'. Boundaries of these villages were marked by a river, a mountain, forest, bulbous, plants, Caves, and artificial buildings or trees etc. Most of such villages (squared and rectangular) were artificially planned based on the 'Mansara Shilpsastra.'[17]

3. Post Buddhist Period or (Hindu period)

In the 4th century B.C. the Magadh power became stronger that then Buddhist influence. Consequently, the rural common wealth disappeared by the end of the 15th Century.[18] Most of the region again sparsely populated with the overgrowth of natural vegatition. The courses for such a decay in the settlements were not only political but physical took, like earthquakes and floods. Apart from this the region also suffered from foreign invasions, only by sethiyans before the beginning of the christian are and the other by the 'Huns' in the 5th century. As a consequence, during post Buddhist period anarchy prevailed throughout the region and it was nearly reoccupied by the aboriginals such as 'Bhars', 'Cherus', Series and 'Kharwar' etc. who gradually accepted Buddhism and Jainism.[19] However, the oboriginals compact village settlements appeared upon the reclaimed forests and swamps, grown during the early part of this period.

In the old days Bhojpur plain formed part of the ancient Kingdom of Magadh which also contained protions of the present Patna and Gaya district. Though included in the kingdom of Emperor Ashoka the general absence of Buddhist monuments from a greater part of the district suggested that it remained almost, immune from the Buddhist influence of the time. The study area was included the gupta Empire. There is an inscription in the Mundeshwari temple near Bhabua, which refers to king Udaysena as the ruling chief (635 A.D.) of the area. Another inscription at Deo Barunarak records the dedication of the temple there by Jivita Gupta, one of the later Guptas.

4. Early Medieval Period:

After the death of Harsha (A.D. 647) there ensured the so called dark period of India's history (Rajput period: A.D. 647-1205). The evacuation of Karus by the Haihow Bansis between 1111-1147[20] gave and opportunity to the Cheros who were driven out the Rohtas. Plateau, to return to the land again. The cheros again occupied the entire region between Ganga and Kaumur plateau till the beginning of 14th Century when they were finally driven out the Ujjainian Rajputs from the north Shahabad and by the Sakarwars from the south shahabad. Bhojraj I came in Shahabad in 1005 and established himself at Purana Bhojpur. This successors remained in power till 1223. It was during this period that they constructed their fortress at Purana Bhojpur and Buxer. The Parmar and Sakarwar Rajputs being pressed by the Muslim invasion from Alauddin Khilizi to Taimurlung between 1305 and 1390 were pressed to leave Malwah, moved eastward and again drove away the Cheros in the Jungle of Kaimur and themselves occupied central and northern Karus and established themselves at Bhagwanpur and Chainpur near Bhabua. Marwah Rajputs drove out the suit from the western and occupied western Karus.

During this period, the rural economy was almost self-sufficient but stereotyped. Agriculture was the main occupation of the people. The peasant was regarded as the back-bone of the empire, Rice, pulses, wheat, milk, peas and sugarcane were among the chief crops. The Muslim villages were Chainpur, Kudras, Shergar, Nasej and Akbarpur et. however, originally Rajput settlements. Henceforth the form of these settlement groups remained unchanged till the advert of the Britishers due to the lack of peace and security in the rigion. In addition to the old compact villages all the newer settlements grew up eighter by clearing the forests or relearning the marshes and waterland. Most of such settlements followed a typical pattern of compact villages, walled or build around a fortress, being self-sufficient social unit. These village units, bowever indicate the evolution of the rural organization of the Hindu society.

5. Mughal Period:

The rule of the sur dynasty, which Sher Shah founder was very short regime. Soon the Mughals regained the imperial throne of Delhi.

During Akbar's reign, we find a vigorous growth of settlements with a succession of Akbar (A.D. 1556) a strong and stable government introduced in an area of peace and order, which gave rise to a general economy prosperity. His policy of revenue assessment based on land actual agricultural products, encouraged the growth of cultivated fields, through forest clearing and waste land reclamation Besides, this policy gave origin to the local granaries situated at rudimental routes which served as halting points and Sarais. The rudimentary road system, joining the pargana capitals with those of Sircar, gave origin to road side settlements.

In the reign of Jahangir and Shahajahan, special attention was paid to the development of certain administrative centers and palatial structures but the development in the countryside was neglected. The increasing taxation on agricultural produce and inadequate irrigational falsities discouraged the farmers from taking interest in agriculture. These conditions continued up to the region of Auragzeb and situation did not improve till the British rule.

6. British Period:

During this period especially after the first war of Independence (A.D. 1857) the district witnessed a new area of rural settlement development and a remarkable charge in the transport new work. Prior to this period, there was deficiency of roads and few roads that existed, were in deplorable condition. With the establishment of the British rule by the beginning of the 19^{th} century, peace and security of life and poverty were established in the region. In the whole region, new villages came to existence and the people started moving out of their old and dense villages premises and settled in more open and virgins area near farmland. This tendency gave way to the growth of smaller outlying hamlet type settlements along the river village. Buchanan Hamilton remarks at the beginning of nineteenth century" during the rainy season, all internal commerce is at a complete stand still as the roads are then so bad, as not to admit of ever cattle travelling with back loads. I have seen no country where so little attention has been paid to this important subject and even in the vicinity of the jail where many convicts sentenced to labour are confined, very little has been done. During British period, two historic roads, i.e. one G.T. road running from Varanasi to Calcutta and second running from Buxar to Patna via Arrah and two railway line i.e. the main line of East Rly. in the North and the Chord Line of

East Rly in the south come into existence. As a result a large numbers of settlements grew in the study area.

Reference:

1. Singh, R.L. Evolution of Settlement in the Middle Ganga Valley The National Geographical Journal of India, Vol. I, Part- 2, Dec. 1965, p. 69.
2. Verma, R.V., "Evolution of Settlements in Avadh", India, V.S.S.D. College, Kanpur, 21st International Geography Congress, Abstract of paper, Vol. 3, Calcutta, 1971, p. 305.
3. Malley, L.S.S.O., Revised Edition by J.F.W. James, Bihar, Orissa, District Gazetters, Shahabad, 1954, p. 19.
4. Mukherjee, R.K., The Changing Face of Bengal, Culcutta, 1938, p. 31.
5. Dwedi, Kailash Nath, Rig Vedic Bhoogol, p. 12.
6. Sharma, G.R., History to Pre-History, pp. 110-111.
7. Shabha, Parva, Adhyas- 14, Sloka- 2.
8. Shabha, Parva, Adhyas- 14, Sloka- 12.
9. Subha Rao, B. Personality of India, Baroda, 1958, p. 155.
10. Baden Powell, B.H., Village Communities of India, pp. 51-57.
11. OP Cit., p. 73, Ref. 1.
12. OP Cit., p. 43, Ref. 3.
13. Dubey, S.C., Indian Village, Communitie, London, 1955, p. 23.
14. Mukherjee, R.K., Hindu Civilization, 1950, p. 142.
15. Choudhary, P.C. Roy, District Gazatteer of Shahabad, Bihar, 1966, p. 51.
16. Diwakar, R.R., Bihar, Through the Ages, New Delhi, 1959, p. 100.
17. Oldham, W., Historical and Statistical Memoir of the Gazipur District, Allahabad, 1970, pp. 38-42.
18. Havel, E.B., Ancient and Medieval Architecture of India, London, 1915, pp. 10-15.
19. Jaiswal, K.P., 'Hindu Policy', p. 165.
20. Alexander, E.B. Gazetteer, N.W.P., Vol. VI, Oxford, pp. 430-34.

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

Physical Features

Dr. Archana Singh*

The Bhojpur plain (24^0 31' – 25^0 46' N and 83^0 19' – 84^0 51' E) forming on integeral part of the middle Ganga Plain covers on area of 10125 km^2 along with 47,53,563 population. It is commonly understood as a linguistic and cultural region. But for a geographer it has a definite geographical identity with natural boundaries. It is bounded on the north by the sacred Ganga, on the south by the escarpment of the Kaimur plateau, on the east by the mighty son and on the west by the mythological river, Karmanasa. The region is inhabited by people of unique nature known for their free, frank and fearless character. The physical setting and the healthy climate of the region has made the Bhojpurias a tough specimen of mankind who have defined their victor and opted for hard Jungle life of Kaimur table land than to surrounding their freedom in case of their defeat. The study area popularly known as Bhojpur region has been dominating part of the surrounding lands where Bhojpuri language developed since long time and has played on important role in the history of India through the 'Ujjainia Rajputs' in he north and the pathan in the south. In fact the history of Bhojpur region was the history of India and Raja Bhoj was the real founder of the Bhojpur culture who migrated here in the 14^{th} century A.D. from Malwa in Madhya Pradesh. As a result the region was nomenclatured on the basis of Raja Bhoj.

Physiographic Division:

The study region is formed of silt deposited by the Ganga and its tributaries through the ages. The general slope of the region is from 150m in the south at the foot of the Kaimur plateau to 50m in the north near the Ganga. Due to the absence of prominent physical breaks, it becomes rather difficult to divide the plain area into physiographic sub-divisions. However, certain minor variations are noted especially in relation to local slope and drainage system. Here, the present study area has been divided into the following physiographic units mainly on the basis of the underlying geological formation and local variations caused by river courses.

* **Former Research Scholar, Deptt. of Geography, V.K.S. University, Ara**

A. The Khadar Plain:

The Khadar plain consists of the flood plains of the Karmanasa, Ganga and Son. Ity is further sub-divided into following parts.

1. The Karmanasa Khadar Plain:

This narrow tract, about 68 kns in length and 5 kms in width, is a flat country of alluvial formation having a very faint slope towards north. It is formed of silt deposited by the Karmanasa river. It is densly populated and fertile area. Rabi crops rather than Kharif predominate here.

2. The Ganga Khadar Plain:

The region is an extensive low alluvial plain which consits of the northern part of the study area lying between the river Ganga and the embankment of the main line of Eastern Railway. It is formed by the recession of the Ganga from its ancient course in a straight line from Arrah to Buxar and is frequently inudated during usual floods in the Ganga. This small tract is known as the Diara land which is traversed by the small streams e.g. Dhobha or Kao Chher, Ganghat, Banas, Kumhari, etc.

The Ganga has shifted its course many times since ancient period especially between Buxar and Koelwar and has also affected the human settlements to large extent. The entire region is traversed by various old courses of the Ganga and there by the entire region is undulating making canal irrigating impossible. The entire Son Canal system terminates near the main line of the Eastern Railway. The entire area was inundated by Ganges floods and soil retained sufficient moisture to give a number rabi crop. But the situation is changed now. The land is deprived of the natural fertility received from the new layer of silt deposited during the flood. Now the cultivators have to depend on tube well irrigation for their wheat crops. The second draw-back of the flood control Dam is that during the floods the white ants were totally destroyed which saved the rabi crops from their menance. But now the white ants are proving very much harmful to the crops.

3. The Son Khadar Plain:

The tract lies between the river son and the eastern flank of the Kaimur plateau in the south and the confluence of the son and the Ganga in the north.

It is extended about 180 kms in length and 5 kms in breadth. It is formed of the silt deposited by the Son. The left bank of the son is comparatively low and the bank erosion can easily be noticed. It is now only the best irrigated (by

the son canal) and agriculturally the most prosperous zone, but it has also the highest industrial development. Based on the rich Rohtas limestons (84% content), it has the largest concentration of cement industry with factories at Banjari, Amjhore, and Dalmianagar etc. Dalmianagar is the large industrial complex of cement, paper pulp, sugar, vegetable oils and chemical etc.

B. The Bhangar Plain:

It occupies the entire central part from the Kaimur plateau in the south to the main line of the Eastern Railway in the north. It is a typical region which is beyond the reach of even the highest floods of the aforesaid rivers ever recorded in the past. The region may be further sub-divided into following parts.

1. The Ganga Son Bhangar Plan West:

The plain lies between Ganga Khadar plain in the north and the escarpment of the Kaimur plateau in the south the River Kao in the east and Karmanasa Khadar plain in the west. It is well disected Bhangar tract representing fine drainage texture. The variation in relief is comparatively greater that the Ganga Son Bhangar plain East. This plain is traversed by the small streams e.g. the Kao the Suara the Durgawati, the North Koel the Gopthan and the Kudra etc. It is highly fertile as well as irrigated and densly populated area. The rich culture predominates here.

2. The Ganga – Son – Bhangar Plain East:

The Ganga Son Bhangar plain is delimitated by the river Kao in the west and the river Banaras in the east. The surface slopes gently towards the north. It is an ill-drained bhangar tract. It is rice dominant region due to well development of the tube-well and the canal system.

Drainage System:

The drainage system is formed by the Ganga with its tributaries the Son, the Karmanasa, the Durgawati, the Kudra the Suara, and the Kao. The Ganga forms the northern boundary of the study region. The son making where as the Karmanasa delimiting the western boundry joining into the river Ganga near Chausa in the Bhojpur district. The Durgawati the Kudra the Suara and the Kao are minor rivers which are characterised as the perinnial rivers. The Ganghat, the Kouch the Chher and the Banas are nonperinnial streams and are combinedly known as the Gangi Nadi. These streams are tributaries of the Ganga which flow all over the northern portion of the region from south to north.

The Son :

The son originates from the elevated plateau of Amar Kantak near the source of the Narbada and the Mahanadi in Madhya Pradesh.[2] It enters the Rohtas district at the trijunction of the district of Palamau, Mirzapur and Rohtas near Judunathpur. Flowing over a region of 230.0 km he river Son joins the Ganga near Maner in Patna district. The river Son has been mentioned in the Puranas as Son Bhadra. It noted a Son or Golden river, is also called "Hirana-Boha' or the Golden on account of its broad yellow sand. The most noticeable features of its courses is its meagre stream of water at ordinary times as compared with the enormous breadth of the river bed, it vast size and its paroxysmal violence at period of flood. In the dry season about April and May, the bed presents wide stretch of drifting sand with an significant streams of water, barely a hundred yards wide, meandering from bank to bank, and fordable in most places. But in the rainy season the river presents a wonderful contrast. During this period the entire rainfall of its enormous catchment area has to find on outlet by this channel clearly becomes in capable in carrying near about 830000 cubic feet per second, and the flood waters rush down so violently as to spill over its broad bed and cause disastrous inundations in the low-lying plains of Rohtas and Bhojpur districts.

It is spanned by mossive masonary dam forming a reservoir at Indrapuri for canals and by old long railway bridges and Jawahar Bridge for National Highway between Son Nagar and Dehri-on-Son. The son has been also notorious for its changing courses since ancient times Rennells[3], 1838, Martin[4], 1838 Benglore[5], 1878, Cunningham[6], 1880, Jackson[7], 1925 have traced several old beds to the east of the present channel. The Son formerly joined the Ganga near Fatwah, diverging from its course near Tajpur[8]. Probably during the 4th or 3rd century B.C. it appears to have made a new channel for itself instead of following to the north east from Daudnagar Joining the old course at phulwari. During the Gupta period, the Son flowed to the west of Patna and had to be crossed before entering the city from the west[9]. During the medieval period, no major change occurred in its course except at the confluence. Changes in the courses of the Son and the Ganga caused the confluence to oscillate between Dighaghat and Maner. At present the Son joins the Ganga at Ramnagar (about 5 kms. north of Maner)[10].

The Karmanasa:

The Karmanasa, the next important tributary of the Ganga originates in the Kaimur hills and passes trough the Mirzapur, district of the Uttar Pradesh.

This river constitutes the western boundary of the study region for 168 kms. distance and joins the Ganga near Chausa in Bhojpur district.

It is a legendary river and held by the Hindus in the almost abhorrence and is 'Tuzak-i-Babri' (1590 A.D.), it is mentioned that when Babar came to the river in course of his expendition against Bihar, the Hindus refused to pass it, and in order to avoid its unholy waters, emparked in a boat and crossed by the Ganga.

Its impurity is associated with the following legends : King Trisanku, of the solar line, married the step mother of a Brahman whom he had murdered and was purified from his sin only by bathing in water collected by saint from all the streams of the world, this water still polluted by his crime, now flows the spring from which the Karmanasa rises.

References :

1. Chaudhari, P.C. Roy, District Gazetteer Shahabad, Bihar, 1966, p. 2.
2. District Census Handbook of Shahabad, Bihar, 1961, P. IV and District Gazetteer of Shahabad, 1924, pp. 4-6.
3. Rennells, J. Memories of a map of Hindustan, 1838, p. 50.
4. Martin, M. Eastern India, Vol. I, London, 1938, pp. 11-12.
5. Beglar, J.D. Report of a Tour Through of the Bengal Provinces in 1872, A.S.I. Reports, Calcutta, 1878, Vol. 8, p. 9.
6. Cunningham, A "Tour in Gangetic Provinces from Badson to Bihar in 1875-78", Report of Archaeological Survey of India, Vol. XI, Calcutta, 1880, p. 110.
7. Jackson, VII (ed.), Journal of Francis Buchanan, Kept during the survey of the District of Patna and Gaya in 1811-12, Patna 1925, p. 8.
8. Singh, S.C., Changes in the course of the rivers and their effects on urban Settlements in the Middle Ganga Plain, NGSI, Varanasi, 1973, p. 55.
9. Beglar, J.D., op.cit., Vol. 8, p. 80.
10. Cunningham, A, op.cit., Vol. XI, p. 152.

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

Morphogenesis of the Cultural Landscape

Dr. Shailendra Kumar*

The core of cultural geography can be distinguished in its five implicit terms-culture, cultural area, cultural landscape, cultural history and cultural ecology.[1] Thus it involves the total study of man and society in spatio-temporal frame. Every time a new relationship was established between man and the land; a new geography was created.[2] The study of an culture requires investigation of its territorial settings, organization and identity and the study of any single one or combination of these themes form the subject matter of cultural geography. Her an attempt has been made to distinguish the identity and processes of the landscape evaluation in the context of its cultural history and ecology. Though the archaeological findings, historical evidences and especially place name analysis the sequent occupance of the study area is delimited and it is hoped that the conclusions may be tested in other sectors in order ultimately to reconstruct a more complete cultural geography of the region.

Period of Aboriginal Ascendancy

Before the arrival of man in the Ganga valley, the region is believed to have been covered with forest. The people of Negrito and Proto-Austratiod stocks were the earliest to occupy this region during the pre-historic period[3] In pre-historic period, shahabad was occupied by aboriginal races of whom the chief represented was the Bhar, Chero and Savars.[4] Rigveda refers that there were the Aryans who thinking themselves of superior race, contempluously called the non-Aryans as 'Dasyu' or 'Asuras'. Rigveda also refers to numerious towns and forts built of stone in the non-Aryan kingdom.[5] Moreover, the presence of Shiva temples in urban centers bears testimony to the fact that this region was earlier occupied by non-Aryans.

Vedic literature and other scriptures where in the study area is described as Karusdesh, is one of the oldest region of the world having evidences of human habitat. Buxar an important place of the region both culturally and historically, has been mentioned. Rigveda as the holiest of holy places on the earth. The Rigveda itself being as older 25000 B.C.[6] is Sufficient to prove that this region has a definite history of human habitat and cultural succession. The

* **Former Research Scholar, Deptt. of Geography, V.K.S. University, Ara**

Archaeological evidences through the excavations carried out in the Belan valley and the Ganga valley have showed that rice cultivation has been carried out in Ganga valley as early as 8500 years B.C.[7] The area formarly known as Karus Desh was so named after the name of Karus, the ninth son of Manu, the first human being created by Brahma to prepetuate the human race on the earth. The second reason of this name is that Indra after slaying Britrasur was accursed by the sin of Brahma Hatya due to the killing of a Brahmin and in order to free Indra of this sin, the creator brought Indira to Ganges at Buxar, had Ganges water poured at him and thus freed him from the Karus Mulla, the anger and filth of Brahma Hatya. Brahma was pleased to see Indra free from Karus and Mulla of Brahma Hatya and named the region south of Ganga as KARUS and that on the north as MULLA MALLAD.[8] Both the probable reasons of this region being so named are sufficient to show that the study are is one of the most ancient region of the earth conserving human civilization. The Vedas, prior being given literary forms by Maharshi 'Vadrayan' subsequently known as 'Ved Vyas' were in the form of SHRUTIS for more than 2000 years during the period of 'Satwayug' and 'Treta', the period of Ramayan and even before it. Thus the history of Buxar goes back to as early as 15000 year B.C. when Ram came here and slew the most dangerous domen queen 'Tadka' Karus has also been mentioned in Mahabharat.[9]

Pre-Rajput Colonization

It is clear from the above mentioned facts that the history of KARUS DESH starts with the mere dawn of the human civilization on the earth, because it is named after the son of Manu himself. For the purpose of proper understanding of historical and cultural succession of the region, it is essential that the sequence may be divided into two parts: (i) the Vedic and Pauranik period i.e. the pre-historic period which covers the period of the Satwayuga, the Treta and Dwapar and (ii) the historic period which can be sub-divided into (a) Pre-Rajput period and (b) Rajput period.

(i) The Vedic and the pauranik period- After Indra was freed from the sin of Brahma Hatya, Brahma the creator was very much happy and he blessed both the Karus and the Malad Pradesh with prosperity and happiness till the advent of Tadke originally a Yakshini who was cursed by August Rishi with demonhood. Being infuriated by the curse she and her son Marich destroyed both Karus and Malad Pradesh and the ihhabitant of both the regions left their habitation to settle in order regions. Thus, these beautiful and prosperous regions tuned into jungle. Karus pradesh being part of Aryavarta was culturally one with the rest of Ganga plain west of it forming todays Uttar Pradesh and was under the dominance of

people of solar line (Suryabansis) who ruled the whole of Aryavarta for about 100 generations right from Manu to Rohitashwa, the son of Raja Harishchandra. The form of Rohitashwa Garh established by Rohitashwa is the glaring proof of the dominance of people of solar line in the region. Raja Trisanku, who wished to go to Heaven in his earthly body was no other than the father of the famous king Raja Harishchandra. As we know the origin of the river Karamanasa forming the western boubdary of Karus is associated with the curse of the King Trisanku. The mighty Trisanku conquered the Brahmin king of Vidarbha and snatched his wife. Father of Trisanku cursed him for this henious work with chanalhood and deprived him from the thrown. Trisanku wanted to his kulguru Vashistha to purity him and to get him free from chandalhood, but the later refused to do so and them Trisanku turned to vishwamitra who was the only competetor of Vashistha those days. Vishwamitra with the power of his Yoga and with a view to demorlising Vashistha Muni provided 'Trisanku' with a Viman which proceeded to towards Heaven. But the Gods pushed Trisanku out of the Viman who began to fall on the earth with his head downward. Vishwamitra stoped him in between and the water which dropped out of his mouth gave rise to karamanasa. Thus the existence of Rohitashwa garh and river karamanasa are sufficient proof of the dominance of people of solarline in the region. The people of lunar line were also flourishing in Aryavarta along with those of solar dynasty because both were close relations but the dominance was that of the people of solar line.

After Kusambu, the grand son of Rama, and son of Kus began to downfall or solar people and the dominance of Lunar people started. It will not be out of place to mention here that Kusambi, 38 miles a head Allahabad, the excavation of which have exposed the hidden treasure of Hindu civilization was established by kusambu, the son of Kush.[10] The excavation of Kausambi has brought out rice and cement gravel III, the radio-carbonating of which proves it to be of upper palaeothic to Mesolithic period ranging from 23400 to 177650 B.C.[11] is sufficient to make untenable the hypothesis that Aryan have come here from central Asia.

As stated above the som bansis or Chandra banshis defeated the Surya banshis and established their territory in the eastern Aryavarta. This dynasty was established by Som, the son of Atri Rishi who established his capital at pratisthan a place in between the Ganga and Jamuna a few miles from Allahabad. Important king like Parurwa, Nahus Yagati, paru, yashyanta and his famous son Bharat ruled Aryavarta for long time. Buxar was the capital of Raja Gandhi Vishwamitra who belonged to the lunar line. Karus was snatched from

the Suryabanshis at the time of Raja Bahu the grand son of Rohitashwa and father of Raja Sagar by Turwasu, the third son of yagati. The Chandrabansi dynasty weas subsequently divided into two separate dynasty the yadawa or yadubansi and the Hahawbansis.[12] The descendents of Tarwasu were subsequently known as Hahawbansis.

In Dwapar or the Mahabharat period Karus Pradesh was under the dominance of the aforesaid people of Lunar line. In Mahabharata Dentbakra has been described as Karusadhipati (the king of Karus).[13] It may be mentioned here that Anirudha, the grand son of Krishna was married to Usha, the daughter of Banasur whose capital was at Masarh a place 8 kns. west of Arrah. This marriage Dyut was being played between Bal Ram the elder brother of Krishna and Danta Bakra. This play gave rise to a fued between Bal Ram and Danta Bakra in which Danta Bakra was killed by Balram and Karus came under the dominance of Chandra bansis. Again, we see that during the period of exile of Pandwas, they were moving incongnite and Bhim killed Bankasur to save the life of the only son of a widow Brahimini. Bankasur was living at Bakri a place 8 km south of Arrah. At Bakri even today the garth of Bankasur can be seen in the shape of mound. People tree and they still worship Bankasur calling them as Banka Baba. The old stone statues collected at one place by the villagers are sufficient proof for Bakari being an ancient site with royal habitat. In the old revenue records village Bakari had been mentioned on Banka. The killing of Danta Bakra by Bal Ram and that of Bankasur by Bhim close relation and follower of Krishna is sufficient proof that Karus remained under the dominance of the Chandra Bansis. Right from the Dwapar or the Mahabharat period Karus remained under the dominance of Chandra Bansis but their main strong hold was from Buxar to Arrah with Behea as their capital. The Haihaw Bansis who ruled this region for very long period and drove away the aboriginals the Cheros had kharwars in the remotest parts of Kaimur plateau.

References :

1. Wagner, P.L. and M.W. Mikesell, (ed.), Reading in cultural Geography Chicago : Unique of Chicago press (1962).
2. C.O. Sauer, "The morphology of Landscape, Univ of colifoirnia publication in Geography, 2, No. 2 (1925) : 19-54.
3. Verma, R.V., "Evolution of settlement in Avadh, India, V.S.D. College, Kanpur, 21st International Geography Congress, Abstract of papers, Vol. 3, Calcutta, 1971, p. 305.

4. Molley, L.S.S.O. Revised Edition by J.F.W. James, Bihar-Orrisa, District Gazetter, Shahabad, 1954, p. 19.
5. Mukherjee, R.K. The changing face of Benga, Calcutta, 1938, p. 31.
6. Dwivedi, Kailash Nath, Regvedic Boogol, p. 12.
7. Sharma, G.R., History to Pre-history, pp. 110-111.
8. Baba, Satya Sai, Ram Katha Ras Vahini, p. 63.
9. Sabha Parva, Adhyas-14, Sloka-2.
10. Cunningham, Alexander, op.cit., pp. xxvi-xxvii.
11. Sharma, G.R., op.cit., pp. 110-111.
12. Upadhyay, Acharya Kamal Kant, "Bharat Ke Itihas me Shahabad.
13. Shabha Parva, Adhyay 14, Shloka-12.

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

स्वास्थ्य एवं मनोरंजन

डॉ0 रामाकान्त प्रसाद*

स्वास्थ्य :

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार, ''स्वास्थ्य का अभिप्राय केवल बीमारी और दुर्बलता का अभाव नहीं है, वरन् उस अवस्था से जब मनुष्य शारीरिक और सामाजिक रूप से पूरी तरह ठीक हो तथा अस्वस्थता का अर्थ उस अवस्था से है जबकि मनुष्य सामान्यतया स्वस्थ नहीं होता अर्थात् किसी न किसी बीमारी से पीड़ित रहता है।

स्वास्थ्य जीवन के प्रत्येक पहलू पर मानव को प्रभावित करता है। केवल स्वस्थ्य मनुष्य ही धन कमा सकता है एवं जातीय, सामाजिक, नैतिक, वैयक्तिक और इस प्रकार के कर्तव्यों का पालन कर सकता है। अतः मानव की सर्वांगीण उन्नति एवं विकास का आधार स्वास्थ्य ही है। स्वास्थ्य जनता की कार्यक्षमता तथा शक्ति के मापदण्ड के साथ ही इस बात का भी संकेतक है कि व्यक्ति कितने समय तक निर्माण खर्च में संलग्न तथा राष्ट्रीय उन्नति में प्रवृत्त रह सकता है। रूग्ण व्यक्ति कुछ नहीं कर सकता।

वस्तुतः किसी भी राष्ट्र की सम्पदा उसके स्वस्थ्य, दीर्घायु और कार्य–कुशल नागरिक होते हैं। स्वास्थ्य ही धन है की कहावत व्यक्ति और राष्ट्र इन दोनों की ही दृष्टि से शतप्रतिशत सत्य है।

स्वास्थ्य से तात्पर्य मनुष्य के शारीरिक और मानसिक दृष्टि से स्वस्थ होने से है। सामान्यतः स्वास्थ्य का अर्थ उस अवस्था से होता है जबकि व्यक्ति का शरीर बीमारी व दुर्बलताओं से पीड़ित नहीं होता है। स्वास्थ्य जो जीवन के लिए भी महत्वपूर्ण है अपने आप ही प्राप्त नहीं हो जाता है अपितु यह सब अनेक सामाजिक, सांस्कृतिक व आर्थिक कारणों द्वारा निर्धारित व प्रभावित होता है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। अतः समाज के वातावरण का प्रभाव उसके जीवन के हर पहलू पर पड़ता है। यदि सामाजिक वातावरण स्वास्थ्य के अनुकूल है तो स्वास्थ्य अच्छा होगा।

जन–स्वास्थ्य के निर्धारण में जीवन स्तर का महत्वपूर्ण स्थान है। निर्धनता के कारण भी स्वास्थ्य खराब रहता है। जहाँ पर सार्वजनिक स्वास्थ्य सुविधाओं व साफ सफाई का अभाव है, वहाँ के लोग विभिन्न प्रकार की बीमारियों से ग्रस्त रहते हैं, वहाँ का स्वास्थ्य का स्तर निम्न रहता

* ग्राम– बडुई, पोस्ट– दरिगांव, थाना– सासाराम, जिला– रोहतास, बिहार

है। भारत में स्वास्थ्य का स्तर निम्न होने का एक कारण चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सुविधाओं का पर्याप्त अभाव है।

शैक्षणिक स्तर पर स्वास्थ्य पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। शैक्षणिक स्तर निम्न होने के कारण अज्ञानतावश स्वास्थ्य नियमों और सुविधाओं की व्यक्ति न तो जानकारी ही रखता है और न ही स्वास्थ्य रक्षा के प्रति तत्पर ही होता है। शिक्षा के अभाव में व्यक्ति के मस्तिष्क का विकास नही हो पाता और उसे स्वास्थ्य के नियमों की पर्याप्त जानकारी भी नहीं हो पाती। फलतः सामाजिक व धार्मिक अंधविश्वासों के कारण वह उपलब्ध चिकित्सा सुविधाओं का भी लाभ नहीं उठा पाता। जिससे उसका स्वास्थ्य स्तर निम्न रहता है।

अच्छे स्वास्थ्य के लिए स्वच्छ पेयजल एवं सफाई अत्यधिक आवश्यक है। दूषित जल और गंदगी से बीमारियों के कीटाणु उत्पन्न होकर बीमारी फैलाते हैं। भारत में न केवल गाँवों में बल्कि शहरों में स्वच्छ पेयजल का अभाव है और गन्दा मल, जल, मूत्र व अन्य गंदे पदार्थों के निष्कासन के लिए पर्याप्त गलियों और साधनों का अभाव है। फलतः आम भारतवासियों का स्वास्थ्य का स्तर निम्न है।

अच्छे स्वास्थ्य के लिए पर्याप्त व पौष्टिक भोजन आवश्यक है। यदि व्यक्ति को अपर्याप्त और अपौष्टिक भोजन मिलता है तो वह शीघ्र ही दुर्बल हो जाता है। भोजन और वस्त्र के बाद आवास मानव जीवन की एक नितान्त आवश्यक वस्तु है जिसका प्रभाव स्वास्थ्य पर पड़ता है। आवास को एक प्रकार का वर्कशाप कहा जाता है। यहाँ किसी देश के भविष्य को संजोने वाले व्यक्तियों का जन्म व पालन पोषण होता है। यदि आवास व्यवस्था समुचित न हो तो उसका स्वास्थ्य पर अत्यन्त प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। मनुष्य जिस स्थान पर कार्य करता है, वहाँ की परिस्थितियों का भी उसके स्वास्थ्य स्तर पर काफी प्रभाव पड़ता है। मनुष्य जिस स्थान पर कार्य करता है, वहाँ की परिस्थितियों का भी उसके स्वास्थ्य स्तर पर काफी प्रभाव पड़ता है। निम्न स्वास्थ्य स्तर के लिए अन्य उत्तरदायी कारण इस प्रकार हैं– (1) बाल विवाह, (2) पर्दा प्रथा, (3) मिलावटी खाद्य पदार्थ, (4) नशीली वस्तुओं का उपयोग, (5) अविवेकपूर्ण मातृत्व, (6) स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता की कमी, (7) दोषपूर्ण अनुवंशिकता।

स्वास्थ्य का व्यक्ति के जीवन में बहुत महत्व है। जिस व्यक्ति का स्वास्थ्य जितना ही अच्छा होता है या दूसरे शब्दों में जो व्यक्ति जितना स्वस्थ होता है उतना ही वह खुशहाल होता है। इसीलिए कहा जाता है कि स्वास्थ्य ही धन है और स्वास्थ्य ही जीवन है। इसलिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति का स्वास्थ्य सदा जिस प्रकार से ठीक रहे, उसको रखना चाहिए। स्वास्थ्य खराब होने से परिवार में व्यक्ति की स्थिति बदल जाती है तथा बहुत दिन तक अस्वस्थ रहने से

परिवार के लोग उससे ऊबकर उसको परिवार के लिए एक बोझ समझने लगते हैं तथा अस्वस्थ्य व्यक्ति को उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं और दुर्भाग्य से यदि परिवार में वह व्यक्ति अस्वस्थ हो जाए जिसके ऊपर परिवार की आर्थिक जिम्मेदारी है तो वैसी स्थिति में परिवार के सम्मुख अनेक प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न हो जाती है और परिवार के सदस्यों का समस्त विकास ही अवरूद्ध हो जाता है और पारिवारिक कलह पैदा हो जाती है।

परिवार में से किसी व्यक्ति के बीमार होने पर सामान्यतः यह देखने को मिलता है कि पुरनी पीढ़ी के लोग उसमें भी महिलाएँ उपचार के सम्बन्ध में बहुत ही रूढ़िवादी विचार रखती है जिससे कि मरीज का आधुनिक पद्धति से तत्काल उपचार करना भी सम्भव नहीं हो पाता है। जबकि नयी पीढ़ी के लोग यह चाहते हैं कि परिवार में किसी व्यक्ति के अस्वस्थ होने पर उसे तत्काल किसी अच्छे चिकित्सक को दिखला कर मरीज का सही उपचार करवाया जाए लेकिन चूँकि परिवार में आज भी अपेक्षाकृत पुरानी पीढ़ी के लोगों की अधिक बात मानी जाती है, इसलिए उनकी रूढ़िवादी बातों को मानकर मरीज का सही उपचार नहीं हो पाता है। इतना ही नहीं पुराने एवं रूढ़िवादी विचार के लोग कभी–कभी तो आज भी यह मानते हैं कि व्यक्ति जो इस समय रोग से ग्रस्त हैं वह भी भगवान द्वारा दिया गया उसके कर्मों का मत है, और जब तक वह अपने दुष्कर्मों का इस तरह से प्रायश्चित पूरा नहीं कर लेता है तब तक मरीज स्वस्थ नहीं हो सकता। इसलिए वह दुआ एवं दया के लिए पहले प्रयास करता है और दवा के लिए वह बाद में प्रयास करता है। लेकिन नयी पीढ़ी के लोगों का विचार पुरानी पीढ़ी के लोगों से सामान्यतया भिन्न है तथा ये लोग परम्परागत विचार से हटकर थोड़ा विवेकपूर्ण एवं तर्कसंगत बात मानते हैं और रूढ़िवादी विचारों और साधनों की उपेक्षा करते हैं क्योंकि वे यह जानते हैं कि अंधविश्वास को उपचार मानने से कोई फायदा नहीं होने वाला है।

परिवार कल्याण कार्यक्रम को स्वीकार करने से परिवार को बहुत लाभ होता है क्योंकि परिवार की आय एवं साधनों के अनुसार परिवार को नियोजित किया जाना चाहिए अन्यथा पारिवारिक स्थिति खराब होती है तथा परिवार का व्यय आय की तुलना में बढ़ जाता है तथा परिवार का आर्थिक ढांचा चरमरा कर बैठ जाता है और परिवार कल्याण कार्यक्रम को स्वीकार करने के सम्बन्ध में भी पुरानी पीढ़ी एवं नयी पीढ़ी की महिलाओं का दृष्टिकोण भिन्न–भिन्न है और इस भिन्नता का होना तो ठीक है लेकिन नयी पीढ़ी पर ही पुरानी पीढ़ी का नियंत्रण एवं प्रभाव है, उससे नयी पीढ़ी परिवार कल्याण कार्यक्रमों को जिस सीमा तक अपनाना चाहती है उस सीमा तक अपना नहीं पा रही है।

मनोरंजन :

मनोरंजन मनुष्य जीवन के लिए बहुत ही आवश्यक है। मनोरंजन के अभाव में व्यक्ति शारीरिक एवं मानसिक थकान एवं तनाव अनुभव करता है। शारीरिक परिश्रम एवं दिन भर के

उबा देने वाले कार्य के बाद व्यक्ति स्वस्थ मनोरंजन चाहता है जिससे कि पुनः श्रम करने की शक्ति प्राप्त हो सके। इसलिए मनोरंजन आवश्यक है। मनोरंजन से मानसिक तनाव तथा तनावपूर्ण वातावरण दोनों समाप्त हो जाते हैं।

व्यक्ति जब तनावपूर्ण वातावरण में रहता है तो उसके मन में समाज विरोधी विचार जन्म लेते हैं जो नियंत्रण के नियमों की अवहेलना करते हैं। इस प्रकार मनोरंजन समाज विरोधी गतिविधियों पर रोक लगाते हैं और अप्रत्यक्ष रूप से समाज में नियंत्रण व्यवस्था को बनाए रखने में सहयोग देते हैं।

मनोरंजन व्यक्ति को अच्छा जीवन व्यतीत करने एवं सामाजिक मानदण्डों का पालन करने की शिक्षा भी देते हैं। मनोरंजन में कहानियों, नाटकों, कविताओं एवं चुटकुलों द्वारा व्यक्ति को सामाजिक जीवन से सम्बन्धित अनेक प्रकार की शिक्षा दी जाती है।

मनोरंजन व्यक्ति पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालकर उसे नियंत्रित व्यवहार करने को प्रेरित करते हैं। इस प्रकार मनोरंजन व्यक्ति को मानसिक रूप से सामाजिक नियंत्रण को मानने के लिए तैयार करते हैं।

मनोरंजन हमारी संस्कृति के अंग होते हैं, उनमें सामाजिक मूल्यों एवं आदर्शों का समावेश होता है। समाज में समय के साथ परिवर्तन आता रहता है। परिवर्तित परिस्थितियों के अनुसार मूल्यों और आदर्शों में भी परिवर्तन आता है। मनोरंजन द्वारा प्राचीन रूढ़िवादी मूल्यों पर कटाक्ष किया जाता है और उनके स्थान पर नवीन मूल्य एवं आदर्श स्थापित किए जाते हैं। अतः व्यक्ति सामाजिक नियमों के अनुसार अपना अनुकूलन स्थापित कर लेता है।

मनोरंजन द्वारा उन लोगों पर भी नियंत्रण रखा जाता है जो सामाजिक नियमों की अवहेलना करते हैं और सामूहिक हितों को चोट पहुँचाते हैं। मनोरंजन व्यक्ति को रचनात्मक कार्य करने की प्रेरणा देते हैं।

मनोरंजन द्वारा व्यक्ति की अपराधी एवं समाज विरोधी प्रवृत्ति पर नियंत्रण ही नहीं लगाया जाता वरन् उनके व्यवहार में परिवर्तन, सुधार एवं संशोधन भी किया जाता है। सामाजिक नियंत्रण के लिए राज्य, कानून आदि औपचारिक साधनों का प्रयोग भी किया जाता है। मनोरंजन द्वारा सामाजिक नियंत्रण बनाए रखने का कार्य किया जाता है।

नृत्य का सदैव ही विस्तृत सामाजिक महत्व रहा है। आदि जनजातियों में युद्ध, विजय एवं अन्य अवसरों पर सामूहिक नृत्य किए जाते थे। सामूहिक नृत्य का उद्देश्य किसी महत्वपूर्ण कार्य को हाथ में लेने के लिए लोगों में उत्साह पैदा करना होता था। सामूहिक नृत्य लोगों को एकता के सूत्र में बांधता है, उनमें हम की भावना पैदा करता है। यह भावना सामाजिक नियंत्रण में

महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। मेरा बनाकर नृत्य करने पर लोगों में सामूहिक उत्तेजना पैदा होती है। सामूहिक नृत्य प्रजा–तंत्रात्मक मूल्य का सूचक है। यह सामूहिक नैतिकता को भी प्रोत्साहन देता है। इस प्रकार नृत्य मनोरंजन, उत्साह, एकता, समानता एवं नियंत्रण का कार्य करते हैं।

नाटकों को पढ़ने, देखने एवं सुनने से भी सामूहिकता के भाव पैदा होते हैं। नाटक में भी अप्रत्यक्ष सुझाव दिए जाते हैं। अतः ये सामाजिक नियंत्रण की प्रमुख शक्ति कहे जा सकते हैं। नाटक से प्रभावित होकर लोग अपने वास्तविक जीवन में भी कई बार नाटक के पात्रों जैसा ही व्यवहार करते हैं। नाटकों में सामाजिक समस्याओं से संघर्ष करने की प्रेरणा दी जाती है। लोग नाटक में पात्रों को आदर्श मानकर उनके अनुसार अपने जीवन को ढालने का प्रयत्न करते हैं। गांधी जी ने हरिश्चनद्र के नाटक से प्रभावित होकर ही सत्य बोलने का संकल्प लिया था।

इस प्रकार मनोरंजन व्यक्ति में कल्पना का विकास करता है तथा अप्रत्यक्ष रूप से सुझाव देकर भी सामाजिक नियंत्रण बनाए रखता है। व्यक्ति में उत्साह उत्पन्न करता है, सामाजिक मूल्यों एवं आदर्शों का ज्ञान कराता है। व्यक्तिगत व्यवहारों पर नियंत्रण रखता है। देश भक्ति के भाव जागृत करता है। समाज में एकता बनाए रखता है।

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

मुगलकालीन स्रोत : एक संक्षिप्त विवरण

आदित्य कुमार सिंह*

भारत में प्रत्येक मुस्लिम शासक के अपने एक अथवा अनेक इतिहासकार रहे हैं, जिन्होंने सामान्यतः फारसी भाषा में लिखा है। इन वृत्तान्तकारों के इतिहास–लेखन पर टिप्पणी करते हुए वी0ए0 स्मिथ ने लिखा है– 'अधिकांश लेखक मात्र वृत्ताकार हैं, केवल घटना वर्णनकार, जो राजाओं, दरबारों और युद्धों की घटनाओं के बाह्य रूपों के शुष्क सार देकर ही अपने को सन्तुष्ट कर लेते थे और जिनकी नीरसता कभी–कभी तुच्छ उपाख्यानों और कहानियों के कारण कुछ दूर हो जाती है। उनमें कलात्मक अनुपात का समावेश अत्यल्प है। उनमें इतिहास दर्शन, घटनाओं के निहित मूल कारणों की व्याख्या या जनसाधारण के और आर्थिक विकास के विवेचन की खोज करनी ही नहीं चाहिए।''[1] मुगलकालीन इतिहास–लेखन की प्रवृत्तियाँ स्मिथ के इस कथन को सत्यता प्रदान करती हैं।

मुगलकाल के अधिकांश लेखक दरबारी लेखक थे। उन्होंने इतिहास की संरचना अपने आश्रयदाता शासकों के आदेश से की, अतएव उनकी रचनाओं का मुख्य उद्देश्य अपने आश्रयदाताओं के गुणों, युद्धों, विजयों का अतिशयता से वर्णन करना था। कभी–कभी उन्होंने आलंकारिक भाषा का प्रयोग करके अपने आश्रयदाताओं के दोषों पर पर्दा डालने का भी प्रयास किया। मुगलकाल के इतिहासकारों ने मुख्य रूप से राजनीतिक घटनाओं का वर्णन किया है। उन्होंने अपने काल की आर्थिक, संवैधानिक तथा अन्य संस्थाओं का उल्लेख नहीं किया। भारतीय संस्कृति, संस्थाओं और धार्मिक आन्दोलनों के वर्णन का उनमें सर्वथा अभाव है। समाज उनके लेखन की सीमा से सदैव परे रहा। प्रो0 अब्दुर्रशीद[2] के अनुसार मध्ययुग में 'राजनीतिशास्त्र' का एक स्वतन्त्र सामाजिक ज्ञान के रूप में अस्तित्व ही नहीं था। इस समय की शिक्षा प्रणाली धर्म–प्रधान थी और प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति धर्म से बहुत प्रभावित था। इस काल के लेखक भी दृढ़ धार्मिक पूर्वाग्रहों से युक्त थे। मुस्लिम लेखक इस्लाम की सर्वोच्चता में विश्वास करते थे और उसे जीवन का शाश्वत सत्य बताते थे। अतएव जब–जब उन्होंने गैर–मुसलमानों का उल्लेख किया, तब–तब उनके प्रति अपनी घृणा अभिव्यक्त की और उनके प्रति अत्यन्त निम्न भाषा का प्रयोग किया। मुगलकालीन ऐतिहासिक साहित्य इस काल के धार्मिक सिद्धान्तों, सन्तों के जीवनवृत्तों तथा उनके शिष्यों के साथ वार्तालापों में भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है।

मुगलकालीन भारत के इतिहास में स्रोत–सामग्री विभिन्न रूपों में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। मुगल–बादशाहों जैसे बाबर और जहाँगीर द्वारा लिखी गयी आत्मकथाएँ, राज्य–दरबार के विभिन्न इतिहासकारों द्वारा लिखी गयी समकालीन इतिहास की पुस्तकें, कई शाहजादियों द्वारा रचित कविताएँ जिन्हें दीवान पुकारा गया, बादशाहों के विभिन्न आज्ञा–पत्रों (फर्मानों) का संकलन, राजस्व तथा लगान सम्बन्धी विभिन्न कानूनों का संग्रह जिन्हें दस्तूर–उल–अमल पुकारा गया, दरबार द्वारा प्रकाशित विभिन्न सूचनाएँ और समाचार जिन्हें अखबारात–ए–दरबारी–ए–मुअल्ला पुकारा गया, दरबार के क्लर्कों और उनके अधीन कर्मचारियों द्वारा संग्रहीत पत्रों, आदेशों आदि का संग्रह जिन्हें इंशा, मकतूबात या रुकात पुकारा गया, धार्मिक साहित्यिक रचनाएँ जिन्हें

* पूर्व शोध छात्र, इतिहास विभाग, मानविकी संकाय, म0गां0का0 विद्यापीठ, वाराणसी

मजफूजात पुकारा गया, विभिन्न यूरोपियन यात्रियों के विवरण, संस्कृत में लिखे गये अनेक ग्रन्थ, विभिन्न ऐतिहासिक इमारतें तथा पुरातत्व विभाग द्वारा सुरक्षित अन्य विभिन्न वस्तुएँ आदि मुगलकालीन इतिहास को जानने के प्रमुख साधन है। इनमें एक प्रमुख स्थान तुर्की, अरबी और अधिकांशतया फारसी में लिखे गये ऐतिहासिक और साहित्यिक ग्रन्थों का है। इनमें से कुछ प्रमुख ग्रन्थ निम्नलिखित हैं–

तुजुक–ए–बाबरी (बाबरनामा)– बाबर की आत्मकथा को स्वयं मुगल–बादशाह बाबर ने तुर्की भाषा में लिखा। यह ग्रन्थ अपने आप में पूर्ण नहीं है। बाबर ने 1508–1519 ई0, 1520–1525 ई0 और 1529–1530 ई0 के मध्य की घटनाओं का वर्णन नहीं किया है परन्तु तब भी यह एक अमूल्य ग्रन्थ है। मुगलकाल में ही इसका अनुवाद चार बार पर्शियन (फारसी) भाषा में किया गया। हुमायूँ के शासनकाल में जैनखाँ और पायन्दा हसन ने, अकबर के समय में अब्दुर्रहीम खान–खाना ने और शाहजहाँ के समय में मीर अबु तलिब तुरबाती ने इसका अनुवाद किया। विभिन्न यूरोपीय भाषाओं, मुख्यतया फ्रान्सीसी और अंग्रेजी भाषा में भी इसके विभिन्न अनुवाद हुए हैं। इनमें श्रेष्ठ अनुवाद श्रीमती बेवरिज का अंग्रेजी में किया गया अनुवाद है जो मूल तुर्की भाषा में किया गया है। एलफिन्सटन ने तुजुक–ए–बाबरी अथवा बाबरनामा के बारे में लिखा है– 'एशिया में पाये जाने वाले वास्तविक इतिहास का यह एक मात्र ग्रन्थ है।' इसी प्रकार, इतिहासकार लेनपूल लिखता है– 'बिना किसी सहायक प्रमाण के यदि किसी एक ऐतिहासिक विवरण को समुचित प्रमाण स्वीकार किया जा सकता है तो वह बाबर की आत्मकथा है।'

बाबर ने अपनी आत्मकथा में भारत का विवरण भी दिया है। भारत की जलवायु, प्रकृति, भारतीयों के मकान, वस्त्र, भोजन, यहाँ की राजनीतिक घटनाओं, राज्यों और शासकों के बारे में भी उसने लिखा। बाबर की आत्मकथा तुजुक–ए–बाबरी एक माननीय और उपयोगी ऐतिहासिक स्रोत–ग्रन्थ है और बाबर के काल के इतिहास के सम्बन्ध में मूल्यवान ऐतिहासिक सामग्री प्रदान करता है।

कानून–ए–हुमायूँनी– इस ग्रंथ के लेखक गयासुद्दीन मुहम्मद ख्वन्दमीर था, इसका जन्म 1474–75 ई0 में ईरान में हुआ। प्रसिद्ध उपन्यासकार मीर ख्वन्दमीर (1433–1498 ई0) इसका नाना था। 1527 ई0 में वह हिरात से कंधार आया। वहाँ से 19 सितम्बर 1528 ई0 को आगरा पहुँचा। यहाँ मुगल सम्राट बाबर द्वारा सम्मानित हुआ। गद्दी पर बैठने के पश्चात् हुमायूँ ने उसे 'अमीरुख अख़्बार' की उपाधि दी। ख़्वन्दमीर ने अनेक ग्रन्थों की रचना की जिनमें हबिबुस्सियार (1523 ई0 तक का विश्व इतिहास) बहुत प्रसिद्ध है। हुमायूँ से सम्बन्धित कानून–ए–हुमायूँनी में हुमायूँ के शासन के प्रारम्भिक तीन वर्षों का ही वर्णन है। इसमें हुमायूँ के सिंहासनारोहण, दीनपनाह की स्थापना, उसके द्वारा चलाये गए राजसी नियम, आविष्कार, जश्न इत्यादि का वर्णन है। यह ग्रंथ एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल द्वारा प्रकाशित हुआ है तथा डॉ0 बेनी प्रसाद ने इसका अंग्रेजी में अनुवाद किया है, जो अत्यन्त उपयोगी है।

गुलबदन बेगम का हुमायूँनामा– बाबर की पुत्री गुलबदन बेगम का जन्म 1523 ई0 में हुआ था। इसकी माता दिलदार बेगम थी। इस तरह बाबर के भारतीय आक्रमण के समय यह केवल दो वष की थी। 1529 ई0 के मध्य में अन्य महिलाओं के साथ यह भी भारत आई। बाबर की मृत्यु के समय गुलबदन आठ वर्ष की थी। इसका विवाह खिज्र ख़्वाजा खाँ मुगल से हुआ था। गुलबदन ने यह संस्मरण फारसी भाषा में अकबरनामा के लिए अकबर की आज्ञा से लिखा। मुगलों की मातृभाषा चगताई तुर्की थी। गुलबदन ने चगताई भाषा के शब्दों का भी प्रयोग किया

है। हुमायूँनामा दो भागों में विभाजित है। प्रथम भाग में बाबर तथा दूसरे में हुमायूँ के काल की घटनाओं का वर्णन है। बाबर के काल की घटनाएँ बहुत ही संक्षिप्त हैं। पुस्तक का अधिक भाग हुमायूँ से सम्बन्धित है। श्रीमती बेवरिज ने गुलबदन के मकूल ग्रन्थ का संस्करण सम्पादित किया है तथा टिप्पणियों के साथ उसका अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किया है। यह ग्रंथ एशियाटिक सोसायटी द्वारा प्रकाशित है।

तारीख–ए–रशीदी– इसके रचयिता बादशाह बाबर का सम्बन्धी और मित्र मिर्जा मुहम्मद हैदर तुगलात था। फारसी भाषा में लिखा गया यह ग्रन्थ बाबर और हुमायूँ दोनों के शासन–काल की घटनाओं को जानने में सहायता प्रदान करता है। मिर्जा मुहम्मद हैदर ने 1551 ई0 में इसकी रचना पूर्ण की। छोटी आयु से ही वह बाबर की सेवा में आ गया था। उसने बाबर और हुमायूँ के जीवन की अनेक घटनाओं को स्वयं देखा था। उसने बाबर के संघर्षरत जीवन को देखा, हुमायूँ और शेरशाह के संघर्ष को देखा, बिलग्राम (कन्नौज) के युद्ध में हुमायूँ की ओर से सम्मिलित हुआ, हुमायूँ के आदेश पर कश्मीर के कुछ भाग को विजय किया, वहाँ का शासक रहा और वहीं उसकी मृत्यु भी हुई। इस ग्रन्थ को दो भागों में विभाजित किया गया है– पहले भाग में 1347 से 1553 ई0 तक मुगल बादशाहों के इतिहास का वर्णन किया गया है और दूसरे भाग में मिर्जा मुहम्मद हैदर ने 1541 ई0 तक घटित अपने जीवन की घटनाओं तथा कामरान द्वारा कंधार की विजय, शेरशाह के विरूद्ध हुमायूँ की सहायता के लिए उसका आना, विलग्राम के युद्ध में हुमायूँ की पराजय, स्वयं उसका वहाँ से भागना और लाहौर में हुमायूँ से भेंट, स्वयं के द्वारा कश्मीर पर आक्रमण आदि घटनाओं का विस्तृत रूप से वर्णन किया गया है। इस कारण इस ग्रन्थ का दूसरा भाग भारतीय इतिहास की घटनाओं को जानने में अधिक सहायता प्रदान करता है।

ताजकीरात–उल–वाकियात– अकबर के आदेश पर इस ग्रन्थ की रचना जौहर आफताब्ची ने की थी। यह ग्रन्थ फारसी भाषा में लिखा गया है और केवल हुमायूँ के जीवन की घटनाओं का वर्णन करता है। इस ग्रन्थ की एक मूल लिपि पटना के खुदाबख्श पुस्तकालय में और दूसरी एक अन्य लिपि उदयपुर के सरस्वती भवन पुस्तकालय में उपलब्ध है।

इस ग्रन्थ के अतिरिक्त ताजकीरात–ए–तहमास्प, बायजिद बियात के संस्मरण, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में उपलब्ध है, बायजीद द्वारा रचित तारीख–ए–हुमायूँ, अबुल फजल द्वारा लिखा गया अकबरनामा, ख्वाजा निजामुद्दीन अहमद बख्शी द्वारा रचित तबकात–ए–अकबरी आदि भी मूल्यवान ग्रन्थ हैं। इन सभी ग्रन्थों की भाषा फारसी है और इन सभी की रचना बादशाह अकबर के समय में की गयी थी।

तवारीख–ए–दौलत–ए–शेरशाही– फारसी भाषा में लिखे गये इस ग्रन्थ का लेखक हसन अली खाँ को स्वीकार किया गया है। इस ग्रन्थ से हमें शेरशाह के व्यक्तित्व और चरित्र के विषय में भी ज्ञान प्राप्त होता है। शेरशाह एक व्यावहारिक व्यक्ति था, शक्ति और तलवार पर निर्भर करता था तथा अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिये प्रत्येक सम्भव साध्सान का प्रयोग करता था परन्तु साथ ही साथ वह एक संयमी और न्यायप्रिय शासक था।

तारीख–ए–शेरशाही अथवा तोहफा–ए–अकबरशाही– बादशाह अकबर के आदेश पर अब्बास खाँ सरवानी ने इस ग्रन्थ की रचना की। फारसी भाषा में लिखे गये इस ग्रन्थ में शेरशाह की वंशावली, उसके जीवन–चरित्र, व्यक्तित्व और शासन के सम्बन्ध में प्रचुर ज्ञान प्राप्त होता है। शेरशाह के पूर्वजों के विवरण से पता चलता है कि उसके वंश का कौन व्यक्ति किस समय भारत में आया, कहाँ कार्य किया और क्या कार्य किया। इसके अतिरिक्त शेरशाह के जीवन की आरम्भ

से अन्त तक की प्रायः सभी घटनाओं का विवरण इस ग्रन्थ में प्राप्त होता है। इस ग्रन्थ में शेरशाह और उसके शासन–काल के सम्बन्ध में बहुत उपयोगी स्रोत–सामग्री भी उपलब्ध कराता है। इस ग्रन्थ के रचना–काल के विषय में कुछ मतभेद है परन्तु अधिकांशतः यह माना जाता है कि इसकी रचना 1588–89 ई0 के पश्चात् हुई थी।

वाकियात–ए–मुश्ताकी– इस ग्रन्थ का रचयिता शेखर रिजकउल्लाह मुश्ताकी था। उसने फारसी भाषा में इस ग्रन्थ की रचना की थी। शेरशाह के विषय में मुश्ताकी का विवरण विस्तृत नहीं है परन्तु तब भी उसने उसके समय की विभिन्न महत्वपूर्ण घटनाओं का उल्लेख किया है तथा कुछ नवीन तथ्यों का भी विवरण दिया है। इस ग्रन्थ में शेरशाह के पुत्र इस्लामशाह और उसके उत्तराधिकारियों के बारे में भी विवरण प्राप्त होता है। यह ग्रन्थ हुमायूँ के विषय में विभिन्न महत्वपूर्ण तथ्यों का भी उल्लेख करता है।

तारीख–ए–शाही– अहमद यादगार ने इस ग्रन्थ की रचना जहाँगीर के समय में पूर्ण की। इस ग्रन्थ को ऐतिहासिक दृष्टि से अधिक विश्वसनीय स्वीकार नहीं किया गया है क्योंकि इसके विवरण बहुत कुछ किंवदन्तियों के आधार पर दिये गये हैं। इसमें तिथियों का भी अभाव है परन्तु इस ग्रन्थ की मुख्य विशेषता यह है कि इसमें अफगान–शासकों के प्रभावशाली अमीरों की सूची दी गयी है जो हमें किसी अन्य ग्रन्थ में प्राप्त नहीं होती है।

तारीख–ए–फरिश्ता– फरिश्ता पहले अहमदनगर के शासक मुर्तजा निजामशाह की सेवा में रहा और उसके पश्चात् बीजापुर के शासक इब्राहीम आदिल शाह द्वितीय की सेवा में चला गया जहाँ उसने अपने इस विख्यात ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थ की रचना में उसने विभिन्न फारसी ग्रंथों की सहायता ली। यह ग्रन्थ सम्पूर्ण भारत का इतिहास है, जिसमें सूर–वंश के इतिहास का वर्णन किया गया है। इसका अधिकांश विवरण तारीख–ए– शेरशाही पर आधारित है।

तारीख–ए–दाऊदी– इसका लेखक अब्दुल्ला था। उसने बहलोल लोदी के समय में अपने ग्रन्थ का विवरण आरम्भ किया था। परन्तु, सम्भवतया, इसकी रचना की पूर्ति जहाँगीर के काल में हुई। इस ग्रन्थ का विवरण मुख्यतया तारीख–ए–शेरशाही, वाकियात–ए–मुश्ताकी और तबकात–ए–अकबरी पर आधारित है। परन्तु कुछ ऐसी घटनाओं का भी उल्लेख है जो उपर्युक्त ग्रंथों में प्राप्त नहीं होता है। इससे प्रतीत होता है कि उपर्युक्त ग्रंथों के अतिरिक्त अन्य फारसी ग्रंथों की सहायता भी इस ग्रन्थ की रचना में ली गयी थी। इस ग्रन्थ में अब्दुल्ला ने शेरशाह के जीवन, राज्य–सम्बन्धी उसके विचार, मुगलों की दुर्बलताएँ, अफगानों की पारस्परिक फूट को उनकी मुख्य दुर्बलता बताना, शेरशाह का हुमायूँ से संघर्ष, चन्देरी और मारवाड़ के उसके अन्य अभियान, शेरशाह के लोकहितकारी कार्य आदि का वर्णन किया गया है। इस ग्रंथ में इतिहास की घटनाओं के क्रम और उनकी तिथियों का ध्यान नहीं रखा गया है परन्तु इस त्रुटि के होते हुए भी ऐतिहासिक दृष्टि से यह ग्रन्थ मूल्यवान माना गया है।

अकबरनामा– भारतीय इतिहास में मुगल सम्राट् अकबर का महत्वपूर्ण स्थान है। उसकी संगठन शक्ति और प्रशासनिक क्षमता अद्वितीय थी। धार्मिक उदारता के आधार पर शासन की नींव रखना इस बात का प्रमाण है कि वह एक दूरदर्शी एवं विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न सम्राट था। इस महान् सम्राट के शासन की जानकारी के लिए प्रामाणिक आधार–ग्रन्थों में 'अकबरनामा' महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। अकबरनामा 1602 के आरम्भ तक का अर्थात् अकबर के 46वें शासकीय वर्ष के अन्त तक का वर्णन करता है। 47वें शासकीय वर्ष से लेकर अकबर की मृत्यु तक का वर्णन इनायत

उल्लाह द्वारा लिखा गया है।[3] अकबरनामा को तीन भागों में विभाजित किया गया है– प्रथम भाग में तैमूर से लेकर हुमायूँ तक के मुगल–वंश के इतिहास का वर्णन किया गया है। दूसरे तथा तीसरे भाग में अबुल फजल ने 1602 ई0 में हुई अपनी मृत्यु के समय तक के अकबर के शासनकाल के इतिहास का वर्णन किया है। 1602 ई0 तक के मुगल–वंश के इतिहास का ज्ञान प्राप्त करने में अकबरनामा एक मुख्य स्रोत ग्रन्थ माना गया है।

आईन–ए–अकबरी– अबुल फजल का यह ग्रनथ भी तीन भागों में विभाजित है। इस ग्रन्थ में अकबर की शासन–व्यवस्था और उससे सम्बन्धित नियमों और कानूनों का विस्तृत रूप से वर्णन किया गया है। इसमें राजकीय खजाना, मुद्रा–व्यवस्था, हरम, चित्रशाला, शस्त्रशाला, अश्वशाला, दरबार के नियम, बादशाह की दिनचर्या, सैनिक और असैनिक कर्मचारियों के वेतन, उनके पद तथा उनका वर्गीकरण, वस्तुओं के मूल्य, न्याय–व्यवस्था, लगान–व्यवस्था, आय और व्यय के साधन, अकबर के नैतिक उपदेश, दीन–ए–इलाही का आरम्भ किया जाना और उसके नियम तथा उद्देश्य, बाहर से हुए आक्रमण, विदेशी यात्रियों का आना, मुस्लिम सन्तों और उनके विभिन्न सम्प्रदाय, हिन्दू विद्वान् तथा उनके ज्योतिष, दर्शन तथा साहित्य का ज्ञान आदि का वर्णन किया गया है। इस ग्रन्थ में अबुल फजल ने अपनी वंशावली और जीवनकथा भी लिखी है।

रुकात–ए–अबुल फजल– 1913 ई0 में नवल किशोर प्रेस, लखनऊ ने इस पुस्तक को प्रकाशित किया था। इसमें उन पत्रों का संग्रह है जो अबुल फजल ने अपने पिता, माता, भाई, अकबर और उसकी पत्नियों और पुत्रियों तथा शाहजादा मुराद और दानियाल आदि को लिखे थे। ये पत्र भी अकबर के समय के इतिहास को जानने में बहुत सहायता प्रदान करते हैं। इस कारण ऐतिहासिक दृष्टि से भी इस ग्रन्थ का बहुत महत्व है।

इंशा–ए–अबुल फजल– यह बादशाह अकबर द्वारा अबुल फजल से लिखाये गये और उसके स्वयं के द्वारा लिखे गये पत्रों का संग्रह है।

तबकात–ए–अकबरी– इस ग्रन्थ की रचना ख्वाजा निजामुद्दीन अहमद ने की थी तथा इसका प्रकाशन 'बंगाल की एशियाटिक सोसायटी' के द्वारा किया गया। ख्वाजा निजामुद्दीन अहमद उच्च कुल का व्यक्ति था। उसके पिता ने बाबर और हुमायूँ के शासनकाल में श्रेष्ठ पद प्राप्त किये थे और उसने स्वयं अकबर के मीर बख्शी के पद पर कार्य किया। उसके राज्य के प्रतिष्ठित व्यक्तियों से व्यक्तिगत सम्बन्ध थे, अबुल फजल उसे पसन्द करता था और अपने समय का एक प्रमुख विद्वान अब्दुल कादिर बदायूँनी उसका मित्र था। इस ग्रन्थ की रचना में तारीख–ए–यमीनी, तबकात–ए–नासिरी, तारीख–ए–फिरोजशाही, तारीख–ए–मुबारकशाही, बाबरनामा, वाकियात–ए– मुश्ताकी, अकबरनामा आदि विभिन्न ग्रन्थों की सहायता ली। इस कारण यह ग्रन्थ एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक ग्रन्थ बन सका।

तारीख–ए–बदायूँनी– इस ग्रन्थ के लेखक अब्दुल कादिर बदायूँनी था जो मुख्यतया बदायूँनी मात्र के नाम से विख्यात हुआ। बदायूँनी फारसी, अरबी तथा संस्कृत का विद्वान था। उसने अरबी और संस्कृत की विभिन्न पुस्तकों का फारसी में अनुवाद किया। संस्कृत के ग्रन्थों में से उसने महाभारत, रामायण, राजतरंगिणी, सिंहासन बत्तीसी आदि का फारसी में अनुवाद किया था। उसने कुछ मूल रचनाएँ भी की थी। इस ग्रन्थ का ऐतिहासिक स्रोत–ग्रन्थों में एक महत्वपूर्ण स्थान है।

तुजुक–ए–जहाँगीरी– यह जहाँगीर की आत्मकथा है। अपने सिंहासन पर बैठने के समय से लेकर अपने शासनकाल के सत्रहवें (17वें) वर्ष की घटनाओं को जहाँगीर ने स्वयं लिखा था। उसके पश्चात् स्वास्थ्य खराब हो जाने के कारण उसने इस उत्तरदायित्व को अपने बख्शी मोतमिदखाँ को सौंप दिया जिसने उसे केवल जहाँगीर के शासनकाल के उन्नीसवें (19वें) वर्ष के आरम्भ तक ही लिखा। यह ग्रन्थ हमें जहाँगीर के शासनकाल की राजनीतिक घटनाओं, उसके और उसके पिता के धार्मिक विचारों, उसके शासन, उस समय की भौगोलिक परिस्थितियों, जहाँगीर की रूचियों और उनकी पूर्ति के लिये किये गये उसके प्रयत्नों आदि विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालकर उस समय के इतिहास और संस्कृति को जानने में सहायता प्रदान करता है।

इकबालनामा– इस ग्रन्थ के लेखक मोतमिदखाँ ईरान का निवासी था। उसने भारत आकर जहाँगीर को अपनी सेवाएँ अर्पित कीं और अपनी योग्यता से मीरबख्शी के पद को प्राप्त किया। यह ग्रन्थ तीन भागों में विभाजित है– इसके पहले भाग में तैमूर–वंश के इतिहास को दिया गया है जिसमें बाबर और हुमायूँ के समय के इतिहास का वर्णन है। इसके दूसरे भाग में अकबर के समय के इतिहास को तथा तीसरे भाग में जहाँगीर के समय के इतिहास को दिया गया है।

मुन्तखबुत्तवारीख– इस ग्रन्थ के लेखक अब्दुल कादिर बदायूँनी का जन्म 1540 ई0 को टोडा भीम, जयपुर में हुआ था। उसकी प्रारम्भिक शिक्षा बसावर तथा बाद में शेख मुबारक नागौरी से, अबुल फजल तथा फैजी के साथ आगरा में हुई। अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् वह बदायूँ चला आया। वहाँ वह पटियाली के जागीरदार हुसेन खाँ के पास 9 वर्ष रहा। 1574 ई0 में वह अकबर के दरबार में पहुँचा। उसे एक हजार बीघे की भूमि मद्दये–मआश (जीविकोपार्जन हेतु दान) के रूप में दी गई। अब्दुल कादिर विद्वान् था। वह संस्कृत भी जानता था। इससे रामायण, महाभारत के फारसी अनुवाद में भी सहायता ली गई। उसने कई अन्य ग्रनथों की रचना की जिनमें 'मुन्तखबुत्तत्त्वारिख' सबसे महत्त्वपूर्ण है। इसमें गजनी वंश से प्रारम्भ कर अकबर के राज्य के चालीसवें वर्ष तक की घटनाओं का वर्णन है। रेंकिग तथा लो ने इसका अंग्रेजी अनुवाद किया है जो एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल द्वारा प्रकाशित है। मूल ग्रन्थ भी वहीं से प्रकाशित हुआ है।

तारीख–ए–खाफीखाँ– यह ग्रन्थ बाबर द्वारा भारत पर आक्रमण किये जाने से आरम्भ किया गया है और उत्तरकालीन मुगल बादशाह मुहम्मदशाह के पन्द्रहवें वर्ष के शासनकाल तक के इतिहास का वर्णन करता है। इसकी रचना हाशिम खाफीखाँ ने की जो औरंगजेब के शासनकाल में एक सम्मान तपदाधिकारी रहा और जिसे हैदराबाद के प्रथम शासक निजाम–उल–मुलक ने दीवान का पद दिया। हासिम खाफीखाँ ने इस ग्रन्थ की रचना औरंगजेब के शासनकाल में ही आरम्भ कर दी थी परन्तु उसने अपने इस कार्य को छुपाकर रखा। बाद में बादशाह मुहम्मदशाह को उसने यह ग्रन्थ भेंट किया। मुगल इतिहास को जानने के लिये इस ग्रन्थ को मुख्य ग्रन्थों में से एक स्वीकार किया गया है।

नुस्ख–ए–दिलकुशा– इस ग्रन्थ के रचयिता भीमसेन ने समय–समय पर मुगल सरदार दाऊदखाँ, जोधपुर के शासक जसवन्तसिंह और बुन्देला सरकार दलपतराव की सेवा में कार्य किया। उसने फारसी भाषा का अच्छा अध्ययन किया था। अपने बाद के जीवन में उसने अपने इस ग्रन्थ को लिखा। हस्तलिखित रूप में यह ग्रन्थ लन्दन के ब्रिटिश म्यूजियम में सुरक्षित है।

फारसी में लिखा गया यह ग्रन्थ औरंगजेब के समय के इतिहास को जानने में बहुत सहायता प्रदान करता है।

खुलासात–उत–तवारीख– इस ग्रन्थ के लेखक सुजानराय पटियाला का रहने वाला था। उसने विभिन्न मुगल अधिकारियों की सेवा में मुंशी का कार्य किया। उसने दावा किया कि उसने अपने इस ग्रन्थ की रचना बहुत से प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर की। उसने उन ग्रन्थों की सूचना भी अपने ग्रन्थ में दी है।

संदर्भ :

1. बी0ए0 स्मिथ : अकबर द ग्रेट मुगल, पृ0 4
2. सी0एच0 फिलिप्स (सं0) हिस्टोरियन्स ऑव इण्डियन पाकिस्तन एण्ड सीलोन, पृ0 142
3. बी0ए0 स्मिथ, पूर्वोद्धृत, पृ0 337–338.

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

हिन्दी साहित्य में नारी
(चित्रा मुद्गल के उपन्यासों में चित्रित नारी मनोविज्ञान के विशिष्ट सन्दर्भ में)

राजेश सिंह*

नारी, नर की अर्धांगिनी ही नहीं वरन् उसकी शक्ति संवाहिका भी है। समाज की गतिमान स्थिति नारी की ऊर्जा से ही परिचालित होती है, जिसका प्रतिफल किसी भी समाज की विकासात्मक यात्रा में देखा जा सकता है। यह भी सत्य है कि समाज में स्त्री–पुरुष दोनों की अपनी–अपनी महत्ता है या यह भी कह सकते हैं कि ये दोनों एक–दूसरे के पूरक है। साहित्य ने इस साहचर्य को समान भाव से स्वीकार किया है तथा समाज की उत्कृष्टता की दृष्टि से रचनाकारों ने भी नारी को पर्याप्त संबल प्रदान किया है।

प्राचीन भारतीय साहित्य एवं संस्कृति में नारी का महत्त्वपूर्ण एवं सम्मानित स्थान है। वैदिक कालीन भारतीय संस्कृति में नारी का सम्मानित स्थान इसका साक्षात् प्रमाण है। उत्तर वैदिक काल से सांस्कृतिक अपघटन प्रारम्भ हो गया था तत्पश्चात् नारी के सम्मानित स्थान एवं सम्मान में निरन्तर कमी आरम्भ हो गयी। हिन्दी साहित्य : वैचारिक पृष्ठभूमि में प्रकाशित 'स्त्री–विमर्श और हिन्दी साहित्य' लेख की लेखिका प्रो0 रोहिणी अग्रवाल कहती हैं– ''स्त्री को लेकर भारतीय साहित्य, दर्शन एवं धर्मशास्त्रों में चिंतन की एक सुदीर्घ परम्परा रही है, जहाँ स्त्री की सम्पूर्ण सत्ता को भोग्या, अबला, ललना, कामिनी, रमणी आदि विशेषणों के साथ हेय एवं पुरुष–सापेक्ष रूप में चित्रित किया गया है। इसका प्रमुख कारण यह है कि प्राचीन एवं मध्ययुगीन साहित्य और दर्शन के रचयिता टीकाकार, सभी पुरुष थे। दूसरे मातृसत्तात्मक व्यवस्था के अपदस्थ होने के बाद से समाज में पितृसत्तात्मक व्यवस्था का विधान रहा है, फलतः स्वाभाविक था कि पुरूष के संदर्भ में पुरुष–दृष्टि द्वारा स्त्री को देखा जाता इसलिए पुरूष की श्रेष्ठता, सम्मान, स्थान, शक्ति, अधिकार और स्वार्थ की रक्षा के लिए धर्मशास्त्रों ने अनेक ऐसे आप्तवचनों, सूत्रों, श्लोकों की रचना की, जिन्होंने स्त्रियों के जीवन को अनेक सामाजिक–नैतिक अर्गलाओं में बांध दिया। उदाहरणार्थ कुछ बानगियां प्रस्तुत हैं–

'ऐतरेय ब्राह्मण' ग्रन्थ उसी नारी को उत्तम समझता है, जो अपने पति को संतुष्ट करती है, पुत्र, संतान को जन्म देती है और पति से बढ़–चढ़ कर कभी कुछ नहीं कहती।

'तैत्तरीय संहिता' के अनुसार चूंकि यज्ञ में एक दंड (लाठी) को दो वस्त्रों के टुकड़ों से लपेटा जाता है, अतः पुरुष को दो पत्नी ग्रहण करने का अधिकार है। चूंकि एक कपड़े के टुकड़े के दो लाठियों में नहीं लपेटा जाता इसलिए नारी को द्विपतित्व की मनाही है।

'आपस्तम्ब धर्मसूत्र' के अनुसार नारी के लिए उपनयन संस्कार, होम–हवन, वेद–अध्ययन निषिद्ध हैं। कुलवधू एवं गणिका, दोनों रूपों में स्त्री का मात्र एक ही लक्ष्य है– पुरूष की भोग–तुष्टि करना। इसी तरह मुस्लिम धर्मग्रन्थ 'सूरा बकरा' की आयत 223 में स्त्री को उसके पति द्वारा चरने के लिए तैयार 'अनाज का खेत' कहा गया, तो 'बहिष्त की कुंजी' में स्त्री को

* जे0आर0एफ0 शोधार्थी, हिन्दी विभाग, हेमवती नन्दन बहुगुणा, गढ़वाल केन्द्रीय विश्वविद्यालय श्रीनगर, उत्तराखण्ड

कुछ नसीहतें दी गई हैं कि ''आपके पति आप को जैसा चलाना चाहें, आप उसी तरह चलिए और वे जैसा भी करें, आप उसी में संतुष्ट रहें। किसी भी काम में और किसी भी बात में उनके खिलाफ मत जाइए'' तथा जिसका पति पागल, जाहिल या बेवकूफ है उसके लिए उसे ही आसमान का चांद मानना चाहिए। उसके पैरों तले सिर झुकाकर जिन्दगी काटने से ही दूसरे जन्म में बहिष्त का अमन–चैन भोग सकेंगी।'' उल्लेखनीय है कि स्त्री को लेकर भारत की नहीं, विष्व की समूची सभ्यताएं, संस्कृतियां एवं साहित्य निरपेक्ष–चिंतन करने में असमर्थ रहें हैं। इनमें प्लेटों, अरस्तू, हीगल, कांट आदि उल्लेखनीय हैं।[1]

'स्त्रीत्व' की अवधारणा से जुड़ा साहित्य–सृजन दोहरे धर्म को निभाता है। एक धर्म यातना के उद्घाटन का है। स्त्री की यातना जन्म से, भ्रूण हत्या से, स्त्री–पुरूष के बीच भेदभाव से शुरू होती है। षिक्षा से वंचित होने, प्रतिबन्ध–मय वस्त्र पहनने, शरीर–प्रदर्षन से बचने, पुरूषों के सम्पर्क में से प्रतिबन्धित होने, बाल–विवाह का षिकार होने, परिवार के दबाव में रहने, यौन–शोषण का षिकार बनने, घर–गृहस्थी को सम्भालने व चारदीवारी में बंद रहने, आर्थिक–सामाजिक दमन को बर्दाष्त करने, पितृसत्ता की अधीनता स्वीकार करने में इस यातना का विकास होता है तथा अपने अधिकारों विषेषतः अपने शरीर पर अधिकार से वंचित होने में इस यातना की पराकाष्ठा होती है। 'स्त्रीत्व' से जुड़ी सर्जनात्मकता दूसरा धर्म प्रतिरोध तथा संघर्ष का निभाती है। यह है– अन्याय का विरोध तथा न्याय की मांग का धर्म–निर्वाह।[2]

स्त्री–विमर्ष चिंतन की इस रूग्ण–रूढ़ परिपाटी का विरोध करता है वस्तुतः यह आधुनिक युग की उदारवादी सकारात्मक दृष्टि का प्रतिफलन है। इसे समझने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर घटने वाली चार प्रमुख घटनाओं को रेखांकित करना बेहद जरूरी है। एक, 1789 की फ्रांसीसी क्रांति, जिसने स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व जैसी चिरवांछित मानवीय आकांक्षाओं को नैसर्गिक मानवीय अधिकार की गरिमा देकर राजतंत्र और साम्राज्यवाद के बरअक्स लोकतांत्रिक शासन–व्यवस्था के स्वस्थ और अभीप्सित विकल्प को प्रतिष्ठित किया। दूसरे, भारत में राजा राममोहन राय की लम्बी जद्दोजहद के बाद 1829 में सती–प्रथा का कानूनी विरोध, जिसने पहली बार स्त्री के अस्तित्व को मनुष्य रूप में स्वीकारा। तीसरे 1848 में सिनेका फॉल्स (न्यूयार्क) में ग्रिमके–वहनों की रहनुमाई में आयोजित तीन सौ स्त्री–पुरूषों की सभा, जिसने स्त्री–दासत्व की लम्बी श्रृंखला को चुनौती देते हुए, स्त्री–मुक्ति आन्दोलन की नींव रखी और चौथे 1867 में प्रसिद्ध अंग्रेज दार्षनिक और चिंतन जॉन स्टुअर्ट मिल द्वारा ब्रिटिष पार्लियामेंन्ट में स्त्री के वयस्क मताधिकार के लिए प्रस्ताव रखा जाना, जिसने कालान्तर में स्त्री–पुरूष के बीच स्वीकारी जाने वाली अनिवार्य कानूनी और संवैधानिक समानता की अवधारणा को बल दिया। संयुक्त रूप में ये चारों घटनाएं एक तरह से विभाजक रेखाएं हैं, जिसके एक ओर पूरे विष्व में स्त्री–उत्पीड़न की लगभग एक–सी सार्वभौमिक परम्परा है, तो दूसरी ओर इससे मुक्ति की लगभग एक–सी तड़प और अकुलाहट भरी संघर्ष कथा। स्त्री–विमर्ष अपनी प्रपत्ति में स्त्री और पुरूष, दो भिन्न जैविक इकाइयों को परस्पर–पूरक या अन्योन्याश्रित जैसे विषेषणों से ढांप कर विष्लेषित नहीं करता, वरन् दोनों की स्वतंत्र अस्मिता एवं सत्ता पर बल देते हुए। एक जीवन्त मानवीय इकाई के रूप में अध्ययन करने का नव–संस्कार देता है। यह स्त्री को भोग्या–वस्तु, श्रद्धा–योनि, किसी भी कोटि में रखे जाने की परम्परागत मान्यताओं का विरोध करते हुए उन तमाम समाजषास्त्रीय संरचनाओं की पड़ताल कर लेना चाहता है, जो स्त्री को हीन और दोयम दर्जे का प्राणी घोषित करती है। वर्जीनिया वुल्फ (अ रूम ऑव वन्स ओन) मानती है कि पितृसत्तात्मक व्यवस्था के स्त्री विषयक आप्त वचनों को शक की निगाह से देखा जाना चाहिए, क्योंकि वे भावना के लाल प्रकाष' में

लिखी गई उक्तियां हैं, 'सत्य के श्वेत प्रकाष' में नहीं। सीमोन द बउवार (द सैकिंड सैक्स) वर्जीनिया वुल्फ से पूरी तरह सहमत हैं कि ''अब तक औरत के बारे में पुरूष ने जो कुछ भी लिखा, उस पूरे पर शक किया जाना चाहिए क्योंकि लिखने वाला न्यायाधीष और अपराधी दोनों हैं।'' वर्जीनिया वुल्फ की मान्यता है कि जो लोग स्त्रियों की हीनावस्था पर कुछ ज्यादा ही जोर देते हुए, दरअसल वे अर्धचेतनावस्था में उन्हें हीन सिद्ध करके अपनी श्रेष्ठता बनाने की कवायद–भर कर रहे होते हैं।[3]

नारीवाद का सम्बन्ध स्त्रियों से जुड़े सवालों से तो है ही लेकिन नारीवाद इन्हीं सवालों तक सीमित नहीं है नारीवादियों की चिंता का घेरा बलात्कार, पत्नी–प्रताड़ना, फैमिली प्लानिंग व समान वेतन की संकरी परिभाषा में सिमटा हुआ नहीं है। हममें से अनेक का विष्वास है कि संसार के हर मुद्दे का सम्बन्ध स्त्रियों से है क्योंकि हर बात, हर घटना उन्हें प्रभावित करती है। वे स्त्री होने के साथ–साथ मनुष्य हैं, संसार की आधी जनता हैं, अतः हर विषय उनसे सम्बन्ध रखता है। नारीवादी सभी प्रकार की असमानता, दबाव व दमन हटाकर राष्ट्रीय व अर्न्तराष्ट्रीय रूप से समतामूलक न्यायिक सामाजिक–आर्थिक व्यवस्था से मुक्त समाज की स्थापना करना चाहती हैं। अतः सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक सभी मुद्दे उनके अपने हो जाते हैं। प्रत्येक मुद्दे पर स्त्रियों का एक दृष्टिकोण है और रहेगा तथा नारीवादी चाहती हैं कि व्यक्तिगत व राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को उस नारीवादी दृष्टिकोण से जोड़ा जाय। अतः औरतों को हर विषय पर अपना दृष्टिकोण निष्चित करना चाहिए, चाहे वह आणविक युद्ध हो या दो देषों के बीच की लड़ाई, जातीय या सांप्रदायिक दंगे हों या राजनीतिक आर्थिक व विकास सम्बन्धी नीतियां, मानव अधिकार या नागरिक अधिकार हों अथवा पर्यावरण सम्बन्धी मुद्दे। उदाहरण के लिए भारतीय समाज में जाति व्यवस्था धार्मिक कट्टरता और सांप्रदायिकता की समस्या अनिवार्य रूप से पितृसत्ता से जुड़ी हुई है। इसलिए जातीय गैर बराबरी और धार्मिक कट्टरता से लड़ना भी नारीवादियों का एक जरूरी काम है।[4]

भारतीय नवजागरण–आन्दोलन का प्रभाव तद्युगीन हिन्दी–साहित्य पर इस रूप में परिलक्षित किया जा सकता है कि अब स्त्री रीतिकालीन नायिका की भांति योग्या वस्तु के रूप में चित्रित किए जाने की अपेक्षा एक ठोस पारिवारिक–सामाजिक इकाई के रूप में चित्रित की जाने वाली। समाज में न केवल उसके 'होने' को महसूस किया जाने लगा, वरन् उसकी स्थिति में वांछित सुधार लाने के लिए अनेक सजग प्रयास भी किये जाने लगे। पं0 गौरीदत्त का उपन्यास 'देवरानी जेठानी की कहानी' हो या श्रद्धाराम फिल्लौरी का उपन्यास 'भाग्यवती', हरिऔध के 'प्रियप्रवास' की नायिका राधा हो या मैथिलीषरण गुप्त की यशोधरा–उर्मिला, स्त्री की भूमिका को राष्ट्र, समाज एवं परिवार के कल्याण के साथ जोड़ कर देखा जाने लगा। इसलिए विवाह प्रथा, स्त्रीषिक्षा, स्त्री धन, विधवा की स्थिति, स्त्री के दायित्व, स्वाधीनता संग्राम में स्त्री की भागीदारी जैसे विषयों पर केन्द्रित रचनाओं की बाढ़–सी आ गई, जिनमें बंग महिला, सुभद्राकुमारी चौहान, षिवरानी देवी से लेकर प्रेमचन्द्र, जैनेन्द्र का अधिकांष कथा साहित्य, भारतेंदु–मंडल के कवियों से लेकर प्रसाद के नाटकों का स्थान विषेष उल्लेखनीय है। इस दौरान स्त्री–केन्द्रित रचनाओं की प्रमुख प्रवृत्तियां थी..... मां–पत्नी–गृहिणी के रूप में स्त्रियों को उनके दायित्व के प्रति सचेत करना, स्त्री–समस्याओं का चित्रण करना, परिवार व समाज में स्त्री की महती भूमिका का रेखांकन तथा स्त्री के मनोजगत में उत्तरकर व्यक्ति रूप में उसकी आकांक्षाओं और संघर्षो का आंकलन करना। जैनेन्द्र के उपन्यासों में अन्तिम प्रवृत्ति की अनुगूंज स्पष्ट सुनी जा सकती है, किन्तु उनका विष्लेषण आज के स्त्री–विमर्ष से उस अर्थ में भिन्न है कि स्त्री के नजरिए से पितृसत्तात्मक

व्यवस्था की पड़ताल करने की अपेक्षा वे पितृसत्तात्मक व्यवस्था की ओर से स्त्री के विद्रोही तेवरों को कुचलने की कोषिष करते हैं। महादेवी वर्मा अपने समकालीनों से इस अर्थ में भिन्न हैं कि पहली बार 'श्रृंखला की कड़ियां' तथा 'अतीत के चलचित्र' में स्त्री के करूण–षोषण चित्रों के जरिए वे पितृसत्तात्मक व्यवस्था के दमनकारी स्वरूप पर विचार करने की आवष्यकता पर बल देती हैं।[5] वर्तमान समय में अनेक महिला लेखिकाओं ने स्त्रियों की विभिन्न समस्याओं को अपनी रचना की विषयवस्तु बनाकर स्त्रियों के शोषण एवं वेदना को अभिव्यक्ति प्रदान करने के साथ–साथ समाज में जागृति की संजीवनी प्रवाहित किया है।

सर्वप्रथम उषा प्रियंवदा, मन्नू भंडारी एवं कृष्णा सोबती के साथ स्त्री ने केन्द्रीय स्थिति पाकर अपनी समस्याओं पर विचार करना शुरू किया, किन्तु 'आपका बंटी' (मन्नू भंडारी), 'पचपन खंभे : लाल दीवारें' (उषा प्रियंवदा), 'डार से बिछुड़ी' (कृष्णा सोबती) उपन्यासों एवं 'त्रिषंकु', 'यही सच है', 'वापसी', मछलिया, बादलों के घेरे जैसी कहानियों में सम्बन्धों की बारीकियों को गुनने–समझने की निजी दृष्टि वे विकसित नहीं नहीं कर पाई। उनकी त्रासदी यह थी कि पुरूष–निर्मित व्यवस्था के प्रति असहमत होते हुए भी उनके पास न अपनी मुक्ति का मार्ग था, न औजार और न ही मुक्ति–संघर्ष का साहस। इस जड़ीभूत अवस्था को कृष्णा सोबती के उपन्यास 'मित्रों मरजानी' ने दूर करने का प्रयास किया, तो इससे प्रेरणा लेकर 70 के दषक में रचा जाने वाला अधिकांष स्त्री–लेखन अनिवार्यतः विवाह–विरोधी, परिवार–विरोधी, आत्मकामी हो गया। इसके पीछे उग्र उन्मूलनवादी स्त्रीवाद का प्रभाव परिलक्षित किया जा सकता है, जो उस पूरे दौर में पूरे विष्व को आक्रांत किए रहा। इसी के परिणामस्वरूप भारत में उस समय सभा–जलसों, बौद्धिक गोष्ठियों एवं समाज–साहित्य में वही स्त्री आधुनिक एवं मुक्त मानी जाती थी, जो बिन्दी–सिंदूर का विरोध करें, पुरूर्षो के साथ बराबरी का मर्दाना व्यवहार करें, खुलेआम सिगरेट पिए। धीरे–धीरे यह अनुभव किया जाने लगा कि भीतर के दमित आक्रोष की मुखर अभिव्यक्ति के रूप में यह प्रवृत्ति भले ही स्वाभाविक हो, किन्तु इसके आधार पर स्त्री–आन्दोलन, समाज एवं साहित्य को सकारात्मक ऊँचाई नहीं दी जा सकती। अतः कुसुम अंसल, शषिप्रभा षास्त्री, मालती जोषी, कृष्णा अग्निहोत्री, दीप्ति खंडेलवाल आदि के पश्चात् पुरूष के प्रति द्वेषवादी दृष्टि को दरकिनार करते हुए परिपक्व दृष्टि से जीवन और सम्बन्धों को समझा जाने लगा, जिसके परिणाम स्वरूप चितकोबरा, अनारों, दिलोदानिष, महाभोज इदन्नमम्', चाक, अल्मा कबूतरी, आवां, कथा सतीसर, कलि कथा बापा बाइपास जैसी रचनाए सामने आई। इस दौर की प्रमुख लेखिकाएं है– मृदुला गर्ग, मैत्रेयी पुष्पा ममता कालिया, मंजुल भगत, राजी सेठ, चित्रा मुद्गल, चंद्रकांता, अलका सरावगी, गीतांजलि श्री, मधु कांकरिया लवलीन आदि। आज स्त्री कथा–साहित्य के प्रमुख सरोकार हैं– दांपत्य सम्बन्धों के वर्तमान ढांचे के प्रति शेष प्रकट करते हुए पति से संवेदनषीलता की मांग, परिवार एवं मातृत्व में आस्था, पर्यावरण की रक्षा का अतिरिक्त दायित्व, उपभोक्तावाद को लेकर चिंता अपनी जातीय अस्मिता एवं इतिहास को जानने की आकांक्षा यौन–शोषण एवं बलात्कार को कलंक मानने की अपेक्षा अपराधियों को चीन्हने पर बल, भगिनीवाद का प्रसार तथा साझी दुनिया का स्वप्न।[6]

चित्रा मुद्गल के उपन्यासों में चित्रित नारी– मनोविज्ञान

वर्तमान समय में नारी की विभिन्न समस्याओं पर अनेक कृतियाँ रचीं जा रही हैं, अनेक स्त्रियाँ स्वयं अपनी अनुभूति, दर्द, शोषण को मर्मस्पर्षी रचना का रूप प्रदान कर रही हैं, उन्हीं लेखिकाओं में चित्रा मुद्गल जी का नाम भी सितारे की तरह अपनी आभा बिखेर रहा है। प्रसिद्ध

लेखिका के0 वनजा अपनी रचना 'चित्रा मुद्गल : एक मूल्यांकन' में लिखती हैं– ''चित्रा मुद्गल, यह नाम मेरे मन में अनेक भावों को आन्दोलित करता है। स्नेह, वात्सल्य, करूणा, सौन्दर्य, आनन्द, प्रतिभा, ऊर्जा, सद्भावना, सदाचरण जैसे कितने गुणों का समवेत हैं वे।[7]

चित्रा मुद्गल के प्रमुख उपन्यासों में एक जमीन अपनी, गिलिगडु, आवां, पो0 बाक्स न0 203 नाला–संपारा हैं। चित्रा जी के सभी उपन्यास मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर सृजित हैं, जिनमें नारी मनोविज्ञान का अत्यन्त सुन्दर चित्रण किया गया है।

एक जमीन अपनी में चित्रित नारी– मनोविज्ञान –

'एक जमीन अपनी' उपन्यास में विज्ञापन कम्पनियों से जुड़कर काम करने वाली दो नारियों की मनोवैज्ञानिक कथा है। बाजार की चकाचौंध में स्त्री स्वतंत्रता का सकारात्मक और नकारात्मक पक्ष प्रतिबिम्बित है। इस उपन्यास के दो नारी पात्र हैं अंकिता और नीता। दोनों विज्ञापन के क्षेत्र में कार्यरत हैं। अंकिता प्रतिभा सम्पन्न है और अपनी क्षमता, कार्य कुषलता एवं प्रतिभा के बल पर सफलता प्राप्त करना चाहती है, जबकि नीता अपने सौन्दर्य प्रदर्षन के बल पर सफलता प्राप्त करना चाहती है। अंकिता को शुरू–शुरू में इस क्षेत्र में कोई स्थान नहीं मिलता लेकिन अन्ततः वह सफल हो जाती है। वह प्रसिद्ध व्यवसायी भोजराज की विज्ञापन कम्पनी 'माध्यम' की कार्यकारिणी अधिकारी बन जाती है। नीता इस संसार की चमकीली ज्वाला में स्वयं फंसकर पतंग के समान जल गई। इस क्षेत्र के छद्मरूपों को उसने सत्य माना और अपना अस्तित्व ही समाप्त कर लिया।

इस उपन्यास में दो विचारधाराओं का मनोवैज्ञानिक संघर्ष दिखाया गया है, एक भारतीय विचार धारा जिसका प्रतिनिधित्व अंकिता करती है दूसरी पाष्चात्य विचारधारा जिसकी प्रतिमूर्ति नीता है। नीता, अंकिता से कहती है–

''महत्त्वपूर्ण पदों को वे लोग सुषोभित कर रहे हैं जो सिर्फ ग्लैमरस है। यह ग्लैमर की दुनिया है अंकू। यहाँ जीने की, जी पाने की पहली शर्त है– विषिष्ट दिखना, विषिष्ट करना, विषिष्ट होना, विषिष्ट बनना, जो वास्तविकता नहीं है।''[8]

उपरोक्त संवाद से नीता की विचारधारा स्पष्ट हो जाती है कि वह विषिष्ट दिखना चाहती, विषिष्ट बनने के लिए इसलिए वह मांसल शारीरिक प्रदर्षन और उच्छृंखलता का मार्ग अपनाती है। 'आम्रपाली' पोषाक के विज्ञापन की फिल्म शूटिंग के संदर्भ में नीता के पूरे शारीरिक सौन्दर्य की नग्नता को कैमरामैन ने अपने कैमरे में ले लिया। यहां नीता लोगों की दृष्टि में आकर्षण का केन्द्र या गिद्ध दृष्टियों के बीच मांस का टुकड़ा बन जाती है। नीता की सफलता पर सब लोग बधाइयां दे रहे हैं, लेकिन इस नग्नता प्रदर्षन को स्वीकारने के लिए अंकिता तैयार नहीं हैं, उसको अच्छी तरह मालूम है कि यह सामाजिक हित के अनुकूल नहीं है। अंकिता, नीता को समझाते हुए कहती है– ''जितना अधिकार उसे अपनी तरह से जीने का है, सोचने का है, करने का है, औरों को भी है। उसे आपत्ति नहीं होनी चाहिए। हो तो उसे अपने तक ही सीमित रखे। नहीं तो ये तर्क कन्नी काटने की सहूलियते हैं। स्वयं को लालीपॉप थमाकर बच्चे की भांति बहलाने का उपक्रम ताकि नागरिक जिम्मेदारी से बचा जा सके। वह कोई कार्य निजी नहीं होता, जो सार्वजनिक हित–अहित को प्रभावित करता है। प्रतिक्रिया प्रकट करने का उसे पूरा अधिकार है और करना चाहिए। अपने कमरे के भीतर आप नंगे रहिए, कौन झांकने, टोकने जाता है, किसे आपत्ति हो सकती है, मगर घर के बाहर आप मात्र एक व्यक्ति नहीं होते, समाज होते हैं।[9]

उपरोक्त संवाद से स्पष्ट होता है कि अंकिता भारतीय विचारधारा की महिला है। इस उपन्यास में चित्रा जी ने नारी मनोविज्ञान का अत्यन्त सुन्दर चित्रण किया है–

''पुरूष के लिए जीवन का सम्पूर्ण अर्थ स्त्री मात्र नहीं होती, स्त्री चाहे जितनी आगे बढ़ जाए–पद, प्रतिष्ठा, ख्याति अर्जित कर ले, उसका पूरा जीवन एक अदद पुरूष क्यों हो उठता है।''[10]

आवाँ में चित्रित नारी– मनोविज्ञान –

आवां उपन्यास एक मनोवैज्ञानिक उपन्यास है जिसमें वर्तमान समय के महानगरीय जीवन की त्रासदी, अभाव एवं स्त्री–मनोव्यथा, संवेदना एवं शोषण का सामाजिक आइनां है जिसमें महानगरीय जीवन की त्रासदी एवं पीड़ा भोगती, पुरूष सत्ता के त्रास से तार–तार होती तथा परिवार व समाज की रूढ़ मान्यताओं की वजह से प्रताड़ित होते उनके स्त्री–पात्र निरन्तर अपने अस्तित्व की सार्थकता हेतु जीवन तलाषते दिखाई देते हैं।

इस उपन्यास की मुख्य पात्र नमिता है। अन्ना साहब के व्यवहार से खिन्न एवं अतृप्त होकर नमिता ने 'कामगार आधाड़ी' को छोड़ा था उसके बावजूद भी इसके मन में अन्ना साहब की छवि की अमिट छाप अंकित थी, इसलिए जब पवार अन्ना साहब के खिलाफ बोल देता है तो उसे वह स्वीकार नहीं करती। जब 'रिचर्डसन बेवरी' की समस्या उठ खड़ी हुई तब अन्ना साहब ने मजूदरों को सम्बोधित किया। उस वक्त के भाषण से वह इतना प्रभावित हो गई कि उसने सदा के लिए उनकी षिष्या बनना चाहा था।–

''कैसा अद्‌भुत सम्मोहन है अन्ना साहब की ओजस्वी वाणी में। देह के रोओं तक के कान निकल जाए। मन कर रहा है, बाबूजी के पदचिन्हों पर चलते हुए जीवन उत्सर्ग कर दूं अन्ना साहब के लिए।''[11]

चित्रा जी ने इस उपन्यास में शाहबेन को गाँधीजी की जीवित चेली के रूप में उपन्यास में उभारा है। शाहबेन पर गाँधीजी की विचारधारा का मनोवैज्ञानिक प्रभाव है। मद्य और मांस का वे विरोध करती हैं। खादी वस्त्र पहनती है। बीच–बीच में गांधीजी के शब्दों को याद करती है– ''जीवन में कोई अकेला नहीं होता, अकेला वही होता है, जिसे अपने ऊपर भरोसा नहीं होता।''[12]

इस उपन्यास की एक पात्र सुनंदा है जो सुहैल नायक मुस्लिम युवक से प्यार करती है लेकिन वह शादी के लिए मुस्लिम बनने को तैयार नहीं होती है। सुनंदा, नमिता को उसका कारण बताती है जो अत्यन्त मनोवैज्ञानिक है–

''मैं औरों की सुख–संतुष्टि के लिए अपने सच को छोड़ दूं या अपने सब के संरक्षण के लिए उसके उगने को देह धरने दूं, उसे एक पूरी की पूरी काया ग्रहण करने दूं, सुहैल ने प्रेम करने के समय तो कोई शर्त नहीं रखी? ब्याह करना होगा तो उससे नहीं, इस्लाम से करना होगा या उससे हिन्दुत्व से?''[13]

सुनंदा की हत्या सांप्रदायिक विद्वेष के कारण कर दी जाती है। उसकी मृत्यु पर विमला बेन उसकी मैयत को कंधा देती है और सभी महिलाओं को आवाह्न करती है यहां विमला बेन शास्त्र नियमों का मनोवैज्ञानिक खंडन करती है– ''कूप मंडूप पुरूषों से हमें सीखना होगा कि स्त्रियों के लिए क्या शास्त्र–सम्मत है, क्या नहीं? निर्दोष स्त्री की नृषंस हत्या करना शास्त्र–सम्मत है। मैं कंधा किसी औरत की मैयत को नहीं दे रही, उस स्त्री–चेतना को दे रही हूँ,

जिसका गला घोंटने की कोषिष हत्या के बहाने हुई है। मैं हर जाति, धर्म, वर्ग की स्त्रियों का आवह्न करती हूँ कि वे सबकी सब श्मषान चलें और बारी–बारी से सुनंदा की मैयत को कंधा दें।''[14]

अन्ना साहब ने नमिता से कहा था कि एक बार गांधी जी की आत्मकथा जरूर पढें। उस आत्मकथा में मानव से महामानव बनने की प्रक्रिया दर्ज है। उन्होंने जोड़ दिया कि जो आदमी अपनी त्रुटियां नहीं देख पाता, वह न स्वयं का परिष्करण कर पाता है, न औरों का। नमिता, अन्ना साहब से बहुत प्रभावित रहती है लेकिन उनके गलत आचरण के कारण 'कामगार आधाड़ी' कार्यालय हमेषा के लिए छोड़ देती है, लेकिन जब नमिता को अन्ना साहब की हत्या का समाचार पाती है तो वह सहन नहीं कर पाती और उसका गर्भपात हो जाता है– 'अन्ना साहब की मौत उससे सहन क्यों नहीं हो रही? सहन होनी चाहिए थी न शायद, शायद उसके चेतन पर प्रेत–सी ठट्ठरती परछाइयों ने उसके साधारण मानव से महामानव बनने की प्रक्रिया को स्वीकार कर लिया हो।[15]

गिलिगडु में चित्रित नारी– मनोविज्ञान –

चित्राजी ने अपने उन्यास गिलिगडु में दो सेवानिवृत्त बुजुर्गो की एक रेखीय कहानी नही, जीवन के रंग बहुआयामी प्रयोगों में उभर कर आये हैं, इसमें आज के बदलते जीवन–मूल्यों को परिभाषित किया है कि कैसे नौजवान पीढ़ी अपने बुजुर्गो को सम्मान न देते हुए अपने सुख के लिए परिवार के वृद्धजनों को अकेला छोड़ देती है।

कर्नल साहब के अकेलेपन से छुटकारा पाने का अदम्य मोह अणिमा नामक प्रेमिका की सृष्टि कर उससे शादी करने की तैयारी में अभिव्यक्त है। अणिमा का कथा अत्यन्त मनोवैज्ञानिक है जो हमें कई प्रकार से सोचने के लिए मजबूर करती है। बुढ़ापे में स्नेह पाने का अदम्य मोह उनमें हैं, क्योंकि चारों ओर से सूखा–सूखा होने वाला वातावरण है। पुरूष हमेषा स्त्री के बिना कमजोर दिखाई देता है। यहां अणिमा दास ने एक विज्ञापन टाइम्स ऑफ इण्डिया में दिया– ''तलाष है एक पेंषनयाक्ता विधवा रीडर को एक अकेले या विधुर जीवन साथी की, जो जीवन के आखिरी पड़ाव में उनका हमसफर बन सके। शादीषुदा एक लड़के और दो जवान बाल–बच्चों वाली बेटियों की मां अपने दायित्वों से मुक्त हो चुकी है। बच्चे अपनी घर–गृहस्थी में रमे हुए हैं। वह अकेलापन काट रही है। इच्छुक व्यक्ति अपना फोटो, परिचय सहित विचारार्थ प्रेषित करें।''[16]

चित्रा मुद्गल जी के सभी उपन्यास मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर आधारित है। नाला सोपारा उपन्यास में भी अन्त में एक स्वर्गवासी माँ का माफीनामा, अपने किन्नर बेटे से घर वापसी की अपील की सृष्टि कर नारी मनोव्यथा को चित्रित किया गया है।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि किसी भी समाज देष, सभ्यता एवं संस्कृति के लिए नारी की अच्छी स्थिति अनिवार्य है। नर एवं नारी दोनों एक सिक्के के दो पहलू है और एक–दूसरे के बिना अधूरे हैं। वर्तमान समय में स्त्री–विमर्ष के तीन प्रमुख पक्ष है – अवमानना से मुक्ति, स्वतंत्रता और अधिकार। चित्रा मुद्गल जी के सभी उपन्यास मनोवैज्ञानिक हैं। चित्रा जी स्त्री को हर तरह की अवमानना से मुक्ति चाहती हैं, व्यक्तिगत स्वतंत्रता एवं अधिकार भी चाहती है परन्तु वह स्वतंत्रता एवं अधिकार समाज विरूद्ध न हो तभी तो वह 'एक जमीन अपनी' उपन्यास में अंकिता के विचारों से सहमत होती अर्थात् वह अंकिता के माध्यम से स्वयं उपन्यास में उपस्थित रहती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. हिन्दी साहित्य : वैचारिक पृष्ठभूमि–सं0 डॉ0 लालचन्द गुप्त 'मंगल' (स्त्री–विमर्ष और हिन्दी–साहित्य– प्रो0 रोहिणी अग्रवाल), पृ0 231
2. स्त्री–विमर्षवादी उपन्यास (सृजन और सम्भावना) – डॉ0 योजना रावत, पृ0 5
3. हिन्दी साहित्य : वैचारिक पृष्ठभूमि–सं0 डॉ0 लालचन्द गुप्त 'मंगल' स्त्री–विमर्ष और हिन्दी–साहित्य– प्रो0 रोहिणी अग्रवाल, पृ0 232
4. हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, स्त्री–विमर्ष, पृ0 388
5. हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, स्त्री–विमर्ष, पृ0 239
6. हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, स्त्री–विमर्ष, पृ0 240
7. चित्रा मुद्गल : एक मूल्यांकन– के वनजा– पृ0 9
8. एक जमीन अपनी– चित्रा मुद्गल, पृ0– 80
9. एक जमीन अपनी– चित्रा मुद्गल, पृ0– 106
10. एक जमीन अपनी– चित्रा मुद्गल, पृ0– 247
11. आवां – चित्रा मुद्गल, पृ0 – 180
12. आवां – चित्रा मुद्गल, पृ0 – 88
13. आवां – चित्रा मुद्गल, पृ0 – 112
14. आवां – चित्रा मुद्गल, पृ0 – 153
15. आवां – चित्रा मुद्गल, पृ0 – 532
16. गिलिगडु – चित्रा मुद्गल, पृ0 – 77

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

Samagra Shiksha Abhiyan – A Paradigm Shift in Pre-Primary Education

Md. Asad Ali*

ABSTRACT

A child should not bring to formal school set up until he/she is six or seven years old. Before to become a part of the formal school; a child needs preparedness physically as well as mentally, therefore, he/she must go through the preschool non-formal education. Preschool education is of two years i.e. 4-6 year of age. Anganwadi under ICDS umbrella plays the preschool education role where students learn through play and semi-structured activities. With the view of a holistic approach in school education, the government introduced an integrated school education system – Samagra Shiksha Abhiyan (SSA) – preschools come under the broader goal of school education. SSA proposed strengthening to Anganwadis through co-locate in or nearby primary school of the catchment area and also newly serve the unserved areas. Improvement of preschool education is visualized under the scheme.

Keyword: *Preschool education, Samagra Shiksha Abhiyan*

Introduction

Education is the foundation of modern society; therefore, every child should be educated. A child starts learning from the womb and goes continuously till the tomb. But the stage to connect him/her with the formal setup is a matter of concern. After a long deliberation about the school entry age of the child; the experts in the field of education view 'children should not start formal school lessons until the age of six or seven' (BBC News, 2013). However, practices vary widely across countries and locations within countries, and even among families within the small communities. In a country like India; the RTE Act 2009 envisages right to free and compulsory education of every child under 6-14 year age group (MHRD, 2009). Up to this entry age level, the child gets prepared physically, socially, mentally and emotionally to adjust in the mainstream education system via various school readiness programmes by formal and informal agencies of education. These formal and informal agencies are parts of preschool education system. Governments run tremendous programmes under the integrated child development scheme (ICDS) ministry of women and child development. It's responsibilities for the provision of pre-primary education increases

* **Research Scholar; DES/FOE/JMI, New Delhi**

under the section 11 of RTE Act 2009 which says "with a view to prepare children above the age of three years for elementary education and to provide early childhood care and education for all children until they complete the age of six years, the appropriate government may make necessary arrangements for pre-school education for such children"

Definition of Preschool

Preschool education is the education imparted to children in 3-6 year age group. It is the first stage of organized education. Preschool education is also known as pre-primary education. They referred to by all nomenclatures in different locations of the country; such as Anganwadi, Balwadi, Nursery school, Pre-School, Pre-Primary, Preparatory school, kindergartens, Montessori schools, Play centres, Creches, Balwatikas etc. It is located government and private schools (NCERT, 2019).

Preschool provides a healthy and child-friendly environment to lay down a strong foundation for the child currently and later on to his all-round development. It prepares the child for primary education and ensures a smooth transition to later stages in the formal education sector. The preschool centres were kept out isolated from mainstream education and its budget, management and monitoring were also independent.

In the union budgetary session 2018-19, the vertical segmentation of educational services from pre-nursery to senior secondary level is abandoned and proposed a unified school education services integrated all from pre-primary to senior secondary level. The integrated approach –Samagra Shiksha– adopted with the large goal of improving school effectiveness measured in terms of equal opportunities for schooling and equitable learning outcomes. It has merged all three centrally sponsored schemes - Sarva Shiksha Abhiyan (SSA), Rashtriya Madhyamik Shiksha Abhiyan (RMSA) and Teacher Education - under the umbrella of Samagra Shiksha Abhiyan and pre-primary education is also included in its orbit. The broader goal of this scheme is to ensure inclusive and equitable quality education from pre-primary to senior secondary level following the sustainable development goal (SDG-4) in education.

Major steps for pre-primary education under Samagra Shiksha Abhiyan

Irrespective of segmentation in different levels; Samagra Shiksha envisaged school education as a 'continuum' from pre-primary to senior secondary level. Provisions are made to extend the area of preschool education and to strengthen the ICDS programmes under the ministry of women and child development. The following decisions are taken for pre-primary education;

Location & Duration

Integrated child development scheme (ICDS) under Early Childhood Care Education & Development (ECCED) caters preschool education in a decentralized manner at the smallest community level. Endeavours are made under Sarva Shiksha Abhiyan (SSA) to shift the existing Preschools run under ICDS in or nearby to the primary school of the catchment area. The duration of the preschool programme is 2 years about 4-6 years

of age. The timing of preschool is four hours or synchronized with the primary school timing. The Anganwadi will not only be physically co-located but both School and Anganwadi will work as part to each other. The principal of the primary school will look after and help to develop the educational components of the centre. He should ensure that the teachers and Anganwadi workers work collaboratively. District Education Officer (DEO) and Child Development Programme Officer (CDPO) will organize joint meetings and make strategies including principal and Anganwadi Sewika.

Campus & Infrastructure

The campus of the preschool will be developed barrier-free and environment friendly in a similar fashion to primary/elementary school. The ground floor will be preferred for the same. Adequate infrastructure facilities such as building/room, separate toilets for boys and girls, safe drinking water, health hygiene facilities, staffs, working hands will be ensured. Safety, security, ease and comfort of the young children will also be ensured. Equity-based participation of CWSN students will be focused on. Every type of punishment and negligence is prohibited. The campus should be away from the crowded, polluted and risky area.

Curriculum Design & Learning Activities

The curriculum will be designed based on child-centred philosophy. Play as the basis for learning and art as the basis for education would be framed. Activities related to basic literacy and numeracy, good habit formation and development of cultural values would be placed in the curriculum. Different learning corners such as literacy area, dramatic corner, science area, art area, manipulative area and music area etc would be created so that children will get opportunities to engage freely in learning activities.

Professional Development of Teachers

Trained and skilled teachers are required for this work, therefore, continuous training of teachers of the preschool programme will be carried out by regular refresher courses, workshops, visit other schools; self-evaluation techniques etc for the teachers and helpers so that they can update their knowledge and enhance their efficiency.

Local participation

Every part of the country has its own local needs. The success of any plan or strategy requires local participation. The locals such as; parents, families and community would be involved in preschool activities like, in the development of teaching-learning material, in preparation of food items, in exhibitions, fairs and cultural activities and school programmes etc.

Coordination & Convergence

Effective implementation of preschool programmes needs coordination among different departments and sections within departments, dealing with different

components of health services, care & nutrition, community awareness and early childhood education. Ministry of women and child development (MoWCD) may strengthen the convergence of programmes run under ICDS via regular organization of inter departmental meeting, discussion on child development & health improvement matters, collaboration of primary school teacher and Anganwadi Worker etc.

Discussion

Early childhood care & education plays a pivotal role in the later stage - physical, social, emotional and intellectual development - of the child. Government of India with the partnership to states & UTs under the ministry of women and child development runs ICDS programmes to protect child's rights. Under ICDS umbrella Anganwadis –so-called preschool– provides adequate nutrition, health care and preprimary non-formal education at every smallest community level. In search of a smooth transition from preschool to formal primary school; GOI proposed a holistic approach in the school education system. This holistic approach envisaged an integrated education system 'Samagra Shiksha Abhiyan' where school education is seen as a 'continuum' process from preprimary to senior secondary level. This is the first time so far when preschool education is received this much attention of stakeholders. This paradigm shift in preschool education proposed to strengthen the Anganwadi and co-locate them in or nearby primary school of the catchment area and also serve the unserved areas. Anganwadi and school both will work as part to each other and the principal will look after the educational components. Learning through activities and play is preferred. To lay down a strong foundation for overall development by trained and skilled teachers is focused.

Bibliography

BBC NEWS, Education & Family, 12 September 2013, https://www.bbc.com/news/education-24058227

NCERT, (2019), 'The Preschool Curriculum' Department of Elementary Education, New Delhi

MHRD, (2018), 'Samagra Shiksha Abhiyan; An integrated scheme for school education, framework for implementation'

MoWCD (2017), Integrated Child Development Scheme (ICDS), Manual for District -Level Functionaries

MHRD (2009), The Right of the Children to Free and Compulsory Education Act, 2009. New Delhi; Department of Elementary Education and Literacy, MHRD, GOI

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

भारतीय साहित्य और अनुवाद

अनिता देवी*

भारतीय साहित्य अपनी सामाजिक चेतना, सांस्कृतिक मूल्यबोध और साहित्यिक संवेदना के स्तर पर एकरूपता रखता है, केवल भाषिक स्वरूप अलग है। भाषिक स्वरूप अलग होने के कारण साहित्य में ज्यादा भिन्नता नहीं आ जाती है। साहित्य का सम्बन्ध भाषा के साथ–साथ समाज से भी होता है। ''भारतवर्ष अनेक भाषाओं का विशाल देश है–उत्तर पश्चिम में पंजाबी, हिन्दी और उर्दू; पूर्व में उड़िया, बांगला और असमिया; मध्य पश्चिम में मराठी और गुजराती तथा दक्षिण में तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम।''[2] इनके अतिरिक्त अन्य भारतीय भाषाएं भी हैं जिनका साहित्यिक एवं भाषा वैज्ञानिक महत्त्व है। भाषाओं के साहित्यिक महत्त्व के बारे में डॉ. नगेन्द्र ने स्पष्ट कहा है कि, ''प्रत्येक भाषा का अपना साहित्य है जो प्राचीनता, वैविध्य, गुण और परिणाम की दृष्टि से समृद्ध है।''[3] प्रत्येक भाषा के साहित्य का अपना स्वतंत्र और प्रखर वैशिष्ट्य होता है, जो अपने प्रदेश की विशेषताओं से जुड़ा हुआ है। हिन्दी और उर्दू की तरह ही सिंधी और पंजाबी भाषाओं की प्रदेश सीमाएँ भी मिली हुई हैं। इसके बावजूद भी उनके अपने अपने साहित्य का वैशिष्ट्य प्रखर है। ''साहित्य समाज का दर्पण माना गया है। जब हम भारतीय साहित्य की बात करते हैं, तो हमारा आशय होता है भारतीय समाज का साहित्य। भारतीय समाज का अर्थ है–भारत के लोक जीवन के विविध रूप। भारतीय समाज के सन्दर्भ में कुछ मान्यताएँ प्राचीन हैं। उदाहरण के लिए युगों से भारत को कृषि प्रधान, धर्मप्राण, त्याग एवं उदारता की प्रतिमूर्ति माना जाता रहा है। यही भारतीय समाज की विशेषता है।''[4]

डॉ. रामविलास शर्मा ने अपने लेख *भारतीय साहित्य के अध्ययन की समस्याएँ* के अन्तर्गत लिखा है कि, ''भारत में किसी भी काल, किसी भी भाषा के लिए साहित्य का विवेचन अखिल भारतीय परिप्रेक्ष्य में ही करना उचित है। यह इसलिए नहीं कि हमें भारत पर कोई एहसान करना है वरन् इसलिए कि इस परिप्रेक्ष्य के बिना हम किसी एक भाषा के साहित्य विवेचन कर ही नहीं सकते। जैसे आर्य या द्रविड़ भाषाओं का विकास दोनों परिवारों को अलग रखने से समझ नहीं आ सकता, वैसे ही किसी एक भाषा का साहित्य दूसरी भाषाओं के साहित्य को जाने बिना समझ नहीं आ सकता।''[5] भाषा के सन्दर्भ में भारत की भाषाओं के इतिहास की बात की जाए तो, ''संस्कृत भाषा भारत की अधिकांश भाषाओं का उद्‌गम स्रोत है। इसके शब्द भारतीय भाषाओं में आने मूल रूप या परिवर्तित रूप में समाए हुए हैं।''[6] इसी प्रकार भारतीय साहित्य की विषय–वस्तु की बात की जाए तो आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कहना है कि, ''प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ–साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है।''[7] भारतीय साहित्य भारत के लोगों की स्मरणीय अभिव्यक्ति का प्रतिबिम्ब है, जो भावना सदियों से हमारे भीतर है, उसी सामुदायिक भावना से भारतीय साहित्य समायोजित हुआ है। इसमें लोक और शास्त्र दोनों अन्योन्याश्रित रूप से एक–दूसरे से सम्बन्धित दिखाई पड़ते हैं। ''सामुदायिक भावना से प्रेरित literature के लिए यहाँ साहित्य शब्द का प्रयोग किया जाता है अर्थात् मानव मनों का मिलन (meeting of minds)। मन का मिलन, प्रेम, सौहार्द, समझदारी एवं समुदाय (communality) की भावना का प्रसार करता है।''[8] भारतीय साहित्य में भाषागत एकता की अपेक्षा

* शोधार्थी, भारतीय भाषा केन्द्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली–110067

विचारों और भावनाओं की एकता है, जिसको भारतीय साहित्य की कथावस्तु की एकरूपता के माध्यम से जाना जा सकता है। इस सन्दर्भ में प्रोफेसर यू. आर. अनन्तमूर्ति का कहना है कि, "If we take the popular slogan, unity in diversity one will understand that with overstressing diversity, one begins to see the unity. And if one insists on looking for unity in India, then what one sees is diversity."[9] अर्थात् ''विविधता का यह मॉडल जो एकता की ओर हमें ले जाता है। भारत के लिए एक अन्य मॉडल है और यह एकता जैसा कि कहा गया है भाषिक नहीं, वैचारिक है उदाहरणतया, अशोक के शिलालेख कई बोलियों में उपलब्ध हैं परन्तु उनमें एक ही बौद्ध धर्म के आर्दश विचारों की अभिव्यक्ति हुई है। कालिदास के नाटक *अभिज्ञानशकुन्तलम्* में संस्कृत के अतिरिक्त शौरसेनी, महाराष्ट्री तथा मागधी प्राकृत का प्रयोग हुआ है।''[10] इससे स्पष्ट होता है कि एक ही रचियता ने अनेक भाषाओं में रचना की है, तो एक ही रचना में अनेक भाषाओं का प्रयोग भी मिलता है। साहित्य में विचारों की अभिव्यक्ति के लिए भाषा की बाध्यता नहीं रही। यही कारण है कि, ''विद्यापति ने अपने काव्यगत विचार अवहट्ट, संस्कृत और मैथिली में प्रस्तुत किए हैं और गुरुग्रन्थ साहिब एक बहुभाषिक कृति है जिसमें एक सत् की अभिव्यक्ति हुई है। प्रेमचन्द ने हिन्दी उर्दू में लिखते हुए यथार्थोन्मुखी आदर्शवाद् की अभिव्यक्ति की है।''[11] भारतीय दर्शन की धारा के सन्दर्भ में भी भाषागत बाधा को नहीं देखा जाता, ''उपनिषद् के विचार उत्तर से दक्षिण की ओर जाकर–शंकराचार्य और रामानुजाचार्य द्वारा अद्वैतवाद और विशिष्टाद्वैतवाद के रूप में प्रकट होते हैं। अतः भक्ति दक्षिण से उत्तर की ओर यात्रा करती है। कश्मीर का शैव सिद्धान्त, तमिल क्षेत्र में जाकर अपना स्थान बनाता है। गांधीजी का सत्य और अहिंसा को लेकर किया गया प्रयोग पूरे भारत का प्रयोग या रवीन्द्र की मनुष्य और प्रकृति में सौन्दर्य की खोज बन जाती है।''[12] इससे स्पष्ट होता है कि भारतीय साहित्य का इतिहास भारत के लेखकों की सम्पूर्ण साहित्यिक क्रियाकलापों का इतिहास है। ''विषय विस्तार, प्रौढ़ गहन एवं प्रतिपादन शैली की दृष्टि से भारतीय साहित्य से सम्बन्धित जितने भी ग्रन्थ हैं, उनमें से *मॉरिस विन्टरनित्स का इतिहास* सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है।''[13]

ग्रियर्सन की दृष्टि भी भारतीय साहित्य के संदर्भ में व्यापक थी। डॉ. सुनीति कुमार चाटर्जी, श्री कृष्ण कृपलानी ने भी इस क्षेत्र में अपना योगदान दिया। चटर्जी उपरोक्त भारतीय साहित्य से संबंधित जितना भी विवरण दिया गया उन सबका परिचय अनुवाद के माध्यम से ही संसार को हुआ।[14] ''मानव सभ्यता के इतिहास में अनुवाद की उपस्थिति प्रारम्भिक काल से ही है। भाषाई भिन्नता के बाधक तत्वों की उपस्थिति के बावजूद मनुष्य जाति अपनी धारणाओं की अभिव्यक्ति निरन्तर करती आ रही है, तो इसका श्रेय अनुवाद को ही जाता है।''[15] ''अनुवाद शब्द का उपयोग सदियों पूर्व से ब्राह्मण ग्रंथों में, और फिर महान भारतीय ग्रंथकार यास्क मुनि (ई.पू. छठी सदी) एवं पाणिनी (ई.पू. पाँचवीं सदी) ने किया है।

सम्पूर्ण विश्व संस्कृत के दार्शनिक साहित्य से अनुवाद द्वारा परिचित हुआ। अंग्रेजी भाषा का साहित्य तथा अन्य भाषाओं का साहित्य भी इसी माध्यम से हिन्दी साहित्य में अपनी उपस्थिति दर्ज करवा सका। बंगाल के रवीन्द्रनाथ ठाकुर तथा शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय अनुवाद के बल पर सारे विश्व के पाठकवर्ग के प्रिय हो गये। रवीन्द्रनाथ जी की *गीतांजली* का अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित हुआ और उसे विश्व का श्रेष्ठ नॉबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ।

भाषानुवाद के माध्यम से भारत की सांस्कृतिक गरिमा के प्रतिनिधि ग्रंथों को प्रसिद्धि मिली। पाश्चात्य अनुवाद चिंतकों ने इन्हें अपनी भाषाओं में अनूदित किया। मैकडॉनल और मैक्समूलर एवं अन्य विद्वानों द्वारा संस्कृत के वैदिक ग्रंथों का अनुवाद किया गया। प्रो. देवशंकर

नवीन ने भारतीय अनुवाद की परम्परा की बात करते हुए स्पष्ट किया है कि, ''अनुवाद हमारे यहाँ वेद की रचना के तत्काल बाद से हो रहा है। ब्राह्मण, आरण्यक जैसे ग्रंथ इसके उदाहरण हैं। थोड़ा आगे आएँ तो निघण्टु और निरुक्त तो अनुवाद के उपस्कर ग्रंथ हैं।''[16] मुगल शासन के दौरान 'अनुवाद' की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण रही। अकबर ने गुजरात जीतने के बाद अपने पुस्तकालय को दुर्लभ ग्रंथों से भर दिया। उन्होंने एक अनुवाद विभाग की स्थापना भी की। दारा ने फारसी में*श्रीमद्भगवदगीता, योगवशिष्ठ, उपनिषद* एवं *रामायण* का अनुवाद करवाया। सूफीमत से सम्बन्धित अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रंथों में अनुवाद वृति की बड़ी भूमिका रही है। आरंभिक हिन्दी में बंगला और मराठी भाषाओं की साहित्यिक रचनाओं के अनुवाद हुए। लेकिन आज विश्व में कोई भी भाषा ऐसी नहीं जिसकी रचनाओं का हिन्दी भाषा में अनुवाद न हो रहा हो। अनुवाद की दृष्टि से *पंचतंत्र* का विशिष्ट स्थान है। *मेघदूत* और *अभिज्ञानशाकुन्तलम्* के भारत और विदेशों की अनेक भाषाओं में अनुवाद हुए हैं।

आधुनिक काल में हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं से अनुवाद ईस्ट इण्डिया कंपनी के शासनकाल और अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार–प्रसार (फोर्ट विलियम कॉलेज) से शुरू होता है। 16वीं शताब्दी से हिन्दी में अनुवाद की परंपरा रही है और 18वीं शताब्दी तक प्राचीन साहित्य का अनुवाद होता रहा। 'हिन्दी की प्रथम कहानी *इन्दुमति* में विलियम शेक्सपीयर की रचना *द टेम्पेस्ट* की छाया मिलती है।' भारतेंदु, महावीर प्रसाद द्विवेदी, आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भी अनुवाद कार्य किया है। फारसी कवि उमर खैयाम अनुवाद के माध्यम से ही विश्व में प्रसिद्ध हुए।संक्षेप में कहें तो भारतीय भाषाओं से या भारतीय भाषाओं में हुए अनूदित कार्य को बाँध पाना आसान कार्य नहीं है।

बहुभाषी देश होने के कारण भारत में अनेक भाषाएँ और बोलियाँ बोली जाती हैं। उनमें भौगोलिक, सामाजिक और सांस्कृतिक भिन्नता मिलती है। भाषाओं की बहुलता भारत की विशेषता है और अनुवाद के माध्यम से भारतीय भाषाओं की भाषिक एकरूपता और सांस्कृतिक समानता के दर्शन हुए हैं।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :

1. नगेन्द्र (संपादक), भारतीय साहित्य, भूमिका,पृ.11
2. नगेन्द्र (संपादक), भारतीय साहित्य, भूमिका, पृ.11
3. पाण्डेय लक्ष्मीकान्त, अवस्थी प्रमिला, भारतीय साहित्य, पृ.36
4. गौतम, डॉ. मूलचन्द, भारतीय साहित्य, भूमिका, पृ.47
5. वर्मा, विमलेश कान्ति, मालती, भाषा साहित्य और संस्कृति, पृ. 319
6. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.15
7. चौधरी, इन्द्रनाथ,तुलनात्मक साहित्यः भारतीय परिप्रेक्ष्य, पृ.104
8. चौधरी, इन्द्रनाथ, तुलनात्मक साहित्यः भारतीय परिप्रेक्ष्य, पृ.105
9. चौधरी, इन्द्रनाथ, तुलनात्मक साहित्यः भारतीय परिप्रेक्ष्य, पृ.105
10. चौधरी, इन्द्रनाथ, तुलनात्मक साहित्यः भारतीय परिप्रेक्ष्य, पृ.105
11. चौधरी, इन्द्रनाथ, तुलनात्मक साहित्यः भारतीय परिप्रेक्ष्य, पृ.108
12. नगेन्द्र (सं.) भारतीय साहित्य का समेकित इतिहास, पृ.1
13. नवीन, देवशंकर, अनुवाद अध्ययन का परिदृश्य, पृ.9
14. नवीन, देवशंकर, अनुवाद अध्ययन का परिदृश्य, पृ.9
15. नवीन, देवीशंकर, अनुवाद अध्ययन का परिदृश्य, पृ.60
16. गोस्वामी, कृष्ण कुमार, अनुवाद विज्ञान की भूमिका, पृ.444

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

विद्यालय जाने वाले बच्चों के समायोजन एवं आत्म–विश्वास पर अलगाव के प्रभाव का अध्ययन

डॉ. अमर कुमार*

सार–संक्षेपः

प्रस्तुत शोध का मुख्य उद्देश्य विद्यालय जाने वाले बच्चों के समायोजन एवं आत्म–विश्वास पर अलगाव के प्रभाव का अध्ययन करना है। इसके लिए समस्तीपुर जिला के शहरी एवं ग्रामीण दोनों क्षेत्र में अवस्थित 5 विभिन्न विद्यालयों से 200 विधार्थियों का चयन उद्देश्यात्मक प्रतिदर्शन पद्धति के आधार पर किया गया। विद्यार्थियों की उम्र सीमा 13 वर्ष से लेकर 15 वर्ष (औसत उम्र–14 वर्ष) थी।

विकसित अलगाव मापनी, डॉ0 मोहसिन शमशाद एवं के0 जहाँ (2087) द्वारा रूपान्तरित समायोजन मापनी, रेखा गुप्ता (2005) द्वारा विकसित आत्म–विश्वास मापनी एवं स्वयं द्वारा विकसित व्यक्तिगत सूचना प्रपत्र को उत्तरदाताओं के ऊपर प्रशासित करते हुए प्रदत्त संग्रह का कार्य किया गया। प्रदत्तों के सांख्यिकीय विश्लेषण के आधार पर पाया गया कि (i) अलगाव का समायोजन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है, अर्थात् अलगाव से प्रभावित बच्चों का समायोजन, अलगाव रहित बच्चों के समायोजन की अपेक्षा खराब होता है, (ii) अलगाव से प्रभावित बच्चों का आत्म–विश्वास निम्न होता है, जबकि अलगाव रहित बच्चों का आत्म–विश्वास उच्च होता है एवं शहरी क्षेत्रों के बच्चों की अपेक्षा ग्रामीण क्षेत्रों के बच्चों में अलगाव कम होता है।

परिचयः

वर्त्तमान समय में विद्यालय जाने वाले बच्चों के लिये एवं शैक्षिक संस्थानों के संदर्भ में अलगाव एक ऐसा मुख्य कारक है, जो विद्यार्थियों को मनोवैज्ञानिक एवं शैक्षिक दृष्टिकोण से प्रभावित करता है। अलगाव एक ऐसी अवधारणा है, जिसका सम्बन्ध मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक दोनों सदंर्भ से होता है। सामाजिक अवधारणा के अनुसार सामाजिक प्रक्रिया के कारण व्यक्ति अपने समाज से अलग हो जाता है, जबकि मनोवैज्ञानिक अवधारणा के अनुसार व्यक्ति अपने को दूसरों से अलगाव का अनुभव करने लगता है।

विद्यालय जाने वाले बच्चों के सम्बन्ध में अलगाव की अवधारणा अधिक पाई जाने लगी है। अलगाव मनोवैज्ञानिक अवधारणा से संबंधित होने के कारण बच्चों में इसके प्रभाव होने की संभावना अधिक होती है। शैक्षिक दृष्टिकाण में बच्चों में अलगाव, आर्थिक अलगाव, वर्ग–साथियों से अलगाव इत्यादि। जब बच्चे किसी प्रकार के अलगाव से प्रभावित होता है, तो उसका प्रभाव उसके समायोजन एवं आत्म–विश्वास पर भी पड़ता है।

समायोजन से अभिप्राय होता है, व्यक्ति को परिस्थिति के अनुसार अपने को ढ़ालना होता है। अर्थात् व्यक्ति जब बिना किसी टकराव अथवा विरोधाभास के जीवन–यापन करता है, तो वह समायोजित कहलाता है। विद्यालयी दृष्टिकोण से जब बच्चा विद्यालय प्रबंधन के अनुकूल एवं

* पी–एच. डी. मनोविज्ञान विभाग, ल.ना.मि.वि.वि .,कामेश्वरनगर, दरभंगा (बिहार)

अपने विद्यालय के साथियों, शिक्षकों इत्यादि के साथ आदर्श एवं सकारात्मक रूप से रहते हुऐ शैक्षिक गतिविधि करता है, तो वह समायोजित बालक के रूप में जाना जाता है।

आत्म–विश्वास व्यक्तित्व के प्रतिमान का एक गुण होता है। आत्म–विश्वास एक आवश्यक मनोवृत्ति होता है, जिसके द्वारा हम अपने अन्दर सकारात्मक और वास्तविक प्रत्यक्षण कर सकते हैं और अपने गुणों की पहचान कर पाते हैं। यह व्यक्ति की व्यक्तित्व विशेषता होती है, जिसके द्वारा व्यक्ति में स्वतंत्रता, विश्वास, स्नेह, आशान्ति एवं आलोचनाओं को सामना करने की क्षमता विकसित होती है।

वसावना (1975) ने आत्म–विश्वास की अवधारणा स्पष्ट करते हुऐ कहा है कि आत्म–विश्वास से तात्पर्य व्यक्ति के वैसे अर्जित गुणों से होता है, जिसके द्वारा प्रभावी रूप से किसी भी परिस्थिति में सही ढ़ंग से कार्य करने में सक्षम होता है।

अलगाव से संबंधित कुछ शोध–अध्ययनें उपलब्ध हैं; जिसकी सहायता प्रस्तुत शोध में लिया जा सकता है। मोरिनाज इत्यादि (2017) ने अपने अध्ययन में पाया है कि विद्यालयी अलगाव बच्चों के सकारात्मक मनोवृत्ति एवं मनबहलाव के साथ नकारात्मक रूप से संबंधित होता है।

एल्तेनवॉग इत्यादि (1995) ने अपने अध्ययन में पाया है, कि विद्यालयी अलगाव का शैक्षिक उपलब्धि पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इसी संदर्भ में इन्होंने पाया है कि विद्यार्थियों के सहभागी व्यवहार पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

जॉनसन इत्यादि (2005) ने भी अपने अध्ययन में पाया है, कि विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि विद्यालयी अलगाव से प्रभावित होती है। विद्यालयी अलगाव यदि बच्चों में अधिक होती है, तो उसका शैक्षिक उपलब्धि संतोषजनक नहीं होता है।

इस तरह अलगाव से संबंधित अनेकों शोध अध्ययनें उपलब्ध हैं। लेकिन इन अध्ययनों में अलगाव, समायोजन एवं आत्म–विश्वास को लेकर अध्ययनों की कमी है। अतः इस दृष्टिकोण से विद्यालय जाने वाले बच्चों के समायोजन एवं आत्म–विश्वास पर अलगाव के पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करने का निर्णय लिया गया है।

शोध का उद्देश्यः

प्रस्तुत शोध का मुख्य उद्देश्य विद्यालय जाने वाले बच्चों के समायोजन एवं आत्म–विश्वास पर अलगाव के प्रभाव का अध्ययन करना था।

परिकल्पनाऐंः

प्रस्तुत शोध की मुख्य परिकल्पनाऐं निम्नांकित हैंः–

(i) अलगाव ग्रसित बच्चों एवं अलगाव रहित बच्चों के समायोजन स्तर में अन्तर होगा।

(ii) अलगाव ग्रसित बच्चों का आत्म–विश्वास कमजोर होगा जबकि अलगाव रहित बच्चों का आत्म–विश्वास बेहतर होगा।

(iii) शहरी एवं ग्रामीण बच्चों के अलगाव भावना में सार्थक अन्तर होगा।

(iv) लड़के एवं लड़की उत्तरदाताओं में अलगाव की भावना में सार्थक अन्तर होगा।

शोध–विधिः

(i) प्रतिदर्शः प्रस्तुत शोध में उत्तरदाताओं के रूप में समस्तीपुर अनुमण्डल क्षेत्र के अंतर्गत स्थित चार विभिन्न उच्च विद्यालयों (दो विद्यालय शहरी क्षेत्र एवं दो विद्यालय ग्रामीण क्षेत्र) से कुल 200 छात्र–छात्राओं का चयन किया गया।

कुल उत्तरदाताओं में 100 लड़का एवं 100 लड़की उत्तरदाताओं एवं इतनी ही संख्या में शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र से छात्र–छात्राओं का चयन किया गया।

(ii) प्रतिदर्श चयन की विधिः प्रतिदर्शों के चयन में उद्येश्यात्मक प्रतिदर्शन विधि का अवलोकन किया गया।

(iii) शोध मापनियांः प्रस्तुत शोध में निम्नांकित मापनियों का प्रयोग किया गयाः–

(i) अलगाव मापनीः उत्तरदाताओं के अलगाव स्तर की जानकारी हेतु हरदेव ओझा (1990) द्वारा विकसित अलगाव मापनी का प्रयोग किया गया। यह मापनी भारतीय संदर्भ में अलगाव स्तर की जानकारी हेतू काफी विश्वसनीय वैध एवं वास्तविक मापनी है।

(ii) समायोजन मापनीः उत्तरदाताओं के समायोजन स्तर की माप के लिए मोहसिन शमशाद एवं के0 जहाँ0 (1987) द्वारा रूपान्तरित समायोजन मापनी का प्रयोग किया गया। यह मापनी भी मनोवैज्ञानिक शोध में उत्तरदाताओं के समायोजन स्तर की माप के लिए अत्यन्त ही लोकप्रिय मापनी है।

(iii) आत्म–विश्वास मापनीः उत्तरदाताओं के आत्म–विश्वास स्तर की माप के लिए रेखा अग्निहोत्री (1990) द्वारा विकसित आत्म–विश्वास मापनी का प्रयोग किया गया। यह मापनी भी उत्तदाताओं में आत्म–विश्वास स्तर की माप के लिये काफी उपयुक्त, वैध, वास्तविक एवं विश्वसनीय मापनी है।

(iv) व्यक्तिगत सूचना–प्रपत्रः उत्तरदाताओं के सम्बन्ध में व्यक्तिगत जानकारी के लिए शोधार्थी द्वारा विकसित व्यक्तिगत सूचना–प्रपत्र का प्रयोग किया गया।

(iv) प्रदत्त संग्रह की प्रक्रियाः शोध–शीर्षक से संबंधित संगत प्रदत्त संग्रह के लिए शोधार्थी द्वारा अच्छे ढ़ंग से योजना बनाई गई। बनाई गई योजनानुसार शोधार्थी द्वारा अध्ययन क्षेत्र स्थित विद्यालय का भ्रमण किया गया और विद्यालय प्रधान से मिलकर, मिलने के प्रयोजन से अवगत कराया गया। तत्पश्चात् प्रदत्त–संग्रह के लिए सहयोग की अपील की गई। इसके बाद विद्यालय प्रबंधन के साथ तय किये गऐ निर्धारित तिथि एवं समय पर छोटा वर्ग समूह बनाकर सभी चयनित मापनियों को प्रशासित किया गया और प्रदत्त संग्रह का कार्य सम्पादित किया गया। इस तरह शोधार्थी द्वारा प्रदत्त संग्रह का कार्य पूर्ण किया गया। विद्यालय प्रधानों, शिक्षकों एवं छात्र–छात्राओं को आवश्यक सहयोग के लिये धन्यवाद दिया गया।

प्रदत्तों का विश्लेषणः

शोधार्थी द्वारा संग्रहित किये गये प्रदत्तों का ही परीक्षण सांख्यिकीय विधि द्वारा विश्लेषण किया गया और समसामाजिक भारतीय संदर्भ में परिणाम तैयार किया गया।

परिणामः

सारणी संख्या – (i)

अलगाव ग्रसित एवं अलगाव रहित उत्तरदाताओं के समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन सम्बन्धी परिणामः–

समूह	संख्या	माध्य	मानक विचलन	टी–मूल्य	सार्थकता का स्तर	स्वतंत्रता का अंश
अलगाव ग्रासित उत्तरदाताएँ	100	32.29	9.37	4.31	< .01	198
अलगाव रहित उत्तरदाताएँ	100	25.03	6.81			

सारणी संख्या – (ii)

अलगाव ग्रसित एवं अलगाव रहित उत्तरदाताओं के आत्म–विश्वास का तुलनात्मक अध्ययन सम्बन्धी परिणामः–

समूह	संख्या	माध्य	मानक विचलन	टी–मूल्य	सार्थकता का स्तर	स्वतंत्रता का अंश
अलगाव ग्रसित उत्तरदाताएँ	100	31.43	9.33	4.08	< .01	198
अलगाव रहित उत्तरदाताएँ	100	24.27	6.13			

सारणी संख्या – (iii)

शहरी एवं ग्रामीण उत्तरदाताओं में अलगाव का तुलनात्मक अध्ययन सम्बन्धी परिणामः–

समूह	संख्या	माध्य	मानक विचलन	टी–मूल्य	सार्थकता का स्तर	स्वतंत्रता का अंश
शहरी उत्तरदाताएँ	100	18.61	7.41	5.10	< .01	198
ग्रामीण उत्तरदाताएँ	100	12.99	4.33			

सारणी संख्या – (iv)

लड़के एवं लड़की उत्तरदाताओं में अलगाव का तुलनात्मक अध्ययन सम्बन्धी परिणामः–

समूह	संख्या	माध्य	मानक विचलन	टी–मूल्य	सार्थकता का स्तर	स्वतंत्रता का अंश
लड़के उत्तरदाताएँ	100	11.24	2.42	5.18	< .01	198
लड़की उत्तरदाताएँ	100	18.33	4.51			

सारणी संख्या (i) में दिऐ गये परिणाम के विश्लेषण के आधार पर स्पष्ट है कि अलगाव ग्रसित उत्तरदाताओं का समायोजन स्तर अच्छा नहीं है, जबकि अलगाव रहित उत्तरदाताओं का समायोजन स्तर अच्छा है। क्योंकि अलगाव ग्रसित उत्तरदाताओं ने समायोजन मापनी पर, अलगाव रहित उत्तरदाताओं की अपेक्षा अधिक माध्य (32.29) एवं मानक–विचलन (9.37) प्राप्त किया है। साथ ही, प्राप्त टी–मूल्य विश्वास के < .01 स्तर पर सार्थक पाया गया। अतः इस तरह कहा जा सकता है कि व्यक्तियों के समायोजन स्तर पर उसके अलगाव की भावना का नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

सारणी संख्या (ii) एवं (iii) में प्रदर्शित परिणाम के अवलोकन से स्पष्ट है कि आत्म–विश्वास मापनी पर अलगाव रहित उत्तरदाताओं ने कम माध्य (12.99) एवं मानक विचलन (7.41) प्राप्त किया है, जबकि अलगाव ग्रासित उत्तरदाताओं ने अधिक माध्य (18.61) एवं मानक–विचलन (7.41) प्राप्त किया है। इन दोनों समूहों के द्वारा प्राप्त माध्य एवं मानक–विचलगे के आधार पर परिकलित टी–मूल्य (5.10) विश्वास के < .01 स्तर पर सार्थक की भावना के कारण लोगों का आत्म–विश्वास कमजोर होता है, जबकि अलगाव की भावना से अलग रहने पर आत्म–विश्वास मजबूत होता है।

सारणी संख्या (iii) के अवलोकन से स्पष्ट है, कि अलगाव की दृष्टि से शहरी एवं ग्रामीण उत्तरदाताओं में सार्थक अंतर है। इस संदर्भ में परिणाम में पाया गया कि शहरी क्षेत्रों में ग्रामीण क्षेत्रों की अपेक्षा अलगाव की भावना अधिक होती है। दोनों समूहों के उत्तरदाताओं के द्वारा प्राप्त माध्य एवं मानक विचलन के आधार पर परिकलित टी–मूल्य (5.10) भी विश्वास के < .01 स्तर पर सार्थक पाया गया। इस तरह के परिणाम के आधार पर किया जा सकता है, कि शहरी क्षेत्रों में अधिकांश लोग अलगाव की भावना से प्रभावित होते हैं, जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में इसकी अपेक्षाकृत कमी होती है।

सारणी संख्या (iv) के अवलोकन से स्पष्ट है कि अलगाव की दृष्टि से लड़का एवं लड़की उत्तरदाताओं के बीच सार्थक अन्तर है। इस परिणाम में लड़कियों ने जहाँ अलगाव मापनी पर अधिक माध्य (18.33) एवं मानक–विचलन (4.51) प्राप्त किया है, वहीं लड़के उत्तरदाताओं ने अलगाव मापनी पर कम माध्यम (11.24) एवं मानक–विचलन (2.42) प्राप्त किया है। इस तरह, इस परिणाम के आधार पर कहा जा सकता है कि लोगों के अलगाव भावना पर यौन–भिन्नता का प्रभाव पड़ता है।

निष्कर्षः प्रस्तुत शोध में प्राप्त परिणामों के निष्कर्ष के रूप में निम्नांकित तथ्य स्पष्ट हैः–

(i) अलगाव से ग्रसित बच्चों का समायोजन स्तर खराब होता है, जबकि अलगाव से रहित बच्चों का समायोजन स्तर बेहतर होता है।

(ii) अलगाव से ग्रसित बच्चों का आत्म–विश्वास कमजोर होता है, जबकि अलगाव रहित बच्चों का आत्म–विश्वास मजबूत होता है।

(iii) ग्रामीण क्षेत्रों के बच्चों में अलगाव की भावना कम होती है, जबकि शहरी क्षेत्रों के बच्चों में अलगाव की भावना अधिक होती हैं। एवं

(iv) लड़के की अपेक्षा लड़कियों में अलगाव की भावना अधिक होती है।

सुझावः

प्रस्तुत शोध में सुझाव के रूप में मेरा मत है कि लोगों में मनोवैज्ञानिक सम्पन्नता, बेहतर आत्म–विश्वास एवं समायोजन के लिए अलगाव सम्बन्धी कारक को दूर करना होगा क्योंकि अलगाव के कारण व्यक्ति का समायोजन एवं आत्म–विश्वास नकारात्मक रूप से प्रभावित होता है।

संदर्भ ग्रन्थों सूचीः–

01. एल्तेन वर्ग, आर0 जे, इंजेल, डी0 ई0 मार्टिन, डी0 टी0 (1995) : केअरिंग फॉर किड्स : ए क्रिटिकल स्टडी ऑफ अरवन स्कूल लीवर्स, लंदन : द फाल्मर प्रेस।

02. मोरिंनाज, जे0, ग्रीसू, अलीसा, हडज़ार, ए0 (2017) : स्कूल एलिनेशन : ए कनस्ट्रक्ट वैलिडेशन स्टडी, फ्रॉन्टलाईन लर्निंग रिसर्च, वॉल्यूम–5, नं0 (2) 36–59.

03. गुप्ता, रेखा (1995) : मैनुअल ऑफ सेल्फ कॉन्फिडेन्स इन्वेंट्री, आगरा साईकोलॉजिकल रिसर्च सेल आगरा।

04. शमशाद, एम0 एण्ड जहाँ, के0 (1987) : मैनुअल ऑफ एडजेस्टमेंट इंवेंट्री, आगरा साईकोलॉजिकल रिसर्च सेल आगरा।

05. ओझा, हरदेव (1990) : मौनुअल ऑफ ऐलिनेशन स्केल, आगरा साईकोलॉजिकल रिसर्च सेल, आगरा।

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

जगत् के मूल तत्त्व और उससे सृष्टि की उत्पत्ति का प्रमाण

धर्मेन्द्र कुमार*

शोध–सारांश

सृष्टि अनेकों अद्‌भूत रहस्यों से भरा पड़ा है, जिसे समझने में मानव–बुद्धि अपने को असमर्थ महसूस करता है। एक ही वस्तु पर विज्ञान, दर्शन, अध्यात्म, ज्ञानीजनों आदि का अलग–अलग तथा अनेक मत हो जाता है। जिस कारण हम ऊहापोह मे पड़े रह जाते हैं। और जबतक हम अपने अनुभव, ज्ञान, विज्ञान अथवा अन्य साधन द्वारा उसकी प्राप्ति के कगार पर होते हैं तब तक हमारी उम्र सीमा समाप्त हो जाती है और वस्तु तथा रहस्य वही–का–वही वर्तमान रहता है। कई बार हम वस्तुओं के वास्तविक स्थिति को जानकर भी दूसरे को बताने, समझाने में अपने को असमर्थ पाते हैं, जिसे अवर्ण्य, वर्णनातीत या अनीर्वचनीय कहते हैं। आख़िर सृष्टि के मूल में वह कौन–सा तत्त्व या कारण है, जिससे सृष्टि का निर्माण हुआ तथा इतनी विभिन्ताएँ, विषमताएँ और अद्‌भूत, रहस्यमयी वस्तुएँ, घटनाएँ उपस्थित तथा वर्तमान है, जिसे जानना, समझता या समझाना दुस्सह तथा असम्भव जान पड़ता है। इस शोध–पत्र में सृष्टि के मौलिक या मूल तत्त्व के अस्तित्व और उससे सृष्टि उत्पत्ति को प्रमाणित किया जाएगा।

संकेताक्षर : मूल तत्त्व, मौलिक, गुत्थी, अनसुलझे, थ्योरियाँ, प्रत्यक्षात्मक, सर्वकार्यवाद, सूक्ष्मातिसूक्ष्म।

हर कोई यह जानने को जिज्ञासु रहता है कि सृष्टि की उत्पत्ति कैसे, क्यों, कब और किन तत्त्वों से, किसने की अथवा स्वतः ही हुई ? प्रत्येक विचारशील मनुष्य के मन में इस तरह के प्रश्नों का आना स्वाभाविक है। इन अनसुलझे प्रश्नों के उत्तर के लिए मानव हजारों वर्षों से प्रयत्नशील भी है। किन्तु विकास और अध्यात्म के इतने ज़ोर के बावजूद आज भी हम निराशा की स्थिर अवस्था में लाचार, बेबस खड़े हैं। हम दर्शन और विज्ञान दोनों से आशा की टकटकी लगाए देख रहे हैं। सृष्टि के हजारों उलझे गुत्थियों को आज भी हम सुलझाने में असमर्थ है। रात्री में आकाश की तरफ़ देखकर या अपने दुःखों, कष्टों या मृत्यु के बाद के जीवन के बारे में सोचकर, निराशा में डूब जाते हैं। तब एक सर्वशक्तिमान ईश्वर की कल्पना कर लेते हैं। अपना सर्वस्य उन्हीं के ऊपर अर्पित करके मौन हो जाते हैं। ऐसा इसलिए करते हैं; क्योंकि इन गुत्थियों के आगे अपने को बेसहारा, बेबस और लाचार मान लेते हैं। मेरे मत में, ईश्वरवादियों में अधिकतर डर, भय, निष्क्रियता कायरता, असमर्थता और अज्ञानता के भीषण रोग से ग्रसित हैं। यह वैसा ही है जैसे अथाह सागर में भवरों के बीच फंसी नैया को लहरों और भवरों से निकालने के बजाए किसी अज्ञात शक्ति (ईश्वर, खुदा, मसीह आदि) के ऊपर छोड़ देना। यह पुरूषार्थहिनता और अज्ञानता का लक्षण है! अगर कोई पूर्ण, दयालू या न्यायप्रिय ईश्वर है, जिसकी मर्ज़ी के बग़ैर एक पता भी नहीं डोलता तो वह अपने ही बच्चें, संतान या अंश को दुःखों और मृत्यु के भँवर में क्यों डालता है? क्या ऐसा करने से उसे मज़ा (आनन्द) मिलता है? संसार को देखकर कोई भी मनुष्य ईश्वर को पूर्ण नहीं मान सकता; क्योंकि यहाँ दुःख अधिक और सुख कम है। मृत्यु का भय भी

* ग्राम–भवानीपुर (बढ़ैयाबाग), पोस्ट–बाजार समिति तकिया, थाना–सासाराम, जिला–रोहतास (बिहार) पिन–82 11 15

दुःख ही है जो जीवन पर्यन्त हमें व्यथित किये रहता हैं। प्रत्येक मानव लम्बी आयु चाहता है। किन्तु यहाँ भी वही लाचारी और बेबसी है। हम अपने सम्पूर्ण जीवन काल में ईश्वर का प्रत्यक्षीकरण नहीं कर पाते हैं। अपनी शक्तिहिनता और अज्ञानता के वशीभूत तथा दुःख या विषम परिस्थितियों से विचलित होकर, कल्पना की ऊँची उड़ान और सम्पूर्णता की अभिव्यक्ति या साक्षात् होने के अर्थ में ईश्वर को मान लेते हैं। उस सर्वशक्तिमान, अनंत, अपरिमित, सर्वज्ञ, सर्वोपरि, निरपेक्ष आदि गुणों से युक्त ऐसी शक्ति को मान लेते से भी हमारी समस्या का समाधान नहीं हो पाता। हमें कर्त्तव्य और ज्ञान के सागर में गोता लगाना ही पड़ता है। हम अपने एक पैर को काटकर ईश्वर की चाहे जितनी भी उपासना और फ़रियाद कर ले, वो जुड़ नहीं पाएगा। इसके लिए हमें परिश्रम, विवेक और बुद्धि की आवश्यकता होती है। तभी कटे पैर का निदान हो पाएगा। बिना हाथ–पैर हिलाए किसी अज्ञात शक्ति के भरोसे हमारी क्षुधा की तृप्ति नहीं हो सकती। निष्कर्ष यह कि हम अपने पास उपस्थित साधन से, बुद्धि–बल और परिश्रम के ज़ोर से चाहे तो सृष्टि की हर उलझी कड़ी को एक–एक कर सुलझा सकते हैं। इसके लिए दर्शन और विज्ञान को साथ आना होगा, मिलकर काम करना होगा। एक–दूसरे के तर्कों और थ्योरियों का प्रतिपालन और उपयोग करना होगा।

विज्ञान दर्शन की सुलझी हुई प्रत्यक्षवादी शाखा है। इसमें कोई शक नहीं कि विज्ञान दर्शन से ही निकली और विकसित प्रत्यंग है। यद्यपि दोनों में कई अंतर भी आ गया है। जहाँ दर्शन सैद्धांतिक है, वही विज्ञान प्रत्यक्षात्मक है। विज्ञान की अपनी मान्यताएँ और थ्योरियाँ है तथा दर्शन के अपने सिद्धांत और तर्क। देकार्त से या उससे पहले से ही दर्शन को गणितीय सत्यता पर स्थापित करने की कोशिश की जा रही है। किन्तु अभी तक दोनों में सही समायोजन नहीं हो पाया है जिस कारण हम आज भी सृष्टि के अनेकों रहस्यों से दूर है। जब तक विज्ञान और दर्शन दोनों को एक साथ समायोजित न किया जाएगा, तब तक निष्पक्ष और प्रत्यक्ष परिणामों का अभाव देखने को मिलता रहेगा। इस शोध–पत्र में दर्शन और विज्ञान दोनों के सहयोग से, जगत् के मूल तत्त्वों की उत्पत्ति, उपस्थिति और उससे सृष्टि–निर्माण को प्रमाणित किया जाएगा।

जगत् की उत्पत्ति और निर्माण का कारण ऐसे सूक्ष्म तत्त्वों से हुआ माना जा सकता है, जो वर्तमान सभी सूक्ष्म–वृहत, लौकिक–अलौकिक, दृश्य–अदृश्य, चेतन–अचेतन सृष्टि के सभी वस्तुओं में सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप में मौजूद है। दर्शन और विज्ञान दोनों इसकी पृष्टि करते हैं कि प्रत्येक कारण अपने कार्य में सूक्ष्म रूप में वर्तमान रहता है। जैसे–जल से बने हजारों वस्तुओं में जल के स्थिर या परिवर्तित गुण सूक्ष्म रूप में विद्यमान अवश्य रहेगा। इस क्रम में हम एक ऐसे मूल सत्ता तक पहुँचते हैं जिससे पूरे जगत् की उत्पत्ति का कारण माना जा सकता है। जिसका संक्षिप्त उल्लेख मैंने अपनी शोध–पत्र 'अंधकार की उत्पत्ति और अस्तित्व' में किया है। यहाँ ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति का मूल कारण अंधकार के अणुओं की नैसर्गिक क्रियाशीलता का गुण बताया गया है। अंधकार के इन्हीं अनन्त गुण, धर्म, उर्जा आदि गुणों से युक्त अणुओं के संयोग, वियोग, फैलाव, क्रियाशीलता आदि के कारण सृष्टि का अस्तित्व वर्तमान है।

सृष्टि के मौलिक तत्त्व के अस्तित्व का और उससे ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के निम्नलिखित प्रमाण हैः–

क. चूँकि मूल तत्त्व सदैव परिवर्तित या अपरिवर्तित रूप में बहुतायत में वर्तमान रहता है। घड़ा मिट्टी के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। सम्पूर्ण घड़ा में मिट्टी पाया जाता है। चाहे नाम उसका कुछ भी रख दे किन्तु मूल रूप में मिट्टी ही है। इस सिद्धांत को 'सत्कार्यवाद' कहते हैं। यदि कार्य वस्तुतः कारण में अविद्यमान रहता तो किसी भी प्रयत्न से उसका आविर्भाव नहीं होता। क्या बालू से तेल निकाला जा सकता है ? या आकाश को मथकर मक्खन तैयार किया जा

सकता है ? तिल को पेरने से तेल निकलता है, क्योंकि तिल में पहले से ही तेल मौजूद रहता है। यह विशेष अवस्था में (जैसे कोल्हू में पेरने पर) प्रकट होता है। इसलिए निमित्त कारण का काम इतना ही है कि वह उपादान कारण में अप्रत्यक्ष रूप में वर्तमान कार्य को प्रत्यक्ष कर दे। "एक ही वस्तु की अव्यक्त और व्यक्त अवस्थाओं को क्रमशः कारण–कार्य के नाम से पुकारते हैं। सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर कपड़ा अपने धागों से पृथक् वस्तु नहीं है और न टेबल अपनी लकड़ी से भिन्न है। मिट्टी का घड़ा वस्तुतः मिट्टी ही है और पत्थर की मूर्ति वस्तुतः पत्थर ही है।"[1] इसी प्रकार सृष्टि के सम्पूर्णता में, या बहुतायत में अंधकार पाया जाता है। जगत् का कोई ऐसा कोना नहीं जहाँ अंधकार या उसके अणु अथवा अंधकार से बने प्रकाश के अणु वर्तमान न हो। अतः सृष्टि का निर्माण अंधकार से ही हुआ है।

ख. सांख्य का सत्कार्यवाद सिद्धांत सत् मालूम होते हुए भी पूर्णतः सत् नहीं है। न्याय–वैशेषिक और बौद्ध–दर्शन उसका विरोध कर 'असत्कार्यवाद' की स्थापना करते हैं। यदि उत्पत्ति के पूर्व ही कार्य की सत्ता विद्यमान थी तब फिर उत्पन्न होने का अर्थ ही क्या रह जाता है ? और निमित्त कारण का प्रयोजन ही क्या रह जाता है ? यदि मिट्टी में घड़ा पहले ही से मौजूद था तो फिर कुम्हार को मेहनत करने और चाक घुमाने की ज़रूरत ही क्या है ? इसके अलावे यदि "कार्य पहले ही उपादान कारण में मौजूद था तो फिर हम कारण और कार्य का भेद किस आधार पर करते हैं ? मिट्टी और घड़ा दोनों के लिए एक ही नाम का प्रयोग क्यों नहीं करते हैं ? मिट्टी का लोंदा ही घड़े का काम क्यों नहीं देता ? यदि यह कहा जाए कि दोनों में (मिट्टी और घड़े में) आकार को लेकर भेद है, तब तो यह स्वीकार करना होगा कि कार्य में कोई (वस्तु विशेष आकृति) ऐसी है जो कारण में नहीं था, अर्थात् कार्य वास्तविक रूप में कारण में विद्यमान नहीं था। यह सिद्धान्त 'असत्कार्यवाद' कहलाता है।"[2] इस सिद्धांत के अनुसार भी अंधकार से ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति का होना माना जा सकता है।

ग. ब्रह्माण्ड के रहस्यों, अद्भूत और विचित्र वस्तुओं घटनाओं आदि को देखकर सत्कार्यवाद अथवा असत्कार्यवाद दोनों सिद्धांतों को पूर्णतः ठुकराया या अपनाया नहीं जा सकता है। कभी–कभी मूल वस्तु के गुण–धर्म से भिन्न गुण–धर्म वाले वस्तु उत्पन्न हो जाता है। हम अपने दैनिक जीवन में यही पाते हैं कि कार्य उत्पत्ति के पूर्व अपने उपादान कारण में किसी–न–किसी रूप में मौजूद रहता है। यह केवल एक दृष्टि से ही सही है या यूं कहे कि सांसारिक दृष्टि से, या भ्रमित दृष्टि से ही सही है। किन्तु ज्ञानियों पर यह सत्, असत् कार्यवाद लागू नहीं होता; क्योंकि वे वस्तुओं के अनंत गुण, धर्मों आदि को जान लेते हैं। अतः वे बालू से भी तेल निकाल सकते हैं। निश्चित वस्तु से निश्चित कार्य–साधना अज्ञान, अल्पज्ञता और भ्रम का कारण है। इसी प्रकार यह भी असत् है कि कार्य उत्पति के पूर्व उपादान कारण में विद्यमान नहीं था। यहाँ एक तीसरा नियम उभर कर आता है जिसे 'सर्वकार्यवाद' कहते हैं। इसके अनुसार, प्रत्येक वस्तु के अनन्त गुण, धर्म होते हैं। जो वस्तुओं के सारे गुण, धर्मों आदि को जान जाता है, उसके लिए कुछ भी असम्भव नहीं है। वह बालू से तेल, या आकाश को मथकर मक्खन निकाल सकता है। विज्ञान की प्रगति और विकास इस दिशा में प्रयत्नशील है। नैनोटेक, क्वाँटम सिद्धांत आदि से धीरे–धीरे यह उजागर हो रहा है। वह मूल तत्त्व जिससे सृष्टि की उत्पत्ति हुई है अंधकार के अनन्त गुण, धर्म युक्त सूक्ष्मातिसूक्ष्म अणु है। इन्हीं से सृष्टि की उत्पत्ति हुई है इसलिए यह जगत् अनगिनत विभिन्ताओं, अद्भूत रहस्यों, और अनेकों तत्त्वों, गुणों आदि विभिदताओं से भरा पड़ा है।

घ. ऐसी कोई जगह नहीं है, जहाँ अंधकार न हो, अथवा प्रकाश के जाते ही अंधकार का अस्तित्व वर्तमान न हो जाता हो। जैसे घड़ा के टूटने से पुनः मिट्टी बन जाता है, उसी प्रकार प्रकाश अंधकार में लय हो जाता है। इससे यह साबित होता है कि अंधेरे की उपस्थिति हर जगह

है प्रकाश के आ जाने से केवल उतने समय के लिए जितने समय तक प्रकाश वर्तमान रहता है, वह (अंधकार) अदृश्य रूप में वर्तमान रहता है या लोप भी हो जाता है तो प्रकाश की समाप्ति पर तत्क्षण प्रत्यक्ष हो जाना सृष्टि के कण–कण में इसकी सिद्धि और इससे जगत् की उत्पत्ति का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

ङ. जगत् का ऐसा कोई कोना नहीं है जहाँ खाली अथवा रिक्त स्थान हो, हर जगह अंधकार या उससे निर्मित प्रकाश के अणु मौजूद है। और जहाँ इन दोनों में से कोई भी उपस्थित है वह जगह खाली कदापि नहीं हो सकता हैं। इनकी सूक्ष्मता, बहुगुणता और सूक्ष्म सकल ज्ञान के अभाव में हम जिसे रिक्त कहते हैं, उसके एक–एक अणु में अपार क्षमता है। अतः उसे खाली या रिक्त कहना अज्ञानता है।

च. "वेद, उपनिषद् आदि ग्रंथों में अंधकार को अनन्त, अनादि माना गया है। उसकी उत्पत्ति का कही कोई प्रमाण नहीं मिलता है। बल्कि हर जगह पूर्व से इसकी उत्पत्ति दर्शाया गया है जबकि प्रकाश की उत्पत्ति की व्याख्या की गयी है। इससे यह सिद्ध होता है कि अंधकार अनादि तथा अनंत है। प्रकाश तथा सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति उसी से हुई है।"[3]

छ. "पवित्र बाइबिल और कुर्आन शरीफ़ के अनुसार भी जगत् के शुरू में ईश्वर की आत्मा, अथाह जल और चारों तरफ़ अंधकार था। इसके बाद ईश्वर ने सृष्टि के सारे तत्त्वों आदि की रचना की। यहाँ ध्यातव्य है कि उपादान कारण और उसमें विद्यमान एक या अनेक गुण, धर्म आदि से ही किसी वस्तु की उत्पत्ति सम्भव है। उस समय केवल दो ही उपादान कारण मौजूद था–अंधकार और जल। अतः ईश्वर ने इन्हीं दोनों कारणों से जगत् की उत्पत्ति की है। यहाँ भी अंधकार मूल कारणों में एक है।"[4]

ज "ऋग्वेद में असत् से सत् की उत्पत्ति का कारण बताया गया है। नासदीय सूक्त में अंधकार को सृष्टि के पहले बताया गया है। उसे आदि और अनन्त माना गया है। उपनिषदों या अन्य कई जगहों पर असत्, अंधकार, अज्ञान, माया, भ्रम को समानार्थी माना गया है। नासदीय सूक्त में भी अंधकार के बाद ही प्रकाश की उत्पत्ति को स्वीकारा गया है।"[5]

झ. "कुर्आन शरीफ़ में बताया गया है कि अंधकार था तथा अल्लाह ने प्रकाश को उत्पन्न किया। एक प्रसंग में यह भी कहा गया है कि अल्लाह ने 'मुक्त किया' इसका अर्थ यह होता है कि अल्लाह ने अंधकार से मुक्त किया। इस प्रसंग में यहाँ भी अंधकार की उत्पत्ति प्रकाश से पहले मानी गयी है। सूरः 14 के आयत 1 में कहा गया है कि लोगों को (अज्ञान के) अन्धेरों से निकालकर (ज्ञान के) उजाले में जाओ।"[6]

ञ. "आधुनिक बिग बैंग सिद्धांत के अनुसार परमाण्विक आकार के अति–संघनित के विस्फोट से सृष्टि का निर्माण हुआ है, जो लगातार फैलता ही जा रहा है, जिसे महाविस्फोट या बिग बैंग का सिद्धांत कहते हैं। इसके अनुसार भी सृष्टि के रचनाकाल से सैकडों वर्षों तक हर जगह अंधकार–ही–अंधकार था। तत्पश्चात् हाइड्रोजन, हीलियम या विभिन्न अणुओं के प्रादुर्भाव से, क्रिया–प्रतिक्रिया स्वरूप तारों का निर्माण हुआ होगा और सृष्टि में पहली बार प्रकाश का उदय हुआ होगा। यह सिद्धांत भी अंधकार के पूर्व अस्तित्व को मानता है।"[7] अतः मूल में जो तत्त्व उपस्थित था उसी से ही सृष्टि की उत्पत्ति माना जाएगा।

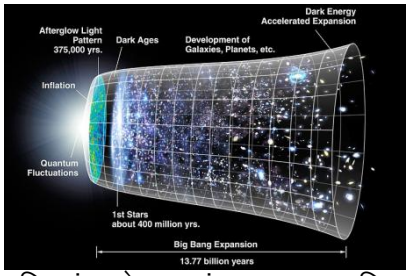

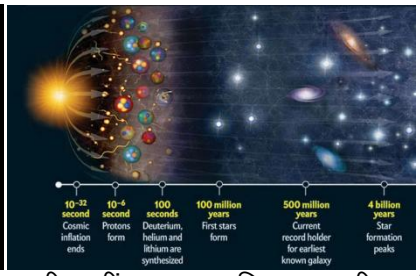

ट. "बिग बैंग सिद्धांत केवल अंधकार का अस्तित्व ही नहीं मानता बल्कि यह भी साबित करता है कि फैलने वाला और क्रिया करने वाला अणु अंधकार के अणु ही रहे होंगे। क्योंकि शुरू में केवल अंधकार था। इसी के अणुओं के अनंत, गुण धर्मों के क्रियाशीलता के कारण सृष्टि और सृष्टि के तमाम चेतन–अचेतन जीवों और तत्त्वों की उत्पत्ति हुई होगी।"[8]

ठ. "अंधकार के यह अणु अनंत, अनादि, सर्वगुण सम्पन्न, सर्वज्ञ आदि गुणों से युक्त स्वनिर्मित या स्वरचित है। उपनिषदों, वेदों, धर्मग्रथों आदि में जिस निर्गुण ब्रह्म की व्याख्या की जाती है दरअसल वह अंधकार के ही गुण है, जिसे कई तरह से वर्णित किया जाता है। अंतर इतना है कि परब्रह्म को आनन्द और शुभ गुणों से युक्त दर्शाया जाता है"[9] जो एकांगी है। अंधकार के अणुओं सुख–दुःख, सत्य–असत्य, शुभ–अशुभ, दृश्य–अदृश्य आदि तमाम गुणों से युक्त है। या तो उनके मूल गुणों में या फिर क्रियाशीलता और परिस्थिति विशेष के कारण समयोपरांत उन गुणों से उत्पन्न नये गुणों का प्रार्दूभाव होता है। जिस प्रकार तीन प्राथमिक रंगों के निश्चित संयोग से अन्य रंगों का प्रादुर्भाव सम्भव है, उसी प्रकार अंधकार से अणुओं के निश्चित संयोग–वियोग से नित्य नये तत्त्वों, घटनाओं आदि का निर्माण होते रहता है। अतः अंधकार के अणुओं के अनंत गुण, धर्मों आदि के क्रियाशीलता का परिणाम यह सारा सृष्टि है।

ड. यदि हम ऐसी जगह पर खड़े हो जहाँ चारों तरफ़ प्रकाश ही प्रकाश हो वहाँ भी हम अपनी मुट्ठी बंद करके देखेंगे तो अंधेरा दिखाई देगा। मुटठी में इस तरह अंधकार के अणुओं का आ जाना वो भी बिना समय गवाय, यह सिद्ध करता है कि अंधकार या अंधकार के अणु सृष्टि के कण–कण, हर कोने में मौजूद है तथा इसी से सृष्टि का निमार्ण हुआ।

ढ. बिना किसी प्रयत्न के ही अंधकार को प्राप्त किया जा सकता है किन्तु प्रकाश या अन्य सांसारिक या असांसारिक वस्तुओं आदि के साथ ऐसा नहीं है। चूँकि मूल चीज़ हर जगह सुलभता से प्राप्त किया जा सकता है। जिस किसी वस्तु से सृष्टि की रचना हुई है वह इसके कण–कण में व्याप्त होनी चाहिए। अतः अंधकार ही वह मूल स्त्रोत है जिससे ब्रह्माण्ड का निर्माण हुआ है।

ण. प्रकाश का क्षेत्र सीमित होता है किन्तु अंधकार असीमित, अनन्त, सृष्टि के कण–कण में समाया और फैला हुआ तथा अनादि काल से वर्तमान है। प्रकाश से भरे क्षेत्र के बीच इस प्रकार सुलभता से अंधकार का आ जाना इस विशाल ब्रह्माण्ड में हर जगह उसकी उपस्थिति का प्रत्यक्ष आभास कराता है।

त. "पूरे ब्रह्माण्ड में सबसे ज्यादा अंधकार के उर्जा (डार्क एनर्जी) और अंधकार के तत्त्वों (डार्क मैटर) का पाया जाना"[10] भी यही सिद्ध करता है कि मूल तत्त्व की उपस्थिति प्रचुर मात्रा में वर्तमान है। और सृष्टि के सारी वस्तुओं चेतन–अचेतन सब उसी एक से बना है।

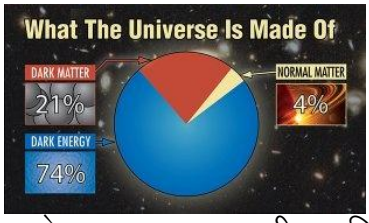

थ. "अंधकार का गुण विशेष का उल्लेख करना या उसकी प्रकृति और स्वरूप का निर्धारण करना असम्भव या दुस्सह कार्य है। विभिन्न धर्म ग्रथों या धर्मों में जिस ईश्वर, अल्लाह, ख़ुदा, मसीह आदि की व्याख्या की गयी है, असल में वह अंधकार के गुण–विशेष से सुशोभित है। वह पूरी तरह अंधकार के गुणों से आरोपित और युक्त है।"[11]

द. यदि हम जल के अंदर जाकर मुट्ठी बंद करते हैं तो मुट्ठी में जल आता है इसी प्रकार किसी पदार्थ या तत्त्व विशेष में हाथ डालकर मुट्ठी बांधेंगे तो मुट्ठी में वह पदार्थ या तत्त्व विशेष ही आता है किन्तु प्रकाश के क्षेत्र में या खुले आकाश में बंद मुट्ठी से अंधकार की प्राप्ति होना यह सिद्ध करता है कि प्रकाश अंधकार से उत्पन्न अथवा अंधकार के विशेष अवस्था की अभिव्यक्ति है तथा जिस मूल तत्त्व से सृष्टि का निर्माण हुआ, वह हर जगह प्रचुरता में सुलभता से प्राप्य है।

ध. "अब तक ज्ञात चालों में प्रकाश की चाल सबसे अधिक बताया गया है किन्तु प्रकाश से भी अधिक तेज़ गति से चलने वाली भी एक चाल है, जो प्रकृति के मूल तत्त्व अंधकार की चाल है। वास्तव में ब्रह्माण्ड का विस्तार ही अंधकार की गति या चाल है। बिग बैंग के अनुसार महाविस्फोट के 1.34वाँ सेकेण्ड में सृष्टि का फैलाव या विस्तार 10^{30} गुण हो गया था।"[12] जो प्रकाश के वेग से बहुत अधिक है। यह विस्तार और कुछ नहीं अंधकार का ही फैलाव था।

न. प्रकाश की उष्मा–शक्ति और उर्जा ख़त्म होकर समाप्त हो जाती है और पुनः अपने मौलिक रूप अंधकार में तब्दील हो जाती है। किन्तु अंधकार सदैव बना रहता है। प्रकाश के आने पर भी यह अदृश्य रूप में बना रहता है जिसे हम देख नहीं पाते। जिस प्रकार किसी विशाल जल राशी के ऊपर प्रकाश की किरण पड़ने पर जलराशी और जलराशी के अंदर जितनी गहराई तक प्रकाश जाकर हमारी आँखों तक लौटता है उतना ही हम देख और समझ पाते हैं किन्तु पूरे जलराशी को भेदने की क्षमता उस प्रकाश में नहीं है। एक विशाल जलराशी अक्षुण्य रह जाता है। उसी प्रकार प्रकाश अंधकार के कुछ ही भाग को प्रकाशित और दृष्टिगोचर कर पाता है। प्रकाशित वस्तुओं में भी बहुत सारे वस्तुओं के अंधकार के बहुतायत गुणों के कारण देख नहीं पाते हैं।

प. हमारे आस–पास बहुत सारी वस्तुएँ मौजूद है जिसे हम देख, समझ नहीं पाते; क्योंकि अंधकार का बहुतायत गुण उन वस्तुओं में मौजूद है जो उसे अदृश्य किये रहता है। किन्तु अनन्त गुण, धर्मों के कारण किसी विशेष अवस्था या परिस्थिति में वह हमें नज़र आ जाती है। इससे यह प्रमाणित होता है कि अंधकार और उसके गुणों से युक्त अनन्त वस्तुयें हमारे आस–पास मौजूद है जिसे हम अंधेरे के अत्याधिक गुणों के कारण देख नहीं पाते हैं। अतः अंधकार की मौजूदग़ी हर जगह, हर क्षण वर्तमान रहता है।

फ जिसे हम भूत–प्रेत, आत्मा, जीवात्मा या परमात्मा कहते हैं वह अंधकार के ही विशेष अवस्था की उपस्थिति, आभास, अनुभूति, अंतः अनुभूति या प्रत्यक्ष आदि है। अपने स्वाभविक अनन्त गुण, धर्मों आदि के कारण अवस्था विशेष और क्रियाशीलता के नैसर्गिक स्वभाव के परिणामस्वरूप अनन्त गुण–धर्म अपने विभिन्न गुण–धर्मों में बनते–बिगड़ते रहते हैं। अतः यह कहना कि आत्मा या भूत–प्रेत आदि काल्पनिक है। अल्पज्ञता का परिचायक है।

ब. प्रत्यक्ष प्रमाण के रूप में अंधकार स्वीकृत है। कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है जो अंधकार के अस्तित्व को पूरी तरह नकार दे। अंधकार को हम प्रत्यक्ष देखते है। भले ही इसके स्वरूप के निर्धारण में भिन्नता या अल्पज्ञता पाया जाता है किन्तु उसके अस्तित्व से कोई इंकार नहीं कर सकता।

भ. सभी वस्तुएँ अंधकार से निकली है और अंततः अंधकार में ही विलीन हो जाती है। उनकी उर्जा–शक्ति सूक्ष्म रूप में अंधकार के उर्जा में समाहित हो जाती है। इस प्रकार सृष्टि में उर्जा की नित्यता सदैव वर्तमान और एक समान बनी रहती है।

उपर्युक्त तत्त्वों से सिद्ध होता है कि अंधकार ही सृष्टि का मूल है और इसी से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का निर्माण हुआ है। इसके अलावे ईश्वर या आत्मा सिद्धि के लिए दिये जानेवाले प्रमाणों का सहारा लेकर भी अंधकार से विश्व की उत्पत्ति या अंधकार के अस्तित्व को प्रमाणित किया जा सकता है जिसे आगे के शोध–पत्रों में विस्तृत विवेचन के साथ प्रस्तुत किया जाएगा।

अतः सृष्टि के समस्त रहस्यों को समझने के लिए अंधकार का सूक्ष्म प्रायोगिक और प्रमाणित ज्ञान प्राप्त करना अति आवश्यक है। अथवा प्रकाश का ही सूक्ष्म अध्ययन प्राप्त करके सृष्टि के मौलिक तत्त्व अंधकार तक पहुँचा जा सकता है। इसके लिए विज्ञान और दर्शन को साथ मिलकर काम करना होगा। चूँकि तर्कों और सिद्धांतों से ही प्रमाणित गणितियें सूत्रों की उत्पत्ति होती है। आगे चलकर इन्हीं सूत्रों से अनगिनत सिद्धांत और प्रमाणित ज्ञान की प्राप्ति होती है।

ब्लैक होल, डार्क मैटर, डार्क उर्जा आदि सृष्टि की कई ऐसी बहुतायत मात्रा की वस्तुएँ है जो अंधकार की भाँति अध्ययन से परे है। चूँकि मूल तत्त्व अपने रूप में या गुण में सदैव बहुतायत में उपस्थित रहता है। यही कारण है कि अभी बहुत सारी वस्तुओं को मूल रूप में देख पाना सम्भव नहीं है, जबकि प्रचुण मात्रा में सृष्टि में उपलब्ध है। उन्हें जानने के लिए और सृष्टि के उत्पत्ति से पर्दा हटाने के लिए हमें डार्क यानी अंधकार के बारे में गहन और सूक्ष्म अध्ययन करना होगा। अंधकार के बारे में ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् हम अदृश्य होने, तीब्र गति से गमन करने, भूत और भविष्य में भ्रमण करने जैसी अनेको कलाओं को ढूंढ सकते हैं जो वर्तमान मानव–समाज की आवश्यकता और अभिलाषा है। और यह तभी सम्भव है जब विज्ञान और दर्शन दोनों साथ मिलकर एक दूसरे के सहयोग से काम करे। सृष्टि के यथार्थ रूप को जानने के लिए प्रकाश की नहीं अंधकार का अध्ययन करना ज्यादे उचित रहेगा; क्योंकि प्रकाश का उदय बहुत बात में हुआ उससे पहले कई अद्भूत चीज़ों का निमार्ण हो चुका था। यह भी विदित है कि अंधकार का अध्ययन बहुत कठिन और ज्ञान से परे जान पड़ता है। किन्तु ब्रह्माण्ड के रहस्यों को उजागर करने के लिए इसका अध्ययन अति–आवश्यक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कारिका और कौमुदी, 3. 10–16, प्रवचन भाष्य और वृत्ति, 1. 110, 1. 122. 37
2. चट्टोपाध्याय, श्री सतीशचंद्र एवं दत्त, श्री धीरेंद्र मोहन, "भारतीय दर्शन", पुस्तक भंडार पब्लिशिंग हाउस, गोविंद मित्र रोड, पटना, तृतीय संस्करण, मार्च 1994, पृ 251
3. ऋग्वेद, (नासदीय सूक्त) 10. 129. 3
4. पवित्र बाइबिल, क, 1–4, कुर्आन शरीफ़, सूरः 21, आयत 30–35
5. ऋग्वेद, (नासदीय सूक्त), 10. 129. 1–7

6. कुर्आन शरीफ़, सूरः 21, आयत 30, सूरः 14 आयत 1 (मुतर्जमः बरहाशियः (सानुवाद सटिप्पण), "कुर्आन शरीफ़", रूपान्तरकार–नन्द कुमार अवस्थी, प्रकाशक–विनय कुमार अवस्थी, लखनऊ किताबधर, मौसमबाग़, लखनऊ, 19वाँ संस्करण, 2014, 24 सूरतु अिब्राहीम 72. 1, पेज नम्बर, 427)
7. https://en.m.wikipedia.org/wiki/Big_Bang, https://fundabook.com/explained-big-bang-theory-birth-inverse-hindi/
8. वही
9. तैत्तिरीयोपनिषद्, 2. 1. 1
10. https://hi.quora.com/%E0%A4%A1%E0%A4%BE%E0%A4%B0%E0%A5%8D%E0%A4%95-%E0%A4%AE%E0%A5%88%E0%A4%9F%E0%A4%B0-%E0%A4%94%E0%A4%B0-%E0%A4%A1%E0%A4%BE%E0%A4%B0%E0%A5%8D%E0%A4%95-%E0%A4%8F%E0%A4%A8%E0%A4%B0%E0%A5%8D%E0%A4%9C%E0%A5%80#
11. मुण्डकोपनिषद्, 2. 2. 10–11
12. https://bit.ly/2suRUHr

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

दलित चिन्तन की वैचारिकी और सर्जनात्मक साहित्य

डॉ. हिमांशु कुमार*

भारतीय सामाजिक संरचना में हजारों वर्षों तक बहुजन समाज शूद्र के रूप में जीवन जीने के लए अभिशप्त रहा है। ये शूद्र दास थे, श्रमिक थे, अस्पृश्य थे किन्तु मनुष्य नहीं थे, इन्हें ब्राह्मण के आदेशों से चलना होता था। कुछ पंक्तिया द्रष्टव्य हैं–

''पुरूष मेघ यज्ञ में ब्राह्मण ब्रह्मत्व को, राजन्य राज्य को, वैश्य मरूत को और शूद्र तप (श्रम) को बलि चढ़ाया जाना चाहिए।''[1]

''यदि कोई ब्राह्मण किसी क्षत्रिय या वैश्य को गाली दे तो उसे जुर्माना चुकाना पड़ेगा, किन्तु यदि वह शूद्रों को गाली दे तो उसे कोई सजा नही मिलेगी।''[2]

''चाण्डाल को छूना और देखना पाप है।''[3]

''शूद्र की हत्या करने के लिए वही प्रायश्चित निर्धारित है जो किसी राजहंस मयूर बत्तख, कौवे उल्लू, मेढ़क, छछून्दर, कुत्ते आदि की हत्या के लिए।''[4]

प्राचीन साहित्य में ऐसे हजारों उदाहरण भरे हैं जो दलितों के प्रति अभिजात्य समाज की हैवानियत के प्रमाण।

संस्कृत में लिखे गये धर्म ग्रन्थों में रामायण काल में 'शम्बूक वध', महाभारत कालीन एकलव्य एवं, कर्ण की उपेक्षा के साथ दण्ड आदि (वर्ण और जाति के आधार पर) का प्रकरण दलित वर्ग के प्रतिनिधित्व करने वाले नायकों के साथ अन्याय, भारतीय हिंदू समाज की पोल खोलता है और यहीं से दलित जन मानस में आक्रोश की लहर पैदा होती है। दलित चिंतन की शुरूआत लगभग यहीं से मानी जा सकती है।

वस्तुतः दलित कहा जाने वाला ही कभी शूद्र, अनार्य, अस्पृश्य, अछूत और गांधी जी का 'हरिजन', कहा जाता रहा है। 'दलित कौन है'– इस प्रश्न के लिए कुछ विद्धानों के विचार को देखना अप्रासंगिक न होगा। ओम प्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं– ''दलित शब्द का अर्थ है जिसका दलन और दमन किया गया है, जिसे दबाया गया है। उत्पीड़ित, शोषित सताया हुआ, गिराया हुआ, उपेक्षित, घृणित, रौंदा हुआ, मसला हुआ, विनिष्ट, मर्दित, पस्त हिम्मत, हतोत्साहित, वंचित आदि।''[5]

दलित लेखक माताप्रसाद 'दलित' की परिभाषा इस प्रकार करते हैं– दबाया गया, गिराया गया, अलग किया गया, उत्पीड़ित उपेक्षित, बहिष्कृत, अपमानित शोषित आदि।..... मुख्यतः हिन्दू समाज में शस्त्र और शास्त्रसे पीड़ित अपमानित और शोषित समुदाय आते हैं, उनमें जहाँ अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, घुमंतु जातियाँ बंधुआ मजदूर, झोपड़ पट्टियों में रहकर नारकीय जीवन जीने वाले भी आते है।''[6]

* असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

कह सकते हैं कि शूद्र ही प्राचीन काल का दलित है। शूद्र वर्ण हमेशा से ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्ण के बोझ तले दबा रहा है। इस कारण हर तरह के क्षेत्र से उनका ज्ञान शून्य होना है।

हिंदी साहित्य में यदि दलितों के स्वरूप की पड़ताल की जाय तो पता चलता है कि आदिकाल, और रीतिकाल में भी दलित चितंन के उत्स मौजूद रहे हैं। आदिकाल में दलित चेतना का स्वरूप उसके सिद्ध साहित्य में है। सिद्ध साहित्य ने चौरासी सिद्धों में अधिकतर शूद्र या निम्न जाति के सिद्ध थे। जैसा कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है– ''84 सिद्धों में बहुत से मछुए, चमार, धोबी, डोम, कहार, दर्जी तथा बहुत से शूद्र कहे जाने वाले लोग थे। नाथ सम्प्रदाय भी जब फैला तब उसमें जनता की नीची और अशिक्षित श्रेणियों के बहुत से लोग आये जो शास्त्र ज्ञान सम्पन्न न थे। जिनकी बुद्धि का विकास बहुत ही सामान्य कोटि का था। पर अपने को रहस्यदर्शी प्रदर्शित करने के लिए शास्त्रज्ञ, पंडितों और विद्धानों को फटकारना भी वे जरूरी समझते थे। सद्गुरू का माहात्म्य सिद्धों में भी और उनमें भी बहुत अधिक था।''[7]

सिद्ध साहित्य हमें यह जानकारी देता है कि सिद्धों ने बाह्याचार, जाति भेद विषयक तांत्रिक विद्रोह का आंदोलन चलाया था, जिससे निम्न जातियाँ जागृत हुई और उनमें भी विद्रोह पैदा हुआ।

भक्तिकाल में जनता अन्याय, शोषण और दरिद्रता से पीड़ित थी। दलित जातियाँ ऊँचे वर्गों के प्रभाव से दबी हुई थीं। उनका जीवन उपेक्षित और बहिष्कृत था। भक्ति के माध्यम से मिथ्याडम्बर, रूढ़िवाद के विरोधी और जाति–पाँति को न मानने वाले निर्गुणवादी संत कवियों में कबीर प्रमुख कवि हैं जो निम्न जाति जुलाहा से हैं। कबीर ने भक्ति के क्षेत्र में जाति–पाँति का विरोध किया और अपनी जाति सम्बन्धी अवधारणा प्रकट करते हुए कहा– ''एक बूंद एक मल मूतर एक चाम एक गूदा, एक जाति थै सब उपजा, को ब्राह्मण को सूदा।''[8]

संत रैदास ने भी अपने समाज में व्याप्त ब्राह्मणों द्वारा फैलायी गयी छूआ–छूत की बीमारी, सामाजिक विषमता, जाति भेद, ऊँच–नीच विषयक धारणाओं के प्रति रोष व्यक्त किया था। इसी प्रकार दादू, पीपा, सेना आदि भक्तियुगीन कवियों ने भी भारतीय सामाजिक व्यवस्था पर कठोर प्रहार किया है। रीतिकाल में अधिकांश कवियों का समय, राज्याश्रित राजाओं की प्रशंसा में गुजरा, जिसके कारण उनका ध्यान समाज की विषमता पर नहीं बल्कि अपने अर्थ की प्राप्ति या कमाई पर ही था। हिन्दी साहित्य के अलावा दलित चिंतन के क्षेत्र में अन्य भाषाओं जैसे कि मराठी, तमिल, तेलगू, कन्नड़, बंगला आदि में भी रचनाकारों ने दलितों के ऊपर अपनी दृष्टि दौड़ाई। हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल में साहित्य की लगभग सभी विधाओं में दलित सम्बन्धी रचनायें मिलती हैं। आधुनिक काल में दलित चिंतन के क्षेत्र में कुछ ऐसे विचारकों ने अपनी वैचारिकी दी जिसका कालजयी प्रभाव हुआ और दलित साहित्य निरन्तर ऊजीस्वित होता रहा। इन विचारकों में ज्योतिबा फुले, बाबा साहेब अम्बेडकर और गांधी जी को देखा जा सकता है। जो दलितों की मुक्ति की बात करते हैं।

भारतीय इतिहास में बौद्ध धर्म, वैदिक संस्कृति और वर्ण व्यवस्था का कटु आलोचक रहा है। बौद्ध धर्म में जाति–पाँति, ऊँच–नीच का स्थान नहीं है। वह स्त्री–पुरूष के समान अधिकारों का पक्षधर है। अपने जीवन के अंतिम समय तक ब्राह्मणवाद से संघर्ष करने वाले डॉ. अम्बेडकर लिखते हैं– ''मै पैदा हुआ, इस पर तो मेरा वश नहीं था, मगर मैं हिन्दू के रूप में मरूँगा नही।''[9] वस्तुतः वे मुनष्य होने के पक्षपाती थे। वे अपने जीवन काल में ही हिन्दू धर्म छोड़ने का मन बना

चुके थे। इसके लिए उन्होंने अपने समय में विश्व के समस्त प्रचलित धर्मों का न सिर्फ गहन अध्ययन किया था बल्कि विशेष रूप से सनातन हिन्दू धर्म, इस्लाम और ईसाई धर्म की आलोचना भी की थी और सारे धर्मों की मूल अवधारणाओं को समझने के बाद बौद्ध धर्म को ग्रहण किया था। उनके जीवन का एक मात्र लक्ष्य दलित मुक्ति था।

डॉ. अम्बेडकर ने अपने निबंध 'जातिप्रथा उन्मूलन में लिखा है– ''चाहे आप किसी भी दिशा में देंखें जाति एक ऐसा दैत्य है जो आपके मार्ग में खड़ा है। आप जब तक इस दैत्य को नहीं मारेंगे, आप न कोई राजनीतिक सुधार कर सकते हैं, न कोई आर्थिक सुधार।''[10] वस्तुतः डॉ अम्बेडकर यह जानते थे कि स्वाधीन भारत में जातिवाद का जीवित रहना देश के लिए घातक होगा।

ज्योतिबा फुले ने 'गुलामगिरी' में लिखा है– ''शूद्रों को ब्रह्म राक्षसों की गुलामी से मुक्ति प्राप्त करन के लिए ब्राह्मणों के उन सभी धर्मग्रन्थों का विरोध करना होगा, जिनमें हमारी गुलामी का समर्थन है।''[11] कह सकते है कि अम्बेडकर ने जब दलित मुक्ति के सवाल को अमली जामा पहनाना शुरू किया तो फुले की विरासत ने उन्हें विभिन्न अनुभवों से समृद्ध किया।

एक प्रश्न के जवाब में अम्बेडकर, गांधी जी को उत्तर देते हैं– जिस देश और धर्म में हमें कुत्तों और बिल्लियों से भी बदतर माना जाता है, जिस देश तथा धर्म में हम सार्वजनिक स्थानों पर पानी नहीं पी सकते, उस देश को मैं अपना देश कैसे कहूँ? उस धर्म को मैं अपना धर्म कैसे मानूं? कोई भी स्वाभिमानी अछूत इस देश को अपना देश नही कह सकता।

गाँधी जी विकट ऊर्जा से सम्पन्न व्यक्ति थे। वे मानवता के सच्चे सेवक थे। गाँधी हिन्दू धर्म को आडंबर मुक्त और हिन्दू समाज को भेदभाव रहित बनाना चाहते थे। इसके लिए वे जीवन भर लिखकर, बोलकर और आचरण कर, प्रयत्न करते रहे। गांधी ने अपनी आत्मकथा के चौदहवें अध्याय में कहा है– ''हिन्दुस्तान में उन लोगों को जो सबसे बड़ी समाज सेवा करते हैं, भंगी, मेहतर ढेढ़ कहते हैं और उनको अछूत मानकर उनके मकान गाँव से बाहर बनवाते है।''[12] इस बात से गाँधी के दर्द को अवश्य समझा जा सकता है। वे इस भंयकर पाप से पूरे समाज को छुटकारा दिलवाना चाहते थे।

दलित चिंतन और विमर्श वर्तमान दौर में सामाजिक व्यवस्था की सच्चाई है। दलित आंदोलन की लंबी परम्परा रही है जो बुद्ध के बाद अम्बेडकर में साकार होती है। गांधी और अम्बेडकर के बारे में कहें तो गांधी स्वतन्त्रता आन्दोलन के एकमात्र महानायक है तो दूसरी तरफ़ सामाजिक आन्दोलन के नायक बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर हैं।[13]

इस वैचारिकी का प्रभाव आधुनिक काल के दलित साहित्य पर पड़ा है और इस के अलावा गैर– दलित साहित्य में भी दलितों की पीड़ा अभिव्यक्त हुई है। प्रेमचन्द के उपन्यासों और कहानियों में दलितोद्धार, दलितों का पतित जीवन, ऊँचे वर्ग के द्वारा दलितों का शोषण, उनके चिन्तन का आधार है। गोदान में सिलिया नामक चमारिन की उपकथा दलित अबलाओं पर होने वाले अत्याचार और उनकी कष्टमय जिंदगी की वास्तविकता बताती है। उग्र के उपन्यास 'बुधुवा की बेटी' में दलितों के उद्धार की बात आयी है। 'प्रेमचन्द की 'कफन', 'मंदिर', 'मंत्र', 'ठाकुर का कुआँ', 'घासवाली', 'दुध का दाम' इत्यादि कहानियाँ दलितों की वेदना, पीड़ा, दरिद्रता आदि का चित्रण करती हैं। राहुल सांकृत्यान के 'प्रभा', 'सुमेर', 'पुजारी', 'सतमी' के बच्चे आदि में विविधि समयों की व्यवस्था के प्रति दलितों की विरोधी भावना को चित्रित किया गया है। निराला

के 'चतुरी', उपेन्द्र नाथ अश्क के 'पिंजरा' आदि कहानियों में दलित चेतना के स्वरूप विद्यमान हैं। निबन्धों, नाटकों रेखाचित्रों में भी यह स्वरूप विद्यमान है।

हिन्दी काव्य धारा के अन्तर्गत हिन्दी में जो दलित चेतना का स्वरूप है उसमें राष्ट्रीय, छायावादी, समाजवादी, प्रगतिवादी, प्रयोगवादी आदि काव्यधाराओं के विचार प्रवाह समाविष्ट है। जैसे कि– निरालाकृत 'तोड़ती पत्थर', राजकुमार वर्मा के 'एकलव्य' इत्यादि की चर्चा की जा सकती है। दिनकर की 'रश्मिरथी', नागार्जुन की 'हरिजन गाथा', त्रिलोचन की मंगई–महरा, लीलाधर जगूडी की 'बलदेव खटिक' तथा धूमिल की 'मोचीराम' आदि में तत्कालीन समय के दलितों की सामाजिक स्थिति का पता चलता है। अपने चर्चित काव्य–संग्रह 'मेरे पुरखे' शीर्षक कविता में अम्बेडकर पूर्व पुरखों को याद करते हुए इस तरह कहते हैं।

''तुमने कहा–

ब्रह्मा के पाँव से जन्में शूद्र और सिर से ब्राह्मण उन्होंने पलटकर नहीं पूछा– ब्रह्मा कहा से जन्मा?''[14]

हिन्दी की दलित स्त्री कहानीकार सुशीला टांकभौरे अपने संग्रह 'हमारे हिस्से का सूरज' में दलितों के मसीहा' शीर्षक कविता में कहती हैं–

''दलित अछूत ढूँढ रहे थे, पीड़ाओं से मुक्ति का मार्ग/अंधेरे में आशा का प्रकाश, जिससे विश्वास कर सकें,/दुनिया उनकी भी है, उन्हें भी जीने का हक है।/दलितों के मसीहा बाबा साहब ने, राह दिखाई है।/विद्रोह, आंदोलन और क्रांति से, पा सके हैं वे अपने अधिकार।/मुक्ति का मार्ग।''[15]

हिंदी की दलित आत्मकथाएँ दलित साहित्य की श्रेष्ठ उपलब्धि हैं। इन आत्मकथाओं के आ जाने से साहित्य में एक हलचल–सी पैदा हो गयी। हिंदी की इन दलित आत्मकथाओं में द्विज मानसकिता के यथार्थ चित्रण के साथ तथा कथित निम्न जातियों के प्रति उनमें जो घृणा, उत्पीड़न, अवमानना मौजूद है। उसका सटीक, बेबाक व विद्रोह पैदा करने वाला चित्रण देखने को मिलता है। दलित आत्मकथा लिखने की शुरूआत तो मराठी लेखकों ने की, पर अब इसका धीरे–धीरे सभी भारतीय भाषाओं में विस्तार हो गया है। वस्तुतः साहित्य में अपने अपको व्यक्त करने के लिए आत्मकथा से श्रेष्ठ और कोई विधा नहीं हो सकती। हिंदी की दलित आत्मकथाओं में समाज के उस वर्ग के दुःखों, दर्दो एवं तमाम पहलुओं को अभिव्यक्त किया गया है, जिसे साहित्य की दुनिया से सैकड़ों हजारों सालों तक बहिष्कृत रखा गया था। मोहनदास नैमिषराम की 'अपने–अपने पिंजरे', ओमप्रकाश बाल्मीकि की 'जूठन' डॉ. सूरजपाल चौहान की 'तिरस्कृत' और 'संतृप्त' तथा डॉ. तुलसीराम की सद्यः प्रकाशित 'मुर्दहिया' एवं 'मणिकर्णिका' आदि ने हिंदी जगत का ध्यान बखूबी आकृष्ट किया है। दलितों की आत्मकथाओं ने साहित्यिक जगत् में खलबली मचाने में कोई कोर कसर बाकी नहीं रखी है क्योंकि ये स्वानुभूति का सच हैं। शरण कुमार लिम्बाले, जयप्रकाश कर्दम, डॉ. धर्मवीर, 'बेचैन', तेज सिंह, रजनी तिलक, मलखान सिंह, कँवल भारती आदि साहित्यकार दलित चिंतन को नयी दिशा दे रहे हैं।

यहीं पर एक बात और ध्यातव्य है कि दलित वर्ग अब धीरे–धीरे जागरूक हो रहा है। आज बेरोजगारी की समस्या चरम पर है। आरक्षण की व्यवस्था ने लोगों को अपने हित के लिए नये विषय क्षेत्र का चुनाव करने की सहूलियत दी है। यही दलित वर्ग जो पहले संस्कृत पढ़ने से हिचकता था लेकिन अब अकादमिक क्षेत्र में ऐसा नहीं है। दलित वर्ग इसको समझ चुका है कि

इस विषय का अध्ययन करके नौकरी की भागदौड़ कम हो सकती है। अब संस्कृत पढ़ने और उसकी रोटी खाने से उसे गुरेज नहीं है। यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि अगर संस्कृत को दलित लोग अपना विरोधी मानते हैं तो विरोधी की माँद में घुसकर ही उसे ध्वस्त किया जा सकता है। भाषा को ध्वस्त करना उद्देश्य न होकर उनका उद्देश्य भाषा के साहित्य में सही और सकारात्मक तत्वों की खोज करना होना चाहिए। गोस्वामी तुलसीदास के ऊपर भी शोध से हिचकने वाले दलित अब उनके ऊपर शोध में संलग्न है और नयी–नयी परतें खोले रहे हैं। यह अकादमिक जगत के लिए अच्छा है। परस्पर विरोधी विचारों के सम्मिलन से ही एक नया विकास होता है। दलित मुक्ति की आकांक्षा धीरे–धीरे फलित हो रही है।

सन्दर्भ :

1. वाजसनेयि संहिता– xxx
2. गौतम धर्म सूत्र–xii, 11–13
3. आपस्तव धर्म सूत्रदृ ॥ 1–28
4. वही, 1 : 9, 25,13, बोधायन धर्म सूत्र, 1,10,19,6
5. दलित साहित्य की भूमिका – हरपाल सिंह 'अरूष', उद्धृत, पृष्ठ–3
6. वही, पृष्ठ– 6
7. हिन्दी साहित्य का इतिहास– रामचन्द्र शुक्ल, पृ. 10–11
8. कबीर ग्रन्थावली– श्यामसुन्दर दास (सम्पादक), पृष्ठ 30
9. आर्यकल्प (पत्रिका)– अवधेश नारायण मिश्र (सम्पादक), उद्धत, पृष्ठ 130
10. वही, उद्धृत, पृष्ठ 123
11. वही, उद्धृत, पृष्ठ 27
12. वही, उद्धृत, पृष्ठ 27
13. सत्य के प्रयोग– महात्मा गांधी, चौदहवाँ अध्याय
14. बस बहुत हो चुका– ओम प्रकाश वाल्मीकि, वाणी प्रकाशन, 1997, पृष्ठ 99
15. 'हमारे हिस्से का सूरज' – सुशीला टांकभौरे, पृष्ठ 43

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

रस एवं रसानुभूति की प्रक्रिया

डॉ0 रामकृष्ण यादव*

प्रस्तावना :

जिस प्रकार विभिन्न व्यंजनों, औषधियों एवं द्रव्यों के सेवन के दौरान एक विशेष स्वाद का हम अनुभव करते हैं, उसी प्रकार साहित्य की विभिन्न विधाओं के पठन, श्रवण या दर्शन से आनंद की अनुभूति होती है। इसे ही भारतीय साहित्यशास्त्र में 'रस' कहा गया है। 'रस्यंते आस्वाद्यते इति रसः। अर्थात् जिसमें आस्वाद मिले वही 'रस' है।

भारतीय काव्यशास्त्र में इस पर कई आचार्यों ने विचार किये हैं। इनमें भरतमुनि सर्वप्रथम आचार्य हैं। इन्हें रस परंपरा का प्रवर्तक आचार्य माना जाता है। इन्होंने रसाभिव्यक्ति की प्रक्रिया को सर्वप्रथम वैज्ञानिक रूप से प्रस्तुत किया। अपने ग्रंथ 'नाट्य शास्त्र' में इन्होंने लिखा कि– 'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगद्रसनिष्पत्तिः। अर्थात, विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों के संयोग से 'रस 'की निष्पत्ति होती है।'[1]

आचार्य भरतमुनि के इस रस –सूत्र में तीन प्रमुख पारिभाषिक शब्द आए हैं– 'विभाव', 'अनुभाव' तथा 'संचारी भाव'। 'स्थायीभाव' का उन्होंने पृथक रूप से उल्लेख किया है। ये सभी 'रस' के अवयव अंग) माने गए हैं।

स्थायी भाव :

स्थायी का अर्थ होता है, टिकने या स्थित रहने वाला। प्रत्येक मनुष्य के चित्त में प्रेम, क्रोध, दुःख आश्चर्य, उत्साह जैसे कुछ भाव सदैव रहते हैं। ये भाव हमारे चित्त में दबे रहते हैं । ये अनुकूल प्रतिक्रिया होने या विभावादि (कारण) से संबंध होने पर रस– रूप में व्यक्त होते हैं। इनकी संख्या आचार्यों ने 9 (नवरस) मानी है। कुछ विद्वानों ने भक्ति और वात्सल्य को भी स्थायी भाव माना है।

रस	स्थायी भाव
श्रृंगार	रति (स्त्री–पुरुष का प्रेम)
हास्य	हास
करुण	शोक (दुःख)
रौद्र	क्रोध
वीर	उत्साह
भयानक	भय
वीभत्स	जुगुप्सा (घृणा)
अद्भुत	विस्मय (आश्चर्य)

*

शांत निर्वेद (वैराग्य या शांति)

वत्सल (स्नेह) वात्सल्य (अपने से छोटे के लिए प्रेम)

भक्ति ईश्वर–विषयक प्रेम

विभावः

विभाव शब्द का पर्याय 'कारण', 'निमित्त' या 'हेतु' आदि शब्द है। स्थायी भावों को उत्पन्न करने वाले कारणों को विभाव कहा जाता है। ये दो प्रकार के होते हैं –

1. आलंबन विभाव :

आलंबन का अर्थ है आधार या सहारा। जिन व्यक्तियों या पात्रों के आलंबन (सहारे) से स्थायी भाव उत्पन्न होता है, वे आलंबन विभाव कहलाते हैं। जैसे लक्ष्मण मूर्छा के समय राम उन्हें अपनी गोद में लिए बैठे हैं तथा सुग्रीव, हनुमान आदि शोक संतप्त हैं। ऐसे में लक्ष्मण आलंबन हैं।

आलंबन के भी दो प्रकार हैं, आश्रय और विषय। जिस पात्र या व्यक्ति के चित्र में स्थायी भाव उत्पन्न होता है, वह आश्रय (भाव को अनुभव करने वाला) कहलाता है। जिसे लेकर या जिसके प्रति आश्रय के चित्त में ये भाव उत्पन्न होते हैं, वह विषय है।'[2]

2. उद्दीपन विभाव :

ये स्थायी भावों को उद्दीप्त (बढ़ाने या उत्तेजित) करने वाले भाव है। आश्रय के मन में जागृत स्थायी भाव को जो तत्व संवर्द्धित करते हैं या बढ़ाते हैं, वे उद्दीपन कहे जाते हैं। उद्दीपन विभाव भी दो प्रकार के हैं। विषय की बाहरी चेष्टाएं और वाह्य वातावरण।

श्रृंगार रस के प्रसंग में यदि नायक (आश्रय) के मन में नायिका (विषय) के प्रति रतिभाव जागृत होता है तो नायिका (विषय) की शारीरिक चेष्टाएं नायक (आश्रय) के मन में जागृत रति भाव को और अधिक तीव्र करती है तथा आसपास का सुंदर वातावरण, चांदनी रात आदि भी आश्रय के रति भाव को और अधिक तीव्र करने में सहायक होते हैं। अतः विषय की चेष्टाएं और वाह्य अनुकूल वातावरण दोनों उद्दीपन विभाव हुए।'[3]

अनुभाव :

आलंबन और उद्दीपन विभाव के कारण उत्पन्न भाव को बाहर प्रकाशित करने वाले कार्य 'अनुभाव' कहलाते हैं। दूसरे शब्दों में भावों का प्रत्यक्ष बोध कराने वाली आश्रय की चेष्टाओं को अथवा स्थायी भावों का अनुभव कराने वाले भाव को 'अनुभाव' कहा जाता है। ये चेष्टाएं कई बार अनजाने में स्वतः ही हो जाती हैं। जिन पर आश्रय का कोई वश नहीं चलता तथा कुछ चेष्टाएं शरीर, वाणी अथवा वेश, विन्यास आदि से भी प्रकट होती है। अतः इस आधार पर अनुभाव दो प्रकार के होते हैं, सात्विक अनुभाव तथा कायिक अनुभाव।

1. सात्विक अनुभाव :

जो अनुभाव मन में आए भाव के कारण स्वतः प्रकट हो जाते हैं, वे सात्विक हैं। जैसे पसीना आना, रोएं खड़े हो जाना, कपकपी होना, क्रोध से कंपित होना, आंसू छलकना या मूर्छित होना आदि।

2. कायिक अनुभाव :

शरीर में होने वाले अनुभव कायिक हैं, जैसे किसी को पकड़ने के लिए हाथ बढ़ाना, चितवन से अपने प्रेमी को ताकना, चिल्लाना, भौंह चढ़ाना आदि।

व्यभिचारी या संचारी भाव :

जो स्थायी भाव के साथ –साथ संचरण करते हैं, उन्हें संचारी भाव कहते हैं। ये स्थायीभाव के सहायक हैं। संचारी भाव जल में उत्पन्न बुलबुलों या लहरों की भांति उठते और विलीन हो जाते हैं। ये स्थायी नहीं रहते। एक संचारी भाव किसी एक स्थायी भाव या रस के साथ नहीं रहता है वरन् अनेक रसों में देखा जा सकता है, जो उसका व्यभिचरण है । जैसे शंका वियोग श्रृंगार में आती है और करुण भयानक में भी। यही वजह है कि इसे व्यभिचारी कहा गया है। व्यभिचारी भावों की संख्या 33 मानी गई है। 1. हर्ष 2. विषाद 3. त्रास (भाय व्यग्रता) 4. लज्जा (ब्रीड़ा) 5. गलानि 6.चिंता 7. शंका 8. असूया (दूसरे के उत्कर्ष के प्रति असहिष्णुता) 9. अमर्ष (विरोधी का अपकार करने की अक्षमता से अत्पन्न दुःख) 10.मोह 11. गर्व 12. उत्सुकता 13. उग्रता 14. चपलता 15. दीनता 16. जड़ता 17. आवेग 18. निर्वेद (अपने को कोसना धिक्कारना) 19. धृति (इच्छाओं की पूर्ति, चिंता की चंचलता का अभाव) 20. मति 21. विबोध (चौतन्य लाभ) 22. वितर्क 23. श्रम 24. आलस्य 25. निद्रा 26. स्वप्न 27. स्मृति 28. मद 29. उन्माद 30. अवहित्था (हर्ष आदि भावों को छिपाना) 31. अपस्मार (मूर्छा) 32. व्याधि (रोग) 33. मरण।

आचार्य भरतमुनि ने रस की व्याख्या करते हुए कहा है कि विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव के सहयोग से उत्पन्न होने वाले स्थायी भाव को रस कहते हैं। उनके रस सूत्र 'विभवानुभावव्यभिचारिसंयोगद्रसनिष्पत्ति' में दो अन्य महत्वपूर्ण विचारणीय शब्द आए हैं। 'संयोग' और 'निष्पत्ति'। इन दोनों शब्दों पर खूब शास्त्रार्थ हुआ। बहुत से शास्त्रविद् आचार्यों ने इन शब्दों को व्याख्यित या विश्लेषण करने का प्रयास किया। किंतु चार प्रमुख आचार्यों –भट्टलोल्लट, आचार्य शंकुक, भट्टनायक तथा अभिनव गुप्त के मतों को ही ज्यादा महत्व मिला। इनके मत संक्षिप्त रूप में निम्न प्रकार हैं :

1. भट्टलोल्लट का उत्पत्तिवाद या आरोपवाद

भट्टलोल्लट भरतमुनि के रस सूत्र के प्रथम व्याख्याता आचार्य माने जाते हैं। इन्होंने 'निष्पत्ति' का अर्थ 'उत्पत्ति' माना है। इनका कहना है कि रस की उत्पत्ति काव्य में वर्णित दुष्यंत, लक्ष्मण, सीता, हरिश्चंद्र शकुंतला या राम आदि पात्रों में होती है। जब उस मूल काव्य को अनुकर्त्तागण (अभिनेता) अभिनय रूप में प्रस्तुत करते हैं, तो हम इन अनुकर्ताओं (अभिनेताओं) में मूल पात्रों (राम, सीता, दुष्यंत आदि) का 'आरोप' कर लेते हैं। अर्थात् उन अभिनेताओं को ही मूल पात्र मान लेते हैं। मूल पात्रों के व्यापार (कौशल) तथा अनुभूतियां ही अभिनेताओं के व्यापार एवं अनुभूतियां बन जाती हैं। अतएव रस की स्थिति उन्हीं मूल पात्रों में होती है। आचार्य लोल्लट ने 'संयोग' की व्याख्या करते हुए माना कि 'संयोग' का अभिप्राय उत्पाद्य–उत्पादक संबंध से है। अर्थात विभाव, अनुभाव एवं संचारी भाव रस के उत्पादक हैं तथा रस उत्पाद्य है।'[4]

2. आचार्य शंकुक का अनुमितिवाद

आचार्य शंकुक ने भट्टलोल्लट के मत का खंडन करते हुए 'निष्पत्ति' का अर्थ 'अनुमिति' माना। इनका कहना है कि जब हम किसी अनुकर्त्ता (अभिनेता) को किसी मूल पात्र राम, सीता, दुष्यंत आदि का अनुकरण (अभिनय) करते हुए देखते हैं, तो हम यह अनुमान कर लेते हैं कि वही (अनुकर्त्ता ही) मूलपात्र (रामादि) है। ठीक वैसे ही जैसे चित्र में घोड़े को देखकर अनुमान द्वारा हम उसे घोड़े के रूप में देखते हैं (चित्र तुरंग न्याय) या किसी चित्र में अंकित आकृतियों को देखकर यह कह देते हैं कि 'श्रीकृष्ण गीता का उपदेश दे रहे हैं 'अथवा श्रीराम लक्ष्मण मूर्छा पर विलाप कर रहे हैं'। अर्थात् अनुमान द्वारा हम अनुकरण को ही वास्तविक मान लेते हैं। यही काव्य के संबंध में भी घटता है। 'संयोग' से इनका तात्पर्य है, अनुमाप्य–अनुमापक संबंध। अर्थात् विभाव, अनुभाव और संचारी भाव अनुमान करने वाले अनुमापक हैं और रस अनुमानित किया जाने वाला अनुमाप्य तत्व हैं।'[5]

3. भट्टनायक का भुक्तिवाद

साधारणीकरण सिद्धांत के प्रवर्तक आचार्य भट्टनायक ने 'निष्पत्ति' का अभिप्राय 'भुक्ति' अर्थात 'भोग' माना इनका कहना है कि रस का उपयोग वास्तव में वह 'सहृदय' (सामाजिक, पाठक श्रोता, दर्शक, प्रेक्षक) करता है, जो काव्य का श्रवण, पठन अथवा दर्शन आदि करता है, क्योंकि मूल पात्र तो उसमें उपस्थित ही नहीं होता और अनुकर्तता का उद्देश्य केवल कला प्रदर्शन करना होता है। काव्य का अध्येता जब भी काव्य का आस्वादन करता है तो उसका निजत्व अथवा अहंभाव उसमें खो जाता है और काव्य में वर्णित घटना या विषय से प्रभावित होकर उसका हृदय 'रस' का भोग करने लगता है। इसलिए भट्टनायक 'संयोग' का अर्थ भोज्य–भोजक–संबंध से लगाते हैं।'[6]

आचार्य भट्टनायक ने रसानुभूति की प्रक्रिया की तीन अवस्थाएं मानी है। अभिधा, भावकत्व एवं भोजकत्व। अभिधा व्यापार (काव्य कौशल) के द्वारा प्रेक्षक या सहृदय शब्दों का अर्थ समझता है और समस्त प्रसंगों की विशिष्ट स्थिति का ज्ञान कर लेता है। फिर भावकत्व व्यापार द्वारा विभवादि का साधरणीकरण हो जाता है। भावों की पात्र विशिष्टता समाप्त हो जाती है। तीसरी अवस्था भोजकत्व है। जब साधारणीकृत भावों का रस रूप में उपभोग होता है, तो उसे भोजकत्व कहते हैं। इसमें अलौकिक आनंद (रस) की प्राप्ति होती है।

4 . अभिनवगुप्त का अभिव्यक्तिवाद

अभिनवगुप्त ने भट्टनायक के भुक्तिवाद को स्वीकारते हुए उसकी विशद् व्याख्या प्रस्तुत की। 'निष्पत्ति' से इनका अभिप्राय है 'अभिव्यक्ति'। इनका मानना है कि प्रत्येक सामाजिक में रति, हास, क्रोध, उत्साह आदि स्थायीभाव संस्कारजन्य होते हैं, जो विविध कारणों से अव्यक्त रहते हैं या कहें कि दबे रहते हैं। विभाव, अनुभाव और संचारी भाव के संयोग से वे अव्यक्त स्थायीभाव व्यक्त हो जाते हैं। उन्हीं का आनंदानुभव 'रस' है। ठीक वैसे ही जैसे मिट्टी में गंध स्थायी है परंतु पानी पड़ने से वह बाहर आ जाती है। अतः रस उत्पन्न अथवा अनुमानित नहीं, अभिव्यक्त होता है। इसीलिए आचार्य अभिनवगुप्त ने 'संयोग' का अर्थ 'व्यंग्य, व्यंजक, संबंध बताया।'[7]

निष्कर्ष :

हम पाते हैं कि आचार्य लोल्लट ने अपने विवेचन में मूल पात्रों को महत्व दिया। काव्य का आस्वादन करने वाले दर्शक, श्रोता या पाठक उपेक्षित रह गए। आचार्य शंकुक के 'अनुमान' से भी रस की वास्तविक अनुभूति स्वीकार्य योग्य नहीं है। भट्टनायक ने सामाजिक को महत्व दिया है और रसानुभूति की मनोवैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की है। इनका साधारणीकरण का सिद्धांत बेजोड़ है। इसलिए इनका मत उक्त दोनों आचार्यों से अपेक्षाकृत संगत प्रतीत होता है। इनके अलावे अभिनवगुप्त की मान्यता को साहित्यशास्त्र में व्यापक समर्थन हासिल है। अभिनवगुप्त ने सर्वप्रथम रस के सहृदयनिष्ठ रूप की प्रतिष्ठा की। उन्होंने कहा कि सहृदय, प्रेक्षक या श्रोता में ही वास्तविक रस की निष्पत्ति होती है। हालांकि आज रसानुभूति को एक जैविक प्रक्रिया मानी जाती है।

संदर्भ :

1. मिश्र, भागीरथ, 'काव्यशास्त्र', विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, नवम संस्करण– 1990, पृष्ठ संख्या –104
2. त्रिपाठी, राधावल्लभ, साहित्यशास्त्र परिचय, एनसीईआरटी, प्रथम संस्करण– 2002, पृष्ठ संख्या– 44
3. वही, पृष्ठ संख्या– 44
4. इग्नू, नई दिल्ली, ईएचडी– 03, साहित्य एवं उसके अंग, पृष्ठ सं. 48
5. वही, पृष्ठ सं. 48–49
6. वही, पृष्ठ सं. 49
7. वही, पृष्ठ सं 49

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

कबीर : युगीन सन्दर्भ

डॉ. बीरेन्द्र कुमार*

कबीर आज से लगभग छह सौ वर्ष पूर्व पैदा हुए थे। तब से लेकर आज तक उनकी ख्याति लगातार बढ़ती जा रही है, तो इसके पीछे सबसे बड़ा कारण है–बदलते समय में भी उनकी काव्य– पंक्तियों का लगातार प्रासंगिक होते जाना। उन्होंने समाज हित के लिए कई बातें कही थी। जो कालान्तर में साहित्य मान ली गई तथा जिसके कारण आलोचकों ने भी उन्हें कवि मान लिया। विशेष रूप से हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा कबीर पर पुस्तक प्रकाशित होने के बाद कबीर बड़े कवि के रूप में हिंदी जगत में स्वीकार कर लिए गए। यद्दपि आज़ादी पूर्व कबीर पर कई किताबें दूसरी भाषाओं में भी लिखी जा चुकी थी, जिनमें अंग्रेजी की कुछ किताबों में 'हंड्रेड पोएम्स ऑफ़ कबीर' कवीन्द्र रबीन्द्र, 'प्रोफेट्स ऑफ़ इंडिया' मन्मथनाथ गुप्त,'कबीर एंड कबीर पंथ' रेवरेंड जी. एच. बेस्कट, 'कबीर एंड हिज फलोवर्स' रेवरेंड एफ. ई, 'निर्गुण स्कूल ऑफ हिंदी पोयट्री' डॉ. बडथ्वाल, 'कबीर एंड हिज बायोग्राफी' डॉ. मोहन सिंह,'कबीर एंड दि भक्ति मूवमेंट' डॉ. मोहन सिंह आदि प्रमुख थी। इस सन्दर्भ में राजेंद्र प्रसाद सिंह का कहना है कि "कबीर संत काव्य के सर्वाधिक प्रखर प्रवक्ता थे। आश्चर्य यह है कि उनका मूल्यांकन कार्य उनकी मृत्यु के कोई ढाई सौ साल बाद आरम्भ हुआ। वह भी यूरोप के विद्वानों ने शुरू किया। पहली बार एक इटैलियन साधु पाद्रे मार्को डेला टोम्बा ने कबीर के ज्ञानसागर अथवा सतनाम कबीर का 1758 ई. में इटैलियन अनुवाद किया था। बाद में डब्ल्यू प्राईस, जेनरल हैरट, एच.एच. विल्सन, तासी, हंटर, ट्रंप, ग्रियर्सन, वेस्टकाट, मेकालिफ, अंडरहिल, ब्रिग्स, पिन्काट जैसे दर्जन भर पाश्चात्य विद्वानों ने कबीर को आँका परखा है."[1] पश्चिम के ये विद्वान कबीर के महत्व को स्वीकार करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल से पहले कबीर पर कई ग्रन्थ लिख चुके थे। बावजूद इसके आचार्य शुक्ल की कबीर के सन्दर्भ में की गई आलोचना, कबीर को उतना बड़ा कवि नहीं मानती थी जितना बड़े वे आज माने जा रहे हैं।

कबीर के सन्दर्भ में शिवकुमार मिश्र लिखते हैं कि "सदी के इस आखिरी दौर में, देश–विदेश, उत्तर भारत और खासतौर से हिंदी क्षेत्र में, संत कबीर की 600वीं जयंती की धूमधाम है। कबीर की इस जयंती को बड़े–बड़े, उत्सव–समारोहों, यात्राओं, संगीतिक अनुष्ठानों, मेलों, विद्वानों की विचार गोष्ठियों तथा और भी कई रूपों में मनाया जा रहा है। इन आयोजनों में कबीर मठ, कबीर प्रतिष्ठानों, गैर सरकारी उपक्रमों के साथ–साथ सरकारी तंत्र और सरकार के स्तर पर होने वाली पहल का भी योगदान है। जो सरकारी तंत्र तथा जो व्यवस्था अभी तक कबीर को लेकर बहुत उत्साहित नहीं दिखाई पड़ती थी, अचानक कबीर संबंधी इन आयोजनों को लेकर बेहद उत्साहित दिखाई पड़ रही है।"[2]

कबीर की प्रसिद्धि आज न केवल भारत में बल्कि अन्य कई देशों में भी फैलती जा रही है। अनेक विदेशी विद्वान भी कबीर के महत्त्व को स्वीकार चुके हैं। कबीर द्वारा रचित पंक्तियाँ कई सालों से गीत के रूप में गाई जा रही हैं। कबीर के साखियों की कई देशी एवं विदेशी गायकों द्वारा गाई गई सी.डी, डी.वी.डी. भी लोकप्रिय हो चुकी है। कबीर उन कुछेक कवियों में से हैं जिन पर सबसे अधिक ग्रन्थ लिखे जा चुके हैं और अभी भी लिखे भी जा रहे हैं। भांति–भांति तरह से

* असिस्टेन्ट प्रोफेसर, आर्यभट्ट कॉलेज, नयी दिल्ली

उन पर चर्चा जारी है। बार–बार उनका मूल्यांकन और पुनर्मूल्यांकन किया जा रहा है। तो इसके पीछे निश्चित रूप से सबसे बड़ा कारण है कबीर की लगातार बढ़ती जा रही प्रासंगिकता।

आज जिस लोकतान्त्रिक भारतीय समाज में किसी धार्मिक रूढ़ि के विरोध में किसी व्यक्ति की तार्किक बात पर भी, उस व्यक्ति के सिर कलम करने पर लाखों–करोड़ो रूपये के इनाम तक घोषित किये जा रहे हों। आज जहाँ किसी पशु विशेष के नाम पर धार्मिक उन्मादियों द्वारा लोगों की हत्या तक की जा रही हो। जहाँ मंदिर–मस्जिद, ईश्वर–अल्लाह के नाम पर बड़े–बड़े दंगे होते रहे हों। तब ऐसे समाज को देखकर ऐसा लगता है कि कबीर पहले से ज्यादा आज प्रासंगिक हैं। आगे भी कबीर के काव्य की प्रासंगिकता तब तक बनी रहेगी जब तक किसी भी समाज में इस तरह की समस्याएं मौजूद रहेंगी।

ईश्वर को सर्वशक्तिमान माना जाता है। सब कुछ उसी ने बनाया है। वही पालनकर्ता भी है। वही हमारी रक्षा भी करता है। यह विश्वास अधिकांश लोगों में है। परन्तु आज कई धर्मों के उन्मादी लोग उस ईश्वर की रक्षा करने में लगे हुए हैं। ईश्वर द्वारा बनाये गए मनुष्य की तार्किक बात को भी अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए धर्म विरोधी घोषित करने और यथासंभव उसे पीड़ा पहुँचाने से भी नहीं चूकते हैं। कबीर के समकालीन शासक मुसलमान थे। तब राजतन्त्र था। शक्ति ही शासन करती थी। अभिव्यक्ति की आज़ादी संविधान सम्मत अधिकार नहीं थी। तब कबीर साहस करते हुए कठमुल्लों को चुनौती देते हुए कहते हैं–

काकर पाथर जोरि कै मस्जिद लियो चुनाय
ता चढ़ी मुल्ला बाग़ दे क्या बहरा हुआ खुदाय

अभी कुछेक वर्ष पूर्व जब गीतकार सोनू निगम ने यही बात अपनी व्यक्तिगत समस्या के कारण कही। जो केवल एक व्यक्ति की नहीं लाखों–करोड़ों लोगों की भी समस्या हो सकती है। पर आज के इस लोकतान्त्रिक देश में लोगों को धार्मिक मामलों में, भले ही वह समाज विरोधी रूढ़ि ही क्यों न हों, कुछ बोलने का साहस नहीं होता। सोनू निगम ने साहस किया तब उनके खिलाफ़ फतवा जारी कर दिया गया। कई दिनों तक यह मुद्दा सारे मीडिया में चर्चा का विषय बना रहा। अनेक विशेषज्ञों की राय के अलावा उन्मादियों की राय भी सुनने को मिली। ऐसा लग रहा था जैसे कि कुछ लोग अल्लाह–ईश्वर के स्वघोषित रक्षक बने हुए हैं। उनमें से कुछ तो किसी भी प्रचलित धार्मिक रूढ़ि के विरुद्ध, कुछ भी कहने वाले किसी भी व्यक्ति के खिलाफ किसी हद तक, जाने की बात करते भी देखे गए। तब ऐसे समाज में कबीर ही सबसे अधिक प्रासंगिक दिखलाई दे सकते हैं, जो गलत को गलत और सही को सही कहने का साहस रखते हैं। कबीर कहते हैं–

ना जाने तेरा साहब कैसा है।
मस्जिद भीतर मुल्ला पुकारै, क्या साहब तेरा बहिरा है
चिउंटी के पग नेवर बाजे, सो भी साहब सुनता है
पंडित होय के आसन मारै, लम्बी माला जपता है
अंतर तेरे कपट कतरनी, सो भी साहब लखता है

कहा जाता है कि कबीर पढ़े–लिखे नहीं थे। बावजूद इसके वे समाज में व्याप्त रूढ़ियों के खिलाफ हमेशा तर्क किया करते थे। परन्तु आज वे लोग जो ज्यादा पढ़े–लिखे हैं। कई डिग्रीधारी भी हैं। फिर भी वे कबीर जैसा तार्किक नहीं बन पा रहे हैं। न ही वे समाज को जागरूक कर पा रहे हैं। ऐसी स्थिति में लोगों को छह सौ वर्ष पुराने कबीर की शरण में जाने के अलावा चारा ही क्या है? आज लोग धन के पीछे पागलों की तरह पड़े हैं। अरबपतियों की संख्या

लगातार बढ़ती जा रही है। जिसके कारण सामान्य बहुसंख्यक जनता का शोषण भी लगातार बढ़ता जा रहा है। फिर भी वह विद्रोही नहीं हो रही। तब लगता है कि कहीं न कही सामान्य जनता कबीर जैसे संतों की वाणी से प्रभावित हैं। दूसरी तरफ कबीर पर विमर्श करने वाला डिग्रीधारी बुद्धिजीवी वर्ग है जो कबीर को लेकर मात्र बहस–विमर्श करता है। कबीर से प्रभावित शायद ही हो। यह वर्ग कबीर के कहे को पढ़ता–पढ़ाता है। वृहद् स्तर पर हो रही चर्चा में भाग भी लेता है। पर चर्चा के बाद येन केन प्रकारेण तरीके से कमाए धन को किसी लाभ देने वाली जगह पर लगाने की चर्चा में भी लग जाता है। वह भूल जाता है कि कुछ समय पहले उसने कबीर पर व्याख्यान दिया है। ऐसे दोहरे चरित्र के लोगों को जवाब कबीर का निम्नलिखित दोहा देता हैं–

सांई इतना दीजिये जामै कुटुम समाय
मैं भी भूखा न रहूँ साधू भूखा न जाय

अब प्रश्न उठता है कि कबीर प्रासंगिक यदि हैं तो उनकी उक्तियों के उलट समाज क्यों बढ़ रहा है? आस्था के नाम पर हजारों–करोड़ों का हेर–फेर लगातार क्यों हो रहा है? तथाकथित लोकतान्त्रिक सत्ताएं मूक बनी क्यों कुछ नहीं कर पा रही हैं? बुद्धिजीवियों के वैचारिक विचलन के उदाहरण हर क्षेत्र में देखे जा सकते हैं। पढ़े–लिखे लोग अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए समाज में विभेद पैदा करते हैं। लोगों को आपस में लड़ाकर अपना उल्लू सीधा करते हैं। ऐसे स्वार्थी बुद्धिजीवियों से यह कैसे उम्मीद की जा सकती है कि वे समाज को सही दिशा देंगे। वैचारिक विचलन से ग्रसित व्यक्ति समाज को सही दिशा दे भी नहीं सकता है। देश की राजनीतिक व्यवस्था में ऐसे लोग बहुतायत में पाए जाते हैं। जिनका एक मात्र उद्देश्य सत्ता की प्राप्ति और उसका अपने निजी हित में उपभोग करना ही रह गया है। सत्ता के लिए सब जायजदृ नाजायज़ उपाय यह वर्ग लगातार करता आ रहा है। राजनीति के नैतिक विहीन होने के कारण उसका प्रभाव अन्य लोगों पर पड़ना स्वाभाविक ही है। ऐसे लोगों को कबीर सावधान करते हुए कहते हैं–

आया है सो जाएगा, राजा रंक फकीर
एक सिंहासन चढ़ी चले, एक बंधे जंजीर

धर्म की आड़ लेकर जनता को मूर्ख बनाने वाले पंडितों–मौलवियों की वास्तविकता को तब भी बहुत लोग जानते थे, लेकिन उनके खिलाफ बोलने और उस पर दृढ़तापूर्वक डटे रहने का साहस कबीर जैसे कुछ बिरले लोग ही कर पाये। इस सन्दर्भ में शिवकुमार मिश्र का कहना है कि "समाज सुधारक, भक्त, संत, हिन्दू–मुस्लिम एकता के हामी और मानव प्रेम के अभिलाषी इस देश में कोई कम नहीं हुए हैं। बहुत पुराना और बहुत विशाल देश है यह। सदियों से महान मनीषी, संत, पीर, फकीर, औलिये यहाँ होते रहे हैं। भारतीय जनमानस उन्हें स्वीकार भी करता रहा है, पूजता और प्रतिष्ठा देता रहा है, किन्तु गलत न होगा, यदि यह कहा जाए, कि कबीर इनकी परम्परा के होते हुए भी इनसे भिन्न थे, इनसे जुड़े रहने पर भी इनसे न्यारे थे। तभी तो जहाँ अन्य तमाम मनीषी, भक्त और संत, साधक और सिद्ध जनता के कन्धों से होते हुए समाज और शासन के महाप्रभुओं के कन्धों पर जा बैठे, व्यवस्था द्वारा न केवल पचा लिए गए, उसके द्वारा पूजे और सराहे गए, उसके द्वारा इस्तेमाल हुए, उसकी बोली भी बोलने लगे, कबीर एक अपवाद हैं कि समाज, धर्म तथा शासन के महाप्रभु, उनके कर्णधार जिनके पास फटक तक न सके, उन्हें पचाना और अपने हित में इस्तेमाल करना तो दूर की बात।"[3] हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं– "वह पंडित और शेख को इस प्रकार पुकारते हैं गोया वे नितांत नगण्य जीव हों– केवल बाह्याचारों के गड्डर, केवल कुसंस्कारों के गुड्डे."[4]

भारत में आज़ादी के बाद से ही धर्म की आड़ लेकर देश की राजनीति चल रही है। इसमें कोई दो राय नहीं कि देश के सर्वाधिक भ्रष्ट लोग आज राजनीति में ही दिखाई दे रहे हैं। देश में तमाम घोटाले वर्षों से हो रहे हैं। लगभग हर राजनीतिक व्यक्ति सत्ता में आने के बाद मालदार बनता जा रहा है। धर्म निरपेक्ष देश होने के बावजूद भी शमशान और कब्रिस्तान तक पर राजनीति की जा रही है। धर्म आधारित राजनीति के विरोध का साहस लोगों में नहीं रहगया है। तथाकथित प्रगतिशील कही जाने वाली राजनीतिक पार्टियाँ भी अब धर्म आधारित राजनीति की आलोचना करने का साहस नहीं कर पा रही हैं। यह तब हो रहा है जब देश में प्रजातंत्र है। कबीर हिन्दू– मुस्लिम दोनों धार्मिक आडम्बरों की आलोचना तब कर रहे थे जब देश में मुसलमानों का शासन था। तब कबीर धर्म के ठेकेदारों को उनके द्वारा किये जा रहे ढोंग को ना केवल आईना दिखाते थे बल्कि आम जनता को उनकी सचाई बताकर उनको सावधान भी करते थे। जैसे ऐसी स्थिति में कबीर ने कहा था–

पाहन पूजै हरि मिले तो मैं पूजूं पहार
ताते यह चाकी भली पीसि खाय संसार

धार्मिक रूढ़ि और आडम्बर के खिलाफ बोलने का साहस आज यदि कोई करता भी है तो उसे कबीर जैसे संतों की आड़ लेनी पडती है।

पूरे विश्व में भारत जैसा धार्मिक परम्पराओं, रीति–रिवाजों को मानने वाला देश शायद ही कोई हो, किन्तु धर्म के नाम पर जैसा दोहरा आचरण यहाँ देखने को मिलता है, वैसा अन्यत्र कहीं नहीं मिलेगा। धर्म के नाम पर धन का दुरूपयोग जितना यहाँ होता है, उतना शायद ही कहीं होता होगा। आज लोगों की श्रद्धा का व्यावसायिक उपयोग लगातार बढ़ता जा रहा है। कुछ निश्चित जाति के लोग पहले से ही धार्मिक संस्थानों पर कब्ज़ा जमाये हुए हैं। अन्य जाति के लोग इस धार्मिक व्यवसाय में आज भी अन्त्यज की भांति ही दिखाई देते हैं। ये धार्मिक संस्थान खूब फल–फूल रहे हैं। इसमें किसी तरह के हानि की कोई सम्भावना दूर–दूर तक दिखाई नहीं देती। फिर भी किसी तरह का टैक्स इन्हें नहीं देना पड़ता है। जो स्थिति कबीर के समय में धर्म की थी उससे बदतर स्थिति आज के धर्म आधारित राजनीति की हो गई है। तब सबसे भ्रष्ट लोग धर्म की दूकान चलाते थे। आज के भ्रष्टाचारी राजनीति को अपना अड्डा बना लिए हैं।

कबीर हर तरह के शोषण और अन्याय के खिलाफ अपनी आवाज बुलंद करते थे। उनमें अस्वीकार का साहस था। यह अस्वीकार ही कबीर को निर्गुण संत के रूप में उनकी अलग पहचान देता है। तैतीस करोड़ देवी–देवताओं वाले देश में वे अपने को एकेश्वरवादी घोषित करते हैं। और सारे कर्मकांडों और बाह्याडम्बरों के खिलाफ कविता रचते थे। इस सन्दर्भ में प्रेम शंकर लिखते हैं–''कबीर हर प्रकार के कठमुल्लेपन पर प्रहार करते हैं, क्योंकि मिथ्याचार सत्य–प्राप्ति के मार्ग में बडी बाधा है। कबीर ने मुल्ला–काजी, बाभन–पुरोहित वर्ग के प्रति अपना आक्रोश व्यक्त किया है, क्योंकि वे समाज को सही दिशा में नहीं ले जाते। उनकी ऐसी विचित्र कर्मकाण्डी व्यवस्था है, जहाँ आचार–विचार के लिए अवसर ही नहीं। यह आक्रमण यदि कोरा भाववादी आक्रोश होता तो अपने समय में ही चीख–चिल्लाकर समाप्त हो जाता। पर कबीर ने इसे व्यापक वैचारिक आधार पर देखा–परखा, तब किसी तात्त्विक निष्कर्ष पर पहुँचे।''[5]

कबीर के समय समाज में जातिभेद, छुआछूत, अन्धविश्वास,रूढिवादिता, मिथ्याचार, पाखंड, धार्मिक कट्टरता आदि बुराइयाँ समाज में व्याप्त थी। कबीर ने इन सब पर अपनी वाणी के माध्यम से प्रहार किया। ये सारी समस्याएं आज भी भारतीय समाज में कमोवेश पाई जाती हैं। डॉ. भीमराव अम्बेडकर जातिवाद को भारतीय समाज का सबसे बडा कोढ मानते थे। उनका मानना था कि जाति ही इस देश की मूल समस्या की जड़ में है। यहाँ समय के साथ कई सामाजिक

बुराइयाँ नष्ट हुई। सती प्रथा, बाल विवाह आदि इतिहास की बातें हो गई हैं परन्तु 'जाति' है कि जाती ही नहीं। इसका कारण यह है कि इसको ख़त्म करने का कभी ईमानदारी से प्रयास किया ही नहीं गया। बड़ी–बड़ी बातें कहने वाले लोगों ने जाति को सामाजिक बुराई मानने के बाद भी, उसे समाप्त करने का कभी कोई ठोस प्रयास किया ही नहीं। बापू का सम्मान पाने वाले गाँधी जी भी वर्ण व्यवस्था के समर्थक थे। इसीलिए दलित प्रश्नों को लेकर डॉ. भीमराव अंबेडकर का उनसे मतभेद था। बावजूद इसके गाँधी जी ने कभी जाति व्यवस्था की आलोचना नहीं की। जबकि उनसे वर्षों पूर्व के कबीर सवर्ण–अवर्ण, ऊँच–नीच की मान्यताओं को मानने वाले भारतीय समाज के समक्ष कई बार प्रश्न चिह्न खड़ा करते हुए दिखाई देते हैं। वे जन्म के आधार पर भेदभाव पर प्रश्न करते हुए तथाकथित ब्रहमा के मुख से उत्पन्न होने वाले लोगों से प्रश्न करते हैं –

"जो तू बामन बामनि जाया, आन बाट तैं काहे न आया।"

पर इस देश का दुर्भाग्य यह है कि कबीर का यह प्रश्न आज भी अनुत्तरित है। कई समाज सुधार आन्दोलन इस देश में चलाये गए, पर कबीर के उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर उन आन्दोलनों से भी नहीं मिल पाया। लोकतान्त्रिक व्यवस्था से उम्मीद थी कि वह कबीर के प्रश्नों का जरूर जबाव देगी। परन्तु देश के पहले प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरु को भी कबीर के प्रश्न का उत्तर देते नहीं बना। अन्यथा जाति विरोधी कानून बनाकर इस सामाजिक कोढ़ को दूर कर देते। पर उन्होंने जाति विरोधी शायद ही कोई कानून बनाया हो। आगे आने वाले नेतृत्व से कबीर के प्रश्नों के उत्तर की उम्मीद करना बेमानी ही था। कबीर के उक्त प्रश्न का उत्तर इस लोकतान्त्रिक तथाकथित प्रगतिशील देश में आज भी देने का साहस किसी नेतृत्व में नहीं है। अन्यथा 'वर–वधू चाहिए' छापने वाले समाचार पत्र में घोषित रूप से स्वजाति के वर वधू की तलाश करवाने के कारण समाचार पत्र और तलाश करने वाले लोगों पर कार्रवाही होनी चाहिए थी। व्यक्ति के नाम से जाति सूचक शब्द हटना चाहिए था। पर ऐसा कुछ भी नहीं हुआ, न हो रहा है। इसलिए कबीर आज के जातिवादी प्रगतिशीलों से ये प्रश्न पूछते रहेंगे कि नाम के आगे 'ब्रह्ममुख उत्पन्न सूचक' उपनाम लगाने वाले हे प्रगतिशीलों! मुझे यह बताओ कि पैदा किस मार्ग से हुए पैदा हुए हो?

कबीर जाति या कुलगत उच्चता के बजाय अच्छे कर्म तथा विचारों की उच्चता को प्रतिष्ठा देते थे। उन्होंने एक आदर्श समाज का सपना देखा था। जिस समाज में जाति भेद–वर्णभेद जैसी मानव विरोधी व्यवस्था न हो। इसलिए समाज में भेदभाव बढ़ाने वाले सारे अंधविश्वासों का उन्होंने खंडन किया। शायद इसी कारण तथाकथित आलोचकों ने कबीर के साथ पक्षपात किया। कबीर के बाद के कवि तुलसीदास, जिन्होंने अपने रामचरित मानस में लिखा है–"पूजिए विप्र सकल गुण हीना, सूद्र न गुन गन ज्ञान प्रवीना"। कवि को आलोचकों ने सबसे बड़ा समन्वयकारी घोषित कर दिया। बाद के तथाकथित प्रगतिशील आलोचकों ने भी उन आलोचकों से यह प्रश्न नहीं किया कि उक्त पंक्ति लिखने वाला कोई कवि समन्वयकारी कैसे हो सकता है? और कबीर में कौन सी समन्वय विरोधी बातें हैं? कबीर जैसे थे वैसे ही इन आलोचकों को कैसे स्वीकार हो सकते थे? इसलिए इन आलोचकों ने अपनी आलोचना शक्ति से अपनी सुविधानुसार अलग– अलग कबीर की रचना कर ली। कोई उन्हें विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न बताया तो कोई उन्हें रामानंद का शिष्य घोषित कर दिया। परन्तु हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर की वास्तविक पहचान बताते हुए लिखा कि "हिंदी साहित्य के हज़ार वर्षों के इतिहास में कबीर जैसा व्यक्तित्व लेकर कोई लेखक उत्पन्न नहीं हुआ"[6] "कबीर ने ऐसी बहुत सी बातें कहीं हैं जिनसे समाज सुधार में सहायता मिल सकती है।"[7] "बाह्याचार की निरर्थक पूजा और संस्कारों की विचारहीन गुलामी कबीर को पसंद नहीं थी"[8]

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि कबीर के समय में जो रूढ़िगत मान्यताएं समाज में ब्याप्त थी, उनमें से अधिकांश आज भी विद्यमान हैं। सामान्य जनता में कई तरह का अंधविश्वास आज भी मौजूद है। धार्मिक झगड़े आज भी हो रहे हैं। धर्म का व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए इस्तेमाल खूब हो रहा है। पशुओं की बलि और कुर्बानी आज भी दी जाती है। जाति और वर्ण व्यवस्था समाज में आज भी विद्यमान है। ऐसी कई कुरीतियाँ जिनसे कबीर अपनी कविताओं के माध्यम से लड़ रहे थे, वे आज के समाज में भी विद्यमान हैं। इसीलिए उन कुरीतियों से लड़ने के लिए कबीर का साहित्य आज भी प्रासंगिक है।

संदर्भ :

1. हिंदी साहित्य का सबाल्टर्न इतिहास, राजेंद्रप्रसाद सिंह, गौतम बुक सेंटर दिल्ली 2009 पृ. 69
2. भक्ति आन्दोलन और भक्ति काव्य; शिवकुमार मिश्र,लोकभारती प्रकाशन इलाहबाद 2010 पृ. 103
3. भक्ति आन्दोलन और भक्ति काव्य; पृ. 76
4. इन्द्रप्रथ भारती, अप्रैल– जून 2007 पृ. 60
5. भक्तिकाव्य का समाज दर्शन, डॉ. प्रेमशंकर, पृ.93
6. कबीर हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन नयी दिल्ली 1999 पृ. 170
7. कबीर पृ. 171
8. कबीर पृ.172

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

भारतीय उच्च शिक्षा – एक विश्लेषण

डॉ. शशि कुमार पाण्डेय*

दुनिया जब ज्ञान के प्रकाश से अछूती थी तब भाषा में वेदों उपनिषदों की रचना हो गयी थी गुरुकुल आश्रम और मठो के माध्यम से भारत में ज्ञान विज्ञान का विकास हुआ तथा एक सांस्कृतिक समाज की रचना हुईI

भारत में उच्च शिक्षा की परम्परा अति प्राचीन हैI प्राचीन समय में मठो और आश्रमों के माध्यम से ज्ञान और विज्ञानं का समाज में विकास हुआI नालंदा, विक्रमशिला जैसे मठीय विश्वविद्यालयों से भारत का स्थान विश्व में महत्वपूर्ण ज्ञान केंद्र के रूप में हुआI

भारत में मुस्लिमो के आक्रमण के पश्चात शिक्षा व्यवस्था का पराभव शुरू हुआI मुस्लिम शासको ने अनेको मठीय विश्वविद्यालयों को नष्ट कर दिया शिक्षा को मिलने वाली शासको की सहायता समाप्त हो गयी इसके देसी संस्था में विलुप्त हो गयीI

1757 के प्लासी के युद्ध के पश्चात अंग्रेजो ने अपने शासन की देख रेख करने के लिए उच्च शिक्षा को पुनः व्यवस्थित कियाI वारेन हेस्टिंग्स ने उच्च शिक्षा के लिए कलकत्ता मदरसा का निर्माण कियाI 1913 में हार्डिंज की सरकार ने शिक्षा नीति बनायीं जिसमे प्रत्येक प्रान्त में एक विश्वविद्यालय की स्थापना की गयीI ब्रिटिश सरकार द्वारा भाषा में उच्च शिक्षा का विस्तार करने के पीछे उनका अपना निहित स्वार्थ था उन्हें ऐसे वर्ग की आवश्यकता थी जो वौधिक रूप में उनका गुलाम हो तथा उनके शासन प्रशासन का काम कर सकेI

आजादी के पश्चात सरकार ने उच्च शिक्षा के विकास के लिए विश्वविद्यालयों की स्थापना की तथा राजकीय महाविद्यालयों तथा मैनेजमेंट महाविद्यालयों के माध्यम से सर्व साधारण तक उच्च शिक्षा उपलब्ध कराने का प्रयास कियाI इतनी बड़ी जनसंख्या को अपने संसाधनों से शिक्षा प्रदान करने मंआ असफल होने पर स्ववित पोषित महाविद्यालयों के माध्यम से शिक्षा को जनसाधारण तक पहुँचाने का प्रयास कियाI

यहाँ हम सरकार तथा महाविद्यालयों की समस्या पर चर्चा करने से पहले नई शिक्षा नीति राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2019 पर संक्षिप्त चर्चा करना उचित होगाI शिक्षा नीति का प्रारूप डॉ० के० कस्तूरी रंगन की अध्यक्षता में तैयार हुआ I

नई उच्च शिक्षा नीति में उच्च शिक्षा का अन्तरराष्ट्रीयकरण करने का प्रयास किया गया है साथ ही दूरस्थ शिक्षा के माध्यम से किसी भी उम्र में किसी भी परिस्थिति में ज्ञान प्राप्त

कर सकेI इसके अतिरिक्त विश्वविद्यालयों तथा महाविद्यालयों में अनुसन्धान को बढ़ावा देने का प्रयास किया जायेगा जिससे शिक्षा सर्वसाधारण के लिए कल्याणकारी सिद्ध हो सकेI इसके अतिरिक्त नए उच्च शिक्षा सस्थानो की स्थापना का प्रावधान उच्च शिक्षा नीति में किया गया हैI

नई उच्च शिक्षा नीति में व्यवसायिक शिक्षा को जोड़ने की बात कही गयी हैI प्रौढ़ शिक्षा के माध्यम से सर्व साधारण तथा सभी व्यक्तियों तक शिक्षा उपलब्ध कराने की व्यवस्था की गयी हैI

नई शिक्षा नीति हमारी प्राचीन उन्नत शिक्षा व्यवस्था को नवीन शिक्षा से जोड़ने की बात कही गयी हैI इस व्यवस्था से भारत में एक मानवीय समाज के निर्माण का मार्ग प्रशस्त होगाI

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2019 भारत केन्द्रित शिक्षा प्रणाली की कल्पना करती है जिससे उच्च गुणवत्ता की शिक्षा प्रदान की जा सके तथा इससे राष्ट्र को एक न्यायसंगत और जीवन्त ज्ञान समाज के रूप में बदला जा सकेI आज उच्च शिक्षा सामाजिक आर्थिक रूप से वंचित क्षेत्रो की पहुँच से दूर हैI भारत में उच्च शिक्षा में GER पिछले कई वर्षो से 25% है 2035 तक 50% तक लाने का लक्ष्य रखा गया हैI शिक्षा नीति में महत्वपूर्ण कार्य महाविद्यालयों को मिलने वाली स्वायतता है जिससे वे विश्वविद्यालयों की तरह ही अपनी डिग्री से में सक्षम होगे परन्तु जहाँ सरकार को शहरी और ग्रामीण क्षेत्र के महाविद्यालयों में आर्थिक स्तर पर होने वालो समस्या पर भी नजर रखनी होगी क्योकि ग्रामीण क्षेत्र के अभिभावकों के पास शहरी क्षेत्रो के अपेक्षा आर्थिक समस्या अधिक होती हैI

नयी शिक्षा नीति में राष्ट्रीय अनुसन्धान फाउंडेशन की स्थापना का प्रावधान किया गया है इससे निश्चित ही शिक्षा का जन कल्याण में व्यापक इस्तेमाल संभव होगाI स्नातक स्तर की शिक्षा को पेशेवर शिक्षा में बदला जायेगा जिससे शिक्षा बेरोजगारी को दूर करने का उपकरण बन सकेI इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय शिक्षा आयोग की सलाहकार परिषद के गठन का भी प्रावधान किया गया है उच्च शिक्षा के सफल क्रियान्वयन के लिए सरकार सरकारी, निजी कंपनियों द्वारा दिया गया अनुदान जिसमे CSR अनुदान भी शामिल है इन सब पर विचार करने की बात नई शिक्षा नीति में की गयी है I

यहाँ समाज में उच्च शिक्षा की जमीनी हकीकत की चर्चा करना अत्यंत आवश्यक हैI यदि हम सूक्ष्म स्तर पर अपने आस पास क्षेत्र में नजर डाले तो हमे सरकारी इन्टर कॉलेज ग्रामीण क्षेत्र में अवश्य दिखेंगे परन्तु डिग्री कॉलेज अभी जिले या तहसील स्तर तक ही सीमित दिखेंगेI इससे स्पष्ट है कि उच्च शिक्षा के लिए हमे स्वावित्तपोषित महाविद्यालयों पर आश्रित

होना पड़ेगा यहाँ स्वावित्तपोषित महाविद्यालयों के बारे में बताना आवश्यक है यह ऐसे महाविद्यालय है जिसे सरकार से कोई मदद नही मिलती तथा ये छात्रो की फीस से विश्वविद्यालयों की फीस अपने अध्यापको का वेतन तथा अन्य स्टाफ का वेतन वहन करते हैI

सवाल यह है कि ऐसी स्थिति में जब सरकार राजकीय और अनुदानित महाविद्यालयों में आज अध्यापको की कमी भी दूर नही कर पायी तब वह कैसे इससे बड़ी जनसँख्या के लिए बड़ी संख्या में महाविद्यालयों की स्थापना कर सकती हैI इसका जवाब व्यवहारिक रूप में न के रूप में हमे मिलेगाI

उच्च शिक्षा को गति देने के लिए दूसरे विकल्प के रूप में हमे स्ववित्त पोषित महाविद्यालय दिखाई देते है जिन्हें सरकार थोड़ी बहुत मदद देकर शिक्षा के स्तर को बढ़ा सकती हैI यदि यह भी संभव न हो तो व्यवस्था परिवर्तन करके भी निजी कालेजो को अधिक समाज के लिए प्रासंगिक बनाया जा सकता हैI

यहाँ हम उदहारण के द्वारा सरकार का ध्यान सिर्फ एक समस्या और सिर्फ बिना अतिरिक्त खर्च किये व्यवस्था परिवर्तन द्वारा उसके समाधान की ओर आकृष्ट करना चाहता हूँI

सरकार ने बेटी बचाओ और बेटी पढाओ का नारा विगत कई वर्षो से बहुत जोर शोर से लगाया हैI सुमंगला योजना जैसी योजनाओ से 2 बच्चो वाले परिवार को बेटियों के प्रति सकारात्मक सोच विकसित करने का प्रयास कर रही है परन्तु व्यवहारिक रूप में यदि ग्रामीण क्षेत्र के किसी गरीब घर में हम उच्च शिक्षा में प्रवेश के लिए हम जाते है तो उसका लगभग यही जवाब रहता है कि इंटर तक हमने अपनी बेटी को पढ़ा दिया गया है इसके आगे हमारी क्षमता नही हैI

इंटर तक सरकारी कालेजो की बहुलता से कम फीस में बालिकाये इंटर तक की शिक्षा ग्रहण कर लेती हैI

सरकार द्वारा वर्तमान में उच्च शिक्षा में फीस वापसी का प्रावधान है यदि इस तथ्य से अभिवावकों को अवगत कराया जाता है तो गरीब अभिवावकों का यही जवाब होता है कि आज फीस कहाँ से लाये जबकि हमारी अन्य जरूरते घरेलू खर्च, खेती खर्च, बीमारी आदि के लिए पर्याप्त धन नही हैI

अब हमारा यहाँ सरकार एव उनके योग्य नियम बनाने वाले अधिकारियो से विनम्र सवाल है कि क्या इन गरीब लडकियों के लिए ऐसे नियम नही बनाये जा सकते जिससे ये निशुल्क प्रवेश लेकर स्नातक तक कम से कम शिक्षा प्राप्त कर सकेI मेरे विचार में इन गरीब

छात्राओ के लिए महाविद्यालयों से फीस न लेने का शपथ पत्र लेकर इनका प्रवेश निःशुल्क कराकर महाविद्यालयों को फीस की राशि सरकार प्रदान करेI

इससे एक ओर जहाँ महाविद्यालयों में प्रवेश संख्या बढ़ेगी वहां इंटर के पश्चात ग्रामीण क्षेत्र में लगभग 70 प्रतिशत पढाई गरीबी के कारण छोड़ने वाली बालिकाओ की शिक्षा प्रदान की जा सकती हैI इसमे सरकार का अतिरिक्त खर्च नही हो रहा है अपितु सिर्फ व्यवस्था परिवर्तन कर छात्राओ को सिर्फ छात्रवृत्ति प्रदान की जाए तथा महाविद्यालयों से प्रथम चरण में निःशुल्क प्रवेश का शपथ पत्र लेकर फीस की राशि महाविद्यालयों को प्रदान की जाएI इसके लिए सरकार चाहे तो प्रथम चरण में इसे स्वैच्छिक संस्थाओ में लागू करे जो शपथपत्र भरे इसके लिए छात्रवृत्ति की तरह एक अलग पोर्टल बनाया जा सकता हैI

प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षा का स्तर मिड –डे-मील तथा अन्य अनेको विसंगातियो के कारण कमजोर हैI इसके अतिरिक्त सभी छात्रो का रुझान उच्च शिक्षा के प्रति एक जैसा नही होता इसके लिए सरकार को इंटरमिडियट के पश्चात व्यवसायिक शिक्षा को कोर्स के रूप में महाविद्यालयों में जोड़ना चाहिएI मेरे विचार में कौशल विकास कार्यक्रमों को सामान्य जन तक पहुँच बनाने के लिए महाविद्यालय महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैI ऐसी संस्थाये जिनसे महाविद्यालय संचालित है उन्हें कौशल विकास कार्यक्रम से जोड़ना उचित होगा इससे शिक्षा से प्राथमिक स्तर पर स्वरोजगार की उत्पत्ति होगी तथा सभी छात्र अपनी रूचि के अनुसार शिक्षा प्राप्त कर सकेंगेI

मेरे विचार में नई शिक्षा नीति 2019 का प्रारूप तैयार करने के पश्चात उसका क्रियान्वयन करने से पहले सरकार को एक कमेटी का निर्माण कर छात्र, अभिवावक महाविद्यालय से सीधा संवाद कर उसकी समस्या और समाधान का प्रारूप तैयार करना चाहिएI इससे कम संसाधन में समाज का व्यापक हित हो तथा सुरसा की तरह बढ़ी बेरोजगारी कुछ कम हो सकेI

संक्षेप में शिक्षा में होने वाले धन का ब्यय प्रतिशत बढ़ाने से ज्यादा आवश्यक है जो धन खर्च हो रहा उसका सही तरीके से कैसे खर्च किया जाए कि गरीबो तक चाहे वे किसी भी जाति के क्यों न हो शिक्षा की पहुँच बन सके इसके लिए सिर्फ व्यवस्था परिवर्तन की जरुरत है इसके अतिरिक्त सरकार को हमारी प्राचीन उन्नत शिक्षा प्रणाली को पुनः शुरू करने की जरुरत है जिससे भारत एक मानवीय समाज में बदल सके तथा पुनः भारत का स्वर्णिम इतिहास दोहराया जा सके तथा विश्वगुरु के रूप में भारत अपने को स्थापित कर सकेI

सन्दर्भ ग्रन्थ–

1. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2019
2. समाजशास्त्रीय चिन्तक एवं सिदान्तकार – हरिकृष्ण रावत
3. समाजशास्त्र – जी० के० अग्रवाल
4. डॉ० अमित अग्रवाल – भारत में ग्रामीण समाज
5. रविन्द्र नाथ मुखर्जी – सामाजिक समस्याएं

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

महाकवि कुंजन के काव्य में व्यंग्य

डॉ0 संध्या कुमारी*

कवि कुंजन भोजपुरी भाषा और साहित्य के लब्धप्रतिष्ठ रचनाकार थे। इन्होंने हिन्दी और नेपाली भाषा में भी रचनाएं लिखी। 'कुंजन रामायण' महाकाव्य और 'सीता के लाल' इनके द्वारा लिखित खंड काव्य है। 'कुरकुरहट', 'रसबुनिया', 'कुैनैन के गोली' में हास्य–व्यंग्य 'कुंजन के पाती' में भोजपुरी गीतों का संग्रह और 'महफिले गजल' में हिन्दी गीत गजल हैं। 'सिव टहल काका' भोजपुरी सामाजिक नाटक है। इनकी कई अप्रकाशित रचनाएं हैं जिनमें 'गीता के मरम', 'सुदामा कृष्ण','लागे ना चुनरिया में दाग', 'शेरशाह', 'कंजन के कन्हइया',मुख्य है। इनके द्वारा लिखित 'चण्डाशोक', 'वतन का देवता', 'ताज की लाज',पत्थर के फूल', 'सीता पाताल प्रवेश' हिन्दी नाटक है। 'सानन्द जीने का ढंग' हिन्दी निबन्ध एवं 'छूत को भूत' नेपाली भाषा में लिखित सामाजिक नाटक है। डॉ0 देवेन्द्र प्रसाद सिंह द्वारा संपादित 'कुंजन–कुसुमांजलि' में प्रबंध काव्य को छोडकर कवि की लगभग सभी महत्वपूर्ण रचनाओं का एक साथ संकलन किया गया है। इस आलेख में इन्हीं रचनाओं को आधार बनाकर विवेचन किया गया है।

आधुनिक भोजपुरी भाषा के कवियों में महाकवि कुंजन का स्थान उनकी व्यंग्य रचनाओं के कारण अन्यतम है। इन्होंने अपनी रचनाओं में विविध विषयों पर व्यंग्य किया है। व्यंग्य काव्य को सर्वश्रेष्ठ माना जाता है क्योंकि ऐसी रचनाओं में अमिधा और लक्षणा से आगे बढ़कर एक नया भाव व्यक्त होता है। ऐसे ही व्यंग्यात्मक काव्यों को आनंदवर्द्धनाचार्य ने ध्वनि कहा है। इस दृष्टि में महाकवि कुंजन निश्चित रूप से ध्वनि के रस सिद्ध कवि हैं।

कवि जीवन और जगत में अनुभव करते हुए जिन मानवीय दुर्बलताओं को देखता है, राजनीति, समाज तथा शिक्षा जगत् में फैली असंगतियों को समझता है, नैतिक मूल्यों को गिरते हुए पाता है तब वह उस पर व्यंग्य करता है। व्यंग्य के विषय विविध हो सकते हैं। कवि इन सारी स्थितियों पर व्यंग्य सोद्देश्य करता है जिसके मूल में समाज सुधार का भाव छिपा होता है। वह जिस पैनी दृष्टि से घटनाओं और वस्तुओं को देखता है उसे पूरे समाज को दिखाना चाहता है। वे लिखते हैं मट्ठा के अलावे गाँव में नाश्ते में मिलने वाला चूड़ा– गुड़ की बराबरी कोई भी विटामिन नहीं कर सकता। विटामिन का सेवन करने वालों की दशा का वर्णन करते हुए कवि ने कहा है–

टॉनिक के हाल देखीं, बबुअन के गाल देखीं।
सूखि सूखि घूसल बा चुहानी। विटामिन खालन।[1]

'इस्कूल में बुढ़ऊ के ओरहन' में एक पिता अपने पुत्र को अपनी कुल मर्यादा से अलग होते देख इसकी शिकायत स्कूल में जाकर शिक्षक से करता है। फिर इसके बहकते व्यक्तित्व एवं आचरण का बयान करता है। उसके ऊपर अंग्रेजी सभ्यता का कितना व्यापक प्रभाव पड़ा है इसका भी वर्णन किया गया है। अपनी भारतीय सभ्यता और संस्कृति से वह बिल्कुल अनजान है। गीता और रामायण जैसे ग्रंथों की एक भी पंक्तियाँ उसे याद नहीं है। इसके बदले फिल्मी गीत उसे बहुत याद है। कैसी विडंबना है आज की पीढ़ी हमारे आदर्श ग्रंथों के संदेश को बिल्कुल भूलती जा रही है। पूरे भारतीय एवं विश्व जीवन को प्रभावित करने वाले राम, कृष्ण, गौतम, गाँधी के आदर्शों एवं उनके बताए मार्गो को यह गलत मानते हैं। पिता की शिकायत है–

* प्रेमचन्द पथ, गौरक्षणी, सासाराम (रोहतास)

कतना रउआ खड़े–खड़े दिनभर इतिहास पढ़ाईं।
एह बबुआ के ठेल ठाल के कतनों रुख चढ़ाई।
बाकी इन्हिका बा इयाद बड़का इतिहास जबानी।
पूछीं, कब कहवाँ जनमल हेमा मालिनी के नानी।।
पूछीं इनसे सही साधना के मकान के लम्मर।
पूछीं हेलेन जया भादुड़ी कस मटकावे कम्मर।
सात पुस्त के नाम ई रटले बाड़न सब एक्टर के।
एह बारे में अभी पढ़ावस बड़–बड़े महटर के।।
बाकी अपना देश के इतिहास भूगोल न जानस।
राम कृष्ण गौतम गाँधी के बतिये झूठ बतावस।।
ना गीता ना रामायण के एको लैन बुझाला।
ना दुनिया के नक्शा में भारत के चित्र चिन्हाला।[2]

'बुद्धि के विकास' कविता हमारी अतिशय बौद्धिकता का बयान करती है जितने बड़े–बड़े ग्रंथ लिखे जा रहे हैं उस माफिक अनीति और अत्याचार भी बढ़ रहा है–

दुनिया के जाने कहवाँ चलल जाता?
जतने बड़े बड़े पोंथा रचाता
ततने अनीति बढ़ल जाता।[3]

तीव्र गति से बढ़ती जनसंख्या के कारण पूरा राष्ट्र संकट में है। इस बढ़ती जनसंख्या की माऱ जीवन के हर क्षेत्र में पड़ रही है। रोटी, कपड़ा और मकान के लिए लोग मुहताज हो रहे हैं। सचमुच बढ़ती जनसंख्या हमारे लिए अभिशाप है। इसकी चपेट में पड़े एक भारतीय परिवार की दशा एवं अभिभावक की स्थिति इस तरह की है–

लेदरे पर लेटाय, कवनों बिदोरे नरेटा कवनो नेटा खा के
घीव लेखा चाटत बाटे गाल। कवनो नेटा।[4]

कोई व्यक्ति आलोचक क्यों बनता है इसका कारण बताते हुए कहते हैं जिसमें कविता करने की क्षमता नहीं होती। लाख प्रयास के बाद भी जब कोई सफल कवि नहीं बनता, वे ही आलोचक हो जाते हैं। लेखक कवि बनने से लेकर आलोचक तक की यात्रा देखिए–

रात रात भर सिर धुनलीं , भइली कतना बेचैन।
नहिये निकसल गीत कहानी कविता एकौ लैन।
कविता एको लैन सरग से जब ना उतरल नीचे।
लगली लेखक कवियन के घर– घर के टंगरी खींचे।
बे कटले ना छोड़ी, रचना रहिहें कतनों रोचक।
बान पड़ल काटे, भोंके के बन गइलीं आलोचक।[5]

आज का आदमी कितना छल कपट से भरा है उसका भीतरी रूप कुछ और है बाह्म रूप कुछ उससे अलग। उसके अन्तरतम में पैठ कर उसके मूल रूप को पहचानना बहुत दुष्कर कार्य है। एक आदमी के ऊपर कितने चेहरे हैं कहा नहीं जा सकता। कहने का मतलब है आदमी बाहर भीतर एक नहीं है। कवि की समझ में आज का आदमी केंचुल में दीख रहा है। अलग–अलग स्थानों के लिए उसके भिन्न–भिन्न चेहरे हैं–

घर के लिए अलग से रखता है मुखौटा,
लेता पलट नकाब है महफिल में आदमी।[6]

सामान्य आदमी के अतिरिक्त पुनीत रिश्तों के अति निकट संबंध रखने वालों में पिता–पुत्र, पति–पत्नी, भाई–बहन का संबंध बहुत गहरा होता है। इस तरह के संबंधों पर किसी तरह से शंका नहीं किया जा सकता। लेकिन आज भी कुछ ऐसे पिता हैं जो अपने आचरण के कारण काफी नीचे गिरे हुए हैं, वे धर्म का निर्वाह तक नहीं करते। यदि उनसे पूछा जाए पिता किसे कहते हैं, पिता के कौन–कौन कर्तव्य होते हैं, इसका जवाब उनके पास नहीं होता। स्पष्ट है पिता होने पर भी उनकी कमी के कारण पूरे परिवार की श्रद्धा उनसे मर जाती है। उनके पास कहने भर के लिए मात्र शब्द बच जाते हैं कि मैं फलां का पिता हूँ। इस तरह का आचरण करता हुआ पिता पूरे परिवार की परवाह न कर सिर्फ अपने स्वास्थ्य के लिए च्यवनप्रास ,दूध, दही या विटामिन आदि खाता–पीता हो, और अपने पुत्र पर भार स्वरूप बना रहे ऐसी स्थिति में उसका पिता से पूछना जायज लगता है–

का हो पूज्य पिताजी बोल? अबहीं कहिया ले जियब तू?
कहिया ले च्यवनप्रास खा ऊपर ले गोरस पियब तू?
तहरा से पाछा–पाछा के गइले कतना दादा बाबा
टकसत नइख जमराजो के कागज कहीं भुलाईल का बा?[7]

भारत के कवि कितने सर्व सुलभ और सस्ते हैं फिर उनके मान– अपमान का कोई ख्याल नहीं करता। समाज में उनका इस्तेमाल किस तरह किया जाता है इन पंक्तियों से स्पष्ट है–

रात होय पनरह अगस्त, छब्बीस जनवरी के हो दिन।
मुंडन चाहे गृह प्रवेश भा नेता के हो अभिनंदन।
चाहे जूता के दोकान के होखत होखें उद्घाटन।
जहवें चाहीं तहे बुलाके करवा लीं कवि सम्मेलन।[8]

साहित्यकार के व्यक्तित्व का सही मूल्यांकन उनके जीते जी लोग नहीं करते। इसके कई कारण हुआ करते हैं। दूसरे लोगों से काव्य के क्षेत्र में आगे जाने के कारण लोग ईर्ष्यावश सही मूल्यांकन नहीं कर निंदा को हथियार के रूप में प्रयोग करते हैं। ऐसे लोगों का लक्ष्य प्रतिभा कुंठित करने के सिवा कुछ नहीं होता। साहित्य के क्षेत्र में ऐसे अनेक उदाहरण मौजूद हैं। किसी कवि के मरणोपरांत हर वर्ष उनकी जयंतियाँ मनाना या स्मारक बनवाना उचित नहीं है जितना उनके जीवनकाल में सम्मानित करना। ऐसी स्थिति का अनुभव पर कवि ने लिखा है–

कविता सुन खुश होके ताली बजा बजा के घर जइहें।
बाकी कवि के सूखल चेहरा पर ना तरस तनिको खइहें।
जीयत कवि खातिर एको पइसा ना खरच कर पइहें।
मुअला पर हर साल जयंती भा असमारक बनवइहें।[9]

इन कतिपय उदाहरणों से प्रमाणित है कि कुंजन का काव्य समाज और व्यक्ति के उस कमजोर और सड़े अंगों पर सबका ध्यान आकर्षित करता है, जिसे लोग देख नहीं पाते। इसी को नाम बड़े और दर्शन छोटे कहा जाता है। इन तथाकथित लोगों का आचरण मनुष्य नहीं पशु की भाँति है। ये नीतिपथ के गामी नहीं। अतः समाज के कृत्रिम आचरण का पर्दाफाश बड़े ही संयत तथा मार्मिक स्वरों में किया गया है। वस्तुतः कुंजन व्यंग्य काव्य के बादशाह हैं।

संदर्भ–सूची

1. कुंजन कुसुमांजलि–सं0 डॉ0 देवेन्द्र प्रसाद सिंह–त्रिवेणी प्रकाशन, डिहरी–ऑन–सोन, रोहतास–2017–पृष्ठ सं0–31
2. कुंजन कुसुमांजलि–सं0 डॉ0 देवेन्द्र प्रसाद सिंह–त्रिवेणी प्रकाशन, डिहरी–ऑन–सोन, रोहतास–2017–पृष्ठ सं0–32

3. कुंजन कुसुमांजलि–सं0 डॉ0 देवेन्द्र प्रसाद सिंह–त्रिवेणी प्रकाशन, डिहरी–ऑन–सोन, रोहतास–2017–पृष्ठ सं0–41
4. कुंजन कुसुमांजलि–सं0 डॉ0 देवेन्द्र प्रसाद सिंह–त्रिवेणी प्रकाशन, डिहरी–ऑन–सोन, रोहतास–2017–पृष्ठ सं0–44
5. कुंजन कुसुमांजलि–सं0 डॉ0 देवेन्द्र प्रसाद सिंह–त्रिवेणी प्रकाशन, डिहरी–ऑन–सोन, रोहतास–2017–पृष्ठ सं0–49
6. कुंजन कुसुमांजलि–सं0 डॉ0 देवेन्द्र प्रसाद सिंह–त्रिवेणी प्रकाशन, डिहरी–ऑन–सोन, रोहतास–2017–पृष्ठ सं0–52
7. कुंजन कुसुमांजलि–सं0 डॉ0 देवेन्द्र प्रसाद सिंह–त्रिवेणी प्रकाशन, डिहरी–ऑन–सोन, रोहतास–2017–पृष्ठ सं0–62
8. कुंजन कुसुमांजलि–सं0 डॉ0 देवेन्द्र प्रसाद सिंह–त्रिवेणी प्रकाशन, डिहरी–ऑन–सोन, रोहतास–2017–पृष्ठ सं0–80
9. कुंजन कुसुमांजलि–सं0 डॉ0 देवेन्द्र प्रसाद सिंह–त्रिवेणी प्रकाशन, डिहरी–ऑन–सोन, रोहतास–2017–पृष्ठ सं0– 80

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

HUMAN RIGHTS IN INDIA, SOCIAL INCLUSION IN GLOBALISED ERA AND CHALLENGES FACED

DR. MRS. JYOTIKA ROY*

Human rights are commonly understood as "inalienable fundamental rights to which a person is inherently entitled simple because she or he is a human being". According to Scott Davidson (1993), "The concept of human rights is closely connected with the protection of individuals from the exercise of State, Government or authority in certain area of their lives, it is also directed towards creation of societal condition by the state in which individual are to develop their fullest potential". Thus, from the above cited definitions, it has been seen that human rights are the essential part for every human in order to live his/her life to the fullest.

On 10 December 1948, the General Assembly of the United Nations adopted and proclaimed the Universal Declaration of Human Rights as under: "All human beings are born with equal and inalienable rights and fundamental freedoms". "The United Nations is committed to upholding, promoting, and protecting the human rights of every individual. Thus, Human rights are certain rights that are vested in every person by virtue of his/her being a human being (Universal Declaration of Human Rights, 1948).

In India, two important developments were Indian Independence and the drafting of the Constitution of India. Since the Constitution was drafted at the time that all this excitement was taking place in the international arena, the drafting process was heavily influenced by human rights. This is evidenced in our Constitution, especially in the chapters dealing with Fundamental Rights and the Directive Principles of State Policy. A free India did not mean that the struggle was over. There were many groups that did not receive the benefits of freedom. Many of these groups have struggled in loneliness and in solidarity till they realize new rights and the fulfilment of human dignity.

The central argument of this paper is that, there is a continuous change and progress in human rights discourse in India. It has been expanding over the period of time. So, the nature of human right in India is not static. This paper tries to capture and theorize these changes in human rights discourse. The first section of the paper deals with the human rights in Indian constitution. The

* **Associate professor and Head, Department of Medieval History Ewing Christian College, Prayagraj**

second section deals with that how the concept of human rights expanded through some social movements, related to environment, development, women and children rights. The third section talks about the human rights in India in globalizing era. The fourth section of the paper talks about the challenges to human rights in India, from various actors from state to individual groups. The last section of the paper deals with the way ahead, how we can ensure and expand human right in India and make it more universal and accessible to all.

Human Rights in Indian Constitution

India was one of the original signatories to the International Covenant on Civil and Political Rights and therefore the framers of Indian Constitution were influenced by the concept of human right and recognized as well as guaranteed most of the human rights which were subsequently embodied in the International Covenant 1966. The Preamble of the Indian Constitution reflects the inspiring ideals with the specific mention of "dignity of the individual". The Constitution of independent India came into force on 26thJanuary. The impact of the Universal Declaration of Human Rights on drafting part III of the Constitution is apparent. India has acceded to the Universal Declaration of Human Rights as well as to the subsequent International Covenants of Economic, Social and Cultural rights and Civil & Political Rights adopted by the Central Assembly of the United Nations.

Fundamental Rights enshrined in Part III of the Constitution have emerged from the doctrine of natural rights. Fundamental Rights are the modern name for what have been traditionally known as Natural Rights. The Natural Rights transformed into fundamental rights operate as a constitutional limitation or a restriction on the powers of the organs set up by the Constitution or the State action. Judicial Review, Justiciability or Enforcement became an inseparable concomitant of fundamental rights. As no right of freedom can be absolute, limitations have been imposed to each fundamental right in the interest of securing social justice. Enforcement of fundamental rights can even be suspended or prevented in emergency. Directive Principles enshrined in Part IV of the Constitution epitomize the ideals, aspirations, the sentiments, the precepts and the goals of our entire freedom movement. The wisdom of the forefathers of the Constitution was justified in incorporating on-justiciable human rights in the concrete shape of the directive principles.

In the early independence period, the concept of human rights in India was characterized and shaped by Indian constitution makers and international treaties, especially universal declaration of human rights. Though the rights and remedies both were available in Indian constitution, the scope of human right was restricted and it was not as vast as it is right now. For example, judicial

interpretation of article 21 led to the invention of environmental right and right to privacy, which was not there in early period exclusively.

Social Movements and expansion of Human Rights

In India, social movements played a very important role in not just bringing human rights in general discourse, but it also expanded the horizon of what human rights includes in India. For example, movements such as Chipko, brought the issue of environment as a fundamental human right in the mainstream human right discourse. On the other hand, Queer movement and their continuous efforts expanded the horizon of human right in India, to LGBTQ rights. 1970s onwards can be regarded as a phase from which India saw a mutual relationship between social movements and human right expansion. This includes the women movements, Dalit movements, tribal movements, civil right movements, worker movements and many more. These movements enabled the concerned groups to mobilize people around the issue. Fundamental to all these movements was them "right" to live freely, with dignity and without any discrimination. Though the framework of all these rights were available in Indian constitution from last two decades, it was these movements which made these rights realize in real world. It was in the background of these movements and their mobilization, that in the later phase judicial interpretation expanded the horizon of some of the fundamental rights, for example, of right to life.

The root of many human and civil right groups such as Citizen for Democracy, PUCL or PUDR, was in the movements of this phase, and they expanded in post emergency phase. Smitu Kothari (1991) has argued that another major contribution of these organizations included the initiation of 'investigative journalism'. These groups have also played an important role in providing various kinds of support during specific crisis situations such as communal riots as witnessed against the Sikhs in 1984 as also the instance of the Bhopal Gas victims. They have not only provided relief and rehabilitation but also helped independent organizations," with their experience and ability to produce and disseminate literature. Smitu Kothari classifies the issues raised by these groups into three categories: State terror in the form of police excesses which include torture and 'fake encounter' deaths; no implementation of legally guaranteed rights along with total apathy and inactivity of the government institutions and finally socially structured violence whether perpetrated on a caste, class or gender basis. In Post-Emergency era one finds a broadening of the agenda of the human rights movement. The question of rights of communities is now considered as important as the struggle for individual rights. Rights concerning religion, ethnicity and gender came to dominate the movement.

It is important to consider that the development of environment as human right was product of the efforts by social movements across the world and international and national organizations. The Constitution of India, 1950, did not include any specific provision relating to environment protection or nature conservation. Presumably, the acute environmental problems being faced now in the country were not visualized by the framers of the Constitution.The Constitution (42nd Amendment) Act, 1976, was adopted in the mid-1970s. Specific provisions relating to certain aspects of the environment, especially for the protection of the forests and wildlife in the country, were incorporated in Part IV of the Directive Principles of State Policy and List III – The Concurrent List – of the Seventh Schedule of the Constitution. As a result, the Constitution now has the provisions specifically relating to environment protection and nature conservation. There have been several remarkable judicial pronouncements in recent years, especially relating to Article21 of the Constitution, dealing with 'the right to life'. The right to environment has been closely linked with the right to life. In *Francis Coralie Mullin vs Union Territory (1981 2 SCR 516)*, the Supreme Court held that "the right to life includes the right to live with human dignity and all that goes along with it, namely the bare necessities of life such as adequate nutrition, clothing and shelter….". The notable thing in the development of environmental right as fundamental human right was the mobilization that took place in movements like Chipko movement, that shaped the discourse around how environmental degradation impacts the indigenous people. Thus, the social movements in India, in many spheres had a positive impact on the expansion of human rights in India.

Human Rights in Globalized India

India's adoption of liberalization in 1991 marked a shift in its economic policy from one that was State-centric to one that was more market-oriented. While curtailing State control in the economic sphere has in no way led to a reduction in State inflicted human rights violations, the impact of the same on the human rights movement has been manifold and at multiple levels. Liberalization of the communication sector with increasing participation of private players particularly in the arena of visual media has helped to not only expose government excesses but also provide impartial and wide reportage of human rights violations. Increasing use of human rights protection as a foreign and economic policy instrument by developed nations such as theU.S.A. as also pressure applied by international NGOs such as Amnesty International led to the Government setting up the National Human Rights Commission in 1993.A liberalizing economy can ill-afford to be economically and morally isolated at the international level. While the dilemma of accepting foreign funding persists, liberalization has definitely made the same morally palatable such that there would be fewer instances of human rights agencies and actors being dubbed,

'foreign agents'. The government though has not relented in its screening of the same.

However, a cynical or what some might call a rational analysis would suggest that liberalization has led to what Upendra Baxi (2002) calls emergence of' human rights markets'. According to Baxi, human rights markets are said to "comprise a series of transactions across a range of economic actors that pursue competition within a framework of collaboration". Human rights markets are governed by principles similar to a market economy. Instances of human rights violations and suffering must be commodified or packaged in a manner that the mass media can easily market to its consumers.However, such commodification is usually only of shock value as it is transient and therefore does little to mobilize long term support for a given cause. Therefore, advocates of human rights whether NGOs or NGIs (non-governmental individuals) must adopt corporate management techniques.

As Baxi argues, these are needed to constantly lobby for consumer support and build solidarities as well as gamer funds from governmental or non-governmental, national or international 'investors' or funding agencies such that human rights may be protected and promoted. What is ironic is that human rights groups often have to work in collaboration with and depend for finances on organizations and agencies which themselves are often violators of human rights. Market rationality is profit oriented therefore often choices must be made between what he calls "efficient causes of human and human rights violations and progressive social movements " Gradual withdrawal of the State from the economic sphere has not only led to abandoning of its commitments towards promotion of social welfare but has also reduced its ability to push corporate institutions towards acting in a socially responsible manner.

Challenges to human rights in India

There are many challenges to human rights in India. Human right as a universal category available to all, looks too ambitious in Indian context considering the social and economic hierarchy in the society. The biggest potential threat to human rights in India is the violation of human rights by the state and individual groups. State violation of human rights in Kashmir and Northeast region of country is well documented. But the recent increase in the incidents of lynching by the mob, is another sphere of concern against the human rights in India. The violations of "human rights" take place within India's political system.

A democratic society cannot protect human rights when the politicians and police forces surrounding it are corrupt. Corruption affects India at all levels of decision-making and in the distribution of the state's largesse. People normally think that violations are taking place from the hands of other citizens;

in this case the violations are coming from those who are supposed to be protecting them. Corruption is a major obstacle in the development of India. There is an estimate that only 17 percent of funds allocated by government for poverty reduction actually reaches the poor. Corruption actually dilutes human rights in a significant way. The politicians and police should worry about everyday functioning of the state, rather they are well known for their corruptness and brutality which makes matters even worse for a large country. The violation of human rights has been present since the existence of India, and it will stay that way until some significant changes are made.

Conclusion

The discourse of human rights ever growing in India. Though the simple definition of human rights is, rights which are commonly understood as inalienable fundamental rights to which a person is inherently entitled simple because she or he is a human being. But the understanding of inalienable fundamental rights is ever expanding. Since the universal declaration of human rights, the understanding of what consists fundamental human rights is broadened and its horizon is expanded. This expansion of the understanding of human rights is the product of several development, that includes, social movements. Not just human rights movements ensured the expansion of human rights, but other movements such as environmental movements, worker movement, women movement and other notable movements contributed in the expansion. Judicial interpretation of constitutional rights played a very important role in expansion of human rights in India.

In post liberalization, in the pressure of some international organizations, new institutional mechanism has been developed by the government to ensure human rights. NHRC played very important role in post liberalization era. Though some may argue that there is a post material turn in the nature of understanding of human right in India, but this binary seems inappropriate considering the nature of society. The challenges to human rights and its violation is still very prevalent in India. There is a need for a strong institutional mechanism to ensure human rights and its universal implementation.

References:

Baxi, Upendra., *2002*. "The Future of Human Rights". New Delhi: Oxford University Press.

Clapham, Andrew., 2007. "Human Rights: A Very Short Introduction". New York: Oxford University Press.

Davidson, Scott., 1993. "Human Rights (Law and Political Change)". Buckingham: Open University Press.

Kothari, Smitu and Sethi, Harsh. 1991. (eds.), "Rethinking Human Rights Challenges for Theory and Action". New Delhi: Lokayan.

Mohanty, M., Mukherjee, P.N. and Tomquist, O. 1998 (eds.). "People's Rights: Social Movements and the State in the Third World", New Delhi: Sage.

UN General Assembly. 10 December 1948. "Universal Declaration of Human Rights".217A(III). Available From: https://www.refworld.org/docid/3ae6b3712c.html [Accessed 23 October 2019].

Working Group on Human Rights in India and the UN (WGHR). December 2012. "Human Rights in India: Status Report 2012". Available From: www.wghr.org. [Accessed 23 October 2019].

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

Rural India in Globalized World

Dr. Ashima Ghosh*

This paper has delved into the state of rural India in the era of globalization. It has tried to analyse the impact of globalization on rural India. But due to government intervention transformation is taking place. Transformation can be seen at the political, social and economic level. The fruits of development can reach the rural households when there is social justice and empowerment of rural women, when education and health facilities reach remote villages. The paper has tried to look into some such schemes of the government which has tried to make the lives of the rural people better and help them to face the challenges posed by the process of globalization and also try to reap the benefit of globalization. Even some Non-Governmental Organizations (NGOs) and social workers have tried to bring about positive transformation in rural India.

Problems of Rural India

Nearly 72 percent of the Indian population resides in the villages but stagnation in agricultural productivity has foundan echo in the declining importance of farming in the householdeconomy. Although 53 per cent of rural households engage infarming, 57 per cent engage in raising livestocks, only 20 percent of the households draw all their income from agriculture.(Human Development in India: Challenges for a Society inTransition, 2010).

Given their low incomes, few farmers have savingsthat would allow then to ride over droughts, floods or cropfailures without catastrophes. Much of policy discourse focusingon the growth of non-farm sector tends to highlight the pull ofthe non - farm sector while ignoring the push due to low farmproductivity. This has substantial policy implications which isreflected is demands generated for programs as National RuralEmployment Guarantee Act (NREGA).

Indian economy has recorded a fast growth rate inrecent times but the economic miracle has not touched the livesof estimated 70 percent of India's 1.1 billion who eke out livingout of farming and unorganised labour. More than 450 millionIndians live on less than a dollar a day. The' number ofimpoverished farmers committing suicide has increased. TheNational Human Rights Commission (NHRC) has expressedconcern over the increasing cases of starvation deaths andfarmer suicides. The region of Kalahandi, Bolangir and Koraputin Orissa has witnessed large number of starvation deaths andfarmer's suicides.

* **Associate Professor, Ewing Christian College, University of Allahabad**

The pathetic aspect is that while there are reports oftones of food grains rotting, starvation and suicides of farmerscaught in debt traps continue. Development and welfaremeasures have to be earnestly implemented focusing on publicdistribution system, health and special security schemes so thatthe farmers are not pushed to such a hopeless state where thereis no option for them then to embrace death.

Farmers and tribals are being edged out of whateverlittle land they had by relentless development projects. In recentyears of economic liberalization, the program of land distributionamong the landless has been badly neglected while hundreds ofthousands of acres that belonged to small pleasant have beentaken away for industries, mining, dams and other projectsThus, their already meagre share of land is diminishing.

Development experts are generally agreed that strongland reforms are the best approach to reducing poverty,increasing productivity and ensuring food security as well asbringing peace and justice to the Indian villages. This would alsolead to ecological regeneration. Beneficiaries of land reforms canbe mobilized to repair traditional irrigation schemes, take up soiland regenerate forests and take up new afforestation work.

Globalisation has also resulted in global fight forIntellectual Property Rights. Time and again traditional agrarianand ayurvedic products closely connected to rural India havebeen drawn into controversy. Basmati, neem and haldi havebeen drawn into patent controversy. Advances in biotechnologyhave ensured that even though traditional agricultural productscannot be patented (a patent, to be granted has to fulfill therequirements of novelty, and utility), new, genetically modifiedversion for instance, a strain of neem with higher resistance canbe patented. At present, more than 50 per cent of 40,000 patentsgranted by the US Trade and Patents Office have traditionalIndian plant sources. Excessive use of chemical fertilizers toincrease production leads to depletion of soil quality. In Indiadisputes over intellectual property rights in regard to high -yielding crop seeds have resulted in violent protest by peasantsat seed factories.

World Trade Organisation (WTO) does not recognisegeographical indicators for products, other than wines and spirit.India has to develop a sound multi-pronged approach to take IPRdisputes. Geographical Indications Bill to indicate thegeographical area where a product is traditionally found shouldbe prepared. Plant varieties bill to ensure that farmers or plantbreeders register their own innovations and traditionalknowledge so that they cannot be patented elsewhere.

Traditional Digital Library should be included in the intellectualproperty regime to enhance the quality of patent examination,and resolve the problem of granting patents based on traditionalknowledge. This is a challenging task.

Inclusive Growth for Rural India

Inclusive growth has emerged as the theme foreconomic development. This inclusion depends on how wellconnected the communities are to the wider economy. As itsmost basic level, it is physical connectivity like road, access toelectricity, post office and telephone. Other measures includeaccess to public transportation and banks. Paved roads areimportant for connectivity. Village level data indicates that one of ,the most important results of Indian growth seems to be thedevelopment of an intensive network of roads. Access toelectricity, safe drinking water, healthcare and education isessential for integration of villages in the economic process andits development.

Many villages have access to various kinds ofinfrastructure on paper, and often in the forms of buildings orbus shelters, the actual provision of services is defunct orunreliable. In some villages, Public Distribution System (PDS)shops are often closed because of lack of supplies.

While the impact of Globalization is clearly visible onurban life but rural life in India has not changed much. Majorityof people are still living in mud and thatched houses. Conditionsof the farming community has remained more or less untouchedfrom globalisation. The State of sanitation and hygiene is verypoor. Although several states in India claim 40, 50 or even 100per cent electrification of villages but electric supply is erratic orbarely for 3-4 hours per day. The women folk toil hard to gatherfirewood, bring potable water, look after the cattle, plaster thehouse with mud and cow dung, prepare food and work onagricultural land. They are generally given less wages than themen when they work as agricultural labour. Their contributionin economic terms remain invisible if they toil on family land.

The state of education in the rural areas is far fromsatisfaction. The quality of education is highly variable. Onlyabout half the children, aged between 8-11 in rural areas areable to read a simple paragraph. Many children drop out of theschooling system, either because of lack of access to schools orpoor returns to education in rural areas. A substantial fractionof students completing standard 5 drop out before completingstandard 10.

The school buildings either do not exist or exist in abad shape in the villages. There are inadequate number ofteachers and facilities that are available are very poor. Thepositive development is that the number of girls attending theschool have gone up. But the students from the rural areas lacktechnical education or have poor communication skills whichput them at disadvantage to secure employment.

Technology has failed to percolate to villages in theabsence of electricity and other communication infrastructure.Few rich families enjoy dish T.V. facilities. Mobile connectionsare slowly increasing in the rural areas. But, there are very fewsmall scale industries to provide employment opportunities toyoung boys and girls. While boys move out to urban centres toseek employment girls are generally not allowed to do so

due tocultural and social prejudices and also because of the fact thatthey share a large amount of daily household responsibility.

About 30 per cent of villages in India have neither agovernment nor a private medical facility. Only one-third ofvillages have access to medical facilities offered by both sectorswithin the village. The most common government facility formedical care in a village is a government health sub-centre. Sub-centresare poorly equipped and inadequately staffed. Ruralhouseholds seem to have little trust in the treatment provided bythese sub-centres. Therefore, many rural residents travel to aneighbouring village, town or city to seek medical advice ortreatment. This adds an additional burden of travel expenditureto medical costs. While most villages have access toimmunization programmes, the actual immunization ratesremain modest, with higher immunization coverage for poliothan other immunization.

Natural calamities like drought and floods havecrushing effects on poor rural households. Government resortsto food import in the event of food crisis or crop failure. The costof production isincreasing due to declining subsidies.

Commercialization of agriculture IS replacing subsistenceagriculture. Poor farmers often get trapped in debt. This leads tomalnutrition, hunger and suicides.

Political Participation

The degree of political empowerment that has resulted through the historic constitutional amendments in 1992-93 has been by and large, unprecedented. There has been steady process as far as the inclusion of excluded sections of our population in the decision making process from village to the district level is concerned. Women got elected to local governments. Even the women belonging to Scheduled Castes and Schedule Tribes have secured their due share. The participation of the rural people in plans which affect rural India would bring about meaningful development.

It is the responsibility of Panchayat functionaries to ensure the development of their villages. They should focus on right utilization of funds. For the gains of development in the globalized world to percolate down to the grassroots levels, the participationof rural population is must and Panchayat Raj System is the best way to ensure this.

Affordable Housing Scheme

Pradhan Mantri Awas Yojana (PMAY) or Mission for affordable housing was launched in 2015. It was divided into two parts urban and rural. PMAY (Gramin) came under the ambit of the Ministry of Rural Development. Through this plan rural households can have affordable house of their own with basic amenities – functioning toilet, electricity connection and door to door waste collection. This scheme of the government would benefit the poor and the weaker section of the society residing in the villages.

Deen Dayal Upadhayaya Gram Jyoti Yojana (DDUGJY)

The scheme envisages (i) electrification of un-electrified villages, (ii) intensive electrification of already electrified villages to provide access to households, (iii) strengthening and augmentation of sub-transmission and distribution of sub-transmission and distribution infrastructure to improve quality and reliability of power supply (iv) feeder separation to provide assured power supply to farmers and (v) metering of feeders, distribution transformers and consumers to facilitate energy audit and reduction of losses.

The scheme would ensure that no village in India remains in darkness.

Empowering Rural Masses

Prime Minister, Narendra Modi has given a clarion call to double farmer's income by 2022. In pursuance, Ministry of Agriculture and Farmers' Welfare devised a seven-point-strategy which includes various critical and potential components for increasing the income of farmers. Raising production per unit of farmland with effective use of input cost, reduction of post-harvest losses and value additions, reforms in agricultural marketing and special focus on especial allied activities (horticulture, animal husbandry, fishery, bee keeping, poultry and integrated farming) are the key features of this strategy.

Various natural calamities, attack of pests and diseases and variable weather conditions pose a threat to income and livelihood of farmers. In order to protect livelihood of farmers against such risks.

Pradhan Mantri Fasal Bima Yojana

Prime Minister Crop Insurance Scheme was launched to help the farmers overcome difficult times due to crop failure or natural calamities.

Some of the schemes the government which has benefitted rural women and girls are 'Nal se Jal' or piped water scheme, 'Ujjawala Yojana', 'Swachch Bharat Abhiyan', 'Sukanya Samridhi Yojna', 'Beti Bachao Beti Padho' scheme. Prandhan Mantri 'Jan Dhan Yojana' and 'Ayushman Bharat' for universal health care would also make the lives of womenfolk residing in rural India better.

Conclusion

India needs to secure its rural population and provide "Safety nets" for the vulnerable section of the society so that these is no negative impact of globalization upon them. To reap the benefit of globalization education, technological knowledge and skills must be within the reach of rural people. For this largely helpful. At the same time some of the NGOs are also working in rural areas to improve the lives of the women and farmers. Social workers like Anna Hazare have set example of how determination and dedication of one man can also transform a village through participatory development. In India Central Government, State Government and the

Panchayats needs to work together to bring necessary transformation in rural India so that farmers and village folks can participate and reap the benefit from the process of development.

References

1. Human Development in India : Challenges for a society in Transition; Oxford University Press, 2010.
2. Bhagwati, Jagdish. *In Defence of Globalisation.* New Delhi : Oxford University Press, 2005.
3. Chandhoke, Neera, P. Priyadarshi. *Contemporary India : Economy, Society, Polity.* New Delhi : Pearson, 2010.
4. Sen, Amartya. *Poverty and Famines*, Oxford : Clarendon Press, 1981.
5. Sen, Amartya. *Development as Freedom*, New Delhi : Oxford University Press, 2010.
6. Stiglitz, Joseph. *Globalization and Its Discontents.* New Delhi : Penguin Books, 2002.
7. Kurukshetra, Vol. 66, No. 9, July 2018.
8. Kurukshetra, Vol. 67, No. 7, May 2019.
9. Yojana, July 2018.
10. http://rural.nic.in

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

Capital Market Practices & Role of SEBI

1. **MD. ZAFAR ALAM**
Research Scholar
(Dept. of Commerce)
B.R.A BIHAR UNIVERSITY
MUZAFFARPUR

2. **DR. KASHID ANWAR**
Assistant Professor
(Dept. of Commerce)
P.R.R.D COLLEGE BAIRGANIYA
B.R.A BIHAR UNIVERSITY
MUZAFFARPUR

3. **DR. MUSTAFIZUL HAQUE**
Assistant Professor
Dept. of Management Aurora's
P.G (MBA) College, Hyderabad
(Osmania University Hyderabad,
Telangana)

Abstract

Global economic recession, depressions, mal-practices and various scams in the Capital Markets have not only shaken investors 'confidence but have tarnished the Indian Capital Market image at global level. the role of SEBI, in the present scenario as regulator and developer of capital market has become more challenging, in view of fast paced global integration of capital markets. As far as infrastructure reach, volume of trade and market capitalization is concerned, the Indian Capital Market has achieved major transformation parallel to many emerging capital Market. The challenge before the Indian capital market is the expanding investor base and to provide them access to high quality financial services. With a population of more than 100 crores, a mere 1% of population participates in capital market and of that only a fraction is active. Trading volume in Indian capital market is lower as compared to other markets such as US, China, UK, Germany etc. Another Challenge faced by the investor is the cost involved in trading, which is comparatively higher in India, than in developed markets. Upward trend in the disposable income, increasing specialization, growing fashion, increasing standard of living and the optimum utilization techniques of resources have paved the path for Mutual Fund Companies to play. Since, the Mutual Fund is an instrument used by the population which has low- savings and belongs to the middle income group. So, the author has taken the Mutual Funds as an opportunity for the present study entitled —Healthy Capital Market Practices & Role of SEBI‖. Thus, there is the need to develop its capital market especially its bond market which is underdeveloped because of policies constraint. Also, India has a huge market for the infrastructure which requires huge funds. The creation of deep and innovative bond market can fill this gap. Steps have been taken up to develop the equity

market but there is lots to be done in case of the bond market development. Reforms need to be initiated, bottlenecks need to be removed, policies need to be changed to deepen the bond market in India and to make it as competitive as the world best bond markets.

Key Words: Capital Markets, SEBI, Mutual Funds, Insider Trading, Diversified Equity Mutual Fund, Large Cap, Small Cap, AMC, UTI, NAV.

INTRODUCTION:

Capital Markets in India have undergone a tremendous transformation from it's origin to till date. Global economic recession, depressions, mal-practices and various scams in the Capital Markets have not only shaken investors' confidence but have tarnished the Indian Capital Market image at global level. In order to strengthen the investors' Confidence and recover from the market inactivity regulatory authorities have been continuously transforming their vision of Capital Market regulation.

Capital Market performs four functions namely, making available variety of opportunities to investors to park their disposable wealth; formation of capital both risk capital and debt capital; allocation of capital; and corporate governance. The performance of capital market and SEBI on these four counts has been satisfactory to a large extent, as it has achieved several milestones in making Indian Capital Market comparable to its counterparts in developed countries. However, the role of SEBI, in the present scenario as regulator and developer of capital market has become more challenging, in view of fast paced global integration of capital markets. As far as infrastructure reach, volume of trade and market capitalization is concerned, the Indian Capital Market has achieved major transformation parallel to many emerging capital Market. The challenge before the Indian capital market is the expanding investor base and to provide them access to high quality financial services. With a population of more than 100 crores, a mere 1% of population participates in capital market and of that only a fraction is active. Trading volume in Indian capital market is lower as compared to other markets such as US, China, UK, Germany etc. Another Challenge faced by the investor is the cost involved in trading, which is comparatively higher in India, than in developed markets.

Capital market requires many intermediaries, who are responsible to transfer funds from those who require these funds for investments. The efficiency of the markets is dependent on the specialization attained by these intermediaries. Some of them are as follows:-

a) Stock Exchanges;

b) Banks;

c) Investment Trusts and Companies;

d) Specialized Financial Institutions or Development Banks;

e) Mutual Funds;

f) Non-Banking Financial Institutions;

g) International Financial Investors and Institutions.

Of the intermediaries mentioned above, the Mutual Fund is taken as main thrust area. Upward trend in the disposable income, increasing specialization, growing fashion, increasing standard of living and the optimum utilization techniques of resources have paved the path for Mutual Fund Companies to play. Since, the Mutual Fund is an instrument used by the population which has low-savings and belongs to the middle income group. So, the author has taken the Mutual Funds as an opportunity for the present study entitled —Healthy Capital Market Practices & Role of SEBI.

SECURITIES EXCHANGE BOARD OF INDIA (SEBI):

SEBI (Securities and Exchange Board of India) was initially constituted on April 12, 1988 as a non-statutory body through a resolution of the Government for dealing with all matters relating to development and regulation of securities market and investor protection and to advise the Government on all these matters. SEBI was given statutory status and powers through an ordinance promulgated on January 30, 1992. The statutory powers and functions of SEBI were strengthened through the promulgation of the Securities Laws (Amendment) Ordinance on January 25, 1995 which was subsequently replaced by an act of Parliament. In terms of this Act, SEBI has been vested with regulatory powers over corporate in the issuance of capital, the transfer of securities and other related matters. Besides, SEBI has also been empowered to impose monetary penalties on capital market intermediaries and other participants for a range of violations. SEBI is managed by six members – one chairman (nominated by Central Government), two members (officers of central ministries), one member (from RBI) and remaining two members are nominated by Central Government. The office of SEBI is situated at Mumbai with its regional offices at Kolkata, Delhi and Chennai. In 1988, the initial capital of SEBI was Rs. 7.5 Crore which was provided by its promoters (IDBI, ICICI, and IFCI). This amount was invested and with its interest amount day-to-day expenses of SEBI are met. All statutory powers for regulating Indian Capital Market are vested with SEBI itself.

Functions of SEBI:

The SEBI performs functions to meet its objectives. To meet three objectives SEBI has three important functions. These are:

1. **Protective functions**
2. **Developmental functions**
3. **Regulatory functions**

1. Protective Functions:

These functions are performed by SEBI to protect the interest of investor and provide safety of investment.

2. Developmental Functions:

These functions are performed by the SEBI to promote and develop activities in stock exchange and increase the business in stock exchange.

3. Regulatory Functions:

These functions are performed by SEBI to regulate the business in stock exchange. To regulate the activities of stock exchange.

CONCLUSION:

The SEBI has recently put up the report titled; reform of mutual fund industry prepared in association with A.F. Ferguson and company for public comments. In a press release SEBI pointed out that asean development bank on behalf of the finance government of India appointed a consultant to review the various aspects of the mutual fund industry in India. Inviting public comments /view report SEBI has noted that SEBI neither approves nor disapproves content accuracy of the report.

The report noted that the ownership of Indian mutual fund is dominated by corporation which it is estimated account for between 60 to 80 % of the total value of assets under management .this has led to practice like dividend stripping or offering a favorable NAV pricing for instance that knew towards these investor s. as a result the turnover of mutual fund units has reached epic proportion. sales and redemption of units as a % of average NAV stands at 4.28 times compared to 0.38 ND 0.51 times for mutual fund in UK and US respectively .because of this the portfolio turnover of the scheme is high than portfolio turnover as a % of average NAV was more than 10 times in 2001-02 the highest being 14.65 times.

The regulation governing mutual fund have been developed over time and are fairly comprehensive .this development has been through periodic amendments to the regulation themselves and also through a continuous series of notification and circulars issued by SEBI. There is thus no unified corpus of regulation that is easy to grasp. In the light of

recommendation of mutual fund it seemed to make some appropriate to reconstruct the regulation as they would apply to AMCs, PTCs and to mutual fund themselves .each set should be designed to be comprehensive and classified clearly under various heads. Whenever a change is effected in order to meet new circumstances or to tighten investors protection then the relevant chapter should be replaced so that at all times the handbook is up to date and whatever guidance is required on all matters relating to compliance is available at once place. There should prepare a series of models and have reviewed key issues with SEBI. the some improvement in the regulation that committee felt that there were gaps or weaknesses or where the regulation to be brought up to best international standard .they have been drafted as if the detailed recommendation made had been accepted.

REFERENCES:

[1] www.amfiindia.com
[2] www.finance@indiaMATE.com
[3] Mary Rowland," The New Commonsense Guide to Mutual Fund",pp-165-170,vision publication, delhi,1998
[4] www.sebi.gov.org
[5] SEBI (Mutual Funds) Regulations, 1996.
[6] Following clause "y" in regulation 2 was substituted by SEBI (Mutual Fund) (Amendment) Regulations, 1999 published in the Official Gazette of India dated 08.12.1999
[7] Regulation 7 of SEBI (Mutual Fund) Regulations, 1996.
[8] Regulation 21of SEBI (Mutual Funds) Regulations, 1996.
[9] Regulation 26 and Proviso inserted by the SEBI (Mutual Fund) (Amendment) Regulations, 2006, published in the Official Gazette dated 12.01.2006
[10] Regulation 26 0f SEBI (Mutual Fund) Regulations, 1996.
[11] "sub-regulation (1) or" deleted by the SEBI (Mutual Fund) (Amendment) Regulations, 1998, published in the Official Gazette of India dated 12.01.1998
[12] Regulation 39 of SEBI (Mutual Fund) Regulations, 1996.
[13] Substituted for "ten years" by SEBI (Mutual Fund) (Amendment) Regulations, 1998, published in the Official Gazette dated 12.01.1998.
[14] Regulation 50 of SEBI (Mutual Fund) Regulations, 1996. Substituted for "ten years" by SEBI (Mutual Fund) (Amendment) Regulations, 1998, published in the Official Gazette dated 12.01.1998

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

मृणाल पाण्डे के साहित्य में प्रेम, विवाह एवं प्रेम त्रिकोण

कंचन द्विवेदी*

प्रेम, जो ना शास्त्रों की परिभाषा में मिलेगा, न ही शस्त्रों के बल में, न पाताल के गहराईयों में, न आकाश के तारों में। प्रेम उस वायु की भांति है जो हमें दिखाई नहीं देती, परन्तु वह हमें जीवन देता है। इस प्रकार प्रेम जीवन की अद्‌भुत शक्ति है तथा उसके बिना जीवन निस्सार है। रामनरेश त्रिपाठी के शब्दों में–

''गंध विहिन फूल है जैसे, चन्द्र चंद्रिका हीन,
यों ही फीका है मनुष्य का, जीवन प्रेम विहीन।।[1]
प्रेम स्वर्ग है स्वर्ग प्रेम है, प्रेम अशंक अशोक,
ईश्वर का प्रतिबिंब प्रेम है, प्रेम हृदय आलोक।।''

प्रेम, ईमानदारी, निश्छलता तथा विश्वास भरा लगाव होता है जिस पर नारी का सम्पूर्ण अस्तित्व टिका होता है। भोगमयी भावना से प्रेम को पृथक करते हुए प्रभा खेतान लिखती हैं–प्रेम के कई रूप हैं और प्रेम की उम्र लंबी होती है जिसकी तुलना में देह की उम्र छोटी होती है। कामना का सुख तो हारमोंस पर आधारित होता है और यह बड़े सीमित समय के लिए मनुष्य को उपलब्ध होता है लेकिन प्रेम तो उसे हर समय उपलब्ध है। यह आपके व्यक्तित्व पर निर्भर है कि आप देह से परे जा सके और प्रेम को अपने जीवन में महसूस कर सके। ''मैक्समूलर के अनुसार प्रेम के अधिक्ता 'स्मर' (कामदेव) का नाम एक धातु 'मर' से बना है इस धातु के मर्द रूप का अर्थ है– पिघलना अथवा खण्ड खण्ड हो जाना और इसी के दूसरे रूप मृण का अर्थ है चमकना, साफ करना, पवित्र करना। यानि मूल अर्थ में प्रेम वह उदात भावना है जो एक पाषाण को भी पिघला कर नरम तरल मानवीयता से भर दे और अहंकार जैसे तत्वों को हटाकर चित्त को साफ, पवित्र कर दे। इसी मूल अर्थ को आधार बनाकर साहित्यकार मृणाल पांडे लिखती है ''हम स्त्रियां इस उदात प्रेम चित्रण का नहीं, स्त्री–पुरूष संबंधों की उस अश्लील प्रस्तुति का विरोध करती है, जहां प्रेम की मानवीय उदारता के बजाय स्त्री का संबंध शर्मनाक और घृणास्पद किस्म के रिश्तों का एक उत्पीड़न भरा मिश्रण बनाकर सामने लाया जाता है। स्त्रियों के लिए ही नहीं, प्रेम की यह विकृति प्रस्तुति सबके लिए अमंगलकारी है।''[2]

इतिहास के काल प्रवाह के साथ–साथ संबंधी अभिरूचियों में बदलाव आया है। नयायुग अपने साथ नया जीवन बोध ही नहीं लाता, जीवन की सर्जनात्मक गतिविधि के नए रूप और प्रतिमान भी लाता है। जीवन और समाज के बुनियादी ढांचे में परिवर्तन के साथ नए विचारों–मूल्यों की अभिव्यक्ति आज साहित्य–लेखनों में होने लगी है। ऐसे में सम सामाजिक–कथाकर, साहित्यकार जीवन समर के नए संदर्भ–संबंधों के बदलाव को वर्णनात्मकता की झाड़ू से बटोर कर प्रस्तुत ही नहीं करता, बल्कि संबंधों को प्रतीकों–बिंबों में सतर्कता से परिभाषित भी करता है। इसलिए मृणाल पांडे के साहित्य में ''खजुराहो के भिति शिल्पों में उन्मुक्त प्रेम का चित्रण समानता के आधार पर दिखाई देता है खजुरोहां के भितिशिल्पों में स्त्री पुरूष के

* शोध छात्रा, वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर

बीच उन्मुक्त प्रेम का अनेक तरह से चित्रण हुआ है। यह चित्रण अश्लील क्यों नहीं ? क्योंकि वह दो ऐसे मनुष्यों के बीच भावनाओं के सहज शारीरिक आदान–प्रदान को दिखाता है, जो मैत्री और बराबरी के स्तर पर अपना अहं, अपना बड़प्पन, सामाजिक व्यक्तित्व सब भुला कर एक उदात कोमल भावना का आदान–प्रदान कर रहे हैं। यही सहज भावना गीत गोविंद या कुमारसंभव या मीरा की प्रेम कविताओं सहित हमारे अमर काव्य में भी व्याप्त है। वहां जो आराध्य या आराध्या हैं, वह सैकड़ों नातों के बावजूद लीला सहचर या सहचरी है। हीन उत्पीड़न दास नहीं है और मूल भावना समर्पण की है छीन–झपट भय की नहीं।''[3]

प्रेम में प्रेमी की दृष्टि ही सुन्दर हो जाती है। वह जिस वस्तु से प्रेम करता है, वह स्वतः सुन्दर प्रतीत होने लगती है। आधुनिक प्रेम सौन्दर्य का अनुगामी है। आज सौन्दर्य देखकर ही प्रेम पनपता है। यह सौन्दर्य समाष्टि के साथ ही नष्ट भी हो जाता है। बदलते परिवेश, आर्थिक, नैतिक सम्बन्धों ने आदिम राग शक्ति, काम और प्रेम को भी दूषित कर दिया है। आज स्त्री भोग्य बनकर रह गयी है। उसके प्रति दैहिक आकर्षण और सम्भोग के अतिरिक्त जैसे अन्य कोई रिश्ता बन पाना कठिन हो गया है।

प्रेम संवेदना पर आधारित विरूद्ध उपन्यास की नायिका रजनी और उदय की पहली मुलाकात न्यूयार्क में होती है और दोनों एक दूसरे को दिल दे बैठते हैं। दोनों के प्रेम का जिक्र रजनी की बड़ी बहन बिल्लो अपने पति नरेश भाई से इस प्रकार करती ''दो–चार दिन बाद बिल्लों ने बड़ी अर्थ पूर्ण कंजी शरारत से उसे देखते हुए कहा था कि उनके एक दोस्त का उन दिनों एक निमंत्रण आया है, उसका एक दोस्त है, बिल्लो ने नरेश भाई की और एक आंख दबा दी थी, 'जो रज्जू पर एकदम जट्टू। 'यानी हुकलाईन सिंकर। ''नरेश भाई ने एक धौल लगाई थी। ''क्यों भाई छुपे रूस्तम्।''[4]

कला मनुष्य की आंतरिक अभिव्यक्ति होती है जिसमें मनुष्य अपने जीवन की अनुभूतियों एवं भावनाओं को ज्ञानवर्धक तरीके से संकेतों एवं चित्रों की सहायता से व्यक्त करता है। उन भावनाओं का प्रभाव दूसरों पर पड़ता है और उनमें अनुभूति होती है। ऐसे ही प्रेम भरी भावनाओं को अभिव्यक्ति कागज पर ब्रश एवं रंग द्वारा देवी उपन्यास की ललिता मौसी करती है जो परंपराओं एवं वर्जनाओं को तोड़ने वाली, रूढ़िवादी परिवार में जन्म लेने वाली, उन्मुक्त स्वभाव वाली, 32 वर्षीय शिक्षिका है। विलायत से लौटे डॉक्टर मौसा के साथ ललिता के प्रेमालाप को चित्रित करती हुई मृणाल पांडे लिखती हैं ''उस दिन जब जंगल में पहुंचकर ललिता ने तस्वीर बनानी शुरू की तो बजाए लता वृक्षों के कुमारसंभव के दृश्य कागज पर उभरने लगे, शिव को पाने के लिए तप करती अपर्णा पार्वती, लास्य मुद्रा में विष्णु और लक्ष्मी, बुरांश की शाखा पर चोचे जोड़े बैठे पडुक–पडुकी। उधर डॉक्टर साहब के मन पर भी ललिता मौसी की छवि छप गई थी। उसका विचित्र वेश बेझिझक निगाह लमटंडम देह, उसके भारी वक्ष और पृथुल नितंब डॉक्टर के भुलाए नहीं भूल रहे थे। ऐसे ही स्त्री तो चाहिए थी उन्हें और फिर हालांकि ललिता मौसी का शादी वादी का इरादा कतई नहीं था। उसने डॉक्टर साहब को हां कर दिया।''[5]

वास्तविक प्रेम पैसे, रूपए, दौलत को लक्ष्य करके नहीं उपजता है। प्रेम हृदय की भावनाओं का एक रागात्मक योग है। यह बिना जगाए ही जग जाता है। जब यह अपने प्रेमी या प्रेमिका के प्रति उफान पर होता है तो वह अपनों को भी दुश्मन बना लेता है। इसी की झलक हमें मृणाल पांडे के उपन्यास 'सहेला रे' के अंजली बाई और ताजुद्दीन के मध्य दिखाई पड़ता है। अंजली के कैरियर के प्रति सचेत मां हीरा बाई जब अपने बेटी और ताजुद्दीन के बीच का

रोड़ा बनती है तो वह अपने मां का दुश्मन बन बैठती है और प्रेमी की याद में सदैव निर्जीव सी पड़ी रहती है। तभी तो हीराबाई अपनी सहेली हुस्नाबाई को पत्र लिखकर अपने बेटी की स्थिति के बारे में बताते हुए कहती हैं–''बड़ी पछताई मैं उस नमक हराम को लेकर। जाते–जाते भी मेरी बेटी का दिल साथ ले गया और उसकी जगह उसके सीने में मानों बर्फ की एक सिल्ली रख गया। अब हाल यह है कि मां और मर्दजात दोनों ही के नाम से अंजलि को गहरी चिढ़ हो गई है। इतनी कि महफिलों में जाने से पेश्तर मुझे बनते संवरते देख दिल पर सौ सौ बान चलाती घायल करती रहती है।''[6]

जब कोई व्यक्ति आपका प्रेम ठुकरा देता या समझ नहीं पाता है तो वह उदास हो जाता है फिर वह उसे बलपूर्वक पाना चाहता है। कुछ बलपूर्वक प्रेम पर अधिकार करना चाहतें हैं किंतु यह आवश्यक नहीं है जिसे वह प्रेम करती है वह भी उससे प्रेम करें। ऐसा ही प्रेम का चित्रण प्रतिशोध कहानी एवं हिमुली हिरा मणि कथा में किया गया है। हिमुली हीरामणि कथा में एक सामान्य दुकानदार का बेटा ''सुनास ने किसी उत्सव में अचानक मुंबा नगरी के परम धनुषाली नगर सेठ की कन्या दंम्भिनी को देखा था। प्रथम दृष्टि में ही उस पर आंसक्त होकर अब वह दिन रात मुंह लटकाए अपने ही कक्ष में बैठा रहता है। न खाता है न पीता है। कहता है यदि विवाह करेगा तो दंम्भिनी से ही।'' इससे सुनास के माता–पिता बहुत चिंतित रहते हैं। सुनास के हठ को पूरा करने के लिए उसके परिवार का शुभ चिंतक हीरामणि शुक एक शब्द युक्त योजना बनाता है। यह योजना देवाज्ञा में बदल कर नगर सेट अम्बष्ठ से कन्यादान करवा देता है। ''कोई कुछ कहता, उससे पूर्व कंदरा के द्वारा से बसको चकित करती हुई एक गंभीर वाणी आई, ''देखो सेठ, मैं मुंबा देवी बोलती हूँ। नगर तथा समुद्र जल की अधिष्ठात्री। अपने वाणिज्य को समुन्नत तथा अपनी कन्या को सुखी देखना चाहते हो तो मेरा आदेश मानते हुए उसे इस सेठ के सुलक्षणी पुत्र सुनाय को शीघ्र विवाह में दे दो।''[7] इस प्रकार में मृणाल पांडे अपने साहित्य में प्रेम की उदात एवं अनुदात दोनों भावों को बड़ी ही संजीदगी से सजाया है। उनके कथा साहित्य में प्रेम के प्रति नारी एवं पुरूष के अलग–अलग दृष्टिकोण देखने को मिलते हैं। एक तरफ नारी जहां अपने प्रेमी को उन्मुक्त वह स्वतंत्र छोड़ने में विश्वास रखती है वही अगर पुरूष किसी नारी पर आसक्त हो जाए तो उसे येन केन प्रकारेण पाने की चेष्टा करता है।

विवाह का तात्पर्य है ''विवाह विशिष्ट वहनम् ''अर्थात विशिष्ट रूप से वहन करना। विवाह शब्द का प्रयोग दो अर्थों में किया जाता है। प्रथम, विवाह संस्कार के रूप में द्वितीय, इस संस्कार से उत्पन्न दापंत्य जीवन के रूप में। व्यापक दृष्टिकोण से विचार करने पर विवाह व्यक्तिगत बन्धन नहीं है। यह एक सामाजिक संस्कार है। केवल एक स्त्री और एक पुरूष के गठबंधन को विवाह नहीं कह सकते क्योंकि उन दोनों व्यक्तियों के साथ उनका समाज, उनका कुल, उनका धर्म जुड़ा रहता है। विवाह का अर्थ है– दो कुलो का, उनके आचार विचार का, उनकी संस्कृतियों का संगम। विवाह स्त्री पुरूष को मर्यादा की सीमा में बांधता है, स्वस्थ समाज का विकास करता है, उनके उच्छृंखल संबंधों पर प्रतिबंध लगाकर वैवाहिक संबंध को नैतिक स्तर का उच्चतम आधार प्रदान करता है। प्राचीन काल से ही सामाजिक जीवन में विवाह का विशिष्ट महत्व रहा है ''स्त्री और पुरूष के बीच यौन संबंध एवं सामाजिक सहानुभूति को बंधनों के मर्यादित और स्थाई रूप देने की प्रथा विवाह के रूप में प्राचीन काल से चली आ रही है। ''अतः विवाह एक महत्वपूर्ण साझेदारी है जिसमें स्त्री और पुरूष अपना संपूर्ण प्रेम प्रवाहित करके एक दूसरे के लिए अनन्य बन जाते हैं।''[8]

रविन्द्रनाथ मुखर्जी के अनुसार ''विवाह एक अति प्राचीन एवं अनिवार्य सार्वभौम संस्था है जो प्रत्येक मानव समूह में चाहे वह प्राचीन हो अथवा अर्वाचीन सभ्य हो या असभ्य, समान अथवा असमान रूप से विद्यमान है।''[9]

मृणाल पांडे अपने साहित्य के मध्यम वर्गीय लड़कियों का त्रासदी पूर्ण दांपत्य जीवन का चित्रण करती हैं। वह दबे स्वर में नहीं बल्कि प्रतिबद्धता के साथ, बुलंद स्वर में, उन निरपराध, नासमझ लड़कियों का पक्ष लेती है जो शादी के बाद मजबूरन ढर्रे पर आ जाती हैं जिनको थोथे आश्वासनों से फुसलाया जाता है। 'दरम्यान' कहानी में लेखिका कहती हैं 'ईधर वह ओवर टाइम में लगता और उधर वह ढर्रे पर ले आयी जाकर बड़ी आसानी से माओं–ननदों, चाचियों वगैरह के कोलाहलमय बीहड में खो जाती। पर वह यह कतई नहीं कर सकता कि शांता की तरह–बीवी और –भरे पूरे व्यक्तित्व वाली एक लड़की को एकदम एक सपाट चपटेपन में तब्दील कर एक आदर्श बहू धाय बना डालें जो उबासियों छोड़ती हुई बारी–बारी से अम्मा जी और उसके सिरहान चवर डुलाती खड़ी रहे।''[10] गृहस्थ जीवन में शांता शर्म व गुलामी की जंजीरों में बंध जाती है। वह दब्बू, एकदम सपाट और आयाम हीन औरत बन जाती है। जिसे देखकर कथा नायक अचंभित होकर सोचता है– 'शायद उसनें अपनी सारी अनुभूतियाँ और चेतना तंतुओं को ऐसा भीतर सिकोड़ लिया है कि आदर–अपमान, दुख–सुख किसी का भी उस पर असर नहीं होता। दिन आते हैं और चले जाते हैं पर उसकी जिंदगी का ढर्रा वहीं रहता है, चाहे हिंदुस्तान में हो या दस हजार मील दूर यहां पर।''[11] मृणाल पांडे ऐसी परिस्थितियों के लिए उत्तरदायी भावहीन एवं कुहासा सदृश्य प्यार पर आधारित उस संबंध का प्रतिकार करने की सलाह देती है जो नारी को पशु तुल्य एवं संदेहास्पद बना देती हैं। जिससे वह मात्र दया के पात्र रह जाती है।

वैवाहिक बंधन में अपने व्यक्तित्व एवं अस्तित्व को समाप्त कर रूढ़ि परंपरा पर चलने वाली 'समुद्र की सतह से दो हजार मीटर ऊपर' कहानी की ओडिसी भारतनाट्यम नृत्यांगना शादी के संबंध में अपने अनुभव के आधार पर कहती हैं कि ''विवाह, शुरू हुई अंत की शुरूआत के बराबर है''[12] इस प्रकार शांता एवं प्रख्यात नृत्यांगना दोनों वैवाहिक बंधन के ढर्रे पर आ जाती है। शांता अपने मुख से उफ तक नहीं करती है जबकि प्रख्यात मृयांगना स्वयं एवं समाज से अपने अस्तित्व की तलाश करते हुए प्रश्न करती है कहां हैं–''कहां–कहां'' मेरा वह मनोरम संसार ? मेरी आवाज मेरे ही भीतर बजती है। मेरी विक्षिप्तता का शून्य मेरा उजाड़।''[13]

'रास्ते पर भटकते हुए' उपन्यास की मंजरी न तो समाज से प्रश्न करती है, न ही झींक–झींक कर जीना चाहती है बल्कि अपने जीवन को जिंदादिली से बिताना चाहती है। इस उपन्यास में लेखिका अपर वर्ग के पुरूष का नश्तर सदृश्य क्रूरताएं व घड़ियालू आँसू का चित्रण किया है जो धन के बल पर बहला फुसलाकर गरीब वर्ग की मंजरी से शादी रचा लेता है। परन्तु इस प्रकार का वैवाहिक सम्बन्ध बहुत कम टिकाऊ होता है क्योंकि उसका आधार प्रेम ना होकर डर व मजबूरी होती है। विवाह के बाद इस बात को मंजरी भली भांति समझ जाती है। वह कहती है–'' बाईस की मैं भले ही तलवार नहीं उठा पायी थी, लेकिन यह अच्छी तरह समझ गयी थी कि हमारे यहाँ एक आम वैवाहिक जिन्दगी के बंधन को जो चीज टिकाऊ बनाती है, वह परस्पर प्रेम, आदर की भावना नहीं, अवसर सिर्फ महमहाते डर की एक गाँठ होती है। अकेलेपन का डर, लोक निन्दा का डर भविष्य में फिर–फिर गलती दोहराने का डर।''[14]

मृणाल पाण्डे ने वर्तमान समय में बाल विवाह के बने रहने एवं उससे जुड़ी समस्याओं को भी उजागर किया। पटरंगपुर ''उपन्यास की आमा व उसकी बेटी सुनैना का विवाह बाल्यावस्था में

ही हो जाता है। मिठाई की शौकिन आमा को जब मायके वाले मिठाई भेजते तो सास ताना मारते हुए उसे छिपा देती। आमा बताती है ''मिठाई लौटाई नहीं कभी भी उनकी सास चंपा बहू ने पिटारे में च्याम्प के धर देने वाली हुई। आमा और उसके देवर चनिका दिन में, उसके सो जाने पर चाबी उड़ा के भगाभक खाने वाले हुए। आहो बच्चे ही तो ठहरे, दोनों दस की ये हुई, आठ के चनिका ठहरे।''[15] रूढ़ परंपराओं में पली, बढ़ी आमा अपने जीवन से सीख नहीं लेती बल्कि अपने बेटी का भी विवाह कम उम्र में ही करवा देती है जबकि उनकी बेटी सुनैना पढ़ने में बहुत तेज थी और वह पढ़ना चाहती थी। इस प्रकार रूढ़ मानसिकता ने सुनैना की पढ़ाई पर अंकुश लगा दिया और उसका शौक धरा का धरा ही रह गया। रिक्ति कहानी में भी सुलभा की मां का विवाह सामाजिक परिस्थितियों के कारण पढ़ाई रोककर छोटी उम्र में ही कर दिया जाता है। इस बात का दुख उसके मन में आजीवन बना रहता है।

हमारे देश में लड़कियां ब्याह नहीं करती बल्कि ब्याही जाती हैं। विवाह भारतीय परिपेक्ष में ही नहीं, विश्व परिपेक्ष में स्त्री की अनिवार्य नियति रहीं है। जीवन में स्थिति बदलने का एक भाग अवसर भी, किंतु इस अवसर के उपभोग का चयन का अधिकार स्त्री के पास नहीं। आजादी के पूर्व ही इस स्थिति में परिवर्तन आने लगा था, स्वतंत्रता के बाद से संविधान द्वारा प्रदत्त विशेष विवाह अधिनियम 1954 के द्वारा विवाह के संबंध में स्त्री को स्वयं निर्णय करने का अधिकार प्राप्त हुआ। इस प्रकार बदलते परिवेश में स्त्री के निर्णय में उसका स्वछंदता वादी दृष्टिकोण दिखाई देता है। स्त्री अपनी दृष्टिकोण, अपनी सोच, अपने परिवेश को महत्व देने लगी है यही कारण है कि वह वैवाहिक जीवन के प्रति कटुता, विषमता में प्रभावित हो रही है। पर्याप्त युवतियां विवाह को आवश्यक नहीं मानती, वह अविवाहित रहकर भी जीवन व्यतीत करने में कटिबद्धता बना दिखाई देती हैं। विवाह का विरोध करते हुए 'हमका दियो परदेश' उपन्यास मौसी अपनी मां से कहती हैं– ''कोई जरूरी नहीं है। हम लोग क्या'' खरगोश हैं ? हमारी हेडमिस्ट्रेस को देखो, उन्हें तो पति या बच्चे की कोई जरूरत नहीं है। मजे में रहती है।''[16]

पटरंगपुर उपन्यास की सावित्री पढ़ी लिखी–विद्वान महिला है जो विवाह न करने नौकरी करती है। एक तरफ गांव वाले उस पर गर्व करते हैं तो दूसरी तरफ उसके भाग्य को कोसने से नहीं चूकते। किंतु विवाह न करना उसका सबसे बड़ा दुर्भाग्य है। उसके संबंध में गांव वाले कहते हैं '' अहा सावित्री की मांग में सिंदूर पड़ जाता तो अच्छा'' होता, पर अब जो क्या करेगी शादी ब्याह ? भाग ठहरा, और क्या ? लेडीज टेलर कहानी की सुमनलता अपने सात बहनों में सबसे छोटी है, उसे अपने पिता की देखभाल व घर की जिम्मेदारी को निभाने के लिए मजबूरन अविवाहित रहना पड़ता है। उसके संबंध में लोग बात करते हुए कहते हैं–''उसके बाप को फिलीज हो गया–मां पहले से ही सुरपुर चली गई थी, बहने ससुराल वाली हुई। सो मास्टरनी बिचारी स्कूल से पहले भी बूढ़े की तीमारदारी करती वापस आकर भी। छुट्टी के दिन भी उसकी छुट्टी नहीं। न पिकनिक, न सिनेमा। गुम्म सी हो गई थी वह।.....एक दिन खबर हुई कि एक अधेड़ मेडिकल रिप्रेजेंटेटिव अक्सर मास्टरनी जी के घर देर गए बैठने लगा था इधर मुंह मारने से बाज जो क्या आने.....वाली हुई ?''[17]

मीटिंग कहानी की नायिका पढ़ लिखकर नौकरी करने की इच्छा के कारण समय रहते विवाह नहीं कर पाती। सगे संबंधी उसकी ओर उंगली उठाने लगते हैं। मजबूरन वह घर से दूर रहकर नौकरी करती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि अविवाहित स्त्रियों के प्रति सम्मान अनुदार होता है उन पर अनेक प्रकार के बंधन लगाए जाते हैं और वे सुख सुविधाएं प्राप्त नहीं

होते जो विवाहित स्त्रियों को होती है। परिणाम स्वरूप अपनी स्वाभाविक इच्छाओं को दबाने के कारण उनके जीवन में रिक्कता व शून्यता प्राप्त हो जाती है। स्वतंत्र विचार वाली स्त्रियों को अनेक लांछनायें सहनी पड़ती है और उनके चरित्र पर अनेक आरोप लगाए जाते हैं।

मृणाल पांडे अपने साहित्य में अधिकांशतः अपने देश के शिक्षित वर्ग को ही प्रेम विवाह में चित्रित किया है। उनका संबंध न केवल अपने देश के विपरीत जाति व धर्म बल्कि अंतर्राष्ट्रग्रीय स्तर के जन समुदाय के बीच में बना है। मृणाल ने प्रेम विवाह से जुड़ी उन सभी समस्याओं को उठाया है जो समाज में व्याप्त जड़ता, प्रगतिहीनता एवं अमानवीयता से उपजती है और अपने परिवार के लिए कष्ट का कारण बनती है। आज स्त्रियां परंपरागत मार्ग को त्याग कर आधुनिकता को अपना रही हैं अतः उनका सक्रिय होना स्वाभाविक है।

'दोपहर की मौत' कहानी में भारतीय संस्कृति में पला बढ़ा राघव नौकरी के लिए विदेश जाता है। वहां एक विलायती लड़की जेनी के संपर्क में आकर उससे विवाह करने का फैसला करता है। अपना फैसला पत्र के माध्यम से अपने माता–पिता को बताता है। माता–पिता द्वारा इंकार करने पर भी वह उसी विलायती लड़की से शादी कर लेता है। परंतु वह अपने माता पिता का ख्याल करता रहता है। दुर्भाग्यवश कार दुर्घटना में उसकी मौत हो जाती है। यहाँ माता–पिता उसके द्वारा किए गए कार्यों और लाए गए सामान को देखकर बेहाल हो जाते हैं। विलायती बहू होने के कारण उसका यहां आना संभव नहीं था। यह दुख को और बढ़ा देता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि दूर जाकर प्रेम विवाह करके जीवन चलाने के दौरान यदि कोई दुर्घटना हो जाती है तो उसके संबंधित माता–पिता का जीवन नरक हो जाता है।

'दुर्घटना' कहानी में भारतीय शिक्षित युवक अपनी सांस्कृतिक एवं आर्थिक अभिरूचियों से मिलती जुलती युवती से प्रेम विवाह कर लेता है। इधर अपने खून पसीने से सींचकर विलायती शिक्षा पूरी कराने वाले पिता कहते हैं – ''सप्तपदी करा लेते, बाकी चाहे न भी करते, कायदा होता है। 'कगार' कहानी में विष्णु एक विलायती युवती मिली से प्रेम विवाह कर लेता है। अपने प्रेम को प्रसन्न रखने के लिए वह हिंन्दुस्तान वापस आकर बसने का इरादा छोड़ देता है। उसके दो बेटे भी पैदा होते हैं। अपनी अपनी संस्कृति एवं बच्चों के प्रति संस्कार को लेकर आपस में मनमुटाव होता है और अंत में दोनों अलग–अलग रहने का फैसला करते हैं। आतताई' कहानी में नरेश एक विदेशी युवती से प्रेम विवाह करता है नरेश की मां को अंतर जाति'' विवाह बंधन पर विश्वास न रहने से सोचती है कि यह विवाह ज्यादा दिन न टिकेगा।

पितृदाय कहानी में सुमति डॉक्टर बनकर अमेरिका में नौकरी करती है। वह बचपन से ही जहीन, सुंदर, मुंहफट व दबंग है। वह जैफरी के साथ प्रेम विवाह करती है। संबंधों में दरार आने पर वह अपने पति से तलाक बड़ी मुश्किल से ले पाती है। अपने पिता की स्वास्थ्य खराब होने की सूचना पाकर वह अपने भाई को पत्र लिखती है। उस पत्र में पिता के लिए तड़प उठने या कलपने का भाव बिल्कुल नहीं था बल्कि अपने नीग्रोपति जैफरी से छुटकारा पाने की तड़प जरूर था। रूबी और कौवे कहानी में भी विभिन्न संस्कृति सामाजिक परिवेश एवं परम्परा वाले परिवारों में शादी के परिणाम स्वरूप उत्पन्न होने वाले पारिवारिक सामाजिक टकराहटों का चित्रण किया गया है।

''पटरंगपुर पुराण' उपन्यास में भी प्रेम विवाह का चित्रण किया गया है। जिसमें एक विदेशी युवती को धर्मांतरण कराकर शुद्धिकरण किया जाता है और सामाजिक लोक लाज पर, पर्दा डालने का प्रयास किया गया था। राजीव इंजीनियरिंग की पढ़ाई करने विदेश गया। वहाँ से

वह मीम व्याह के लाया। उसके माँ बाप ने आर्य समाज में हिन्दू बनाकर इसका नाम सरिता रख दिया परन्तु तीन–चार साल में लड़ाई झगड़ा करके मीम वापस अपने मुल्क लौट गयी।

मृणाल पांडे के साहित्य में चित्रित प्रेम विवाह अधिकांशतः असफल ही नजर आते हैं। प्रेम विवाह पाश्चात्य संस्कृति की देन है। पाश्चात्य संस्कृति में पहले प्रेम किया जाता है बाद में विवाह करके सांसारिक प्रेम स्थापित किया जाता है। भारतीय संस्कृति में विवाह पूर्व प्रेम को अपराध समझा जाता है। घर के बुजुर्ग प्रेम विवाह का प्रायः विरोध करते हैं। उन्हें लगता है कि समाज में प्रतिष्ठा धूमिल होगी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विवाह संस्था में अनेक धार्मिक एवं रूढ़ परंपरा व्याप्त है। इसका अधिकांश भाग नारी पर ही लागू होता है, मानो वह रूढ़ तत्व है। उसके मन में समाज के प्रति असंतोष है। शोषक के प्रति उनकी अभिव्यक्ति मुखर हो रही है। आज के परिवर्तित होते समाज में नारी वैवाहिक जीवन से उत्पन्न होने वाली घटनाओं को सहन करने के लिए तैयार नहीं है। वह शिक्षित हो रही है इसलिए वह पारंपरिक मूल्यों के अनुसार अपना जीवन व्यतीत नहीं करना चाहती है। वह अपने जीवन में जय–पराजय–, राग–विराग, आशा–आकांक्षा, वेदना–संवेदना, पीड़ा–प्रताड़ना को महसूस करती है। इन सब को भोगते हुए उनमें जीवन संघर्षों से जूझने की जिजीविषा व जीवटता है। मृणाल पांडे अपने साहित्य में दो सभ्यताओं एवं संस्कृतियों से जूझते हुए न केवल प्रवासी भारतीय बल्कि विदेशी चरित्रों के जीवन में आए उतार–चढ़ाव, अकेलापन, घुटन, निरीहता एवं विखंडन को दर्शाया है। उनका नारीवादी दृष्टिकोण देश से परदेश तक फैला है।

प्रेम–त्रिकोण

समाज में प्रेम त्रिकोण एक हलचल है जो पति–पत्नी या प्रेमी–प्रेमिका के बीच किसी तीसरे के प्रवेश करने से उत्पन्न होता है। यह प्रणयी युगलों में से एक या दोनों के उच्छृंखल स्वभाव या आपस में एक दूसरे के प्रति घृणा या उपेक्षा की भावना से पनपता है। प्रेम त्रिकोण को न केवल भारतीय बल्कि पाश्चात्य संस्कृति भी आत्मसात नहीं करती जब कि पाश्चात्य संस्कृति में स्वच्छंद खान–पान, उठने–बैठने, नाचने–गाने की परंपरा है। प्रेम त्रिकोण में असफल व्यक्ति प्रायः दिग्भ्रमित हो जाता है। वह या तो युद्ध में पराजित सैनिकों की भांति चुपचाप अपना हथियार डाल देने में अपनी भलाई समझता है या प्रतिशोध की भावना से अपने प्रतिद्वंदी की हत्या कर देता है या स्वयं आत्महत्या कर लेता है या संबंध विच्छेद कर लेता है। चूकि प्रेम हृदय की अनुभूति होती है। अतः प्रेम त्रिकोण असफल व्यक्ति के लिए हृदय विदारक घटना है जो घर के अंदर से लेकर बाहर समाज में होता रहता है और वह दीन हीन स्थिति में बेसहारा लाचार होकर अकेले जीवन यापन करने के लिए मजबूर हो जाता है। इस प्रकार एक स्त्री का दो प्रेमियों के बीच या एक पुरूष का दो प्रेमिकाओं के बीच उलझना प्रेम त्रिकोण कहलाता है जो पति–पत्नी के बीच न केवल दरार पैदा करता है बल्कि उनके जीवन में अशांति, असंतोष, नफरत, तलाक का कारण बन जाता है।

मृणाल पांडे के साहित्य में प्रेम त्रिकोण बहुत ही देखने को मिलता है। उनके उपन्यास अपनी गवाही पटरंगपुर पुराण एवं सहेला रे में प्रेम त्रिकोण थोड़ी से अंशों में दृष्टिगोचर होता है। 'अपनी गवाही' उपन्यास में प्रेम त्रिकोण जे पी, कृष्णन एवं मेहर के मध्य चित्रित किया गया है। जेपी स्थिर स्वभाव वाला इमानदार हिंदी पत्रकार था जबकि कृष्णन धूर्त, चापलूस सत्ता की पकड़ में बाधा डालने वाले को मटियामेट करने वाला अंग्रेजी पत्रकार था। मेहर भी पत्रकारिता के क्षेत्र

में काम करने आती है। दोनों मेंहर के प्रेम को पाने के अभिलाषी हैं। दोनों अपने स्वभाव के अनुसार उसे पाने का प्रयास करते हैं। इसके संबंध में मृणाल पांडे लिखती हैं–''मेहर एक सुंदर पारसी लड़की थी, तेज तर्रार और ऊँचे दिमाग वाली। वह हिंदी में एक भी शब्द नहीं बोल सकती थी लेकिन उसे मालूम था कि मर्दों को कैसे रिझाया जाता है। कंपनी के सारे मर्द उसके पीछे–पीछे पील्लों की तरह खींचे चलते भी थे। जे पी और कृष्णन दोनों ने इस सुंदर महिला के प्रति जगी अपनी आदिम भावनाओं को कुछ समय के लिए तो दबाए रखा लेकिन जल्दी ही उसे लेकर वे दोनों एक–दूसरे की जान के दुश्मन बन गए। कुछ अंग्रेजी एडिटर विलेन के कहने पर हिंदी पत्रिकाओं में रंगीन पन्ने घटते जा रहे थे, विज्ञापन, राजस्व कम होता जा रहा था, और उधर हिंदी वाला हीरो असली बदला लेते हुए हिरोइन को लेकर सिसिल्स जा पहुंचा था। परंतु जे पी को नौकरी से निकाल दिया गया था, पर उसने इस हीरोइन से सिविल मैरिज कर ली। षड़यंत्रकारी विलेन का मुंह तो लटका ही, वह बूढ़ा, परजित और बुद्धू भी बना दिखने लगा।''[18] इस प्रकार हम देखते हैं कि दुराचारी रावण की तरह कृष्णन प्रेम को जीत नहीं पाया क्योंकि प्रेम वह नहीं जो जबरदस्ती इजहार किया जाए, प्रेम तो वह है जो महसूस किया जाए, प्रेम वह नहीं जो पाया जाए, प्रेम तो वह है जो जिया जाए।

पटरंगपुर पुराण उपन्यास में रामदज्जी परदेश में किसी नीच जाति की औरत के प्रेम में उलझ कर अपनी बेटी सहित पत्नी का त्याग कर देते हैं जिससे उनकी पत्नी पर दुखों का पहाड़ टूट पड़ता है। इस संबंध में आमा कहती है–''खस जाति की औरत की माया विद्या सनसनाता हुआ अग्निबाण की तरह रामदाज्जी के मर्म स्थल पर वैसे ही लगा जैसे लंका में लक्ष्मण को शक्ति, और वह ऐसे तिल मिलाकर उठ खड़े हुए जैसे उनका मरम विधं गया हो। बस, जो जाइ चला होगा इस औरत का उन पर कि उसी घड़ी से वह और वह खस्याणी, वह खस्याणी और वह । कहां का घर–धाम, कहां की पुरोहिती ? गरीब लक्ष्मी की इजा के लिए न ससुराल जाने जैसा, न घर रहने जैसा।''[19] इस प्रकार की घटनाएं समाज में होती रहती हैं जिसके कारण समाज में नारी की स्थिति दयनीय हो जाती है और शेष जीवन अधर में पड़ जाता है। वह इसे या तो अपनी नियति मानकर जीवन व्यतीत करती है या दूसरे जीवन पथ की तलाश करती है।

'सहेला रे' उपन्यास में धराला गांव को दो–दो सुंदरी वादी गायिकाओं गुलाब और हीरा और जंगलात के हाकिम एडी हीवेट के त्रिकोणीय प्रेम की कथा का चित्रण किया गया है। अपने पति से परित्यक्ता गुलाब अपने भतीजी सहित हिवेट को भा गई। हिवेट अपनी ताकत का इश्तेमाल करते हुए पहले गुलाब से शादी किया परंतु गुलाब हिवेट के घर जाने के साल भर के भीतर ही प्रसूत बिगड़ने से चल बसी। हिवेट साहब के मन–दर्पण में उसकी सुंदर कम उम्र का भतीजी हिरा भी बसी थी। उससे शादी करने का इरादा उसके लालची बाप नत्थू से कहवाया। उससे शादी के संबंध में मृणाल पांडे लिखती हैं–''नत्थू की शर्तों को पूरा करने के बाद ''हिवेट ने रानीखेत के गिरजाघर से पहले हिरूली का धर्मांतरण करवाया और पादरी ने जब हीरा को विक्टोरिया मशीह नाम दे दिया तब वहीं गिरजाघर में हिवेट साहिब ने उससे बकायदा शादी कर ली''[20] मृणाल पांडे के विवरणों से स्पष्ट होता है कि हीरा और उसके परिवार का साथ अंग्रेज हिवेट ने तो दिया पर हीरा के भाई ने धन के लालच में अपने कुटिल चालों में फंसाकर हिवेट को मार डाला और वसीयत के कागजात लेकर कोलकाता भागा। साहिब की दस्तखतवाली की नकली–असली चिट्ठी के आधार पर सरकार हिवेट का सारा धन गुलाब के बेटे नथानियल को देना मंजूर किया और वारिस बनाया मामा को। हीरा की दुहाई पर जाति पंचायत भी बैठी–''पंचो से बाप ने कहा वह बुढ़ापे में विधर्मी मां–बेटी की और उनकी अंग्रेजी पढ़ाई–लिखाई का खर्चा

जिम्मेदारी नहीं उठा सकता। मकान अब उसकी बहन के लड़के का हुआ जो फिरंगी बाप की नहीं किसी बादी की औलाद है और उसको पेट में लेकर ही गुलाब मायके लौटी थी।''[21]

उत्तराखंड के सामाजिक–सांस्कृतिक जानकारियों के अनुसार यह त्रिकोणीय प्रेम कथा आज भी गीत के रूप में लोगों के भीतर मौजूद है। जातीयता एवं एवं लालच की भावना ने हीरा के पीठ में छुरा अपनों ने ही भोक दिया। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रेम त्रिकोण में फँसा हिवेट का असली वारिस बेघर–बेसहारा हो जाती है। उसका सुखद एवं चमकता जीवन संघर्ष पूर्ण हो जाता है। बेटी के भविष्य एवं जीवन की रक्षा के लिए उसे पहाड़ त्याग कर तवायफ का जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य होना पड़ा और प्रेम त्रिकोण समाज में विविध प्रकार की समस्याओं को जन्म देती है।

'शरण की ओर' कहानी में भी उमी, विजया एवं पालित के मध्य प्रेम त्रिकोण की झलक मिलती है। उमि से परित्यक्त होने के बाद पालित, विजया की तरफ आकर्षित होता है ''हूँ'' विजया ने डाली की ओर निगाह फेरी। डाली ने करवट नहीं बदली। झिझकते स्वर–में ''देख, विजू डोंट गेट अटैच्ड....पालित हमेशा अंततः उमी के पास ही जाएगा। वह तो तुम्हारे माध्यम से उमी से बदला लेना चाहता है। बस, विलीभ मी.....इससे अंत में तुमको ही चोट लगेगी।''[22]

'आओ गुड़िया से खेलें: ''एक हारर शो में प्रेम त्रिकोण में उलझे आरिफ, तौफीक विशेषता गुड़िया की त्रिकोणात्मक त्रासदी पूर्ण जीवन चित्रित किया गया है। दोनों के बीच फंसी गुड़िया जब पेट से हो जाती है तो उसका जीवन अत्यंत खराब हो जाता है। ''अधिक से अधिक दर्शकों को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए प्रतिस्पर्धी चैनल जी से एनडीटीवी तथा आज तक ने इस प्रेम त्रिकोण समस्या को उनके घरों के भीतर से उठाकर उनकी तमाम अनकही बेदना और घुटन समेत राष्ट्रव्यापी सूचना राजपथ के चौरास्ते पर ले आए। इससे तीनों लोगों की निजता, उनकी अंतर्मन की नाजुक मानवीय भावनाओं की एक तरफ अपूरणीय क्षति हुई तो दूसरी तरफ चौथे का भी, जिसे अभी इस दुनिया में आना है, जीवन पर पेचींदा हो गया।''[23]

इस प्रकार हम देखते हैं प्रेम त्रिकोण एक षड़यंत्र है जिसमें एक आलंबन पक्ष तथा दो आश्रय पक्ष होते हैं। इसमें उलझ कर व्यक्ति का जीवन तबाह और बर्बाद हो जाता है।

संदर्भ :

1. डा0 नगेन्द्र हरदयाल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0सं0–479
2. पाण्डे मृणाल, स्त्री देह की राजनीति से देश की राजनीति तक पृ0सं0–28
3. वही पृ0सं0–28
4. पाण्डे मृणाल, विरूद्ध उपन्यास पृ0सं0–87
5. पाण्डे मृणाल, देवी उपन्यास पृ0सं0–103
6. पाण्डे मृणाल, सहेला रे उपन्यास पृ0सं0–97
7. पाण्डे मृणाल, हिमुली हिरामणी की कथा पृ0सं0–50
8. दूबे कपिलदेव, भारतेन्दु के गद्य साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन पृ0सं0–72
9. मुखर्जी रविन्द्रनाथ भारतीय सामाजिक संस्थायें पृ0सं0–358
10. पाण्डे मृणाल, यानी कि एक बात थी पृ0सं0–118

11. वही पृ0सं0–115
12. पाण्डे मृणाल, यानी कि एक बात थी पृ0सं0–161
13. वही पृ0सं0–164
14. पाण्डे मृणाल, रास्ते पर भटकते हुए उपन्यास पृ0सं0–32
15. पाण्डे मृणाल, पटरंगपुर पुराण उपन्यास पृ0सं0–41
16. पाण्डे मृणाल, हमका दियो परदेश उपन्यास पृ0सं0–94
17. पाण्डे मृणाल, बचुली चौकीदारिन की कढ़ी पृ0सं0–194
18. पाण्डे मृणाल, अपनी गवाही उपन्यास पृ0सं0–80
19. पाण्डे मृणाल, पटरंगपुर पुराण उपन्यास पृ0सं0–14
20. पाण्डे मृणाल, सहेला रे उपन्यास पृ0सं0–74
21. वही पृ0सं0–74
22. पाण्डे मृणाल, यानी की एक बात थी पृ0सं0–55
23. पाण्डे मृणाल, जहाँ औरते गढ़ी जाती हैं पृ0सं0–130

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

शिक्षण अभिरुचि एवं शिक्षा के क्षेत्र में ICT के उभरते आयाम

डा0 सतीश चन्द्र तिवारी*

शिक्षा के प्रसार के लिए शैक्षिक तकनीकी की आवश्यकता एवं प्रबन्ध आज के परिवर्तित युग की आवश्यक तथा अनिवार्य मांग है। उदीयमान भारतीय समाज की आवश्यकताओं ने आज के बदलते परिप्रेक्ष्य में शिक्षा की आवश्यकता बलवती बना दिया है। विभिन्न क्षेत्रों में प्रगति के फलास्वरूप तथा विश्व में आयी औद्योगिक क्रान्ति एवं वैज्ञानिक तथा तकनीकी उन्नति के कारण शिक्षाशास्त्री शिक्षा के क्षेत्र में तकनीकी के प्रभाव से अलग नहीं रख सके। परिणामस्वरूप 1950 के पश्चात् शैक्षिक तकनीकी विषय का क्रमबद्ध विकास होता चला गया, जिसका विशाल वृक्ष आज पल्लवित तथा पुष्पित दृष्टिगोचर हो रहा है। वैज्ञानिक शोधों तथा प्रयोगों एवं अन्वेषणों पर आधारित उपकरणों की सहायता से शिक्षा के क्षेत्र में व्यवहार तकनीकी, शिक्षण तकनीकी तथा शैक्षिक तकनीकी के क्षेत्र में अनेक शिक्षण सिद्धान्तों, प्रतिमानों तथा डिजाइनों एवं शैक्षिक नियोजन और प्रबन्धन की अनेक तकनीकियों का प्रतिपादन एवं प्रयोग होने लगा है। इस प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में मानवीय ज्ञान के साथ–साथ यांत्रिकता का गुण भी समावेशित होने लगा है।

दूरस्थ शिक्षा प्रणाली के क्षेत्र में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के प्रयोग का क्षितिज अत्यन्त विशाल तथा व्यापक है। आधुनिक सूचना व संचार प्रौद्योगिकी ने ही दूरस्थ शिक्षा प्रणाली को प्रभावी तथा सम्भाव्य बनाकर न केवल रोजगार जगत वरन् समाज में दूरस्थ शिक्षा प्रणाली को एक महत्वपूर्ण तथा सम्मानजनक स्थान प्रदान किया है। सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के अभाव में दूरस्थ शिक्षा प्रणाली को परम्परागत शिक्षा प्रणाली के एक प्रभावी विकल्प के रूप में स्थापित करना कदापि सम्भव नहीं हो सकता था। निःसन्देह दूरस्थ शिक्षा एवं मुक्त अधिगम प्रणाली में सूचना व संचार प्रौद्योगिकी की भूमिका असंदिग्ध रूप से अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं सार्थक है। वस्तुतः आज के युग में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के प्रयोग के बिना न केवल दूरस्थ शिक्षा वरन् परम्परागत शिक्षा के किसी कार्यक्रम की संकल्पना करना सम्भव नहीं है।

दूरस्थ शिक्षा के लिए शैक्षिक टेलीकॉन्फ्रेसिंग को एक सशक्त माध्यम के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है। टेलीकॉन्फ्रेसिंग मुख्य रूप से तीन प्रकार के होते हैः– 1. दृश्य टेलीकॉन्फ्रेसिंग 2. श्रव्य टेलीकॉन्फ्रेसिंग 3. कम्प्यूटर टेलीकॉन्फ्रेसिंग। कम्प्यूटर टेलीकॉन्फ्रेसिंग तकनीकी दूरस्थ शिक्षा हेतु उत्तम कोटि की तकनीकी मानी जाती है।

शिक्षा के क्षेत्र में सूचना संचार तथा प्रौद्योगिकी के नये आयामों ने अधिकाधिक छात्रों को लाभान्वित किया है।

कक्षा शिक्षण में जितनी भी श्रव्य सामग्री प्रयुक्त की जाती है उनमें सर्वप्रथम स्थान टेप रिकार्डर को दिया जाता है। वक्तव्यों, भाषणों, कविताओं, गीतों, अभिनयों, एकांकी नाटकों के जहां पर ग्रामोफोन स्थायी रिकार्ड है। इच्छित समय के भीतर इच्छित रिकार्ड भरना टेप–रिकार्डर में

* असि0 प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, भवन्स मेहता महाविद्यालय, भरवारी, कौशाम्बी–212201

सुगमता से किया जा सकता है। टेप रिकार्डर अध्यापक शिक्षा में छात्र–शिक्षकों हेतु प्रभावी पृष्ण–पोषण (Feedback) का आधार है।

जन सम्पर्क के माध्यमों में दूरदर्शन का स्थान अत्यधिक महत्वपूर्ण है। दूरदर्शन ने शिक्षा जगत को आकर्षक एवं दृढ़ आधार प्रदान किया है। शिक्षण संस्थाओं की बढ़ती संख्या, बढ़ता हुआ छात्रों का नामांकन, योग्य और प्रशिक्षित अध्यापकों का अभाव तथा निरन्तर बढ़ते हुए व्यय ने शिक्षाविदों को दूरदर्शन का प्रयोग शिक्षा जगत् में करने के लिए बाध्य कर दिया। इसका प्रयोग शिक्षा के सहायक अथवा गुणात्मक विकास के लिए ही किया जाता वरन् यह अध्यापक को अवसरानुकूल अध्यापन कार्य में भी सहायता प्रदान करता है तथा उन सभी स्त्री–पुरुषों को, जो कि अपने दायित्वों के निर्वाह के कारण पूर्वकालिक शिक्षा ग्रहण करने में असमर्थ रहते है, शिक्षा के अवसर प्रदान करता है। दूरदर्शन ही एक ऐसा शक्तिशाली साधन है, जिसका उपयोग शिक्षा को सुरूचिपूर्ण एवं प्रभावपूर्ण बनाने के लिए किया जा सकता है।

रेडियों शैक्षिक तकनीकी के अन्तर्गत एक प्रभावशाली श्रव्य साधन माना जाता है। रेडियों पर शैक्षिक पाठों के प्रसारण से दूर–दराज के छात्रों को अत्यधिक लाभ पहुँचाता है। आकाशवाणी पर प्रसारित होने वाले पाठों की सूची बहुत पहले से ही प्रसारित कर दी जाती है। इसमें कुशल अध्यापकों के शिक्षण पाठ, भाषण एवं अन्य ज्ञान वृद्धि सम्बन्धित कहानियाँ/नाटक आदि होते है। भारत में उपग्रह टेक्नोलॉजी से सम्बन्धित पहला प्रयोग या सेटेलाइट इंस्ट्रक्शनल टेलीविजन एक्सपेरिमेंट (साइट) जो 1975–76 में किया गया। सामाजिक शिक्षा के लिए इस तरह की आधुनिक प्रौद्योगिकी को उपयोग करने का विश्व में यह पहला प्रयास था। साइट कार्यक्रम का प्रमुख उद्देश्य शिक्षण प्रक्रिया को रूचिपूर्ण, सृजनात्मक, उद्देश्यपूर्ण तथा प्रेरणात्मक बनाकर बालकों में औपचारिक शिक्षा के प्रति धनात्मक दृष्टिकोण का विकास करना था। कार्यक्रमों की विषय–वस्तु उन साधनों, तथ्यों तथा विषय वस्तु पर आधारित थी, जो छात्रों को उन क्षेत्रों में प्रेषण के लिए अनुलब्ध थी। साइट अन्तवैषयिक उपागम की एक अद्भूत परियोजना थी, जिसका उद्देश्य प्रथम बार देश में राष्ट्रीय विकास तथा शिक्षा के क्षेत्र में दूरदर्शन का प्रयोग था। इसके निम्नलिखित कारण थे–1. उपग्रह के माध्यम से ग्रामीण विकास के लिए शिक्षण हेतु दूरदर्शन से प्रयोग में अनुभव प्राप्त करना 2. विकासशील देशों में उपग्रह तकनीकी प्रसारण क्षमता का अध्ययन 3. ग्रामीण विकास में उपग्रह दूरदर्शन की क्षमता का प्रदर्शन।

भारत में कम्प्यूटर का प्रवेश 1950 में इकाई संसाधन मशीनों तथा डेस्कटाप कम्प्यूटर्स के रूप में हुआ। राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 में कम्प्यूटर के कक्षा शिक्षण में प्रयोग पर प्रकाश डाला गया। कम्प्यूटर द्वारा शिक्षा दिये जाने के लिए जो कार्यक्रम बनाये जाते है उन्हें 'सॉफ्टवेयर' कहते हैं। कई प्रौद्योगिकी संस्थाओं में छात्रों तथा अध्यापकों ने मिलकर स्कूल के बालकों को गणित, भौतिकी तथा भाषा साहित्य सिखाने के लिए अनेक कार्यक्रम तैयार करते।

शिक्षा के स्तर सुधारने हेतु सूचना प्रौद्योगिकी यंत्रों का शिक्षण संस्थाओं में उपयोग छात्रों के सर्वांगीण विकास के लिए संगणक सम्पर्क जाल/नेटवर्क बहुत ही आवश्यक है। संगणक आधारित शिक्षा इंटरनेट के माध्यम से प्रत्येक क्षेत्र में सुविधाएं प्रदान कर रही है। कक्षा के आवश्यक तत्वों के अनुकूल ही अभिरुचि कक्षा संगणक के माध्यम से उपलब्ध करायी जा रही है। इण्टरनेट द्वारा शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार के साथ–साथ कक्षाओं के लिए श्रेष्ठ तथा अत्याधुनिक शैक्षिक सामग्री की उपलब्धता भी सुनिश्चित हो रही है। यदि कोई छात्र शिक्षा का लाभ उठाना चाहता है तो साइबर कैफे में जाकर इण्टरनेट खोलकर ज्ञान की विविधता प्राप्त

करता है और साथ ही साथ भविष्य के बौद्धिक समाज के निर्माण की आधारशिला भी रखता है। सूचना प्रौद्योगिकी द्वारा 21वीं सदी में बौद्धिक, गत्यात्मक, युगान्तकारी परिवर्तन हो रहे है। नेट हर विषय पर ज्ञान का विशाल भण्डार है। इससे नवीनतम ज्ञान प्राप्त कर सकता है। अधिगम (Learning) के मार्ग में आने वाले समय एवं स्थान और सामाजिक आर्थिक बाधाओं को नेट समाप्त कर देता है।

जब हम इंटरनेट पर कार्य कर रहे होते हैं तो हम उन असंख्य व्यक्तियों के समूह का एक भाग होते है जो अपनी सूचनाओं एवं विचारों के सम्प्रेषण के लिए सम्बन्धित कम्प्यूटर का प्रयोग करते हैं। शिक्षा सम्बन्धी विभिन्न शैक्षिक संस्थाओं से जुड़े राष्ट्रीय श्रृंखला इंटरनेट के द्वारा विकसित हो रही है। संगणक एवं इंटरनेट शैक्षिक समाज को सूचना शिक्षा में बदल रहे हैं। इंटरनेट द्वारा निम्न सुविधाएं प्राप्त की जा रही हैः– ई–मेल, ई–कॉमर्स, पेंजिग एवं सेल्युलर, मोबाइल फोन, सेटेलाइट फोन, फैक्स, वर्ल्ड वाइड बेव, यूजनेट, टेलनेट, ई–फैक्स, टेलीटेक्स्ट, मल्टी–मीडिया।

सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हुए क्रांतिकारी परिवर्तनों ने अब शिक्षा को पाठशालाओं और विश्वविद्यालय के दायरे से निकलकर कम्प्यूटर और उसके बटन पर लाकर समेट दिया है। शिक्षा की इस पद्धति को ऑन लाइन एजूकेशन अथवा साइबर शिक्षा कहा जाता है। ऑन लाइन एजूकेशन को आमतौर पर तीन चरणों में बांटा जा सकता है। एक तो कम्प्यूटर पर डिस्क लगाकर शिक्षा प्राप्त करना, दूसरा कम्प्यूटर द्वारा विश्वविद्यालय अथवा शैक्षिक कार्यक्रम चलाने वाले संस्थानों से जुड़ाव बनाकर शिक्षा प्राप्त करना, तीसरा इच्छानुसार विषय से सम्बन्धित शिक्षक से कम्प्यूटर द्वारा सम्पर्क स्थापित कर तथा वार्तालाप कर शिक्षा प्राप्त करना। विश्व स्तर पर होमवर्क हेल्प डॉटकॉम गेट एजूकेटेड डॉटकाम, एम0एच0 ऑन लाइन लर्निंग डॉटकॉम तथा टेक्स्वट प्रेय हेल्प 'डॉटकॉम इत्यादि कई बेवसाइटों पर शिक्षा देने का काम हो रहा है। भारत में इस माध्यम से शिक्षा तथा प्रशिक्षण देने का काम करने वाली संस्थाओं की वेबसाइटों में प्रमुख है एस0टी0वाई0एल0यू0आई0, एन0सी0 डॉटकॉम, स्कूलनेट इंडिया डॉटकॉम, कैरियर लॉचर डॉटकॉम, आई0आई0टी0 बंगलौर तथा एन0आई0आई0टी0 बंगलौर द्वारा ऑन लाइन एजूकेशन की व्यवस्था की शुरूआत की गयी है।

इस प्रकार शिक्षण अभिरूचि एवं शिक्षा के क्षेत्र में सूचना एवं सम्प्रेक्षण (संचार) प्रौद्योगिकी की महती भूमिका स्पष्ट होती है।

संदर्भ :

1. विज्ञान, शिक्षण की आधुनिक विधियां–प्रो0 टी0 वात्स्यायन
2. कम्प्यूटर साक्षरता एवं शैक्षिक अनुप्रयोग–डॉ0ए0के0 दूबे
3. शैक्षिक तकनीकी की आवश्यकताएं और प्रबन्ध–डा0 टी0पी0 नन

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

पंच परमेश्वर: मूल्य और नैतिकता का आख्यान

मनीष कुमार शर्मा*

प्रेमचंद भारतीय साहित्य जगत में ऐसे कथाकार के रूप में जाने जाते हैं जो न्याय , मूल्य, नैतिकता और अनुशासन में दृढ़ विश्वास रखता है। उनकी कहानियों से लेकर उनके उपन्यासों तक में यह स्वर समान रूप से गुंजित होता दिखाई देता है। प्रायः उनकी अधिकांश कहानियों में नैतिकता और आदर्श का यह प्रतिदर्श प्रतिबिंबित होता है। ठाकुर का कुआँ, सवा सेर गेहूँ, पूस की रात, इत्यादि कहानियाँ इसका सशक्त उदाहरण है। परंतु प्रेमचंद ने 'पंच परमेश्वर' कहानी में मूल्य और नैतिकता का अपूर्व उदाहरण प्रस्तुत किया है। उनको लोक , समाज, रीति और मूल्य का गहरा और विशद अनुभव था। 'पंच परमेश्वर' कहानी केवल खाला, जुम्मन, अलगू, समझू या रामधन मिश्र जैसे पात्रों की कहानी मात्र नहीं है। अपितु इस कहानी में सामान्य भारतीय पारम्परिक आदर्शों और माननीय मूल्य को स्थापित किया गया है। अन्याय के ऊपर न्याय की यहाँ विजय है। क्रोध के ऊपर ग्लानि , घृणा के ऊपर प्रेम और वैभनस्य के ऊपर सौहार्द की विजय की गाथा है यह। इस विजय के मूल में आत्मा का स्वर है जो न्याय के आसन पर विद्यमान है जहाँ वह न्याय पुरूष है , वह वहाँ न मित्र है और न बैरी। हर घृणा और सम्मोहन से परे। हमेशा की ही तरह इस कहानी में प्रेमचंद की कथा-भाषा सहज और आकर्षक है। विचारों के मिलने के कारण अलगू और जुम्मन में अत्यंत गाढ़ी मित्रता थी। ''जुम्मन शेख और अलगू चैधरी में गाढ़ी मित्रता थी। साझे में खेती होती थी। कुछ लेन-देन में भी साझा था। एक को दूसरे पर अटल विश्वास था। जुम्मन जब हज करने गये थे , तब अपना घर अलगू को सौंप गये थे और अलगू जब कभी बाहर जाते तो जुम्मन पर अपना घर छोड़ देते थे। उनमें न खान-पान का व्यवहार था , न धर्म का नाता ; केवल विचार मिलते थे। मित्रता का मूलमंत्र भी यही है।''[1]

प्रेम, अपनत्व और गहरे संस्कार बोध की वजह से अलगू ने जुम्मन के पिता जुमराती को अपना गुरू माना था और उनकी रकाबियाँ खूब माँजी थीं एवं उनके प्याले धोए थे।

अलगू का गुरू शिष्य परम्परा पर अगाध विश्वास था। जुम्मन शेख की एक बूढ़ी खाला थीं जिनका कोई सगा-संबंधी नहीं था। उनकी सम्पत्ति की ओर जुम्मन का ध्यान बरबस लगा रहता था। जुम्मन ने बूढ़ी खाला को बुढ़ापे में सुख , सेवा और खातिरदारी का स्वप्न दिखा कर उनकी सम्पत्ति दान-पत्र के माध्यम से अपने नाम लिखवा लिया। परंतु सम्पत्ति के मिलते ही जुम्मन और उनकी पत्नी की नीयत और भाव-भंगिमाएँ खाला के प्रति पूरी तरह बदल गईं। अब वे निरापद भाव से उनका तिरस्कार करते थे। जुम्मन की पत्नी हर एक कौर के साथ खाला को व्यंग्य की चुभन भी देती थी। खालाजान बेबस और असहाय भाव से लंबे समय तक इस अनादर और अभाव को सहती रहीं। पर जब उनसे यह पीड़ा और अपमान दुःसह्य हो गया तो ''अंत में एक दिन खाला ने जुम्मन से कहा-

* **शोधार्थी, राँची विश्वविद्यालय, राँची**

बेटा! तुम्हारे साथ मेरा निर्वाह न होगा। तुम मुझे रूपये दे दिया करो , मैं पका खा लूँगी। ''[2] जुम्मन इतना सुनते ही सन्नाटे में आ गये। हिकारत और घृणा के भाव से बिल्कुल बेअदब लहजे में उन्होंने खालाजान के प्रस्ताव को नज़रअंदाज और खारिज़ कर दिया। असहाय और पीड़ाबोध से भरी खाला ने जुम्मन को पंचायत की धमकी दी परंतु , श्रेष्ठताबोध और अनुग्रह भाव से भरे जुम्मन के मन का अहंकार उभर आया और उसने हास्यास्पद भाव से खाला को पंचायत की स्वीकृति दे दी।

बूढ़ी खाला न्याय और अधिकार के लिए पंचो की तलाश में गाँव-गाँव भटकने लगीं। उनकी इस मनोदशा को लेकर गाँव-समाज में अनेक विरोधाभासी मत थे। कई लोग ऐसे थे जिन्हें खाला से तीव्र सहानुभूति थी पर कई लोग ऐसे भी थे जिन्हें खाला की यह कवायद व्यर्थ और स्वार्थ से युक्त लगती थी। वे इसे लेकर बूढ़ी और कमज़ोर खाला का मज़ाक भी उड़ाते थे। जुम्मन शेखें के तेज़ प्रताप, इकबाल और क्रोध के भय से कोई भी पंच बनने को तैयार नहीं होता था। आखिरकार थक-हार कर खाला अलगू के दरवाज़े आती है और गुजारिश करती है कि बेटा क्षण भरके लिए पंचायत में अवश्य आ जाना। अलगू चैधरी धर्म संकट में पड़ जाते हैं और खाला से कहते हैं कि

मैं यदि पंचायत में आ भी गया तो मैं मौन ही रहूँगा। क्योंकि इससे जुम्मन से संबंध खराब होने का भय है। खाला तड़प उठीं - " बेटा, क्या बिगाड़ की डर से ईमान की न कहोगे ?'' खाला की इस पीड़ा को सुनकर अलगू की धर्म-ध्वजा हिल जाती है और जमीन पर आ गिरती है। मैत्री को ही धर्म समझने वाला अलगू ईमान की पुकार पर क्रंदित हो जाता है। उसका सत्य उसके लोभ , उसकी प्रीति पर विजयी होता है और वह सत्य -सनातन भाव से पंचायत में जाने का निश्चय करता है। शाम के समय एक पेड़ के नीचे पंचायत बैठती है। न्याय और प्रीति में किसकी विजय होती है , इस कौतूहल में खग-विहग भी वृक्षों पर आ विराजे थे। बेकस और बेवा खालाजान ने पंचो के सामने अपनी व्यथा और जुम्मन के साथ हुए अपने करार को सुनाते हुए पंचों से न्याय माँगा। जब पंच बदने की बारी आई तो जुम्मन ने सब कुछ खाला जान पर डाल दिया। जुम्मन की आशंका और अविश्वास को देखते हुए खाला ने जुम्मन के जिगरी दोस्त अलगू चैधरी को ही पंच बद दिया। ना-नुकुर करते हुए भी अलगू ने पंच का आसन ग्रहण किया। अपने मित्र अलगू को पंच के रूप में देखकर जुम्मन शेख आनंदातिरेक से भर गया और उन्हें दृढ़ यकीन हो चला कि पंचायत में मेरी विजय अब पूर्णरूपेण सुनश्चित है। परंतु धर्म और न्याय के आसन पर बैठे अलगू ने ईमान की लड़ाई को पार किया और जुम्मन से जिरहे आरंभ कर दिया। जुम्मन के पैरों तले ज़मीन खिसकती चली गई। सभी पंच मुग्ध भाव से अलगू की न्याय-प्रियता और अनुशासन को देखते रहे। अंत में धर्माधिकारी अलगू ने अपना फैसला सुनाया- ''जुम्मन शेख! पंचो ने इस मामले पर विचार किया। उन्हें यह नीतिसंगत मालूम होता है कि खालाजान को माहवार खर्च दिया जाए। हमारा विचार है कि खालाजान की जायदाद से इतना मुनाफ़ा अवश्य होता है कि माहवार खर्च दिया जा सके। बस, यही हमारा फैसला है। अगर जुम्मन को खर्च देना मंजूर न हो तो यह इकरारनामा रद्द समझा जाए।''[3]

अलगू ने आख़िर ईमान की बात कही। मैत्री और प्रीति के छद्म व्यवहार पर महान न्याय की विजय हुई।

जुम्मन 'पंचायत का फैसला सुनते ही सकते में आ गए। जुम्मन को ऐसा प्रतीत हुआ कि अलगू ने जुम्मन के साथ एक भयानक धोखा किया है। इस फैसले से अलगू और जुम्मन की दोस्ती की जड़

हिल गई। संबंधो में औपचारिकता मात्र शेष रह गई थी। ' जुम्मन अलगू से बदला लेने का अवसर तलाशने लगा और शीघ्र ही उसे यह अवसर मिल भी गया। अलगू चैधरी बटेसर के मेले से बैलों की एक सुंदर जोड़ी खरीदकर लाए थे। दैवयोग से पंचायत के एक माह बाद ही अलगू का बैल मर गया। बहुत ढूँढने पर भी अकेले बैल का जोड़ा आखिर नहीं मिला। गाँव के ही समझू साहू का मन इस सुंदर-स्वस्थ पछाँही बैल पर लहरा गया। उसने सोचा कि यह बैल हाथ लगते हीं दिन भर में बेखटके तीन खेप दोऊँगा। उसने मोलभाव करके एक महीने में दाम चुकाने के करार पर अलगू से वह बैल खरीद लिया। मजबूरीवश अलगू ने घाँटे और उधार में दुखी मन से वह बैल बेच दिया। लालच में अंधे समझू ने बैल को बिना चारा-पानी और आराम के दिन-दिनभर और रात अँधेरा रगेदना चालू कर दिया। कमजोर और थके बैल ने आखिर एक दिन दम तोड़ ही दिया। परंतु कभी समझू की लालच पर विराम नहीं लगा। अलगू महीनों बीतने के बाद जब अपने पैसे माँगता , साहू-सहुआइन झगड़े पर आमादा हो जाते। हाथापाई तक की नौबत आ गई। अंत में पंचायत का निर्णय हुआ और वहीं इसका फैसला होना सुनिश्चित हुआ।

एक बार फिर पेड़ के नीचे पंचायत बैठी। समझू ने अपनी ओर से पंच जान-बूझकर जुम्मन शेख को चुना। जुम्मन का नाम सुनते ही अलगू का कलेजा मुँह को आ गया। वह भयार्त हो गये कि आज जुम्मन अपना बदला अवश्य लेगा। परंतु "जुम्मन शेख के मन में भी सरपंच का उच्च स्थान ग्रहण करते ही अपनी जिम्मेदारी का भाव पैदा हुआ। उसने सोचा , मैं इस वक्त न्याय और धर्म के सर्वोच्च आसन पर बैठा हूँ। मेरे मुँह से इस समय जो कुछ निकलेगा , वह देववाणी के सदृश है -और देववाणी में मेरे मनोविकारों का कदापि समावेश नहीं होना चाहिए। मुझे सत्य से जौ भर भी टलना उचित नहीं!"[4] जुम्मन ने न्याय की पताका को झुकने नहीं दिया। घृणा और विद्वेष पर सत्य-निति की विजय हुई। जुम्मन ने पंच के रूप में निर्णय सुनाया कि समझू , अलगू को बैल का पूरा मूल्य चुकाएँ क्योंकि उन्होंने जिस वक़्त वह बैल खरीदा था, वह पूरी तरह स्वस्थ और सबल था।

पंच में परमेश्वर का वास होता है। अंततः यह फलीभूत हुआ। सत्य ने अहंकार पर विजय प्राप्त की। सत्य का बोध होते ही जुम्मन अश्रुपूरित हो अलगू को गले मिले। हृदय का सारा मलिज भाव दूर हो गया। वस्तुतः "प्रेमचंद की कहानियाँ केवल मनोरंजन के उद्देश्य से नहीं लिखी गईं। उन सभी में कोई-न-कोई सुझाव, जीवन के प्रति नया दृष्टिकोण, किसी समस्या का हल जरूर मिलता है।"(5) यही प्रेमचंद के कथा लेखन का सौंदर्य है।

संदर्भ:-

(1) 'पंच परमेश्वर' पृष्ठ-13, प्रेमचंद की कहानियाँ, साधना पॉकेट बुक्स, संस्करण -1995
(2) 'पंच परमेश्वर' पृष्ठ-14, प्रेमचंद की कहानियाँ, साधना पॉकेट बुक्स, संस्करण -1995
(3) 'पंच परमेश्वर' पृष्ठ-18, प्रेमचंद की कहानियाँ, साधना पॉकेट बुक्स, संस्करण -1995
(4) 'पंच परमेश्वर' पृष्ठ-22, प्रेमचंद की कहानियाँ, साधना पॉकेट बुक्स, संस्करण -1995
(5) प्रेमचंद और उनका युग, कहानियाँ पृष्ठ 112, राजकमल प्रकाशन, संस्करण-2011

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

शिवप्रसाद सिंह तथा उनका आंचलिक बोध

डॉ0 सुरेन्द्र पाण्डेय*

बीसवीं शताब्दी के ठीक मध्य से (1950–51) हिन्दी कहानी में एक परिवर्तन दिखायी पड़ता है। कहानी के इस परिवर्तित स्वरूप ने नवीन जीवन दृष्टि नया आधुनिक बोध एवं नये शिल्प के कारणवश सबका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। कहानी की इस नयी प्रवृत्तियों को लक्ष्य बनाकर उसे 'नयी कविता' के आधार पर 'नयी कहानी' कहा जाने लगा। नयी कहानी का आरम्भ हिन्दी में ग्राम जीवन अथवा भारतीय कृषक जीवन को लेकर लिखी गयी ग्राम कथाओं से होता है और इस सिलसिले में शिवप्रसाद जी की कहानी का उल्लेख किया जाता है। जो 1951 में प्रथम बार प्रकाशित हुई। प्रेमचन्द की परम्परा को पुनर्जीवित करके उसे आधुनिक 'मान' देने वाले कथाकारों में शिवप्रसाद सिंह अग्रणी थे। अपनी प्रथम कहानी 'दादी माँ' को लेकर उनका कथन है– 'दादी माँ' ग्राम जीवन की पहली कहानी थी जिसमें निजी अनुभव और भोगे हुए सत्य की व्यथा को व्यक्त किया गया था। इसी धरातल पर उन्होंने अपनी और प्रेमचन्द की कहानियों के बीच विभाजक रेखा खीची। डा0 बच्चन सिंह ने इसके साम्य वैषम्यमूलक दुहरे कथा शिल्प के आधार पर शिव प्रसाद सिंह को इमारती आदमी कहा था। अपनी इस प्रारम्भिक कहानियों से भी शिवप्रसाद सिंह एक कहानीकार के रूप में बहुचर्चित और बहुप्रसंशित हो उठे। यहाँ इनकी कथा यात्रा के क्रमिक विकास पर एक विहंगम दृष्टि डाल लेना आवश्यक है– इनका सन् 51 से 53 तक की प्रारम्भिक कहानियों का संग्रह 'आर पार की माला' नाम से जून 1955 में काशी से प्रकाशित हुआ। इसमें जिन कहानियों का संग्रह हुआ है वे इस प्रकार है– 1. नयी पुरानी तस्वीरे 2. बरगद का पेड़ 3. हीरो की खोज 4. महुवे का फूल 5. दादी माँ 6. देऊ दादा 7. मंजिल और मौत 8. मास्टर सुख लाल 9. कबूतरों का अड्डा 10. उस दिन तारीख थी 11. पोषाक की आत्मा 12. चितकबरी 13. उसकी भी चिट्ठी आयी थी 14. मुर्गे ने बाग दी 15. उपाइन मैया 16. आर–पार की माला।

इस कहानी संग्रह में गाँधीवाद ओर आदर्शवादी प्रभाव के अमुक्त अमोहभंग की स्थिति का उत्तर जमींदार युग में रूपायित हुआ है, जहाँ आधुनिकता अभी आँखे खोल रही है। डॉ0 शिवप्रसाद सिंह ग्राम कथाकारों के रूप में अधिक जाने जाते हैं। इनकी कहानियाँ गाँव के उस वातावरण की प्रतिनिधि रचना है, जहाँ दीनता, विपन्नता और अन्धविश्वास की जड़े गहरायी में जमी है, गरीबी और गन्दगी उसे खाद देती है किन्तु पारिवारिक स्नेह, सहज विनोद और प्रकृति की सुषमा इसमें प्रसून की तरह खिला करती है। गाँव का परिवेश इसकी अनुभूतियों का भंडार है और उससे इसका रागात्मक लगाव है। इसे वे स्वयं स्वीकार करते हुए कहते हैं– मेरी जिन्दगी में गाँव एक ऐसी हकीकत है जिसे मैं चाह कर भी कट नहीं सकता, गाँव की अछोर हरियाली में डूबे सीमान्त फसलों के रंग–बिरंगे गलीचे बिछाकर किसी अनागत की प्रतीक्षा में डूबी धरती, सरसों, जलकुम्भी और झरबेरी के जंगली फूलों से मदहोश वातावरण के बीच अपनी सामान्य जिन्दगी के लिए संघर्षरत किसान मेरी कहानियों के अविभाज्य अंग है। शहर के जीवन में जहाँ एक ओर आधुनिकता बोध को निरन्तर तीव्र और सक्रिय बनाता है, वही गाँव के जीवन की

* सम्पादक–International Literary Quest एवं World Translation

धड़कने जो अब भी सड़ी गली परम्परा और कूटस्थ रूढ़ियों का कूड़ा–कचरा ढोती हुई कराह रही है मेरे कहानीकार के लिए सदा की चुनौती रही है।[1]

इस संग्रह की कहानियों में अनुभूति जन्य सच्चाई और गहराई का समावेश ही इसकी सर्वप्रथम विशेषता है। एक भी कहानी में यह नहीं लगता कि कहानीकार महज किसी काल्पनिक कथानक को सजा–संवारकर प्रस्तुत कर रहा है। आर–पार की माला कहानी में कबीले या उपेक्षित जन समूह के चित्रण से नयी कहानी में जो संवेदना का नया आयाम खुला था उसका प्रमाण देखा जा सकता है जिसमें नट जैसी उपेक्षित जाति के जीवन का यथार्थ और प्रमाणिक चित्रण किया गया है। डॉ0 बच्चन सिंह के अनुसार आर–पार की माला में विवशता, घर, लाचारी का अतिशय मर्मस्पशी चित्रण है। इसमें टेंशन नहीं आस्था का कोई मुखर स्वर नहीं है फिर समूची कहानी उस व्यवस्था के प्रति एक तीखा विक्षोभ उत्पन्न करती है। जो अपने जबड़े में लहलहाती मासूम जिन्दगी को जिन्दा निगल जाती है। इन कहानियों में लेखक का परिपेक्ष बदला हुआ है। प्रवृत्ति की दृष्टि से ये कहानियाँ रोमांटिक यथार्थ और युगीन संक्रमण की कहानियों की कड़ियाँ मानी जा सकती है।[2]

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह की कहानियों का दूसरा संग्रह कर्मनाशा की हार 1958 में प्रकाशित हुआ। इसमें 16 कहानियाँ संग्रहित है जो निम्नलिखित है– 1. कर्मनाशा की हार, 2. प्रायश्चित, 3. पापजीवी, 4. केवड़े का फूल, 5. बिन्दा महाराज, 6. कहानियों की कहानी, 7. वशीकरण, 8. उपहार, 9. सँपेरा, 10. भग्न प्राचीर, 11. शहीद दिवस, 12. हाथ का दाग, 13. माटी की औलाद, 14. गंगा तुलसी, 15. बिना दीवारों का घर, 16. रेती।

इस कहानी संग्रह में कहानीकार की कहानी यात्रा के विकास क्रम को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इन कहानियों में एक ओर जहाँ वस्तु–भाव की नवीनता है वही शैली में नया सौन्दर्य और अर्थपूर्ण कलाकारिता के दर्शन होते हैं। इस कहानी संग्रह में लेखक समाज के अनदेखे, अस्वस्थ और उपेक्षित अंग को कला की कलम से छूकर पनपने देता है। मुसहर, बिन्दा महाराज, हिजड़ा गुलाबी, मजूरिन वशीर, सँपेरा, टीगल कुम्हार आदि जिन्दा पात्र उछल कर ऊपर आ जाते हैं।

इस संग्रह की भूमिका में लेखक ने मनुष्य के जीवन के प्रति अपनी प्रतिबद्धता इस प्रकार स्पष्ट की है– ''मनुष्य और उसकी जिन्दगी के प्रति मुझे मोह है, जो अपने अस्तित्व को उबारने के लिए विविध क्षेत्रों में विरोधी शक्तियों से जूझ रहा है। अन्धविश्वास, उपेक्षा, विवशता, प्रताड़ना, अतृप्ति, शोषण, राजनीतिक भ्रष्टाचार और बुद्ध स्वार्थान्धता के पीछे पिसता हुआ भी जो अपने सामाजिक और मनोवैज्ञानिक हक के लिए लड़ता है, हँसता है, रोता है, बार–बार गिरकर भी अपने लक्ष्य से मुँह नहीं मोड़ता, वह मनुष्य तमाम शारीरिक कमजोरियों और मानसिक दुर्बलताओं के बावजूद महान है।[3] कहानी में प्रवाहित वह जीवन की शक्ति ही आज की कहानी के प्रति पाठक को आस्थावान बनाती है।

शिवप्रसाद सिंह का तीसरी कहानी संग्रह भी 'इन्हें भी इंतजार है' 1961 में प्रकाशित हुआ। इसमें 20 कहानियाँ निम्नलिखित है– 1. नन्हों, 2. बेहया, 3. मरहला, 4. इन्हें भी इंतजार है, 5. टूटे तारे, 6. सुबह के बादल, 7. आखिरी बात, 8. बहाववृत्ति, 9. उधूल और हसी, 10. शाखा मृग, 11. परकटी तितली, 12, पैटमैन, 13. टूटे शीशे की दीवार, 14. खैरा पीपल कभी न डोले, 15. कर्ज, 16. अन्ध कूप, 17. धतूरे न डोले, 18. आँखे, 19. बीच की दीवार।

इस संग्रह की सभी कहानियाँ लगभग राजनैतिक, सामाजिक परिवेश की उपज है जिसमें कर्मनाशा की हार संग्रह की कहानियाँ लिखी गयी। इस संग्रह की कहानियाँ शिल्प की अभिनवता और मनोवैज्ञानिक चित्रण की दृष्टि से पहले लिखी गयी कहानियों से अधिक सशक्त, प्रौढ़ और मार्मिक है। इसमें ग्राम कथानक शिल्प की अन्तररसता और प्रजातांत्रिक दीप्ति है।

इस संग्रह की सभी कहानियों के मुख्य पात्र किसी परखने वाली आँख के इन्तजार में थे और इस कर्तव्य को पूरा निभाया है शिवप्रसाद सिंह ने। कहानीकारों ने उन पात्रों को केवल सूक्ष्म दृष्टि से देखा ही नयी वरन् औरों को इन्हें दिखाने का प्रयास किया है। इस दिशा में उनकी लेखनी ने भी उनका पूरा साथ दिया है। इस कहानी संग्रह की कहानियाँ एक प्रकार की जीवन्त रेखाचित्र है जिन्हें अपनी कला तूलिका से लेखक ने बहुत ही संयम और सावधानी से चित्रित किया है। भाषा बहुत ही सरल, बहुत से स्थायी शब्द सरल, बहुत से स्थानीय शब्द प्रयोगों में सजी होने के कारण आकर्षक एवं चतुली हो उठी है। प्रत्येक कहानी में एक मीठा परन्तु चुटीला व्यंग्य है।

कथाकार शिव प्रसाद सिंह की दृष्टि परिवार के अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों की ओर विशेष रही है। इस संग्रह को देखने से सिद्ध होता है कि ग्रामीण वातावरण के निर्माण में लेखक को सर्वत्र अद्‌भुत सफलता मिली है। लेखक गाँव के जीवन के इतने रूपों एवं पहलुओं से परिचित है कि ये वर्णन आश्चर्य में डाल देते हैं। वस्तुतः शिवप्रसाद जी ऐसे प्रबुद्ध और संवेदनशील कथाकार है जो जीवन के मार्मिक यथार्थ को कलात्मकता से स्पर्श कर उसे मंगलमय बना देने की ओर उन्मुक्त है।[4] इस संग्रह की प्रत्येक कथा एक मार्मिक प्रसंग है और भारतीय अभिशप्त जीवन की हकीकत प्रकट करती है। लेखक का प्रत्येक वाक्य प्रभाव निर्माण का अचूक शास्त्र है। यह शैली अनुभव की गरिमा से आवृत्त है एक सजीव छन्द है। उसमें विराट सहानुभूति का परिष्कृत और संयत रूप दृष्टिगोचर होता है। प्रत्येक कहानी उच्चकोटि के गद्य का सजीव और प्राणमय नमूना है।[5] इस संग्रह से यह स्पष्ट हो जाता है कि इसका लेखक मात्र कथाकार ही नहीं शिल्पकार भी है, जो अपने विचारों और अनुभूतियों को शिल्प की पूरी सूक्ष्मताओं के साथ रखता है और पाठक पर उसकी छाप छोड़ जाता है। .....लेखक उपमाओं का धनी है। उपमानों के कारण कथ्य सवत्र अधिकतम तीव्र रूप में उपस्थित हुआ है।[6]

इस संग्रह की कहानियाँ प्रेमचन्द की परम्परा में नूतन क्षितिज का उद्‌घाटन करती हुई प्रतीत होती है।

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह का चौथा कहानी संग्रह मुरदा सराय सन् 1966 में भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन द्वारा प्रकाशित हुआ। इसमें कुल 12 कहानियाँ हैं– 1. ताड़ी का पुल, 2. अरून्धती, 3. मैं कल्याण और जहाँगीरनामा, 4. प्लास्टिक का गुलाब, 5. किसकी आँखे, 6. धारा, 7. चेन, 8. अंधेरा हँसता है, 9. जंजीर फायर ब्रिगेड और इंसान, 10. यात्रा सतह के नीचे, 11. मुरदा सराय, 12. तबाकी।

इस कहानी संग्रह में आधुनिकता–बोध का सम्यक् विस्फोट हुआ है और विक्षोभ, तीखापन, तनाव और कड़वाहट चरम सीमा तक पहुँच गयी है।[7] संग्रह की भूमिका– 'कुछ न होने का कुछ' में कहानीकार ने अपनी रचना प्रक्रिया को स्पष्ट करने का प्रयास किया है, जिसका महत्व संकलन की कहानियों में किसी माने में कम नहीं है। 'ताड़ीघाट का पुल' तथा 'अरून्धती' शीर्षक प्रारम्भिक कहानियों में समाज और इकाई के बीच का संघर्ष उभारा गया है। इस संग्रह की शीर्षक कथा 'मुरदा सराय' में केन्द्रीय तत्व संत्रास है। इसमें जीवन–बोध बनाम मृत्युबोध संवेदित

है। इस कहानी में जीवन का प्रतीक घर है और मृत्यु का प्रतीक श्मशान है। 'मुरदा सराय' दोनों के बीच में है, जहाँ वीभत्स भयानक सृष्टि के साथ संवेदनीय सूक्ष्म श्रृंगार स्थिति का सामंजस्य कथाकार की एक अतिरिक्त उपलब्धि है।

इस प्रकार 'मुरदा–सराय' कहानी संग्रह बारीक स्पन्दनों को भी अंकित कर लेने में सक्षम उस मानस की धड़कनों और अंकनों का वैरोमीटर है जिसका निर्माण विशिष्ट प्रकार की शक्ति, विवेक, क्षमता एवं शक्ति ने मिलजुल कर किया है। यही कारण है कि इन कहानियों में जिन्दगी पुनः कथित नहीं हुई है– पुनर्जीवित हुई है।

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह की कहानियों में चरित्र और कथ्य के सानुपातिक समायोजन पर बल दिया गया है। अपने अस्तित्व को उबारने के लिए विविध क्षेत्रों में विरोधी शक्तियों से जूझते मनुष्य और उसकी जिन्दगी के प्रति इनका लगाव 'कर्मनाशा की हार' कहानी से स्पष्ट होता है जहाँ वह अंधविश्वास, उपेक्षा, विवशता, प्रताड़न, अतृप्ति, शोषण, राजनीतिक भ्रष्टाचार के नीचे पिसता हुआ भी अपने सामाजिक और वैयक्तिक हक के लिए लड़ता है, हँसता है, रोता है बार–बार गिरकर भी जो अपने लक्ष्य से मुँह नहीं मोड़ता जो अपनी शारीरिक सीमाओं और मानसिक दुर्बलताओं में महान है।''[8] विद्रोह की वाणी हम इनकी अन्य कहानियों 'पापजीवी' और 'उपहार' में भी पाते हैं। पाप जीवी शीर्षक कहानी में उपेक्षित मुसहर जाति के यायावरी कबीले की दो पीढ़ियों के दर्द का अच्छी तरह उभारा गया है। इस कहानी के संदर्भ में लेखक स्वयं कहता है– पाप जीवी में मेरी कोशिश यही रही है कि पूरे कबीले का जीवन एक झलक में ही सामने आ जाय। कुछ जातियाँ लगातार शोषण करती रही है एक पीढ़ी में वे जमींदार थे और दूसरी में ठेकेदार। दोनों पीढ़ियों के अत्याचार के रूप में अन्तर है, अत्याचार में अन्तर नहीं..... अज्ञेय जी को यह कहानी इतनी पसन्द आयी थी कि उन्होंने क्रिमिनल नाम से इसका अनुवाद करके वाक् में छापा था।[9] उपहार कहानी में गुलाबी अपनी दयनीयता के बावजूद जमींदार के दोहरे शोषण (आर्थिक, शारीरिक) के खिलाफ बगावत करती है।

'हाथ का दाग' कहानी में आधुनिकता का परिचय देते हुए पति अपनी पत्नी से शरीर का सौदा करके आजीविका कमाता है, निजता की खोज या मै की तलाश के रूप में डॉ0 शिवप्रसाद सिंह का योगदान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है यह भी कहा जा सकता है कि इनका पूरा कहानी लेखन ही चरित्रो के माध्यम सें भारतीय व्यक्तियों की खोज है। इसी को कमलेश्वर ने 'केन्द्रीय व्यक्ति की तलाश' का नाम दिया है। शिव प्रसाद सिंह की कहानियों का प्रत्येक पात्र अपने वर्ग की विशेषताओं को रखते हुए भी अपनी कुछ निजी विशेषताएँ रखता है। इनकी कहानियों में दीन–हीन गरीब, अंध विश्वासी पर मानवीय स्नेह और प्रकृत्ति की सुषमा सें गमकते, निर्बल, दुःखी पर आत्मवान, हर तरह के लोक जीवन की धुनी से जुड़े संघर्षतर इंसान है– हीरो की खोज के बोधन तिवारी,देऊ दादा 'दादी मॉ, उपधाइन मैया कर्ज का जगपति, पैटमैन का सिजोगी, गंगा तुलसी की माँ 'कलंकी अवतार के रोपन आदि ने अपने समाज के आर्थिक और नैतिक रूप से प्रताड़ित दलित, बुझें और टूटे हुए पालों को ही सहानुभूति और संवेदना दी थी।

शिवप्रसाद सिंह की कहानियों में केन्द्रीय पात्रों का यह रूपायन वास्तव में पात्रों की तलाश नही थी, वरन् यथार्थ की तलाश थी इनकी कहानियों का यथार्थ उनका ग्रामीण परिवेश नहीं है वरन् उनके प्राण में निहित संस्कार जन्य मानसिकता के दोहन से उत्पन्न वह त्रासद स्थिति है जिससे इन कहानियों के चरित्र निर्मित होते हैं। माटी की औलाद, खैरा पीपल कभी न डोले, अंधकूप आदि ऐसी कहानियाँ हैं जिनमें विशुद्ध सामाजिक यथार्थ की तस्वीर बन पड़ी है।

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह ने अपने ग्रामीण परिवेश में व्याप्त कुरीतियों, रूढ़िगत, रीति–रिवाजों के अंधानुकरण का जोरदार विरोध किया है। 'रेती' की गंगा माँ की 'नन्हों' की नन्हों सहुआइन में जहाँ यह विरोध शालीनता लिये है, 'भग्न प्राचीर' की सुशीला में दृढ़ता और कर्मनाशा की हार के भैरो पाण्डेय में विचारोतेजकता, वही पोशाक की आत्मा में किसी भी मान्यताओं से पोषित परम्परावाद को नष्ट करने के लिए अंगारक लावों की तरह उबल पड़ता है और आदिम हथियार में तो विरोध बेपरवाही व उपेक्षा के साथ ठेंगा दिखाकर निकल जाता है। इस प्रकार नयी कहानी के परम्परावाद के अस्वीकार की आवाजों में ये कहानियाँ एक बुलंदी लाकर अविरमरणीय योगदान की भूमिका अदा करती है।

जमींदारों की निन्दा धार्मिक कृत्यों की खिल्ली शिवप्रसाद सिंह ने अनेक कहानियों में उड़ायी है। समाज के उपेक्षित लोगों डोम, मुसहरों, कुजड़ों, चमारों भंगी, नट, वेश्या आदि को अपने कहानियों का पात्र चुना है। इस दृष्टि से 'इन्हें इंतजार है', 'पापजीवी', 'रेती', 'विन्दा महाराज', 'बेहया' इनकी सशक्त कहानियों में उल्लेखनीय है। कोबरी डोमिन है, पर मांगने में लाज आती है। मगरू में भी आकांक्षा है अपने स्तर से ऊपर उठाने की, पर क्या करे क्या? स्टेशन पर गोदाम में झारी करने के लिए भी हमें कोई नहीं पूछता। मुसहर, चमार, गरीब है सही, पर उन्हें करने को नीचा–ऊँचा काम तो मिल जाता है, हम कहाँ जाये सरकार। हमारी देह में तो ऐसी छूत भरी है कि कोई गोबर–खाद फेकने का काम भी नहीं करने देगा। इस कथ्य में मात्र संवेदना की ही नहीं दृष्टि की जीवंत धारा है। धारा और रेती कहानियाँ भी इसी प्रकार की है। जिनमें उन उपेक्षितों की जो इकाई का जीवन जीते, भरे पूरे जीवन की धारा में नदी किनारे पर छोड़ दिये गये हैं और जिनकी व्यथा पीड़ा ही साकार हुई है। इसी बिन्दु पर ये कहानियाँ आधुनिकता का प्रमाण भी प्रस्तुत करती है। इन कहानियों में पात्रों की गढ़न और तराश के पीछे शरतचन्द्र और हजारी प्रसाद द्विवेदी के प्रभाव को भी आसानी से पकड़ा जा सकता है। चाहे यथार्थ का चित्र हो या परम्परावाद का विरोध, परिवेश ग्रामीण हो या नगरीय पर पात्रों के माध्यम से लेखक की जीवन के प्रति आस्था व प्रतिबद्धता नयी कहानी का प्रमुख स्वर है। यही आस्था शिवप्रसाद जी के कहानियों की प्रेरणा शक्ति है। विभिन्न जीवन संदर्भों में भी यह आस्था अडिग रहती है मंजिल और मौत में बौड़म की जिजीविषा इसका ज्वलंत उदाहरण है। बुॅला, दादी–दादा, कबूतरों का अड्डा, का माँ आदि तो है ही, पर परिस्थितियों की भयंकर मार से टूटे 'उस दिन तारीख थी' के देवी सिंह 'चितकबरी' के रोपन साहु उसकी भी चिट्ठी आयी थी के विमल सिंह, बिन्दा महाराज, पर कटी हुई तितली की रानी, खैरा पीपल कभी न डोले का कैरा, अंधेरा हँसता है के अर्जुन पाण्डेय चेन का रिक्शावान, धरातल की मुसम्मता नैना आदि अनेक लोग इसी आस्था के कारण जीवन से बेतरह जुड़े हुए लोग हैं। क्योंकि लेखक को स्वयं मनुष्य और उसकी जिन्दगी के प्रति मोह है, अपने प्रयत्न के प्रति आस्था है।

'टूटे शीशे की तस्वीर' एक अन्य कहानी में अन्तर्वैयक्तिक सम्बंधों को नागरिक संश्लिष्ट संकुलता के परिपेक्ष में उभारा गया है जहाँ गहरी टूटन है। ग्रामीण परिवेश में शोषण के प्रमुख स्वर जमींदारना सम्बंधों की ओर संकेत करते हैं। माटी की औलाद में जमींदारी–प्रथा समाप्त हो जाने पर भी जमींदारना अंदाज उसी तरह कायम है। रामसुभम तिवारी गाँव के जमींदार जब टीमल को पता चला कि महीने दिन की मजदूरी छः रूपये है। टीमल की पुरानी आँखों से ढलक कर दो बूँद आँसू सरजू के भीगे गालों पर पड़े नारी के शोषण के दो रूप में दिखायी देते हैं। एक सेक्स के धरातल पर, दूसरे अर्थ के इस स्वरूप को अंधकूप केवड़े का फूल और हाथ का दाम कहानियों में देख सकते हैं।

शिवप्रसाद सिंह ने गाँव को सहज आत्मीयता से परखा है। उसके बदलते स्वरूप को मूलाधार में पहचाना है। शिवप्रसाद सिंह की नन्हों कहानी में ग्रामीण परिवेश को लेकर नन्हों को स्वीकार और अस्वीकार के द्वन्द्व को चित्रित किया गया है। नन्हों का विवाह नन्हों के देवर रामसुभग को वर के रूप में दिखाकर बूढ़े पंगु व्यक्ति से कर दी जाती है। रामसुभग नन्हों को अपनाना चाहते हैं, उसके प्रति अनुरक्त होने के बावजूद नन्हों पारम्परिक संस्कारों के कारण उसे पति के रूप में स्वीकार नहीं कर पाती।

पीढ़ीगत तनाव को लेकर नये कथाकारों ने अनेक कहानियाँ लिखी शिवप्रसाद सिंह की 'बेहया' कहानी में द्वन्द्वशील स्थिति का निरूपण है। कामता नाथ और उसका बाप दोनों सुभागी के घर का चक्कर लगाते हैं। कामतानाथ अपने पिता से लड़ता है और गृह त्याग कर देता है।

शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ अधिकांशतः मन प्रवृत्तियों के विवेक को निर्णयात्मक में ही जीती है, पर कई स्थलों पर ये चित्र एक यथार्थ का रूप ले लेते हैं। ये कहानियाँ वास्तव में सहज यथार्थ बोध की कहानियाँ हैं। उनकी कहानियों में खुले मैदान का विस्तार और पोषण है। उनमें जीवन के जिन मार्मिक प्रसंगों को चुना गया है। उससे भारतीय अभिशप्त जीवन की यह हकीकत कितनी पीड़ाजनक मालूम होती है। रेती कहानी बन्ध्या नारी के अभिशप्त जीवन का मार्मिक प्रतीक बन कर उभरती है अरून्धती कहानी झूठे, दम्भी और रूढ़ समाज की मृत्यु के संकेत को उभारती है। इसी प्रकार एक यात्रा सतह के नीचे में समाज की अर्थहीन मान्यताओं और रूढ़ियों के प्रति विरोध एवं विद्रोह का तीखा भाव है।

संदर्भ :

1. डा0 शिवप्रसाद सिंह, मेरी प्रिय कहानियाँ, की भूमिका।
2. डॉ0 बच्चन सिंह, समकालीन हिन्दी साहित्य : आलोचना की चुनौती, पृ0 111
3. डॉ0 बच्चन सिंह, समकालीन हिन्दी साहित्य : आलोचना की चुनौती, पृ0 111
4. सत्य नारायण तिवारी : युग धर्म, नागपुर, 27 मई, 1962
5. शिव सहायक पाठक नवनीत, अगस्त, 1962
6. वही
7. डॉ0 विवेकी राय : स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य और ग्राम्य जीवन, पृ0 158
8. कर्मनाशा की हार, विकल्प पृ0 6
9. सारिका, 1 फरवरी, 1980, पृ0 12

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

विदेसिया का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ0 विशु मेंघनानी*

सभ्यता के विकास से ही नाटक का उद्‌भव माना जाता है। नाटक को रुपक, दशरुपक की संज्ञा दी गई। नाटक में श्रव्य और दृश्य दोनों पक्ष होते है। प्राचीन काल में नाचने और गाने की परम्परा थी। मैक्स डोनल मानते है, इन नृत्यों से ही नाटकों का विकास हुआ होगा। नाटक एक अनुकरणीय विधा है, अनुकरण की प्रवृत्ति ही हमें नाटक की ओर अग्रसर करती है। यह एक सामूहिक कला है। नाटक में मंच का कलाकार और उसके साथ–साथ नेपथ्य के कार्यकर्त्ता, निर्देशक, संगीतकार, मंचसज्जा के कार्यकर्त्ता आदि सभी एक साथ कार्य करते है।

भिखारी ठाकुर द्वारा रचित 'विदेशिया' नाटक की रचना 1917 में हुई। विदेशिया को लोक नाटक के अर्न्तगत रखा जा सकता है, क्योंकि यह लोक मन में बैठी है, लोक इसमें स्थापित है, जो इसकी व्याप्ति है। किसी कृति का महत्व उसके संस्करणों पर निर्भर करता है, उसी प्रकार नाटक की सफलता उसके मंचन से ऑकी जाती है। भिखारी ठाकुर से प्रभावित होकर हिन्दी के वरिष्ठ कवि केदारनाथ सिंह ''भिखारी ठाकुर'' शीर्षक से एक कविता की रचना करते है–

विषय कुछ और था
शहर कोई और
पर मुड़ गई बात भिखारी ठाकुर की ओर
और वहाँ सब हैरान थे यह जानकर
कि पीते नहीं थे वे
क्योंकि सिर्फ वे नाचते थे
और खेलते थे मंच पर वे सारे खेल
जिन्हें हवा खेलती है पानी से
या जीवन खेलता है
मृत्यु के साथ

इस तरह सूरज के कछार–सा
एक सपाट चेहरा
नाचते हुए बन जाता था
कभी घोर पियक्कड
कभी वर की खामोशी
कभी घोर की हिनहिनार
कभी पृथ्वी का सबसे सुंदर मुर्ख
और ये सारे चेहरे सच थे
क्योंकि सारे चेहरे हँसते थे एक गीहरी यातना में, वह अजब बेचैन–सा चीख–भरा नाच
अपने मुखौटे के खिलाफ़

और महात्मा गाँधी आकर
लौट गये थे चम्पारन से
और चौरी चौरा की आँच पर
खेतों में पकने लगी थीं
जौ–गेहुँ की बालियाँ

पर क्या आप विश्वास करेंगे
एक रात जब किसी खलिहान में चल रहा था
भिखारी ठाकुर का नाच
तो दर्शक की पौत में
एक शख्स ऐसा भी बैठा था
जिसकी शक्ल बेहद मिलती थी
महात्मा गाँधी से
एक तरह एक साँझ से
दूसरी भोर तक
कभी किसी बाज़ार के मोड़ पर
कभी किसी उत्सव के बीच की
खाली जगह में
अनवरत चलता रहा
जिसका आज़ादी की लड़ाई में

कोई ज़िक्र नहीं

* हिन्दी–विभाग, सिन्दरी कॉलेज, सिन्दरी

इस कविता में कवि को महात्मा गांधी याद आ रहे है, आजादी की लड़ाई याद आ रही है, चम्पारन का आन्दोलन याद आ रहा है। याद आता है कि गांधी जी सेवाधाम से बोल रहे है, भीखारी ठाकुर कुतुबपुर से बोल रहे है। कई साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि भीखारी ठाकुर अन्तिम दिनों में नृत्य त्याग कर किसान की तरह घर में रहते थे इनका मानना था कि गाँव को बेहालकर विकास की कोई धारणा मुमकिन नहीं–''कहत 'भिखारी' भिखार होई गइली दौलत बहुत कमा के''। यह पंक्ति हमें विकास की ओर ले जाते हुए सभ्यता विमर्श का प्रस्ताव करती है, जो कि एक मानवीय गुण, योग्यता है। धीरे–धीरे मानवता, संवेदना सब समाप्त हो रही है। दौलत को विकास की संस्कृति का प्रतीक माना जाता है, किन्तु भीखारी ठाकुर उसे गांधी जी के समान ही नकारते है, खारिज करते है। विदेशिया की कथा संक्षिप्त में इस प्रकार है– विदेशी प्यारी सुन्दरी को गवना करा कर घर लाता है, एक दिन प्यारी सुन्दरी को सोया छोड़कर चुपचाप कमाने के लिए कलकत्ता चला जाता है। कलकत्ते में एक रंडी मिलती है, उससे उसको प्रेम हो जाता है, और वह रखेल बन जाती है। उसके दो बच्चे हैं, उसके मोह–पोश में वह भूल जाता है कि उसकी पत्नी सुन्दरी भी है। सुन्दरी उसके विरह में कातर है, कलकत्ता जाता हुआ बटोही दिखाई देता है, बटोही को रोककर उपना दुखड़ा सुनाती है, और उसे कहती है कि उसके पति को ढूढकर मेरे दुःख का वर्णन कर घर वापस भेजिए। बटोही कलकत्ते में विदेशी को खोज निकालता है और उसे समझा–बुझा कर वापस घर भेजता है। विदेशी के पीछे–पीछे रखेलिन भी जाती है। अब रास्ते में अत्यन्त नाटकीय ढंग से दोनों को डाकू लूट लेते है, अतः वह जिस पैसे के लिए कलकत्ता गया था,वह वही समाप्त हो जाता है। प्यारी सुन्दरी को पैसा नहीं पति चाहिए, इसी खुशी में रखेलिन और बच्चों को भी स्वीकार कर लेती है, अतः नाटक की कथा लघु और सुखान्त है।

इस कथा के समान ही संदेश रासक और पद्मावत की कथा भी है। पद्मावत में नागमति को छोड़कर रतनसेन विदेश जाता है, वह अपने पति रतनसेन के वियोग में तड़पती है, उसे उसका पति चाहिए और विदेशिया में सुन्दरी को पति चाहिए, उसे देखकर वह इतनी खुश हो जाती है कि सौत को भी स्वीकार कर लेती है, पद्मावत में नागमति भी पद्मावत को स्वीकार करती है। विदेशिया की सुन्दरी और पद्मावत की नागमति को बटोही मिलते है, जिससे वे संदेश भेजती है । इसी तरह का एक अब्दुल रहमान का संदेश रासक भी दिखाई देता है, संदेश रासक में विजयनगर की सुन्दरी को उसका पति छोड़कर जाता है, उसे एक पथिक मिलता है, पूछने पर ज्ञात होता है कि उत्तर दिशा की ओर जा रहा है। सुन कर अत्यन्त व्याकुल होकर, क्षणार्थ रोककर अपने ऑसूओं को पोछते हुए फिर बोली हे पथिक! तुमने जो खम्भात का नाम लिया, मेरा हृदय जर्जर हो गया, वह भी उसी शहर में रहता है, और वह इस विरह को देने वाला मेरा पति है।

अपना संदेश तुम्हें बताती हूँ, तुम मेरा संदेश मेरे प्रिय तक पहुँचा देना–

रुइनि खणदधु नि उसनि नमणि पुण नज्जरिउ
खंभाइनि हि णामि पहिय तमु जज्जरिउ
तहै मह अच्छइ णाहु विरह उनहावयरू
अहिय कालु गम्मियउ ण आयउ णिछयरू।।67।।
पण्ड मोडनि निमि सिद्षु पहिय जइ दय करहि
कहउँ किपि संदेसउ निय तुच्छबखकहि।।

ठीक इसी प्रकार प्यारी सुन्दरी भी कहती है,और समाजी इसका वर्णन इस प्रकार करता है–

''तेहि अवसर बटोहि एक आये। तासो प्यारी दुख सुनाये।

पति गुन कहि–कहि रोवन लागी। सुनि बटोहि के धीरज भागी।।''

इस प्रकार दोनों पथिको को दया आती है, वे उनका संदेश उनके प्रिय तक पहुँचाते है। यहाँ दोनों कृतियाँ 12वीं शताब्दी और 20वीं शताब्दी की होते हुए भी एक–दूसरे से मिलती है। यह परम्परा अत्यन्त पुरानी है। कालीदास के मेघदूत में भी संदेश की परम्परा है, किन्तु यहाँ नायक है– मेघदूत,मेघदूत एक अकेला ऐसा ग्रंथ है, जिसमें नायक के विरह की कथा है। 'कालीदास ने बताया कि स्त्रियाँ ही विरहिणी नहीं' होती, पुरुष भी विरही होते है। खास बात यह है कि समय के साथ ही इस कथा को हर रचनाकार अपने ढंग से संस्कारित करके हमारे सामने लाते है, चारों रचनाकारों की रचनाओं में अलग–अलग छवि है। संदेश रासक और भिखारी ठाकुर की विरहिणीयाँ जैसे संदेश देकर बिदा करते हुए आर्शीवाद देती है तो उसका पति आता दिखाई देता है। विदेसियां नाटक सुखांत है। कथा सामान्य सी है, लेकिन घटनाएँ बड़ी–बड़ी और महत्वपूर्ण है। रामकथा में तो राम का वनवास, सीता का हरण, लेका में सीता का पता लगाया जाता है, पुल बन रहा है, अंत में रावण का वध होता है, सीता को वापस लाया जाता है, सीता की अग्नि परीक्षा होती है। रामचरित मानस की कथा में इतनी बड़ी–बड़ी घटनाएँ होती है, विदेसिया में इतनी बड़ी घटनाएँ घटित नहीं होती किन्तु रामकथा की अनुगूंज सुनाई पढ़ती है। यह कृति रामकथा से होड़ लेता हुई कृति है, और खास तौर से तुलसीदास के रामचरित मानस के मंगलाचरण में तुलसीदास उपस्थित है ही बीच–बीच में चर्चा भी करते है। इसमें चौपाइयाँ है–

जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मुख तिन देखी तैसी।

तुलसी को भिखारी ठाकुर कदम–कदम पर याद करते है, मंगलाचरण के ठीक बाद–''मंगल भवन अमंगल हारी, प्रबहु सो दसरथ अजिर बिहारी।'' के साथ नाटक शुरू होता है, थोड़ी ही देर में भिखारी ठाकुर तुलसीदास को प्रणाम करते हुए अपनी चौपाई बोलते है–

''नाच तमासा कीर्त्तन जेते। होखत बा सब जग मह तेते।

नावत बानी सब कर माथा। चित्त देइ सुनहु बिदेसिया काथा।।

एह किताब के सब बिस्तारी, थोर ही में सब कहत भिखारी।

ध्यान से देखने पर तुलसीदास ने राम को बड़े सम्मान से याद किया, उसके पश्चात् धीरे–धीरे सबको प्रणाम कर अपनी राम कथा शुरू करते है, ठीक उसी प्रकार भिखारी ठाकुर भी नत मस्तक है, प्रणाम करते है, उससे अपना रास्ता अलग कर लेते है। भिखारी ठाकुर बिदाई कर रहे है और अपनी कथा आरम्भ कर रहे है–''चित्त देई सुनहु बिदेसिया काथा।

जो हो रहा है, होता रहा है, उसको आदर देते है, प्रणाम करने की व्यंजना यह है कि जो यह नाच, तमाशा कीर्तन हो रहा है, उसे प्रणाम कर परम्परा का निर्वाह कर बिदा ले रहे है।

भिखारी ठाकुर (बचपन में) खड्गपुर और जगन्नाथपुरी गये थे, वहाँ उन्होंनें रामालीला देखी, वहाँ से लौटकर उन्होंनें रामचरित मानस को पढ़ा उनमें रामलीला के प्रति आकर्षण होता है। गाँव लौटने पर रामलीला करना शुरू कर देते है, किन्तु कुछ समय पश्चात् उन्हें महसूस होता है, यह हमारे काम की नहीं है, उसे आदरपूर्वक प्रणाम कर विदा लेते है। वे रामलीला को

महत्व दे रहे है और रामलीला के बरद एक दूसरी लोक लीला यह कथाकार प्रस्तुत करता है। रामलीला रामकथा है, इसमें आज संबंधो में बदलाव, मूल्यों में बदलाव आ रहा है। नाटक के आरम्भ में ही एक रुपक दिखाई देता है कहते है कि ''एह तमासा में चार आदमी के पाट बा, विदेसी एक, प्यारी सुन्दरी दू, बटोही तीन, रखेलिन चार और फिर तुरन्त कहते है कि बिदेसी ब्रह्म, बटोही धरम, रखेलिन माया, प्यारी सुन्दरी जीव। इसके पश्चात् एक और रुपक खड़ा करते है विदेसी राम बटोही भरत, जो कि रामचन्द्र जी को वापस लाने जाते है। फिर खुद कहते है कि उ विदेसी त दूसर–जनाना राख लेनन। विदेसिया का जो विदेसी है वह तो लौट आया, तो रामचन्द्र जी क्यों नहीं लौटे। विदेसी को तो रखेली मिल गयी थी, किन्तु रामचन्द्र जी के साथ कोई ऐसा संदर्भ नहीं है, फिर वह क्यों नहीं लौटे? यही एक सवाल उठाकर के यह कलाकार उस रामकथा की परम्परा को चुनौती देता है। उसके सामने एक विर्मश रखता है, और हमें बताता है कि इस नाटक को हम किस रूप में पढ़े? क्या लौकिक कथा के रुप में जो विदेसी, सुन्दरी, रखेली, बटोही की कथा है या जो माया, ब्रह्म, जीव, धर्म की कथा के रुप में। यहीं स्थिति पद्मावत में सूफी दर्शन का जामा पहनाने के लिए कथा बुनी गई है। नाटक उत्सुकता पैदा करने का कौशल मात्र है या कुछ और। यहाँ पर प्रतीत होता है हमारे जीवन की जो कथा है वह सामान्य यथार्थ होता है, एक धार्मिक, आध्यात्मिक यथार्थ होता है, वह सूक्ष्म होता दिखाई नहीं देता है पर होता है। इसी के साथ–साथ एक मूल्यों की दुनियाँ होती है और हम उन मूल्यों की दुनियाँ में यथार्थ के लिए (बहुत दों, तीन, चार) कुछ अन्तर है, जिससे हमारा जीवन बधा हुआ है। पहली कथा जो सामान्य जीवन से ली गई, दूसरी कथा है भिखारी जी का जो यथार्थ है माया, ब्रह्म, जीव, धर्म का दार्शनिक पक्ष जोड़ते है। रामकथा का जो व्यापक प्रभाव दिखाई पढ़ता है, उस व्यापक प्रभाव में एक मूल्यगत संरचना भी है जो सामाजिक मूल्यों, नैतिक मूल्यों, आध्यात्मिकता को आधार प्रदान करती है और इन तीनों स्तरों पर इस कहानी को यह लोक कलाकार ले जाने का काम करता है। समाजी कहती है–

'बाल्मीकि महाभारत गीता, करहु कृपा जग–जननी सीता।

एह नाटक के बिचऊ बाना, गावत बानी बिदेसिया गाना।

बताते हैं यह नाटक तीनों स्तरों पर भौतिक जीवन में, आध्यात्मिक जीवन में, दार्शनिक जीवन में हमारे मूल्यगत संवेदनाओं में संतुलन बनाये रखने की कोशिश है।

यह कृति रामकथा से होड़ लेती दिखती है, प्यारी सुन्दरी और बिदेसी में बहस शुरु होती है, प्यारी सुन्दरी कहती है राम गये थे तो सीता भी साथ गई थी, अकेले मत जाओं यह ठीक नहीं, हम भी साथ जायेंगें।

त्राहि–त्राहि अबला कर स्वामी, मत करहू परिसान।

सीता–रीम गइलन कानन संग, जानत सकल जहान।।

विदेशी जवाब देता है–

''संघत के फल तुरते मिलल, हरन भइल प्रिय नारि।

आजु तलक ले सुनि लऽ प्यारी, गावत बेद पुकारि।।

रामकथा एक ओर नैतिक मूल्यों की रचना करती है, सामाजिक जीवन में कहीं न कहीं कवि उन मूल्यों को उठाकर किनारे रख देता है। हमारा समाज पुरुष प्रधान समाज है, (जो बिना

किसी आवाज के शांति पूर्वक चलता है)। भिखारी ठाकुर पुरूष सत्ता को स्थापित करने वाली व्यवस्था के सामने सवाल खड़ा करता है और–

'' बहुत दिनन पर दरसन दिहुलऽ हे प्रभु प्रान अधारे।

कहे भिखारी जय गंगा जी बहुरल से नूर हमारे।।

नैतिक मूल्यों से भिन्न रचना कर जीवन को तथ्यता में स्वीकार कर कहता है कि जीवन जैसा है उसी रुप में उसे स्वीकार करें । नाटक के अंत में – विदेसी घर लौट कर आता है तो रखेलिन सुन्दरी को घर के ड्यौड़ी (चौखट) के अन्दर खड़ा देखकर अपने बेटे को कहती है माँ है प्रणाम करो। इस प्रकार रामकथा और विदेसिया की कथा हमारे सामने आती है। रामकथा में सीता को निर्वासन में रहना पड़ता है, अग्नि परीक्षा देनी पड़ती है, विदेसिया में उसकी रखेली घर में प्रवेश कर जाती है, चारों साथ रहते है उसकी कही अग्नि परीक्षा नहीं होती, स्वीकार कर ली जाती है। माया की माया समाप्त हो जाती है, जीव, ब्रह्म, धर्म सभी साथ रहते है।

यह छोटी सी कृति रामचरितमानस, (रामलीला) से टकराकर एक और नये मूल्य को स्थापित करती है। अर्थ, दौलत की जो सभ्यता विकसित हुई है उसकी भी आलोचना की है।

भिखारी ठाकुर एक जड़मूल व्यवस्था के बरक बिना किसी शोरगुल के मूल्य व्यवस्था के तहत आगे बढ़तें हैं।इस नाटक को अपार लोक प्रियता प्राप्त होने का प्रमुख कारण है गतिशील मूल्य व्यवस्था।

संदर्भ सूची :

भिखारी ठाकुर– विदेसिया

केदारनाथ सिंह ''भिखारी ठाकुर''

संदेश रासक

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

Assessment of Working Capital for Finance

Dr.Amrendra Kumar *

Abstract:
Over the year, the industrial units, industry & trade organisation and association have been representing that the extension of bank credit is often on a conservative basis and the working capital provided to them is inadequate. Small and medium industries have been arguing that estimation of working capital needs on the basis of general norms applicable to larger units, should be applied to Small and medium industries taking into account their peculiar circumstances namely, the continuing cash crunch mainly on the account of delayed payment of their bills by the large corporate and government departments and ever increasing input cost. In the context of rapid growth of primary (urban) co-operative banks (PCBs), qualitative aspects of lending, such as adequacy of lending to meet credit requirements of their borrowers and effective supervision and monitoring of advances have assumed considerable importance. Previously working capital finance provided by the banks to trade and industry was regulated by the Reserve Bank of India through a series of guidelines/instructions issued. There were various quantitative and qualitative restrictions on bank's lending. The banks were also expected to ensure conformity with the basic financial disciplines prescribed by the RBI from time to time under Credit Authorisation Scheme. This paper delineates aspects of assessment of working capital for bank finance. The study also deals with the need for a regulatory body to regulate, develop and guide the numerous bank and financial institution who work in the field of working capital finance. The paper discusses the factors and theoretical position associated with evolution of working capital.

Keywords: Working Capital, operating cycle, Working Capital Assessment methods, Reserve Bank of India

1) **Working Capital:** Working capital means the total amount of circulating funds/ current assets required for the continuous operations of unit on an ongoing basis. In other word for an uninterrupted functioning of a unit at a given capacity, it requires a specified minimum level of current assets namely raw material, stock-in-progress, finished goods and receivables, apart from reasonable cash in hand and certain other current assets.

In other words, working capital is amount required to carry out in day-to-day operations. It can be calculated as:

- Working Capital = Current Assets – Current liabilities

Current Assets, are those, which can be converted into cash within short duration i.e., generally less than one year. It includes inventory, debtors, cash and bank balances, prepaid expenses, loan and advance and marketable investment.

* **Research Fellow, B. R. A. Bihar University, Muzaffarpur, Bihar**

Current Liabilities,are those, which fall due for payment or settlement within a short duration i.e., generally less than one year. It includes creditors, outstanding expenses, tax provision, proposed and unclaimed dividend, short-term loans, bank overdraft and cash credit.

Classification of Working Capital: Working capital can be classified on the basis of concept in to two type.

Gross Working Capital, the funds required for financing the minimum amount total current assets. In the broad sense, the term working capital refers to the gross working capital and represents the amount of fund invested in current assets.

- Gross Working Capital= Only currents Assets
  Net Working Capital or Liquid Surplus, The surplus of long term sources over long term uses as per RBI prescription. In the narrow sense, the term working capital refers to the new working capital. Net Working capital is the excess of current assets over current liabilities.
- Net Working Capital: Current Assets- Current Liabilities

The net working capital should be positive i.e. the current ratio should be sufficiently higher than 1:1. This would signify liquidity and availability of adequate working funds. If in a particular case, the net working capital is negative, the difference will be called the net working capital deficit. Such deficit indicates that funds from current sources (current liabilities) have been diverted for long term use, or loss has been incurred by the firm and unless more funds are brought from long term sources including cash generation, the enterprises may not be survived for long time due to liquidity crunch.

(As per recommendation of Tandon Committee, the bank can also consider sanction of working capital term loan to provide for shortfall in net working capital. Such loan, can be repayable in three to five years.)

2) **Operating Cycle**: Operating cycle or cash cycle or working capital cycle is the time duration for conversion of cash into cash equivalents like raw materials, work-in-progress, finished goods, sundry debtors and thereafter bank into cash.

Steps of working Capital Cycle:

a) Fund, whether owned funds, bank's fund or current liabilities, which are used in purchase and store of raw material and meeting working expenses and expressed in period i.e. **Lead Time.**

b) Raw material being converted into semi-finished goods and then to finished goods i.e. **Production/process cycle.**

c) Value of finished goods stored/ in transit or with selling agents/consignees before these are sold i.e. **Stock holding period.**

d) Finished goods are sold on credit and converted into accounts receivables, when realised, are converted inti cash again and the process repeats itself i.e. **Average collection period.**

Computation: Operating cycle is computed in terms of number of days (sometimes in months).

Operating Cycle = Raw material storage period = Work-in-progress holding period + Finished goods storage period + Debtors collection period (-) Creditors payment period

3) Assessment methods of Working Capital:

a) Traditional Method: The traditional methods of assessment of working capital is based on the operating cycle concept, the length of which is based on a number of factors some of which have already been discussed. The length determines the amount involved in an operating cycle taking into account the level of operations. Hence, for a given sales level, longer the operating cycle period, more the requirement of funds and shorter the period of operating cycle, the lesser the need for working capital. Similarly, for a given length of operating cycle, higher the turnover level, more the working capital needed and vice-versa.

Hence the level of working capital is determined both by the length of the operating cycle and the level of sales. In order to determine the level of working capital, the banker follow the following step….

i. Possibility of achievement of estimated sale (quantity and value) by assessing:
   - Demand and supply position of the product to ensure that the product will find a ready market the demand being less than the supply, would pose problem for achievement of the turnover and there would be more competition.
   - Capacity of the machinery to manufacture the product to ensure that there will not be any problem in manufacture of required quantity, for selling. In the absence of manufacturing facilities, the seller may also go in for purchase of finished goods directly from the market to make up the shortfall in production.
   - Availability of various inputs and utilities namely, raw material stores, consumables, power & fuel, labour etc.
   - Management's overall competence to produce and sell the product.

ii. Familiarise with the production process of the product which will enable to assess the stock in process period and other complications involved in manufacturing process. Since the length of the operating cycle is also determined by the manufacturing process.

iii. Assess the quantity and value of raw material and other inputs/utilities, and also the cost of wages and other manufacturing expenses including depreciation, which are likely to be consumed to produce the required quantity of goods to be sold.

iv. Assess the holding of various current assets, namely raw material, work-in-process, finished goods, receivables and other current assets or expenses, based on the 'Operating Cycle' concept and norms and past trends, if applicable.

v. Assess the level of market credit available, expenses payable and other current liabilities, which will be used as source to finance working capital.
vi. Assess the level of net working capital (surplus of long-term sources over long term uses) available, which should not be less than 25% of total current assets (this is a bench mark).
vii. Work out bank finance to be sanctioned being gap of total current assets less net working capital and other current liabilities.
viii. Sanction the bank credit limits strictly as per the requirement of the activity being financed, without taking into account, loaning aspect, so as to make the sanction project based, rather than loaning power based.

b) Cash Budget Method: In case of seasonal activities, especially in the agro-based sector, the bank finance for working capital is assessed on the basis of monthly cash budget and the relative cash deficiency on a monthly basis. Under this method, all estimated/projected cash receipts (inflow) on a monthly basis is arranged in a tabular form and the monthly cash outflows are also similarly shown against each month. The deficit or surplus of each month is worked out and the peak deficit amount is considered to be the working capital limit to be provided by the bank. The current ratio for this kind of facility is normally 1.33: 1 (1.25:1 for MSE) as a benchmark. Some Banks consider lower ratio on the case-to-case basis depending upon components and quality of current assets and current liabilities.

It is to be borne in mind here that no furthermargin towards contribution by the borrower shall bededucted; otherwise it will not be possible for theborrower to achieve the monthly sales budget mentioned at the beginning of the statement. With a view toensuring that the borrower has maintained the necessary margin contribution, the bank has to obtain the lastaudited Balance Sheet and Profit and Loss account of the borrower, together with the actual Balance Sheet(audited/unaudited) and analyse them both to seewhether the borrowing company has maintained the necessary margin contribution.

It is necessary to understand that any variation in any of the variables of cash inflow and outflow willchange the amount of cash deficit/surplus. The credit officer of the bank is constantly monitoring the operations of the company so as to keep the variations under control.

c) Turnover method (Nayak Committee Recommendations): As per credit policy guideline announced by the Reserve bank of India in April 1993, based on Nayak Committee Recommendations, a set of instructions was issue, which the banks are expected to following respect of assessment of working capital for industrial units.

Norms for inventory and receivables were earlier applicable to all borrowers enjoying aggregate fund-based working capital credit limits of Rs. 10

lakh and above from the banking system before implementation of Nayak Committee Recommendations. Business firms enjoying limits of 10 lakh and above but up to Rs. 50 Lakh were subject to the first method of lending for assessment of their maximum permissible bank finance. But at present, for the credit requirements of units having aggregate fund base working capital credit limit up to Rs. 500 lakh from banking system, the norms for inventory and receivables do not apply.

Instead, these units may be provided working capital limit computed on the basis of minimum of 20% of their projected annual turnover for new as well as existing units.

The Bank are to satisfy themselves about the reasonableness of the projected annual turnover of the applications n the basis o annual statement of account or any other documents such as returns filed with commercial tax/Income tax authorities and also ensure that the estimated growth during the year is realistic.

These units would be required to bring in 5% of their annual turnover, as margin money. In other words, the 25% of the output value should be computed as working capital requirement of which at least $4/5^{th}$ should be provided by the bank, the balance $1/5^{th}$ representing the borrower's contribution towards margin for the working capital.

Assessment of Working Capital under Nayak Committee Recommendation

S.	Particulars	Amount(Rs.)
A	The amount of Projected sales	
B	The Sales Level accepted by the bank	
C	Total Working Capital required at the rate of 25% of the accepted turnover as per (B)	
D	Less the Amount of contribution of borrower minimum at the rate of 5% of the accepted turnover (B) or higher	
E	Finance to be provided by the bank (C-D)	

Hence, in this system, the quantum of working capital is based not on the operating cycle but on the turnover alone. The major difference between the traditional system of assessment of working capital and new system is, that the old system gave weightage not only to the operating cycle of a business concern to fix need-basedcredit limits but to turnover also, which used to fix the quantum of finance taking operating cycle into account.

d) Tondan Committee Recommendations: In July 1974, the study group headed by Shri. P.L.Tandon, The chairman of Punjab National Bank, has framed by Resave Bank of India for guidelines on working capital/ bank credit finance by banks. The recommendations made by above study group are known as Tandon Committee recommendations and final report submitted during 1975 & gave

recommendation, which applicable to borrowers availing fund based working capital limit of Rs. 10 Lakh or More.

The Committee suggested three methods of lending out of which RBI accepted two methods for implementation. Which are as below:

- **First Method:** The Borrower can be allowed maximum bank finance upto 75% of the Working Capital gap (working capital gap denotes difference between total current assts required and amount of finance available in the shape of current liabilities other than short term bank borrowings). The Balance 25% is to be brought in by the borrower as surplus of long-term funds over the long-term outlay.The minimum Current Ratio would be **1.25:1**.
- **Second Method:** The Contribution of borrower has to be 25% of the total current assets build-up instead of working capital gap.

The methods of lending and norms for inventory and receivables, however, are not applicable to all units availing fund based working capital limits from the banking system upto Rs. 200 Lakh as per RBI credit policy guideline of October 1997. The minimum Current Ratio would be **1.33:1**

Other Recommendation of Tondan Committee:

a) No slip back in current ratio, except in case of expansion or diversification is undertaken, full utilization of existing capacity is to be done, on account of abnormal price rise the working capital needs have increased, reduction in level of deposit from public or payment of statutory dues is to be done, etc.
b) Classification guideline for current assets and current liabilities.
c) Identification of excess borrowing, which is to be converted into a working capital term loan repayable in fixed period, taking inti account the cash generation pattern of the unit.
d) Information system, which was modified by chore Committee recommendation.
e) Bifurcation of limit into loan and demand component, which was dropped by chore Committee but again recommended by Jilani Committee in 1995 in the form of Loan Delivery System.

e) Chore Committee Recommendations: The Chore committee (headed by Shri.K.B.Chore), appointed by RBI in April 1979 recommended that all borrowers except sick units having working capital of Rs.50 lacs and over from the banking system must be placed under method-II of lending of Tandon Committee recommendation, which gives current ratio of 1.33:1**.** Although the lower cut-off limit for method II (of Tandon Committee recommendation) is changed from time to time as per RBI guidance, the benchmark current ratio of 1.33:1 under this method remains unchanged. Relaxation to this condition is available to export oriented units; products manufactured by MSME units wherein banks may apply the first method.

According to master circular of Reserve Bank of India,The banks have been advised to put in place loan policies governing extension of credit facilities for the MSE sector duly approved by their Board of Directors (Refer circular RPCD.SME & NFS.BC.No.102/06.04.01/2008-09 dated May 4, 2009). Banks have, however, been advised to sanction limits after proper appraisal of the **genuine working capital requirements** of the borrowers keeping in mind their business cycle and short-term credit requirement. As per Nayak Committee Report, working capital limits to SSI units is computed on the basis of minimum 20% of their estimated turnover up to credit limit of Rs.5 crore.

A **composite loan** limit of Rs.1 crore can be sanctioned by banks to enable the MSME entrepreneurs to avail of their working capital and term loan requirement through Single Window in terms of Master Direction on lending to the MSME sector dated July 24, 2017. All scheduled commercial banks were advised by our circular RPCD.SME&NFS. BC.No.102/06.04.01/2008-09 on May 4, 2009 that the banks which have sanctioned term loan singly or jointly must also sanction working capital (WC) limit singly (or jointly, in the ratio of term loan) to avoid delay in commencement of commercial production thereby ensuring that there are no cases where term loan has been sanctioned and working capital facilities are yet to be sanctioned.

Concluding Remarks:

Banks in India have evolved their own method of lending as they have been given free hand by the Reserve Bank of India to decide their own lending methods. Normally banks use the turnover method (which is also called as Nayak Committee norms) for assessment of working capital limits up to Rs.2 crore (Rs.7.50 Crore for SME). The other two traditional methods of assessment of working capital limits are MPBF (Maximum Permissible Bank Finance) or Cash Budget Method depending upon requirements of the customers. The level of limit for each type of facilities under MPBF method will depend upon on the nature of current assets less suitable margin, within the overall permissible bank finance. Reserve Bank of India, from time to time, prescribes norms for working capital to be financed by banks.

References:

1) Bank Credit Management, N.S. Toor
2) RBI Master Direction on lending to the MSME sector dated July 24, 2017
3) RBI circular RPCD.SME&NFS. BC.No.102/06.04.01/2008-09 on May 4, 2009
4) RBI circular RPCD.SME & NFS.BC.No.102/06.04.01/2008-09 dated May 4, 2009
5) RBI Master Circular on Management od advance.
6) www.rbi.org.in
7) http://www.yourarticlelibrary.com/banking/assessment-of-working-capital-banking/
8) https://bankingschool.co.in/financial-analysis/mpbfcash-budget-methods-of-working-capital-appraisal/

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

परतंत्रता के बीच चेतना का स्वरूप

डॉ0 नविता चौधरी*

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में परधीन भारत की सबसे बड़ी समस्या साम्राज्यवाद और सामंतवाद से जूझने की थी। भारतीय समाज की पराधीनता और मूल्यगत पतन के देशी और विदेशी दोनों कारण मौजूद थे। भारतीय समाज और संस्कृति की जो नई व्याख्या अंग्रेज प्रस्तुत कर रहे थे, उसमें पूर्वाग्रह था। अपनी साम्राज्यवादी दृष्टि के तहत वे भारतीय जनता को असभ्य एवं यहाँ के रजवाड़ों को अयोग्य घोषित कर रहे थे। वे इंगलैंड की आँखों से भारत को देख रहे थे। विसेन्ट स्मिथ ने 1904 ई. में 'अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया' नामक पुस्तक की रचना की, जिसे प्राचीन भारत का पहला व्यवस्थित इतिहास माना जाता है। किंतु इस पुस्तक के एक तिहाई भाग में सिर्फ सिकंदर के आक्रमण का वर्णन है। विलियम जोंस ने भारतीय समाज, इतिहास, धर्म, कला और संस्कृति का अध्ययन किया। वे यहाँ के साहित्य एवं कला से प्रभावित थे। तथापि वे अंग्रेजी सरकार का समर्थन करते थे। उन्होंने लिखा "In these Indian territories,which providence the thrown into the arms of Britain for their protection and and welfare"[1] जोंस भारत के लिए ब्रिटिश शासन की ही वकालत करते रहे। उनके अनुसार ईश्वर ने भारत को अंग्रेजों के सुरक्षित हाथों में सौंप रखा है। इस पर रामविलास शर्मा की टिप्पणी बहुत सटीक है। उन्होंने इसकी काट में कहा – ''ईश्वर के इस कार्य का एक तत्कालीन फल यह मिला कि बंगाल में भारी अकाल पड़ा और उसमें हजारों आदमियों की जाने गईं। लेकिन विलियम जोंस कहते हैं कि यहाँ के लोग इतने समृद्ध हैं कि जल्दी ही उन्होंने अपनी जनसंख्या बढ़ा ली। अकाल का उल्लेख करने पर भी उसके लिए कहीं वह अंग्रेजों की इजारेदारी को दोषी नहीं ठहराते।''[2] पाश्चात्य विद्वानों ने भारतीय इतिहास एवं संस्कृति को हीन दृष्टि देखा तथा भारत के उज्ज्वल भविष्य के लिए अंग्रेजी राज को श्रेष्ठ बताया। लम्बे समय से पराधीन भारतीयों को पराधीनता में ही जीने की आदत पड़ गयी थी। राजनीतिक और आर्थिक पराधीनता ने सामाजिक विकास को तो पतन के कगार पर खड़ा कर दिया था। दूसरी तरफ सांस्कृतिक एवं बौद्धिक परतंत्रता ने भारतीयों को दिग्भ्रमित कर अंधकूप में डाल रखा था। ''भारत की बौद्धिक दासता का एक कुपरिणाम तो यह हुआ कि हमारे बुद्धिजीवी अपने–आपको और अपने अतीत को उन्हीं दार्शनिक विचारों के चश्में से देखने लगे जिनका सिक्का ब्रिटेन के विश्वविद्यालयों तथा अकादमिक संस्थाओं में चलता था। बहुत हाल तक हमारी यही स्थिति रही है।''[3]

हिन्दी–प्रदेश तो पराधीन देश का जातिगत संघर्षों और अंतर्विरोधों से घिरा हुआ प्रदेश था। अतः हिन्दी–समाज में देशी तथा विदेशी पराधीनता के विविध रूप व्याप्त थे। चूँकि हिन्दी–प्रदेश काफी पिछड़ा हुआ था, इसलिए दोनों ही शक्तियों का समाज पर जबर्दस्त दबाव बना हुआ था। आधुनिकता की अवधारणा के तहत मनुष्य को इंगित कर मानवतावादी दृष्टि, एवं जीवन–जगत की नवीन व्याख्या को प्रस्तुत किया गया। किंतु, हिन्दी प्रदेश में आधुनिकता का

* सहायक प्रोफेसर, विजय सिंह पथिक राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कैराना, उ0प्र0

1 रामविलास शर्मा, 'भारतीय साहित्य की भूमिका', राजकमल, 1996, पृ.230

2 वही, पृ.230

3 रविंदर कुमार 'आधुनिक भारत का सामाजिक इतिहास', ग्रंथशिल्पी, नई दिल्ली, पृ.73

आगमन उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक किताबी अधिक था। व्यवहार में यह कम दिखाई पड़ता है। नवीन ज्ञान–विज्ञान एवं समाज के संदर्भ में पाश्चात्य दृष्टिकोण यहाँ कम प्रभावकारी सिद्ध हुई। यही कारण था कि हिन्दी–प्रदेश की सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक संरचना में अभिजात्य वर्ग का वर्चस्व अब तक बना हुआ था। जाति–प्रथा और छुआछूत जैसी समस्या ने समाज को विकृत कर मनुष्य और मनुष्य के बीच की दूरी को खाई में बदल दिया था। जिसे कभी पाटा ही नहीं जा सकता है। हिन्दी–प्रदेश में इस समय पराधीनता की दोहरी मार पड़ी थी। दलितों एवं स्त्रियों पर पारंपरिक सामाजिक व्यवस्था के तहत दोनों उपेक्षित थे और किसी–न–किसी के अधीन जीवन जीने को अभिशप्त थे। सदियों से थोपे गए पारंपरिक रीति–रिवाजों एवं अन्य रूढ़ियों ने मनुष्य की पराधीनता के संजाल में क़ैन कर रखा था।

विदेशी पराधीनता के कारण भारतीय जन–धन–संपत्ति का जबर्दस्त दुरूपयोग हुआ। भारत का धन इंगलैंड गमन करने लगा और भारत भयंकर अकाल की चपेट में आ गया। विक्टोरिया के शासन ने भारतीय अर्थ–व्यवस्था की नींव हिला दी। नयी जमींदारी–प्रथा और राजस्व वसूली के कठोर तरीकों ने हिन्दी–समाज को तबाह कर रख दिया। चूँकि यहाँ की अधिकांश जनता के जीविकोपार्जन का कृषि ही सशक्त आधार है और नब्बे प्रतिशत आबादी इसी पर निर्भर थी। भारत में उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक औद्योगिक क्रांति का आगमन हो चुका था। शहरीकरण एवं औद्योगिकरण की प्रक्रिया के अधीन ग्रामीण जनता को गुमराह कर, उसे फैक्ट्री में नौकरी देने का प्रलोभन देकर खेती की जमीन पर उद्योगों का निर्माण किया जाने लगा।

हिन्दी–प्रदेश के लोगों में अपनी जमीन और जोत के प्रति गहरा लगाव था। किसान जिस खेत में खून–पसीना एक करके काम करता है, उस खेत से उसका भावनात्मक लगाव स्वाभाविक है। दूसरे वे अपने पूर्वजों की जमीन को जीते जी बचाये रखना चाहते थे। यही समाज में उनकी थोड़ी–बहुत पहचान और साख से जुड़ी थी। इसलिए आरंभ में हिन्दी–प्रदेश के लोग औद्योगिकरण के प्रति उदासीन बने रहे।

''हिन्दुस्तान में औद्योगिक क्रांति होने के बदले लाखों आदमी अकाल ओर दुर्भिक्ष में मर रहे थे। अंग्रेजों की आमदनी का मुख्य जरिया इस देश के किसानों की मेहनत थी। अंग्रेज हिन्दुस्तान का सबसे बड़ा जमींदार था, वह सारी जमीन को अपनी सम्पत्ति कहता था।''[4] मशीनीकरण के इस दौर में भारतीय लघु एवं कुटीर उद्योगों का नाश होने लगा। जो कार्य पचास व्यक्ति मिलकर करते थे, उसकी जगह नयी तकनीकी मशीनों का प्रयोग किया जाने लगा। परिणामस्वरूप लोग हजारों की संख्या में बेरोजगार होते चले गए। अंग्रेज यहाँ के व्यापारियों से कच्चा माल सस्ते से सस्ते दामों में खरीदकर इंगलैंड भेज देते थे और वहाँ से तैयार माल भारत के बाजार में लाकर बेचा जाता था। उपभोक्ताओं का आकर्षण विदेशी वस्तुओं के प्रति अधिक होता है। कारण यह था कि एक तो इंगलैंड से बनी वस्तु उपभोक्ताओं के लिए नयी चीज होती थी, दूसरे, भारतीय कारीगर तकनीकी कमी की वजह से वैसी चमक–दमक नहीं दे पाते थे जो इंगलैंड से बनी वस्तुओं में होती थी। उदाहरण के लिए करघे पर बुना गया कपड़ा और मिल के कपड़ों में बहुत अंतर होता है। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हिन्दी समाज की सामाजिक संरचना एवं सांस्कृतिक पीठिका ग्रामीण थी। ग्रामीण परिवेश से यहाँ आशय आचार–विचार एवं कार्य–प्रणाली से है। दिल्ली को छोड़कर संपूर्ण हिन्दी–प्रदेश में गाँवों की संख्या अधिक थी। हिन्दी प्रदेश के शहर अगर गाँव से अलग थे तो सिर्फ बिजली–पानी आदि सुविधाओं के अर्थ में।

---

[4] रामविलास शर्मा, 'परंपरा का मूल्यांकन', राजकमल, नई दिल्ली, 1995, पृ.25

सामाजिक ढाँचे में किसी प्रकार का फ़र्क नहीं था। ग्रामीण परिवेश में पलने वाले कारीगर दस्तकार लोहार, सुनार, कपड़ा बुनकर आदि की अपनी दुनिया एक जैसी थी, जो पूँजीवादी समाज से बिल्कुल अलग थी। इनके परंपरागत लघु उद्योग एक स्थायी आर्थिक बंदोबस्त था। किंतु आधुनिक उद्योग–धंधों ने इस ग्रामीण अर्थव्यवस्था को नष्ट कर इन्हें पंगु बना दिया। हिन्दी–प्रदेश की यह आर्थिक पराधीनता बीसवीं शताब्दी तक बनी रही।

भारतीय किसानों की स्थिति उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक बड़ी त्रासद थी। भूखे और अभावों में जीने वाले किसानों को अपने ही खेत में अनाज उपजाने की भी स्वतंत्रता नहीं थी। उनसे ज़बरन नील की खेती करवायी जाती थी। इसप्रकार खेती वाली उपजाऊ ज़मीन को बंजर बना दिया जा रहा था। हिन्दी प्रदेश में तो नील की खेती बहुत दिनों तक चलती रही। ''1859 और 1862 में बंगाल में किसानों ने जो संघर्ष किया, उससे नील की खेती करना बंद हो गया। लेकिन बिहार में नील की खेती बराबर कराई जाती रही और उसके क्षेत्र का विस्तार होता रहा। जो बहुत–सी पूँजी बंगाल में लगायी जाती, वह 1862 के बाद बिहार में लगाई गई। 1898 में जर्मनी के वैज्ञानिकों ने नकली रंग ईजाद किया। उसके बाद नील की खेती का ह्रास हुआ। 1860 के पहले तक अंग्रेज ठेकेदार छोटे ज़मींदारों और किसानों से नील की खेती कराते थे लेकिन 1860 के बाद बिहार में वे अधिकाधिक जमींदार बनते गए। वे जमीन पट्टे पर जमींदारों को उठा देते थे और इस तरह किसानों को बाध्य करते थे कि वे नील की खेती करें या बेदखल हो जाएँ।'' बिहार में नील की खेती बीसवीं शताब्दी तक होती रही। गाँधी जी के 1917 के चम्पारण विद्रोह के बाद इसकी समाप्ति हुई। इस प्रकार हिन्दी प्रदेश में किसानों की तबाही का एक बहुत बड़ा कारण नील की खेती की बाध्यता थी।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के हिन्दी समाज में राजनीतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक पराधीनता के साथ–साथ धार्मिक पराधीनता भी व्याप्त थी। अंग्रेज हिन्दू–धर्म की बुराइयों को व्यक्त कर रहे थे, और जनता के समक्ष ईसाई–धर्म की श्रेष्ठता का प्रचार कर रहे थे। वे हिन्दू समाज में व्याप्त रूढ़ियों, सती–प्रथा, बाल–विवाह, दहेजप्रथा, बलिप्रथा, बहुविवाह जातिगत संस्कारों श्राद्ध के अवसर पर किये जानेवाले खर्च, समुद्री यात्रा पर प्रतिबंध आदि की खूब आलोचना कर रहे थे। हिन्दी–प्रदेश का समाज जहाँ धार्मिक कट्टरता व्याप्त थी, जहाँ धर्म के नाम पर दंगे छिड़ जाया करते थे, पर अंग्रेज उसके धर्म को हेय दृष्टि से देखते थे और वे पराधीनता में जीने के कारण कुछ नहीं कर सकते थे। उनके सामने उनके धर्म की आलोचना की जा रही थी, उनके पूज्य पुरुषों का अपमान किया जा रहा था, किंतु उन्हें सबकुछ बर्दाश्त करना पड़ रहा था।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक भारतीय जनता अपने परिवेश के दुरावस्था के प्रति सतर्क होने लग गयी। वह अंग्रेजों के साम्राज्यवादी नीति और शोषण की प्रवृत्ति का परिणाम भुगत रही थी। अतः बौद्धिक–वर्ग में धीरे–धीरे जागृति आने लग गयी। भारतीय अर्थतंत्र पर ब्रिटिश उपनिवेशवाद का पूर्ण नियंत्रण हो चुका था। परिणामस्वरूप भारत का धन विदेश गमन करने लगा और भारत की जनता गरीबी और अकाल से छटपटाने लगी। अंग्रेजों के संरक्षण में स्थापित मिलों, कारखानों के कारण यहाँ का कच्चा माल भी बाहर जाने लगा और विदेशी मालों से यहाँ के बाजार पट गए। फलतः यहाँ अंग्रेजी–राज में हिन्दी प्रदेश की सबसे अधिक दुर्दशा हुई। मुगल–काल में हिन्दी प्रदेश काफी वैभवशाली था। कुछ और हो या न हो कम से कम रोटी, दाल, चावल, घी, दूध की समस्या इस प्रदेश की नहीं थी। किंतु अंग्रेजी–राज का उपहार ये रहा कि जनता भूखों मरने लगी। इसप्रकार हिन्दी–क्षेत्रकी जनता में भी अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध असंतोष पनपने लगा। भारत की गिनती गरीब देशों में होती है, जबकि यहाँ प्राकृतिक सम्पदाओं

और खनिज तत्वों का भंडार है। भारत की विडम्बना यह है कि ''उसकी धरती शक्तिशाली है और जनता गरीब है।''[5] अंग्रेजों के आगमन से पूर्व भारत की आर्थिक स्थिति काफी अच्छी थी। 1757 में जब लार्ड क्लाइव बंगाल आया तो मुर्शिदाबाद के विषय में उसने लिखा ''यह शहर उतना ही बड़ा, आबादी से भरा–पूरा और धनी है जितना की लंदन! फर्क इतना ही है कि यहाँ के लोगों के पास लंदन के मुकाबले कहीं ज्यादा धन–सम्पत्ति है।''[6] भारत आने वाले विदेशी यात्री भी भारत की सम्पदा का वर्णन मुक्त कंठ से करते थे। सत्रहवीं शताब्दी में टर्नियर ने भारत की यात्रा की थी और भारत के विषय में लिखा था ''छोटे–से–छोटे गाँवों में भी चावल, आटा, दूध, मक्खन, दाल, साग, तरकारी, शक्कर, सूखी और गीली मिठाइयाँ, इफरात से मिल जाती है।''[7] इसी प्रकार सत्रहवीं शताब्दी में ही फ्रांसीसी यात्री बर्नियर ने बंगाल की यात्रा दो बार की और बंगाल को 'मिश्र से भी धनी प्रदेश बताया।''[8] इसप्रकार भारतीय जनता अब यह समझने लगी थी कि जब तक अंग्रेजी हुकूमत रहेगी, उसका भरण–पोषण भी मुश्किल हो जाएगा। जनता के असंतोष का एक बहुत बड़ा कारण ईसाई–धर्म का प्रचार था। भारत जैसे धर्म–प्रधान देश के नागरिकों को जबरन ईसाई बनाने के प्रयास से जनता में खलबली मची हुई थी। सरकारी नौकरी करने वाले लोगों के बीच हिन्दू–धर्म और ईसाई धर्म का अंतर स्पष्ट दिखाई दे रहा था। हिन्दू धर्म को हेय दृष्टि से देखा जाता था एवं ईसाई धर्म–ग्रहण करने पर उसकी पदोन्नति कर दी जाती थी। भारतीय जनता के लिए धार्मिक उत्पीड़न सरकार का तख्ता पलटने के लिए काफी है। 'ईस्ट इंडिया कंपनी' के अध्यक्ष मैंगल्स ने हाउस ऑफ कॉमन्स में दिये अपने भाषण में कहा था, ''दैव योग से भारत का विस्तृत साम्राज्य ब्रिटेन को मिला है ताकि ईसाई धर्म की पताका भारत के इस छोर से दूसरे छोर तक फहरा सके। प्रत्येक व्यक्ति को शीघ्रातिशीघ्र समस्त भारतीयों को ईसाई बनाने के महान कार्य को पूर्णतया सम्पन्न करने में अपनी समस्त शक्ति लगा देनी चाहिए।''[9] इसी प्रकार मेजर एडवर्ड्ज ने भी कहा, ''भारत पर हमारे अधिकार का अंतिम उद्देश्य देश को ईसाई बनाना है।''[10] हिन्दी–प्रदेश की जनता इस धार्मिक उत्पीड़न से सरकार के विरुद्ध खड़ी होने लगी। अमेरिकन मिशनरी सोसाइटी ने आगरा में एक मुद्रणालय लगाया था, जहाँ मूर्ति–पूजा की खिल्लियाँ उड़ायी जाती थीं, एवं हिन्दू देवी–देवताओं का अपमान किया जाता था।''[11]

हिन्दी प्रदेश की जनता एवं राजाओं में धीरे–धीरे अंग्रेजी राज के प्रति असंतोष बढ़ता जा रहा था। भारतीय राजाओं के सारे अधिकार छीन लिये गए थे। भारतीय रियासतों पर अब कम्पनी का पूर्ण नियंत्रण था। हिन्दी प्रदेश के राजाओं के असंतोष का एक कारण तो डलहौजी के राज्य विलय की नीति थी, जिसके अंतर्गत 1849 में जैतपुर, 1850 में बघाट, 1852 में उदेपुर, 1853 में झाँसी तथा 1856 में अवध का विलय कर दिया गया। असंतोष का दूसरा प्रमुख कारण, राजाओं से दत्तक–पुत्र को उत्तराधिकारी बनाने का अधिकार छीन लिया गया था। इस प्रकार, राजनीतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं धार्मिक पराधीनता एवं उत्पीड़न ने हिन्दी–प्रदेश के लोगों में कंपनी के

---

5 रामविलास शर्मा, 'भारतीय संस्कृति और हिन्दी–प्रदेश', भाग–1, किताबघर, 1999, पृ.353–54

6 रामविलास शर्मा, 'आज का भारत', पृ.39

7 वही, पृ.39

8 वही, पृ.40

9 बी.एल. ग्रोवर और यशपाल, 'आधुनिक भारत का इतिहास', एस. चंद एण्ड कंपनी लि., पृ.190

10 वही

11 वही

विरुद्ध एक आग सुलग रही थी। भारतीय सैनिकों को समुद्री यात्रा तथा चर्बी वाले कारतूस के प्रयोग के लिए बाध्य किया जाता था। इससे हिन्दू एवं मुसलमानों की धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँची। परिणामस्वरूप हिंदी–समाज में जो असंतोष पनप रहा था, वह 1857 का भयानक सैनिक विद्रोह के रूप में फूट पड़ा। 1857 का विद्रोह सिर्फ सैनिक विद्रोह ही नहीं था, बल्कि वह संपूर्ण हिन्दी प्रदेश का विद्रोह था, जो अन्ततः राष्ट्रीय आंदोलन में परिणत हो गया। गदर का मुख्य केन्द्र मेरठ, पंजाब, दक्षिण में नर्मदा नदी तक, राजस्थान, अवध, झांसी एवं बिहार था। ''उत्तर भारत और मध्य भारत में हर जगह पर सिपाहियों का यह गदर जनता के विद्रोह में बदल गया। आम आदमी अक्सर कुल्हाड़ी और भाले, तीर–धनुष, लाठी–दरांती और देशी बंदूकों से लड़ा। खास तौर से आज के उत्तर प्रदेश और बिहार में किसानों और कारीगरों ने उस आंदोलन में व्यापक पैमाने पर हिस्सा लिया था और उन्हीं की वजह से विद्रोह को वास्तविक शक्ति मिली थी। एक अनुमान के अनुसार अंग्रेजों ने लड़ते हुए अवध में डेढ़ लाख और बिहार में एक लाख नागरिक शहीद हुए थे।''[12] गदर में किसान, सिपाही, दस्तकार बेदखल जमींदार अवध की बेगम, झांसी की रानी, बिहार के कुंवर सिंह आदि सीाी एकजुट होकर एक झंडे के नीचे अपनी वीरता का प्रदर्शन कर रहे थे। हिन्दू–मुस्लिम की एकता ने गदर की गति को और तेज कर दिया। ''1857 के विद्रोह की शक्ति का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष हिन्दू–मुस्लिम एकता थी। सिपाहियों, आम लोगों और उनके नेताओं में, हिन्दुओं और मुसलमानों में पूरा सहयोग था। सारे विद्रोहियों ने एक मुस्लिम बहादुरशाह ज़फ़र को अपना सम्राट स्वीकार किया। हिंदू और मुसलमान व्रिदोही सिपाहियों ने एक–दूसरे की भावना का आदर किया। प्रमाध के लिए विद्रोह जहाँ कहीं भी सफल हुआ वहाँ हिन्दुओं की भावनाओं के प्रति आदर प्रदर्शित करने के लिए गोहत्या बंद करने के आदेश दिये गये इसके अलावा सभी स्तरों पर हिंदुओं और मुसलमानों का पर्याप्त प्रतिनिधित्व था।''[13]

उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ में आधुनिक शिक्षा–प्रणाली एवं पाश्चात्य सांस्कृतिक दृष्टि ने भारतीय समाज को प्रभावित किया। पाश्चात्य शिक्षा–प्रणाली जीवन–जगत के प्रति नवीन दृष्टिकोण का परिचायक था। इस शिक्षा–प्रणाली के अंतर्गत देश–काल समाज आदि की व्याख्या तर्कपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया गया। ''अठारहवीं शताब्दी के अंत में इस देश को जिस पाश्चात्य ज्ञान–विज्ञान के संपर्क में आना पड़ा, वह भारत के ज्ञान–विज्ञान से प्रकृति में ही भिन्न था। भारतीय ज्ञान गतानुगतिक और परंपरामुक्त हो चला था, जबकि पाश्चात्य ज्ञान–विज्ञान नये जीवन–संदर्भों की ताजगी लिये था।''[14] हिन्दी प्रदेश नवीन शिक्षा–पद्धति के संपर्क में 19वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध तक आने लग गया था, जिसके कारण हिन्दी समाज के लोगों में पराधीनता की बेड़ियों की पहचान एवं वैयक्तिक स्वतंत्रता का बोध होने लग गया था। स्त्री–शिक्षा पर विशेष जोर दिया जा रहा था, जो सामाजिक चेतना के उदय में सबसे कारगर सिद्ध हुई। साथही बंगाल के नवजागरण का प्रभाव भी हिन्दी क्षेत्र पर पड़ा। बंगाल में नवजागरण का आरंभ राजा राममोहन राय से होता है। ''राम मोहन प्राच्य और पाश्चात्य चिंतन के संश्लिष्ट (मिले–जुले) रूप के प्रतिनिधि थे। वे विद्वान थे और संस्कृत, फारसी, अरबी, अंग्रेजी, फ्रांसीसी, ग्रीक और हिब्रू सहित एक दर्जन से अधिक भाषाएँ जानते थे।''[15] वे हिन्दू धर्म के रूढ़ियों और धार्मिक अंधविश्वासों के

---

12 बिपन चंद्र, अमलेश त्रिपाठी, वरुण दे, 'स्वतंत्रता संग्राम', नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिली, 1993, पृ.43

13 वही, पृ.44

14 डॉ. नगेन्द्र, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', पृ.432

15 बिपन चन्द्र, एनसीईआरटी की पुस्तक, 1982, पृ.84

विरोधी थे। उन्होंने एकेश्वरवाद का समर्थन किया और 1809 में 'एकेश्वरवादियों को उपहार' नामक पुस्तक फारसी भाषा में लिखा। 1828 में इन्होंने 'ब्रह्म समाज' की स्थापना की, जिसका उद्देश्य हिन्दू–धर्म की रूढ़ियों को समाप्त कर एकेश्वरवाद की प्रचलित करना था। ब्रह्म–समाज के द्वारा जो सुधारात्मक कार्य किया जा रहा था, उसमें तर्कशक्ति एवं वेद, उपनिषद् दोनों को आधार बनाया गया था। उन्होंने स्त्रियों की दुर्दशा में खेद प्रकट किया। सती–प्रथा का विरोध एवं विधवा–विवाह का समर्थन किया। इन सब कार्यों का प्रभाव हिन्दी–समाज के शिक्षित वर्ग पर पड़ रहा था।

ए.आर. देसाई ने लिखा है ''प्रबुद्ध हिन्दू बुद्धिजीवी वर्ग ने अंग्रेजों द्वारा लाई गई आधुनिक शिक्षा पाई थी और इस शिक्षा के माध्यम से इस वर्ग के लोग आधुनिक पाश्चात्य, प्रजातांत्रिक विचारधाराओं के संपर्क में आए थे। इस वर्ग की उदीयमान राष्ट्रीय चेतना का 1828 में स्थापित ब्रह्म समाज के रूप में धार्मिक प्रस्फुटन हुआ।''[16] देवेन्द्रनाथ ठाकुर एवं ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने स्त्री–शिक्षा एवं विधवा पुनर्विवाह तथा बहुविवाह के उन्मूलन के लिए लम्बे समय तक संघर्ष किया। विद्यासागर ने बाल–विवाह की समाप्ति एवं विधवा–विवाह के समर्थन में आंदोलन चलाया। इस कार्य में भारतीय समाज के जड़ लोगों को समझाने के लिए उन्होंने शास्त्र का सहारा लिया। उन्नीसवीं शताब्दी के समाज–सुधारक के सामने समस्या यह थी कि परंपरागत भारतीय समाज में नयी–दृष्टि और चेतना का संचार कैसे किया जाए? इसके लिए समाज–सुधारक धर्म–ग्रंथों से उदाहरण पेश किया करते थे। ए.आर. देसाई – ''विभिन्न समाज सुधार दलों ने विभिन्न दृष्टियों से जाति व्यवस्था पर आघात किया। ब्रह्म समाज के संस्थापक राजा राममोहन राय ने हिंदुओं के प्राचीन समाजशास्त्रीय धर्मग्रंथ 'महानिर्वाण तंत्र' की मदद से यह सिद्ध किया कि जाति व्यवस्था की अब कोई आवश्यकता नहीं।''[17]

भारतीय समाज में नवजागरण के कार्य को आगे बढ़ाने में प्रेस के आगमन का सर्वाधिक योगदान है। शुरुआत में प्रेस का उपयोग धार्मिक पुस्तक छापने के लिए किया जाता था। भारत में सर्वप्रथम 1550 में पुर्तगालियों ने ईसाई धर्म से संबंधित पुस्तक छपवाने के लिए इसका उपयोग किया। 1674 में ईस्ट इंडिया कम्पनी के द्वारा बंबई में मुद्रण–कार्य किया गया। अठारहवीं शताब्दी तक मद्रास, कलकत्ता, हुगली, बंबई आदि सभी जगहों पर प्रेस की स्थापना की गयी।[18] ए. आर. देसाई ने इस संदर्भ में कहा है कि ''भारत में छापे की मशीन की शुरूआत यहाँ के लोगों के जीवन में क्रांतिकारी महत्त्व की घटना थी। उनमें जब राष्ट्रीय चेतना का जागरण और विकास हुआ तो राष्ट्रीय पत्र–पत्रिकाओं का जन्म हुआ।''[19]भारत में सर्वप्रथम पत्र निकालने का काम राजा राममोहन राय ने किया। वे 'राष्ट्रीय प्रेस' के संस्थापक थे। इस प्रकार पत्र–पत्रिकाओं के प्रकाशन का कार्य आरंभ हुआ। राजा राममोहन राय ने 'बंगदूत' नामक पत्रिका का प्रकाशन कलकत्ता से 1829 में किया। इसी प्रकार 1821 में 'संवाद कौमुदी' नामक साप्ताहिक पत्र में हिन्दू–धर्म में व्याप्त रूढ़ियों, सतीप्रथा, बाल विवाह आदि के विरोध में लिखना आरंभ किया, जिससे कट्टरपंथी भारतीय समाज उनके खिलाफ़ खड़ा हो गया था। यहाँ तक कि उनकी माँ भी उनके विरोध में थी। इस प्रकार प्रेस के आगमन ने पत्र–पत्रिकाओं के प्रकाश के साथ जन–जागरण का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। हिन्दी का पहला समाचार पत्र 'उदत्त मार्तण्ड' 1826 में प्रकाशित हुआ। इसके बाद

---

16 ए. आर. देसाई, 'भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि', 1996, पृ.247

17 ए. आर. देसाई, 'भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि', 1996, पृ.247

18 वही, पृ.436

19 ए. आर. देसाई, 'भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि', पृ.178

शिवप्रसाद 'सितारेहिंद' ने 1845 में 'बनारस अखबार' तथा राजा लक्ष्मण सिंह ने 1860 में 'प्रजा हितैषी' नामक पत्र का प्रकाशन किया। पत्रों के माध्यम से समकालीन समस्याओं को इंगित कर जनता को जागरूक किया जा रहा था। धीरे–धीरे साहित्यिक गतिविधियों का विस्तार होने लगा। भारतीय साहित्य, संस्कृति, अर्थशास्त्र, इतिहास, राजनीतिशास्त्र, विज्ञान, दर्शनशास्त्र इत्यादि पर खुलकर लिखा जाने लगा, एवं प्रेस की सुविधा से पुस्तकों के मुद्रण का कार्य लगातार बढ़ने लगा। साथ ही, अनुवाद–कार्य पर भी ज़ोर दिया जा रहा था। 1833 में आगरा में 'स्कूल बुक सोसाइटी' की स्थाना हुई तथा 'कथासार' नामक पुस्तक प्रकाशित की गयी। 'कथासार' मार्शमैन के प्राचीन इतिहास का अनुवाद था। इस प्रकार प्रेस के आगमन ने चेतना का स्वरूप निर्मित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

उन्नीसवीं शताब्दी का काल कई कारणों से भारतीय साहित्य एवं विश्व के अन्य साहित्यों में अपनी अहम भूमिका रखता है। रीतिकाल की जड़ता, दरबारीपन एवं घोर श्रृंगारिकता के विरुद्ध आधुनिक–काल का आगमन अपने में एक क्रांतिकारी परिवर्तन था। भक्तिकालीन साहित्य की लोकोन्मुखता आधुनिक–काल में नये संदर्भों में पुनः दृष्टिगोचर हुई। संपूर्ण मध्यकाल में जन और अभिजन का द्वंद्व गहरे स्तर पर व्याप्त था। पूर्वमध्यकालीन साहित्य जन का पक्षधर था तो उत्तर मध्यकालीन साहित्य में ठीक इसके विपरीत अभिजन के प्रति आकर्षण। उन्नीसवीं शताब्दी का सर्वाधिक महत्त्व आधुनिकता और नवजागरण के द्वारा नवीन भावबोध के उदय का है। रीतिकाल अपने युग और समाज से कटकर प्रेम के स्थल और मांसल चित्रण पर ही जोर देता रहा। तथा रीति और श्रृंगारिक प्रवृत्ति के अंतर्गत काव्य–रचना को ही उत्कृष्ट मानता रहा। बारहमासा और नखशिख–वर्णन काव्य का लक्ष्य बन गया था। इस प्रकार दरबार में पनपने वाला रीतिकालीन साहित्य जन–जीवन और युगीन संदर्भों से कटा हुआ एक ख़ास वर्ग के सीमित दायरे तक ही केंद्रित था। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक आते–आते स्थितियाँ बदलीं और साहित्य के केन्द्र में मनुष्य आ गया। मनुष्य के दुःख–दर्द, इच्छाओं, आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति साहित्य में होने लगीं। इस दिशा में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रयास भारतेंदु हरिश्चन्द्र का रहा है। भारतेंदु ने साहित्य को संस्कृत समाज (शिक्षित समाज) के बीच से निकालकर 'लोक' से जोड़ने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। वर्षों से उपेक्षित निम्न–वर्ग को मुख्य–धारा में लाने का सफल प्रयास भारतेंदु ने किया। शुक्ल जी के शब्दों में ''जीवन और साहित्य के बीच जो विच्छेद पड़ रहा था, उसे भारतेन्दु ने दूर किया।''

इस काल में भारतीय समाज सामंतवाद और साम्राज्यवाद जैसी दो जटिल समस्याओं के बीच जकड़ा हुआ था। लंबे समय तक गुलामी में रहने के कारण भारतीय मानसिकता भी गुलाम हो चुकी थी। लोग इस गुलामी से उबरने के बजाय उसे नियति मानकर उसी में जीने के आदी हो गए थे। किसानों को चूस–चूस कर ज़मींदार दिन–प्रतिदिन समृद्ध और शक्तिशाली हो रहे थे, परंतु समाज का एक बहुत बड़ा हिस्सा ग़रीबी और भुखमरी का शिकार हो रहा था। अंग्रेजों ने सामंतीप्रथा को बढ़ावा दिया और नयी सामंती व्यवस्था की स्थापना की जिसके तहत वे ज़मींदारों के ज़मींदार थे।''इसलिए रामविलास शर्मा ने क्रम देते हुए लिखा है – ''एक अंग्रेजों ने पुरानी सामंती व्यवस्था की जगह नयी सामंती–व्यवस्था कायम की। पुरानी बड़ी–बड़ी रियासतों के राजाओं और नवाबों को उन्होंने अपनी कठपुतलियाँ बनाकर रखा।

दो : नयी जमींदारियाँ काम कीं, जहाँ वे जमींदार को बेदखल कर सकते थे। जमींदार को यह छूट थी कि सरकार को निश्चित मालगुजारी दे, किसान से चाहे जितनी रकम वसूल करें।

तीन : माल गुजारी बेहिसाब बढ़ा दी और किसान बुरी तरह कर्ज़ के बोझ से दब गये।

चार : सारे देश की ज़मीन पर अपना इजारा कायम किया और इस तरह वे भारत के सबसे बड़े जमींदार बन बैठे। पाँचवाँ : साहूकारों और जमींदारों के तथा अपने हितों की रक्षा के लिए उन्होंने कचहरी–अदालत से लेकर पुलिस और फ़ौज तक सारे साधनों का पूरा उपयोग किया।''

सामंती–व्यवस्था का सर्वाधिक कठोर और क्रूर रूप हिन्दी प्रदेश में ही दृष्टिगत होता है। बंगाल, महाराष्ट्र या दक्षिण भारत के राज्यों में इतनी अधिक भुखमरी नहीं थी, जितनी उत्तरी भारत के गाँवों में थी। इसका एक कारण तो यह है कि हिन्दी प्रदेश (उत्तर भारत) की अधिकतम जनता कृषि पर निर्भर थी तथा खेती में अपना संपूर्ण श्रम लगाने के बावजूद उत्पादन के कुछ हिस्से पर ही किसानों का अधिकार रहा। बंगाल, दक्षिण भारत अथवा समुद्री तट वाले राज्यों में कृष्टि के साथ–साथ व्यापार जीविका का प्रमुख साधन था। दूसरा महत्त्वपूर्ण कारण बंगाल और दक्षिण–भारत का समाज उत्तर–भारत की तुलना में अधिक विकासशील था। पारंपरिक रूढ़ियाँ और दैवीय मान्यताएँ, भाग्यवाद जितना हिन्दी–प्रदेशों में प्रचलित था उतना भारत के किसी और क्षेत्र में नहीं भारतीय समाज जाति और धर्म प्रधान है। अतः समाज की सारी गतिविधियाँ जाति और धर्म के आधार पर तय होती हैं। हिन्दी–समाज में भी वर्गभेद, छुआछूत आदि बुराइयाँ भयंकर रूप से व्याप्त थीं। दूसरी ओर धर्म की आड़ में पाखंड और व्याभिचार पल रहा था। वर्ण–व्यवस्था और धर्म की परंपरागत व्याख्या (जिसमें ब्राह्मणों का वर्चस्व) लोगों के बौद्धिक विकास में सबसे बड़ी बाधक थी। समाज के सर्वांगिक विकास के लिए व्यक्ति के सोच में परिवर्तन आवश्यक था। भारतीय अर्थतंत्र को प्रभावित करने में सामंती–व्यवस्था के साथ–साथ प्रदेशगत संकीर्णता का प्रभाव भी हावी रहा। हिन्दी समाज में व्याप्त इसी जमींदारी–प्रथा से 'होरी' का जन्म हुआ और दूसरी ओर इसी संकीर्ण मानसिकता और मध्यम वर्गीय **मरजाद** की समस्या के तहत 'होरी' बनने को विवश था।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में शिक्षा का प्रचार–प्रसार हुआ तथा भारत पश्चिमी ज्ञान–विज्ञान के संपर्क में आ गया। अब भारतीय जनता अपने परिवेश की संत्रासपूर्ण स्थिति के प्रति सजग हुई तथा इससे निकलने का प्रयास करने लगी। अंग्रेजी शासन के खिलाफ भारतीयों में एक आक्रोश पनप रहा था, जो 1857 के सिपाही विद्रोह के रूप में फूट पड़ा। रामविलास शर्मा के अनुसार, हिन्दी प्रदेश में नवजागरण का दूसरा चरण भारतेंदु युग, तीसरा द्विवेदी युग तथा चौथा छायावाद युग बताया है। हिन्दी–प्रदेश में नवजागरण के लिए भारतेंदु ने नाटकों को प्रमुख माध्यम बनाया। उन्होंने नाटकों के लेखन के साथ–साथ इनके मंचन का भी कार्य किया। भारतेन्दु मंडल के लोगों ने रचनाकार और समाज–सुधारक दोनों का कार्य किया। भारतेन्दु ने राजनीति, साहित्य, साहित्य और संस्कृति चारों क्षेत्रों में नवजागरण का कार्य किया। राजनीति के स्तर पर अंग्रेजी सत्ता का विरोध, सामाजिक स्तर पर ब्राह्मणवाद तथा सामंतवाद का विरोध, साहित्य में खड़ी बोली गद्य से लेकर हिन्दी की समस्त विधाओं का जन्म एवं पत्र–पत्रिकाओं के प्रकाशन द्वारा भारतीय जनता की चेतना को जगाने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। भारतेन्दु की रचनाओं में लोक–भाषा में हिन्दी–प्रदेशों का समाज और लोक–संस्कृति की ही अभिव्यक्ति हुई है।

संदर्भ :

1. रामविलास शर्मा, 'भारतीय साहित्य की भूमिका', राजकमल, 1996, पृ. 230
2. रविंदर कुमार 'आधुनिक भारत का सामाजिक इतिहास', ग्रंथशिल्पी, नई दिल्ली, पृ.73
3. रामविलास शर्मा, 'परंपरा का मूल्यांकन', राजकमल, नई दिल्ली, 1995, पृ.25

4. सुमित सरकार, 'आधुनिक भारत', राजकमल, 1992, पृ.48
5. रामविलास शर्मा, 'भारतीय संस्कृति और हिन्दी–प्रदेश', भाग–1, किताबघर, 1999, पृ. 353–54
6. रामविलास शर्मा, 'आज का भारत', पृ.39
7. बी.एल. ग्रोवर और यशपाल, 'आधुनिक भारत का इतिहास', एस. चंद एण्ड कंपनी लि., पृ. 190
8. बिपन चंद्र, अमलेश त्रिपाठी, वरुण दे, 'स्वतंत्रता संग्राम', नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिली, 1993, पृ.43
9. डॉ. नगेन्द्र, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', पृ.432
10. बिपन चन्द्र, एनसीईआरटी की पुस्तक, 1982, पृ.84
11. ए. आर. देसाई, 'भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि', 1996, पृ.247
12. शुक्ल, आचार्य, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास'
13. ब्रिटिश सरकार ने उत्तम राजस्व की वसूली के लिए ज़मींदारी, महलवाड़ी और रैयतबाड़ी तीन पद्धतियां लागू की थीं।
14. रामविलास शर्मा 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण' (भूमिका भाग), राजकमल प्रकाशन, 1977, पृ.14

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

मानसिक विकलांगता

डॉ0 आमोद कुमार सिंह*

मानसिक विकलांगता एक व्यापक विकृति है, जो 18 वर्ष की आयु से पहले दो या दो से अधिक रूपांतरित व्यवहारों में और महत्वपूर्ण रूप से संज्ञानात्मक प्रक्रिया के विकार और न्यूनता के रूप में दिखता है। ऐतिहासिक रूप में इसे बौद्धिक क्षमता (आईक्यू) के 70 के भीतर होने के रूप में परिभाषित किया जाता है। कभी इसे लगभग पूरी तरह अनुभूति पर केंद्रित माना जाता था, पर अब इसकी परिभाषा में मानसिक क्रियाकलाप से संबंधित एक घटक और अपने वातावरण में व्यक्ति के कार्यात्मक कौशल दोनों को शामिल किया जाता हैं।

अनुक्रम

संकेत तथा लक्षण, कारण, संन्दर्भ
निदान
बुद्धि 70 से नीचे
अनुकूली व्यवहार की दो या अधिक क्षेत्रों में महत्वपूण सीमांए
इस बात के सबूत हैं कि सीमांए बचपन में ही स्पष्ट हो जाती हैं।

संकेत तथा लक्षण

मानसिक विकलंगता वाले बच्चों की तुलना में बाद में बैठन, घुटनों के बल चलना और पैरों पर चलना या बोलना सीख पाते हैं। मानसिक विकलांगता वाले वयस्कों और बच्चों दोनों में निम्नलिखित विशेषताएं देखी जा सकती हैः

- मोखिक भाषा के विकास में देरी
- स्मृति कौशल की न्यून्ता
- सामाजिक नियमों को सीखने में कठिनाई
- समस्या का हल करने के कौशल में कठिनाई
- स्वयं–सहायता या खुद अपनी देखभाल करने की क्षमता जैसे कौशल के अनुकूल व्यवहार के विकास में देरी.
- सामाजिक निषेध का अभाव

संज्ञानात्मक कामकाज की सीमाएं मानसिक विकलांगता वाले बच्चे में एक सामान्य बच्चे की तुलना में धीमी गति से सीखने और विकसित होने का कारण बनती हैं। ये बच्चे भाषा सीखने, सामाजिक कौशल विकसित करने और अपने निजी जरूरतों जैसे कपड़ा पहनने या खाने जैसी जरूरतों का ख्याल रखने मे ज्यादा समय ले सकते हैं। वे सीखने में ज्यादा समय ले सकते हैं और पुनरावृत्ति की जरूरत होती है और उनके सीखने के स्तर दक्षता की जरूरत पड़ सकती है। फिर भी, वस्तुतः लगभग हर बच्चा सीखने, विकसित होने और समुदाय में हिस्सा लेने वाला एक सदस्य बन जाता है।

बचपन के प्रारंभ में हल्की मानसिक विकलांगता (आईक्यू 50–69) समझी नहीं जा सकती और जब तक कि बच्चे स्कूल नहीं जाते, इसकी पहचान नहीं हो सकती. यहां तक कि जब

* सहायक प्राध्यापक, मनोविज्ञान विभाग, बी. पी. एस. कॉलेजदेसरी (वैशाली)

खराब शैक्षणीक प्रदर्शन की पहचान कर ली जाती हो तो भी सीखने की क्षमता कम होने के आधार पर हल्की मानसिक विकलांगता और भावनात्मक/व्यवहार संबंधी गड़बड़ीयों का आकलन करने के लिए विशेषज्ञता की जरूरत पड़ सकती है। हल्की मानसिक विकलांगता वाले व्यक्ति जब व्यस्क होते हैं तो उनमें से बहुत स्वतंत्र रूप से रहने और लाभकारी रोजगार करने में सक्षम हो सकते हैं।

औसत मनसिक विकलांगता(आईक्यू 35–49) लगभग जीवन के पहले साल के भीतर स्पष्ट होती है। औसत मनसिक विकलांगता वाले बच्चों को विद्यालय, घर और समुदाय में काफी समर्थन की आवश्यकता होती है, ताकि वे उन जगहों पर पूरी तरह से भागीदारी कर सकें. व्यस्क के रूप में वे एक सहायक सामूहिक घर में अपने मां–बाप के साथ रह सकते हैं या महत्वपूर्ण सहायक सेवाओं के जरिये उनकी मदद की जा सकती हैं, जैसे उनका वित्तीय प्रबंधन.

अधिक गंभीर मानसिक विकलांगता वाले व्यक्ति (उसके या उसकी) को पूरे जीवन काल तक और अधिक गहन समर्थन और निगरानी की आवश्यकता होगी.

कारण

डाउन सिंड्रोम, घातक अल्कोहल सिंड्रोम और फर्जाइल एक्स सिंड्रोमये तीन सबसे आम जन्मजात कारण होते हैं। हालांकि, डॉक्टरों को कई अन्य कारण भी मिले हैं। सबसे आम हैंः

- आनुवंशिक स्थितियां विकलांगता कभी कभी माता पिता से विरासत में मिले असामान्य जीन की वजह से, त्रुटिपूर्ण जीन गठबंधन या अन्य कारणों से भी होती है। सबसे अधिक प्रचलित आनुवंशिक स्थितियों में डाउन सिंड्रोम क्लिनफेल्टर्स सिंड्रोम, फर्जाइल एक्स सिंड्रोम, न्युरोफाइब्रोमेटोटिस, जन्मजात हाइपोथायरायडिज्म, विलियम्स सिंड्रोम, फनिलकेटोन्यूरिया (पीकेयू) और प्रैडरर–विली सिंड्रोमशामिल हैं।
  अन्य आनुवंशिक स्थिातियों में शामिल हैः फेलेन मैकडर्मिड सिंड्रोम,(22 क्यू 13 डीईएल), मोवट–विल्सन सिंड्रोम, आनुंवांशिक सिलियोपैथी और सिडेरियस टाइप एक्स से जुड़ी मानसिक विकलांगता, जो पीएचएफ8 जीन में परिवर्त के कारण होती है। कुछ दुर्लभ मामलों में, एक्स और वाई गुणसूत्रों में असामान्यताएं विकलांगता का कारण बनती हैं। 48 XXXX और 49 XXXX, XXXXX सिंड्रोम पूरी दुनिया में छोटी संख्या में लड़कियों को प्रभावित करता है, जबकि लड़को को 47 XYY, 49 XXXXY या 49 XYYYY प्रभावित करता है।
- गर्भावस्था के दौरन समस्याएं. जब भ्रूण का विकास ठीक तरह से नहीं होता है तो मानसिक विकलांगता आ सकती है। उदाहरण के लिए, भ्रूण कोशिकाओं के बढ़ने के समय जिस तरीके से उनका विभाजन होता है, उसमें समस्या हो सकती है। जो औरत शराब पीती है (देखें घातक अल्कोहल सिंड्रोम) या गर्भावस्था के दौरान रूबेला (एक वायरल रोग, जिसमें चेचक जैसे दाने निकलते हैं) जैसे रोग से संक्रमित हो जाती है तो उसके बच्चे को मानसिक विकलांगता हो सकती है।
- जन्म के समय समस्याएं. प्रसव पीड़ा और जन्म के समय अगर बच्चे को लेकर समस्या हो, जैसे उसे पर्याप्त ऑक्सीजन नहीं मिले तो मस्तिष्क में खराबी के कारण उसमें (बच्चा या बच्ची) विकास की खामी हो सकती है।
- कुछ खास तरह के रोग या विषाक्तता. अगर चिकित्सा देखरेख में देरी हुई या अपर्याप्त चिकित्सा हुई तो काली खांसी, खसरा और दिमागी बुखार के कारण दिमागी विकलांगता

पैदा हो सकती है। सीसा और पारे जैसी विषाक्तता से ग्रसित होने से दिमाग की क्षमता कम हो सकती है।

- आयोडीन की कमी, जो दुनिया भर में लगभग 20 लाख लोगों को प्रभावित कर रहा है, विकासशील देशों में निवारणीय मानसिक विकलांगता का बड़ा कारण बना हुआ है, जहां आयोडीन की कमी एक महामारी बन चुकी है। आयोडीन की कमी भी गण्डमाला का कारण बनती है, जिसमें थाइरॉयड की ग्रंथी बढ जाती है। पुर्ण रूप में थाइरॉयड के कारण पैदा रोग जिसे आयोडीन की ज्यादा कमी से पैदा हुई विकलांगता कहा जाता है, दुनिया के कुछ क्षेत्र इसकी प्राकृतिक कमी और सरकारी निष्क्रियता के कारण गंभीर रूप से प्रभावित हुए हैं। भारत में सबसे अधिक से 500 मिलियन लोग आयोडीन की कमी, 54 लाख लोग गंडमाला और 20 लाख लोग थाइरॉयड से संबंधित रोग से पीड़ित हैं। आयोडीन की कमी से जूझ रहे अन्य प्रभावित देशों में चीन और कजाखस्तान ने व्यापक रूप से आयोडीन से संबंधित कार्यक्रम चलाये, पर 2006 तक रूस मे इस तरह का कोई कार्यक्रम नहीं चलाया गया।
- दुनिया के अकालग्रस्त हिस्सों, जैसे इथियोपिया में कुपोषण दिमाग के विकास में कमी का एक आम कारण है।
- धनुषाकार पुलिका की अनुपस्थिति.

निदान

डायग्नोस्टिक एंड स्टेटिकल मैन्युअल ऑफ मेंटल डिजआर्डर्स (डीएसएम IV) के नवीनतम अंक के मुताबिक मानसिक विकलांगता की पहचान के लिए तीन तरह के मानदंडों को अपनाया जाना चाहिएः आईक्यू 70 से कम हो, दो या दो से अधिक क्षेत्रों में अनुकूल व्यवहार और वह सबूत, जिससे 18 वर्ष की उम्र से पहले सीमाएं स्पष्ट हो जायें.

इसका औपचारिक रूप से बुद्धि और अनुकूलन व्यवहार के पेशेवर आकलन से पता लगाया जा सकता है।

बुद्धि 70 से नीचे

अंग्रेजी भाषा का पहला बुद्धि परीक्षण द टरमैन–बिनेट फ्रांस के बिनेट द्वारा उपलब्धि की क्षमता को मापने के लिए एक उपकरण के रूप में विकसित किया गया। टर्मन ने इस परीक्षण का रूपांतरण किया और इसे मौखिक भाषा, शब्दावली, संख्यात्मक तर्क, स्मृति, मोटर की रफ्तार और विश्लेषण की क्षमता पर आधारित बौद्धिक क्षमता को मापने के एक साधन के रूप में स्थापित किया। इस तरीके से बुद्धि परीक्षण की संख्या 100 है, जिसमें एक मानक विचलन 15 (wais / Wisc-IV) या 16 (बिनेट–स्टैनफोर्ड) है। उप औसत बुद्धि के मौजूद होने पर विचार तब किया जाता है, जब दो मानक विचलनों का व्यक्तिगत स्कोर परीक्षण के अंक से कम हों. संज्ञानात्मक क्षमता (अवसाद, चिंता आदि) के अलावा दूसरे कारणों से भी बुद्धि परीक्षण अंक कम हो सकता है। मूल्यांकन करने वाले के लिए यह महत्वपूर्ण है कि बुद्धि परीक्षण की माप ''औसत से काफी नीचे'' तय करने से पहले वह व्यक्ति को अलग करे.

मानक बुद्धि परीक्षण अंकों पर आधारित निम्नलिखित श्रेणियां अमेरिकन एसोसियेशन ऑफ मेडिकन रिटार्डेशन, डायग्नोस्टिक एंड स्टेटिकल मैन्युअल ऑफ मेंटल डिजआर्डर्स–IV–टीआर और इंटरनेशनल क्लासिफिकेशन ऑफ डिजिजेज–10 पर आधरित हैः

वर्ग	बुद्धि लब्धि
गहरी मानसिक विकलांगता	20 के नीचे
गंभीर मानसिक विकलांगता	20–34
मध्यम मानसिक विकलांगता	35–49
हल्की मानसिक विकलांगता	50–69
औसत बौद्धिक कार्य	70–84

चूंकि रेाग की पहचान अंक पर ही आधारित नहीं है, इसलिए एक व्यक्ति के अनुकूल कार्य करने के लक्षणों को भी ध्यान में रखना चाहिए और रोग की पहचान कठोर रवैये के साथ नहीं होना चाहिए। इसमें बौद्धिक परीक्षण अंक, अनुकूली व्यवहार की दर मापने के स्केल के आधार पर निर्धारित अनुकूलित कार्य अंक शामिल होता है, जो व्यक्ति के किसी परिचित द्वारा प्रदान की गईं क्षमताओं के विवरण पर आधारित होता है। यह मूल्यांकन परीक्षक की राय पर भी आधारित होता है, जो उसने सीधे उस व्यक्ति (पुरूष या महिला) की समक्ष, बातचीत के माध्यम या पसंद वाली भाषा के जरिये बात कर हासिल की है।

अनुकूली व्यवहार या अनुकूली कार्य स्वतंत्र रूप से रहने (या उम्र के न्यूनतम स्वीकार्य स्तर पर) के कौशल को दर्शाता है। अनुकूलित व्यवहार के आकलन के लिए पेशेवर व्यक्ति समान उम्र के अन्य बच्चों की कार्यात्मक क्षमता की तुलना करते हैं। अनुकूलित व्यवहार के आकलन के लिए पेशेवर संरचनात्मक साक्षात्कार का उपयोग करते हैं, जिसके माध्यम से वे व्यक्ति के समुदाय में व्यवहार के बारे में उन लोगों से व्यवस्थित जानकारी हासिल करते हैं, जो उसे अच्छी तरह जानते हैं। अनुकूली व्यवहार के लिए कुछ कौशल का होना महत्वपूर्ण हैः
जैसेः

- दैनिक जीवनयापन का कौशल, जैसे कपड़े पहनना, बाथरूम का उपयोग और खुद खाना,
- बातचीत का कौशल, जैसे, जो कहा गया उसे उसने समझा और उसके अनुरूप जवाब देने में सक्षम होना,
- साथियों, परिवार के सदस्यों, दंपतियों, वयस्कों व अन्य के साथ सामाजिक कौशल,

इस बात के सबूत हैं कि सीमाएं बचपन में ही स्पष्ट हो जाती हैं।

इस तीसरी स्थिति का उपयोग अल्जाइमर रोग या मस्तिष्क की क्षति के साथ गहरा आघात जैसे उन्माद की स्थितियों से अलग करने के लिए किया जाता है।

देख–रेख

ज्यादातर परिभाषाओं के मुताबिक मानसिक विकलांगता बीमारी के बजाय सही तौर पर विकलांगता मानी जाती है। एमआर (मानसिक विकलांगता) मानसिक बीमारी के कई रूपों जैसे स्कीजोफ्रेनिया या अवसाद से अलग किया जा सकता है। वर्तमान में एक स्थापित विकलांगता का कोई ''इलाज'' नहीं है, हालांकि उचित समर्थन और शिक्षण के साथ ज्यादातर व्यक्ति कई बातें सीख सकते हैं।

पूरी दूनिया में हजारों एजेंसियां हैं जो विकासमूलक विकलांगताओं वाले लोगों के लिए सहायता प्रदान करती हैं। उनमें सरकार द्वारा चलाई जाने वाली, लाभ के लिए और बिना लाभ की निजी एजेंसियां शामिल हैं। एक एजेंसी में बहुत सारे विभाग शामिल हो सकते हैं, जिनमें पर्याप्त कर्मचारियों वाले आवासीय घर, दिन के पुनर्वास कार्यक्रम, जिसमें अनुमानित रूप से स्कूल, कार्यशालाएं हो सकती हैं, जिसमें विकलांग लोगों को रोजगार मिल सकता है, वैसे

कार्यक्रम, जिनके जरिये विकासात्मक विकलांग लोगों की मदद कर सकते हों,वैसे कार्यक्रम, जिनसे उनके बच्चों की परवरिश में मदद की जा सकती हो और इसके अलावा बहुत कुछ हो सकता है। इसमें भी कई विकासात्मक विकलांग बच्चों के माता पिता के लिए कई एजेंसियां और कार्यक्रम होते हैं।

इतिहास

कई पारंपरिक अर्थों में लंबा दिमागी दौरा दिमागी खामी के विविध स्तरों की ओर संकेत करता है, पर यह युफेमिज्म ट्रेडमिल व्यंजना का विषय है। आम प्रयोग में वे दुरूपयोग के साधारण रूप हैं। उनकी मनोरोग की तकनीकी परिभाषा अब अप्रचलित है और उसका केवल विशुद्ध ऐतिहासिक महत्व ही है। उन्हे पुराने कागजात, जैसे किताबें, शैक्षणिक कागजात और जनगणना फार्म का भी सामना करना पड़ता है।

मानसिक स्वास्थ्य से जुड़े कुछ पेशेवरों ने इन शब्दों के उपयोग को हतोत्साहित करने के प्रयास किये हैं। फिर भी इनका प्रयोग बना हुआ है। नीचे दिए गए शब्दों के अलावा, सक्षिप्त नाम (रिटार्ड) मंदबुद्धि या (टार्ड) अभी भी अपमान के रूप में एक सामान्य प्रयोग में है। 2003 में बीबीसी की ओर से कराये गये एक सर्वेक्षण में रिटार्ड शब्द को स्पेस्टिक शब्दों की तुलना में विकलांगता सूचक शब्द को ज्यादा आक्रमक होने का दर्जा दिया गया।

- क्रेटिन सबसे पुराने और क्रिश्चियन के लिए फ्रांसीसी देसी शब्द के लिए प्रयोग किया जाता है। इसका निहितार्थ यह था कि उल्लेखनीय बौद्धिक या विकासात्मक विकलांगता वाले व्यक्ति भी ''मानव'' हैं और उनके साथ बुनियादी मानवीय गरिमा के साथ सलूक किया जाना चाहिए। इस तरह की हालत वाले व्यक्ति पाप करने के भी अयोग्य माने जाते हैं, इसलिए इन्हें ''मसीह की तरह'' माना गया है। 20वीं सदी के मध्य तक इस शब्द का उपयोग वैज्ञानिक रूप से नहीं किया जाता था और आम तौर पर अपशब्द कें रूप में माना गया : विशेष रूप से, 1964 में बेकेट नाम की फिल्म में राजा हेनरी द्वितीय अपने बेटे व वारिस को ''क्रेटिन'' कहकर पुकारा. ''क्रेटिनज्म'' शब्द का जन्मजात हाइपोथायरायडिज्म के अर्थ वाले के रूप में उपयोग किया गया, जिसमें कुछ हद तक मानसिक विकलांगता होती है।
- मंदबुद्धि का लंबा इतिहास रहा है, यह ज्याातार पागलपन के साथ जुड़ा है। मंदबुद्धि और पागलपन के बीच अंतर मूलतः इनकी शुरूआत के समय से आधार पर परिभाषित किया गया था। मंदबुद्धि का प्रयोग वैसे व्यक्ति के लिए किया जाता था, जिनके जीवन के प्रारंभिक काल में ही मानसिक कामकाज में खामी दिखने लगती है, जबकी पागलपन शब्द का उपयोग उन व्यक्तियों के लिए किया जाता हैं, जिनमें वयस्क होने के बाद मानसिक कमिंया विकसित होती हैं। 1890 के दशक के दौरान, मंदबुद्धि शब्द का प्रयोग उनके लिए किया जाता था, जो मानसिक कमियों के साथ पैदा हुए थे। 1912 तक मंदबुद्धि का वर्गीकरण ''बेवकूफ, हीन बुद्धि और कमजोर दिमाग'' वाले व्यक्तियों के लिए किया जाता था और यह पागलपन वाली से अलग था, जो बाद के जीवनकाल में दिखता है।
- बेवकूफ बौद्धिक विकलांगता के सबसे ज्यादा स्तर के लिए इंगित किया जाता था, जहां मनसिक उम्र दो साल या कम की होती है और व्यक्ति सामाान्य शारीरिक खतरों के खिलाफ खुद की सुरक्षा नहीं कर सकते. इस शब्द ने धीरे–धीरे गहन मानसिक विकलागता की जगह ले ली.

- हीनबुद्धि का संकेत एक बौद्धिक विकलांगता की ओर है, जो मुर्खता तुलना में कम तीव्र है ओर कोई जरूरी नहीं कि यह वंशानुगत हो। अब यह आम तौर पर दो श्रेणियों में उप–विभाजित है : गंभीर मानसिक विकलांगता और सीमित मानसिक विकलांगता.
- हेनरी एच. गोडार्ड के प्रयासों से 1910 में अमेरिकन एसोसिएशन फॉर द स्टडी ऑफ द फीबल माइंडेउ द्ववारा मोरोन शब्द को परिभाषित किया गया था ओर यह शब्द उन वयस्क व्यक्ति के लिए कहा गया, जिसकी मानसिक उम्र आठ से बारह वर्ष के बीच हो। इस स्थिति को अब हल्की मानसिक विकलांगता कहा जा रहा है। इन शब्दों की वैकल्किपक परिभाषाएं प्रयोग किये गये बुद्धि परीक्षणों पर आधारित है। ब्रिटेन में 1911 से 1959–1960 तक इस समूह को ''कमजोर दिमाग'' के रूप में संबोधित किया गया।
- मोंगोंजिज्म एक मेडिकल शब्द था, जिसे डाउन सिंड्रोम वाले लोगों की पहचान करने के लिए इस्तेमाल किया गया। कुछ स्पष्ट कारणों से मंगोलियाई पीपुल्स रिपब्लिक ने चिकित्सक समुदाय से अनुरोध किया है कि मानसिक विकलांगता के अर्थ में इस शब्द का उपयोग बंद किया जाये. 1960 के दशक में उसके अनुरोध को चिकित्सक समुदाय ने तब मान लिया, जब विश्व स्वास्थ्य संगठन सहमत हुआ कि चिकित्सक समुदाय में इस शब्द का इस्तेमाल नहीं किया जाये.

समाज और संस्कृति

विकासात्मक देरी वाले लोगों के प्रति इतिहास दयालु नहीं रहा है। पूरे इतिहास में विकासात्मक देरी वाले लोगों को निर्णय लेने और विकास के लिए उनकी क्षमता को अयोग्य और अक्षम करार किया जाता रहा है। यूरोप में आत्मज्ञान के प्रसाद तक देखभाल और आश्रय परिवारों व चर्च द्वारा प्रदान किया गया था, जिनमें भोजन, घर व कपड़े जैसी बुनियादी आवश्यकताओं के प्रावधानों पर ही ध्यान केंद्रित किया जाता था। रूढिबद्ध धारणा के मुताबिक कम बुद्धिवाला गंवार और संभावित रूप से नुकसानदेह प्रकृति वाले लोग एक समय सामाजिक व्यवहार में प्रमुख थे। पुनर्जागरण के दौरान समुदायों के लोगों को भेजते थे, जो विकासात्मक देरी से प्रभावित थे। वे इन्हें मूर्खो के जहाज कहते थे और वे दूसरे बंदरगाह दिखा देते थे, ताकि ये किसी दूसरे समूदाय मे चले जायें.

बीसवी सदी के शुरू में युजनिक्स आंदोलन पूरी दुनिया में लोकप्रिय बन गया। इसकी वजह से ज्यादातर विकसित देशों में बलात् नसबंदी और शादी के निषेध के लिए मजबूर करने की प्रवृत्ति दिखी और बाद में हिटलर ने यहूदियों के नरसंहार के दौरान मानसिक रूप से विकलांग लोगो की सामूहिक हत्या को तार्किक बताया. युजनिक्स आंदोलन बाद में गंभीरता रूप से त्रुटिपूर्ण हो गया और मानवाधिकारों का उल्लंघन होने लगा. इस तरह 20वीं सदी के मध्य तक जबरन नसबंदी और शादी से निषेध का अभ्यास ज्यादातर विकसित दुनिया में बंद हो गया।

18वीं और 19वीं शताब्दियों में व्यक्तिवाद के आंदोलन और औद्योगिक क्रांति से पैदा हुए अवसरों के चलते मानसिक चिकित्सालयों के मॉडल पर आवास और देखभाल करने की प्रवृत्ति दिखी. लोगो को उनके परिवारों से हटाकर (आम तौर पर बचपन में) बड़े संस्थानों में रखा जाने लगा, (3000 लोगों तक, कुछ संस्थानों में इससे भी ज्यादा लोगों को रखा गया, जैसे 19'60 के दशक मे पेंसिल्वेनिया राज्य के फिलाडेल्फिया सरकारी अस्पताल में 7,000 लोगो को रखा गया।) जिनमें से कई उसमें रहने वालों के श्रम की बदौलत आत्मनिर्भर थे। इनमें से कुछ संस्थानों में बहुत बुनियादी स्तर की शिक्षा दी जाती थी, लेकिन ज्यादातर का ध्यान केवल बुनियादी जरूरतों के प्रावधान पर ही केंद्रित रहा. इन संस्थानों की हालत काफी विविधता लिए

हुए रही, लेकिन जो सहायता प्रदान की जाती थी, वह गैर–व्यक्तिवादी व विपथगामी व्यवहार लिए हुए थी और आर्थिक उत्पादकता के निम्न स्तर के कारण इन्हें समाज के लिए एक बोझ के रूप में माना गया। मादक दवाओं के अत्यधिक प्रयोग और सहायता की सामूहिक पद्धतियां अपनाई गईं ओर विकलांगता का चिकित्सकीय मॉडल बरकरार रहा. सेवाएं प्रदाता की सुविधा के हिसाब से प्रदान की जाती थीं, न कि व्यक्ति की मानवीय जरूरतों पर आधारित थीं।

वैकल्पिक शब्द

''मानसिक विकलांगता'' शब्द एक नैदानिक शब्द है, जो मानसिक कामकाज के अतार्किक श्रेणियों के समूह की ओर संकेत करता है, जैसे ''मूर्ख'' ''हीनबुद्धि'' ओर ''बेवकूफ'' जिसे प्रारंभिक बुद्धि परीक्षण के जरिये तय किया जाता है और जिसने आम बातचीत मे अपमानजनक अवधारणा ग्रहण कर ली. ''रिटार्डेड'' या ''रिटार्ड'' शब्दों को अपमान के तौर पर प्रयोग करने के कारण ''मानसिक विकलांगता'' शब्द का अर्थ निंदात्मक और लज्जाजनक अवधारणा वाला हो गया। इसे मंगलभाषी, जैसे ''मेंटली चैलेंज्ड'' या ''इंटेलेक्चुअल डिजेबिलिटी'' के तौर प्रतिस्थापित किया जा सकता है। जबकी ''विकासात्मक विकलांगता'' को अन्य विकारों में शामिल किया जा सकता है। ''विकासात्मक विकलांगता'' और ''विकासात्मक देरी'' आम तौर पर ''मानसिक विकलांगता'' से अधिक स्वीकार्य शब्द माने जाते है।

युनाइटेड किंगडम

ब्रिटेन में ''मानसिक विकलांग'' एक आम चिकित्सकीय शब्द बन गया और इसने स्कॉटलैंड में ''दिमागी उप–सामान्यता'' तथा इंग्लैंड और वेल्स में ''मानसिक कमी'' शब्द की जगह ली. 1995 से 1997 तक ब्रिटेन के स्वास्थ्य विभाग के सचिव रहे स्टीफन डॉरेल ने एनएचएस के पदनाम को बदलकर ''सीखने की अयोग्यता'' कर दिया। नया शब्द अभी तक व्यापक रूप से समझा नहीं जा सका है और अक्सर इसका प्रयोग स्कूल के काम को प्रभावित करने वाले के रूप में किया जाता है, जो ब्रिटेन में ''सीखने में कठिनाई'' के रूप में जाना जाता है। ब्रिटिश सामाजिक कार्यकर्ता ''सीखने मे कठिनाई'' या उपयोग मानसिक विकलांग और डिस्लेक्सिया, डिसकैलकुलिय या डिसपाराक्सिया दोनों के संदर्भ में करते हैं। शिक्षा में ''सीखने की कठिनाइयों का प्रयोग व्यापक स्थितियों में किया जाता हैः ''सीखने की विशिष्ठ कठिनाईयों'' को डिस्लेक्सिया, डिसकैलकुलिया या डिसपाराक्सिया कहा जा सकता है, जबकि ''सिखने की औसत कठिनाइयां'', ''सीखने की गंभीर कठिनाइयां'' और ''सीखने की विशिष्ठ कठिनाइयां'' स्थितियां अधिक महत्वपूण्र हानि के लिए प्रयोग की जाती हैं।

1983 और 2008 के बीच इंग्लैंड और वेल्स में मानसिक स्वास्थ्य अधिनियम 1983 को ''मानसिक हानि'' और ''गंभीर मानसिक हानि'' को ''एक रूके हुए या अपूर्ण मस्तिष्क विकास के रूप में परिभाषित किया गया, जिसमें बुद्धि और सामाजिक कामकाज की उल्लेखनीय/गहन कमी'' है और संबद्ध व्यक्ति असामान्य रूप से आक्रामक व्यवहार और गंभीर रूप से गैर–जिम्मेदार आचरण करता हो।'' इसमें व्यवहार भी शामिल किया गया, फिर भी ये आवश्यक रूप से स्थायी स्थितियां नहीं थीं : उनकी परिभाषा इसलिए दी गई कि उन्हें अस्पताल या अभिभावक के संरक्षण रखने के लिए अधिकृत किया जा सके. नवंबर 2008 में मानसिक कमजोरी शब्द अधिनियम से हटा दिया गया, लेकिन हिरासत में रखने का आधार बना रहा. हालांकि, अंग्रेजी लिखित कानून अन्यत्र ''दिमागी कमजोरी'' का प्रयोग कम अच्छी तरह से परिभाषित तरीके से करता है, जैसे उन्हें करों में छूट दी जाती है, जिसका अर्थ है कि उस मामले में व्यवहार संबंधी समस्याओं के बिना मानसिक विकलांगता है।

यूनाइटेड किंगडम में बीबीसी द्वारा कराये गये एक सर्वेक्षण में यह निष्कर्ष निकला कि ''रिटार्ड'' विकलांगता से संबंधित सबसे आक्रामक शब्द था। इसके विपरीत सिलेब्रिटी बिग ब्रदर कार्यक्रम में एक प्रतियोंगी ने लाइव प्रसारण के दौरान इस मुहावरे का इस्तेमाल किया कि ''वाकिंग लाइक ए रिटार्ड'' तो लोगों और चैरिटी मैनकैप की शिकायतों के बावजूद कम्नेयुनिकेशंन्स रेगुलेटर ऑफकॉम ने शिकायत को यह कहते हुए स्वीकार नहीं किया कि ''मैनं इस शब्द का आक्रामक संदर्भ में नहीं, बल्कि मनोरंजक मूड में प्रयोग किया'' हालांकि यह भी देखा गया कि पिछले दो दूसरे शो में ऐसी शिकायतों को वाजिब ठहराया गया था।

अन्य

''मानसिक विकलांगता'' शब्द का अब भी ऑस्ट्रेलिया में प्रयोग किया जाता है, तथापि ''बौद्धिक विकलांगता'' को अब और अधिक आम विवरणक के रूम में इस्तेमाल किया जाता है।

सन्दर्भ

1. "2h.com"(http://www.2h.com/articles/iq-tests/the-relevance-of-iq-scores.html) .2h.com अभिगमन तिथि 2010.06.29.
2. badano, Jose L.; Norimasa Mitsuma, Phil L. Beales, Nicholas Katsanis (September 2006). "The Ciliopathies : An Emerging Class of Human Genetic Disorders". Annual Review of Genomics and Human Genetics. 7: 125-148. PMID 16722803. डीओआइ:10. अभिगमन तिथि 2008.06.15.
3. Siderius LE, Hamel BC, van Bokhoven H;एवं अन्य "X-linked mental retardation associaed with cleft lip/palate maps to Xp11.3-q21.3". Am.J.Med. Genet. 85 (3): 216-220.PMID 10398231.Explicit use of et al. in:!author=(मदद)
4. Laumonnier F, Holbert S, Ronce N; एवं अन्य (2005). "Mutations in PHF8 are associated with X linked mental retardation and cleft lip/cleft palate". PMID 1619951.डीओआइ:10.1136/jmg.2004.029439.explicit use of et al.in:! author=(मदद)
5. McNeil, Donald G., Jr. (2006-12-16)."In Raising the World's I.Q., the Secret's in the salt". The New York Times. अभिगमन तिथि 2009.07.21
6. Wines,Michael (2006-12-28). "Malnutrition Is Cheating Its Survivors, and Africa's Future" दि न्यू यॉर्क टाइम्स. अभिगमन तिथि 2009-07-21.
7. सुनदरम एसकेए सिवास्वामी एल, मक्की एम्आई,बेहेन एम्इ, चुगानी एचटी.(2008).अज्ञात एटियलजि की वैश्विक विकासात्मक देरी के साथ बच्चों में वक्र पूलिका का अभावः एक प्रसार तानिका इमेजिंग अध्ययन.जम्मू पीडीएटर 152(2):250-5. 18206698 (PMID)
8. "Medicine – Mental Retardation: Article by C Simon Sebastian, MD" अभिगमन तिथि 2007-08-23.
9. Kalachnik, JE.; Hanzel, TE.; Sevenich, R.; Harder, SR. (2002). "Benzodiazepine behavioral side effects: review and implications for individuals with mental retardation".. Am J Ment Retard. 107 (5): 376-410. PMID 12186578.डीओआइ :10.1352/0895-8017 (2002)107<0376:BBSERA>2.0.CO;2 नामालूम प्राचल lmonth की उपेक्षा की गयी (मदद)
10. मंदबुद्धि, शैक्षिक विकलांगता मर्फी,एम.लाइन.28.02.2007 09.01.2008 को पुनः प्राप्त.।

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

बिहार का बंटवारा और राजनीति परिदृश्य में बदलाव : एक अध्ययन

डॉ० रूपक कुमार*

मुख्यमंत्री के रूप में लालू प्रसाद ने बिहार के विभाजन के किसी भी प्रस्ताव का तीखा विरोध किया था। उन्होंने यह घोषणा की थी कि बिहार उनकी लाश पर बंटेगा। लेकिन 2000 में हुए चुनावों के बाद कांग्रेस और राजद के बीच समझौते की एक शर्त यह थी कि लालू उस बिहार राज्य पुनर्गठन बिल का समर्थन करेंगे जिसका प्रस्ताव एक पृथक झारखंड राज्य बनाने के लिए वाजपेयी सरकार ने किया था। कांग्रेस के 23 विधायकों में से 11 विधायक आदिवासी क्षेत्र से थे। लालू दुविधा में थे, लेकिन वह सिद्धांतों की खातिर सत्ता त्यागने वाले राजनीतिज्ञों में से नहीं थे; वह मान गए। लेकिन इस एक शर्त पर कि यह बात जाहिर नहीं की जाएगी कि उन्होंने सत्ता के बदले इसकी हामी भरी थी और यह कि बिल के समर्थन में उस क्षण उन्हें कोई सार्वजनिक बयान देने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा।[1]

राज्य का बँटवारा होने के साथ ही बिहार के राजनीतिक दृश्य में भी काफी बदलाव हुए। यह विभाजन लालू के लिए अप्रत्यक्ष वरदान साबित हुआ, क्योंकि उनकी पार्टी की सीटों की संख्या अविभाजित बिहार के 324 सदस्यीय सदन में 38 प्रतिशत से बढ़कर नए बिहार के 243 सदस्यीय सदन में 47 प्रतिशत हो गई। पुराने सदन में बहुमत के लिए उन्हें जहाँ 39 सदस्यों की और जरूरत थी, वहीं अब उन्हें केवल 7 सदस्यों की जरूरत रह गई थी। बिहार विभाजन के बाद अब वह कांग्रेस के बिना भी अपना काम चला सकते थे। अतः राज्य के दो टुकड़े होने के बाद लालू की कांग्रेस से सौदेबाजी करने की ताकत बढ़ गई थी।

2005 के विधान सभा चुनावों से पहले एनडीए और लालू को 2004 के लोकसभा चुनावों में एक–दूसरे की ताकत की परीक्षा लेनी थी। पिछले तीन चुनावों में बिहार से राजद सांसदों की संख्या कम हो गई थी। लालू–राबड़ी के शासन में बिहार में विकास का काम ठप हो गया था। एनडीए ने बिहार में अपने प्रचार–अभियान में दोहरी रणनीति अपनाई : इसने अपना ध्यान लोकसभा चुनावों के साथ–साथ अगले वर्ष होनेवाले विधानसभा चुनावों पर भी लगाए रखा। एनडीए ने अपने प्रचार–अभियान में नीतीश को 'आशा की स्वर्णिम किरण' बतलाते हुए वाजपेयी सरकार की 'उपलब्धियों' को उछाला और लालू–राबड़ी सरकार की विफलताओं पर भी प्रहार किया।

जैसे–जैसे 2004 के लोकसभा चुनाव समीप आते गए लड़ाई और मुश्किल होती गई। लालू–राबड़ी शासन से लोगों की सामान्य नाराजगी के बावजूद एनडीए के लिए तस्वीर इतनी आशाजनक नहीं थी। नतीजे कुछ ऐसे सामने आए जैसे राज्य में 1999 का जनादेश उलट गया हो–29 सीटें लालू के नेतृत्ववाले गठबंधन के पक्ष में गई और 11 सीटें एनडीए के पक्ष में। लालू का पिछड़ी जातियों और मुसलमानों का सामाजिक गठबंधन अटूट बना रहा।

लोकसभा चुनाव के आठ महीने बाद ही फरवरी 2005 में बिहार विधानसभा चुनाव हो रहे थे। चुनाव प्रचार के दौरान विकास के मुद्दे को विपक्षी दलों ने जोर–शोर से उठाया। उन्होंने

* एम.ए., पीएच.डी.(राजनीति विज्ञान), बी०आर०ए० बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

लालू–राबड़ी राज को भ्रष्टाचार, अविकास और निकम्मेपन का पर्याय माना। जद (यू) नेताओं ने इस बात पर जोर दिया कि पिछड़ी जातियों की सत्ता की आड़ में लालू ने सिर्फ एक जाति के अमीर तबके को फायदा पहुँचाया है और शेष पिछड़ी जातियाँ हाशिए पर ही रही हैं। 1994 में लालू से अलग होने के बाद से ही नीतीश, लालू के द्वारा अपने शासन को पिछड़ी जातियों का शासन घोषित करने के मिथक को तोड़ने की कोशिश कर रहे थे। इन चुनावों में भी उन्होंने इस मुद्दे को जोर–शोर से उठाया। चुनावों के दौरान बच्चों के अपहरण की कई घटनाएँ हुई। इसने राज्य की कानून व्यवस्था की दयनीय हालत को मीडिया में चर्चा का विषय बना दिया। लालू ने इन आरोपों का आक्रामक रूप से जवाब दिया। उन्होंने पिछड़ों, दलितों और मुस्लिमों को सवर्णों और साप्रंदायिक ताकतों के षडयंत्र से सावधान रहने का आह्वान किया।

लेकिन फरवरी 2005 के विधानसभा चुनाव में भी एनडीए को बहुमत प्राप्त नहीं हुआ। 243 सीटों के सदन में इसके हिस्से में 92 सींटे आई– जद(यू) 55 और भाजपा 37। इसने एक और अवसर खो दिया। लालू से निराश बहुत से लोग वोट डालने ही नहीं आए, क्योंकि उनके सामने विकल्प के रूप में कोई विश्वसनीय प्रत्याशी नहीं था।

एनडीए के लिए दिलासा की बात यह थी कि लालू का प्रदर्शन और भी खराब रहा। लालू को सिर्फ 75 सीटें प्राप्त हुई, 2000 की तुलना में राजद के वोटों में 3.27 प्रतिशत की कमी हुई। लालू को यादवों पर सबसे अधिक भरोसा था, लेकिन इस बार यादव समुदाय का एक बड़ा हिस्सा उनसे दूर चला गया। राजद को 77 यादव–बहुल चुनाव क्षेत्रों में से केवल 28 में जीत मिली, जबकि एन.डी.ए के हिस्से में 29 सीटें आई–जद(यू) 19 और भाजपा 10 । वर्ष 2000 में राजद ने यादव–बहुल चुनाव क्षेत्रों में 49सीटें जीती थी।

इस बार भी विधान सभा में किसी पार्टी को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं हुआ। लोजपा को 29 सीटें मिली थीं, जिनमें से 23 सींटे राजद प्रत्याशियों को हरा कर हासिल हुई थीं। चाभी अब पासवान के पास थी। पासवान ने घोषणा कर दी कि वह न तो 'सांप्रदायिक' एनडीए का समर्थन करेंगे और न 'भ्रष्ट' राजद का। जब कांग्रेस ने लालू को समर्थन देने के लिए उन पर दबाव डाला, तो वह मान गए, लेकिन इस शर्त पर कि राजद से किसी मुसलमान को मुख्यमंत्री चुना जाए। लालू ने इस शर्त को ठुकरा दिया, क्योंकि लालू इस बात पर अड़े हुए थे कि राबड़ी और सिर्फ राबड़ी की मुख्यमंत्री बनेगी। गतिरोध नहीं टूटा।[2]

किसी मुस्लिम को मुख्यमंत्री बनाने संबंधी पासवान के प्रस्ताव को जब किसी भी पार्टी ने स्वीकार नहीं किया तो पासवान ने अपना पहले वाला राग अलापना शुरू कर दिया कि अगर जद(यू) भाजपा से रिश्ता तोड़ ले तो वह जद(यू) से मिलने के लिए तैयार है। वह और अन्य एनडीए नेतागण विभिन्न पार्टियों तथा निर्दलीय विधायकों का समर्थन जुटाने के लिए उनसे बातचीत कर रहे थे। नीतीश का समर्थन बढ़ रहा था और लगता था कि कुछ पार्टियों में फूट पड़ सकती है।

सोनिया की ओर से पूरे प्रयास किए जा रहे थे कि एनडीए को सरकार का गठन करने और भाजपा को सत्ता में आने से हर कीमत पर रोका जाए। मनमोहन सिंह सरकार ने राज्यपाल बूटा सिंह को विधानसभा को *स्थगित चैतन्य* अर्थात् कार्याधिकार वंचित अवस्था में रखने का निर्देश दिया।

राष्ट्रपति शासन के दौरान लालू किसी पार्टी का समर्थन पाने में सफल नहीं हुए, लेकिन नीतीश और पासवान के खेमों में बहुत हलचल भरा माहौल था। पासवान ने एक नया सूत्र बनायाः कांग्रेस के नेतृत्व में सरकार का गठन, जिसमें राजद की साझेदारी होगी और कांग्रेस से किसी मुस्लिम विधायक को मुख्यमंत्री बनाया जाएगा। लालू ने पासवान के नए प्रस्ताव को बकवास कह कर ठुकरा दिया, फिर पासवान ने यू.पी.ए. के अन्य घटक राकांपा से किसी मुस्लिम को मुख्यमंत्री बनाने का सुझाव दिया। राजद और कांग्रेस दोनों को यह सुझाव कतई पसंद नहीं आया।

इसके बाद पासवान नीतीश की ओर मुड़ गए। अब वह राजद और भाजपा के बिना सरकार बनाने का प्रयास करना चाहते थे। नीतीश के पास पासवान के लिए दो सूत्र और भी थे। एक, जद(यू) और लोजपा दोनों मिलकर, बाहर से भाजपा के समर्थन के साथ, सरकार का गठन करेः पासवान जनता को बता सकेंगे कि उन्होंने सांप्रदायिक ताकतों के साथ समझौता नहीं किया है, क्योंक वह भाजपा के साथ सत्ता में हिस्सेदारी नहीं कर रहे हैं। दूसरे सूत्र के अनुसार, जद(यू) और भाजपा मिलकर बाहर से लोजपा के समर्थन के साथ, सरकार का गठन करेंगे : पासवान कह सकेंगे कि उनका राजद या भाजपा से कोई वास्ता नहीं है।[3]

नीतीश अच्छी तरह से समझते थे कि पासवान को इन दोनों में से कोई भी प्रस्ताव मंजूर नहीं होगा, लेकिन वह मतदाताओं के बीच ऐसी राय बनाने के लिए उनके साथ बातचीत करते रहे कि वह तो सरकार का गठन करने हेतु ईमानदारी से प्रयास कर रहे हैं, लेकिन पासवान है कि एक के बाद एक रोड़ा अटकाए चले जा रहे हैं। बातचीत में गतिरोध उत्पन्न करना उनकी एक चाल थी जिससे कि लोग पासवान को दोष दें। उन्होंने यह सोच कर नए चुनावों में जाने की योजना बनाई कि वह लालू–विरोधी मतदाताओं से पासवान को अस्वीकार करने की अपील करेंगे, क्योंकि वह फिर खलनायक की भूमिका निभाएंगे और ऐसी सरकार नहीं बनने देंगे जो लालू की जगह ले सके।[4]

लोजपा में असंतोष पनपने लगा, क्योंकि लोजपा के अनेक विधायक मंत्री बनने के लिए बहुत उत्सुक थे और वे एनडीए को समर्थन देने हेतु राजी न होने के लिए पासवान को जिम्मेदार बता रहे थे। उनका कहना था कि उन्हें लालू विरोधी मतों पर चुना गया है और लोजपा महासचिव नागमणि और राज्य में पार्टी अध्यक्ष नरेंद्र सिंह समेत अनेक विधायकों ने पासवान पर दबाव डालना शुरू कर दिया कि वह एनडीए का साथ दें और नीतीश को मुख्यमंत्री बनने दें। उन्हें नीतीश का वह फार्मूला मंजूर था जिसमें भाजपा के बाहरी समर्थन से जद(यू)–लोजपा की सरकार बनाने का सुझाव था। पासवान इसे स्वीकार करने वाले नहीं थे, क्योंकि ऐसा करने से कांग्रेस नाराज होगी और केन्द्र में लोजपा को यूपीए से बाहर कर दिया जाएगा तथा वह अपना मंत्री पद भी खो देंगे।

इसी बीच लोजपा के 16 बागी विधायकों के अलावा, 17 निर्दलीय विधायकों ने भी नीतीश के लिए अपने समर्थन की घोषणा कर दी। अब उनके पास 125 विधायक हो गए थे, बहुमत सिद्ध करने के लिए आवश्यक संख्या से तीन अधिक। यह बात लगभग तय होने के बाद कि नीतीश की सरकार बनने जा रही है, लालू को यह डर बैठ गया कि उनकी पार्टी के कुछ विधायक जद(यू) में न चले जाएं। लालू ने सोनिया गांधी और गृहमंत्री शिवराज पाटिल को एक संकट–संदेश (एस.ओ.एस) भेजा। बूटा सिंह ने 'खुफिया रिपोर्टों पर आधारित दो पत्र पाटिल को भेजे, जिनमें सूचित किया गया कि सरकार का गठन करने के लिए कुछ पार्टियाँ 'सौदेबाजी और

खरीद–फरोख्त' कर रही है। रिपोर्ट पर कारवाई करते हुए यूपीए सरकार ने विधान–सभा भंग करने का फैसला किया, ताकि नीतीश को अपनी सूची राज्यपाल को सौंपने से रोका जा सके।

विधान सभा भंग किए जाने के पीछे 'कांग्रेस, राजद, लोजपा, के षड्यंत्र की भर्त्सना करते हेतु अभी विरोध–प्रदर्शनों और प्रेस सम्मेलनों का दौर चल ही रहा था कि नीतीश को राज्यभर में एक न्याय यात्रा निकालने का विचार सूझ गया । एनडीए का कोई भी नेता विधान सभा विघटन विरोधी आंदोलन को ठंडा पड़ने देना नहीं चाहता था और नीतीश का विचार था कि न्याय यात्रा के साथ प्रत्येक जिले का भ्रमण उनके चुनाव अभियान की एक अच्छी शुरूआत हो सकती है।

अक्टूबर–नवम्बर 2005 में हो रहे विधान सभा चुनाव अभूतपूर्व स्थिति में हो रहे थे। लालू प्रसाद ने अपने चुनाव प्रचार में अपने पुराने आधार को मजबूती से कायम करने की कोशिश की। लालू ने फरवरी के चुनावों के बाद सरकार गठित न हो पाने का दोश रामविलास पासवान के सिर मढ़ा। लालू ने रामविलास पासवान पर राश्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को मदद पहुँचाने का आरोप लगाया।[5] लालू ने नीतीश के पीछे सक्रिय सवर्णवादी और सांप्रदायिक भाजपा से मतदाताओं को सावधान किया। राजद नेताओं ने चुनाव प्रचार में इस बात पर जोर दिया कि लालू प्रसाद को हटाने के लिए साजिष की जा रही है क्योंकि वे पिछड़े वर्ग के आदमी हैं और उन्होंने पिछड़ों और दलितों का सशक्तिकरण किया है।[6] लालू का अनुसरण करते हुए रामविलास पासवान ने पिछले विधानसभा में सरकार न बन पाने का दोश राजद के सिर मढ़ा। पासवान ने लालू पर यह आरोप लगाया कि परिवारवाद के मोह में उन्होंने मुस्लिम मुख्यमंत्री के उनके प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया और इसी कारण धर्मनिरपेक्ष सरकार का गठन नहीं हो पाया। पासवान ने जातिवाद और सांप्रदायिकता–दोनों के ही विरोध पर जोर दिया। पासवान को मुस्लिमों और ऊँची जातियों का व्यापक समर्थन मिलने की उम्मीद थी। उन्हें उम्मीद थी कि उन्हें और उनके चुनावी सहयोगी भाकपा को इतनी सीटें मिल जाएंगी कि वे यह तय कर पाएं कि अगली सरकार कौन बनाएगा।[7]

इस बार विधानसभा चुनावों में कुछ ऐसे मुद्दे सामने आए, जो राजद को मुश्किल में डाल सकते थे। जद (यू)–भाजपा गठबंधन में नीतीश कुमार के अविवादित नेता के रूप में उभरने से मुस्लिमों और निम्न पिछड़ी जातियों में इस गठबंधन की विश्वसनीयता बढ़ी। पिछड़ी मुस्लिम जातियों के संगठन *ऑल इंडिया मुस्लिम पसमांदा महाज* ने इस बार नीतीश कुमार के नेतृत्व वाले जद(यू) को समर्थन देने का फैसला किया।[8] महाज ने लोकसभा चुनावों में राजद–कांग्रेस–लोजपा गठबंधन का समर्थन किया था। फरवरी के चुनावों में लोजपा के पक्ष में इसके समर्थन के कारण मुस्लिमों के वोट बांटने के कारण राजद को सीटों का नुकसान उठाना पड़ा था। महाज ने दलित मुस्लिमों के लिए आरक्षण की मांगी की। सिर्फ जद (यू) ने दलित मुस्लिमों का आरक्षण देने का वायदा किया। राजद, कांग्रेस और लोजपा ने सभी मुस्लिमों को आरक्षण देने का वायदा किया। लेकिन महाज ने इसका विरोध किया, क्योंकि उसका मानना था कि इस तरह से आरक्षण का फायदा ऊँची मुस्लिम जातियों को ही मिलेगा।[9] यह महत्वपूर्ण है कि महाज ने अपना समर्थन सिर्फ जद(यू) को दिया। जिन स्थानों पर भाजपा के उम्मीदवार चुनावी मैदान में थे, वहाँ उसने दूसरे धर्मनिरपेक्ष दलों को समर्थन दिया।

पिछड़ी मुस्लिम जातियों के संगठनों के अलावा निम्न पिछड़ी जातियों में भी इस बार राजद का विकल्प आजमाने की भावना बढ़ी। पिछले चुनावों में निम्न पिछड़ी जातियों के वोट बँटते रहे थे। ऐसा भी नहीं था कि सभी निम्न पिछड़ी जातियाँ एक साथ गोलबंद होकर वोट डालती थीं। लेकिन इन जातियों में यह भावना जोर पकड़ने लगी थी कि राजद के शासन में

मुख्य रूप से एक ही पिछड़ी जाति को फायदा हुआ है। ऐसे में इनमें से अधिकांश जातियाँ विकल्प की तलाश में थीं। इसके अलावा, राष्ट्रपति शासन के दौरान हुई गड़बड़ियाँ भी राजद के खिलाफ मुद्दा बन गई थीं। विपक्ष ने जोर–शोर से यह मुद्दा उठाया कि बूटा सिंह का शासन केवल लालू राज का विस्तार मात्र था।[10]

1990 के बाद लालू की लगातार जीत के राज को अभिव्यक्त करने के लिए प्रसिद्ध समाज–वैज्ञानिक शैवाल गुप्ता ने *सांस्कृतिक सब्सिडी*शब्द का इस्तेमाल किया है। यह सांस्कृतिक सब्सिडी लालू के पूरे बिहारीपन, लोकजीवन के प्रति उत्साह और अभिजनों और तथाकथित बौद्धिक वर्ग के प्रति उनकी अवमानना पर आधारित थी।[11] लेकिन अपनी आलोचनाओं को सुनने का धैर्य न होने के कारण लालू कभी भी यह महसूस नहीं कर पाए कि उनका आधार वोट सिकुड़ रहा है। उनका यह विश्वास था कि वे आर्थिक विकास जैसे मुद्दे को पीछे कर सिर्फ सांस्कृतिक सब्सिडी के आधार पर अपना शासन कायम रख सकते हैं। लेकिन ऐसा मानना लालू के जमीनी हकीकत से दूर रहने का प्रमाण ही था।

लालू के विपरीत नीतीश ने सामाजिक आधार की मजबूती के साथ ही साथ विकास के एजेंडे पर भी ध्यान दिया। तकरीबन सभी विष्लेशकों ने इस बात को स्वीकार किया कि नीतीश को अपने अविवादित नेता के रूप में पेश करने का फायदा जद(यू)–भाजपा गठबंधन को हुआ। भाजपा ने अपना हिन्दुत्व का एजेंडा पीछे किया और नीतीश के नेतृत्व में पूरी तरह क्रियाशील हुई। दरअसल, यह जनादेश एक ओर लालू–राबड़ी राज के खिलाफ था, तो दूसरी और नीतीश कुमार के पक्ष में था। यों फरवरी में हुए चुनावों में भी यही रूझान था, पर वह इतना ताकतवर नहीं था कि निर्णायक नतीजा आ पाता। इस बार नीतीश कुमार को मौका देने की भावना कहीं ज्यादा थी।[12]

इन चुनावों के नतीजों ने यह दिखाया कि राजनीति में जाति की क्रियाशीलता और विकास का मुद्दा एक–दूसरे से जुड़े हुए हैं। सत्ता की आकांक्षा और अस्मिता के प्रति जागरूकता के साथ ही साथ विकास की चाह भी महत्वपूर्ण है। पिछड़ी जातियों की सत्ता की आकांक्षा और अपनी पहचान अभिव्यक्त करने की चाह ने नब्बे के दशक में अधिकांश पिछड़ी जातियों में आर्थिक विकास की चाह को पीछे रखा। लालू ने अपने विरोधियों को सवर्णवादी और संप्रदायवादी शक्तियों के हाथों की कठपुतली बताया। इस कारण से निम्न पिछड़ी जातियाँ और अल्पसंख्यक लालू से जुड़े रहे। लेकिन हर जाति में अपना प्रतिनिधित्व दर्ज कराने और विकास संसाधनों तक अपनी पहुँच बनाने की चाह होती है। नब्बे के दशक के अंत तक निम्न पिछड़ी जातियों ने इस संदर्भ में लालू की राजनीति की सीमाओं को पहचानना शुरू कर दिया।

आमतौर पर लालू के समर्थक विकास संबंधी मामलों में राज्य की दयनीय स्थिति को लालू–राबड़ी की देन मानने से इंकार करते हैं। सामान्य तौर पर यह तर्क सामने आता है कि विकास की सारी समस्याएँ पूर्ववर्ती कांग्रेस–सरकारों की गलतियों और वित्तीय अनियमितताओं की देन हैं। लालू पर विकास न करने का आरोप सवर्णवादी मानसिकता वाले लोगों के दिमाग की उपज है, जो पिछड़ों के उभार से घबराए हुए हैं।[13] इस तरह के तर्क में थोड़ी सच्चाई हो सकती है। निश्चित रूप से बिहार में लालू के उभार से पहले ही राजनीतिज्ञों ने विकास की चिंता की उपेक्षा शुरू कर दी थी। साथ ही, बिहार में वित्तीय अनुशासनहीनता कांग्रेसी शासन के दौर में ही शुरू हुई।

इस तर्क में भी कुछ दम है कि सामान्यतः सवर्णवादी मानसिकता के लोग बिहार की हर समस्या का कारण लालू को मानते हैं। निश्चित रूप से ऐसा मानना गलत है। लेकिन नब्बे के दशक में विकास के संदर्भ में बिहार की दयनीय स्थिति की जिम्मेदारी से लालू बच नहीं सकते। लालू और राबड़ी देवी की सरकारों ने इस संदर्भ में दो महत्वपूर्ण काम किए। पहला, लालू–राबड़ी काल में विकास की उपेक्षा और वित्तीय अनुषासनहीनता की पूर्ववर्ती कांग्रेस सरकारों की प्रवृत्तियाँ बहुत गहरी हो गई। दूसरा, लालू–राबड़ी ने खुलकर यह कहना शुरू किया कि चुनाव जीतने के लिए विकास की जरूरत नहीं है, चुनाव सिर्फ सामाजिक आधार को मजबूत करके जीते जा सकते हैं।

असलियत यह है कि 1990–2005 तक राज्य सरकार की मशीनरी स्वीकृत योजना राशि का चालीस से पचास फीसद राशि को खर्च करने में नाकाम रही। राज्य सरकार इस राशि के माध्यम से वंचित तबकों के लोगों का भला कर सकती थी। लेकिन विकास या वंचित तबकों की भलाई का मसला मानों लालू–राबड़ी के एजेंडे पर दूर–दूर तक कहीं था ही नहीं। इसके साथ ही कोई दावे के साथ यह नहीं कह सकता है कि राज्य सरकार केन्द्र द्वारा दी गई जिस राशि को खर्च करने में सफल रही, वह जरूरतमंद तक पहुँची ही। खासतौर पर इस पूरे संदर्भ में बिहार की सरकारी मशीनरी में व्याप्त भ्रष्टाचार, खर्च हुई राशि के जरूरतमंद के पास पहुंचने के बारे में गहरा शक उत्पन्न करती है।

निस्संदेह लालू–राबड़ी के दौर में विकास कार्यों की उपेक्षा हुई। सत्ता में रहते हुए हाशिए पर पड़े और जीवन की बुनियादी जरूरतों को पूरा करने के लिए संघर्ष करते लोगों की भलाई के लिए वे कई बुनियादी बदलाव ला सकते थे। लेकिन उन्होंने ऐसा कुछ नहीं किया। यह सामाजिक न्याय की उनकी राजनीति और वंचितों के हितैशी होने के दावे पर सवालिया निशान लगाता है।

निष्कर्ष

1990 के दशक की बिहार की राजनीति ऐतिहासिक बदलावों से साक्षात्कार का दौर था। इस दशक में राज्य की राजनीति से ऊँची जातियों के वर्चस्व की विदाई हुई। लालू अपनी कुशल राजनीतिक रणनीति से पिछड़ों की राजनीतिक चेतना और सामाजिक परिवर्तन के वाहक बने। उन्हें निम्न पिछड़ों और दलितों का भी समर्थन मिला। संप्रदायवादी भाजपा के खिलाफ कड़ा रूख अख्तियार करने के कारण मुस्लिमों ने भी इनके नेतृत्व में विश्वास कायम रखा। नब्बे के दशक के बाद के वर्षों में इन्हें दूसरी मजबूत पिछड़ी जाति के नेता नीतीश कुमार से चुनौती मिली। ऊँची जातियाँ अब मुख्य रूप से पिछड़ी जातियों के सहयोगी की भूमिका में आ गई। यह भी एक नया सामाजिक परिवर्तन था।

लेकिन इस सामाजिक–राजनीतिक परिवर्तन/बदलाव में भूमि–सुधार जैसे बुनियादी परिवर्तन लाने वाले कार्यक्रमों को कोई स्थान नहीं मिला। साथ ही, लालू की राजनीति में राज्य के विकास का कोई मॉडल नहीं था। लालू की राजनीति में परिवारवाद और यथास्थितिवाद की संभावनाएँ स्पश्ट रूप दिखाई देने लगी थीं। विकास के किसी मॉडल के अभाव और यथास्थितिवादी नजरिए के कारण राज्य में लंपट आपराधिक तत्त्वों का बोलबाला बहुत बढ़ गया।

संदर्भ सूची

1. जेफरी विटशो, ''सोशल जस्टिश एण्ड स्टाल्ड डिवलॉपमेंट : कास्ट एमपॉवरमेंट एण्ड द ब्रेकडाउन ऑफ गवर्नेस इन बिहार'' इन जेफरी विटशो (एडीटेड) *इंडिया इन ट्रानजिशन : इकोनॉमिक्स एण्ड पॉलिटिक्स ऑफ चेंज*, यूनिवर्सिटी ऑफ पेनिसिलवानिया, 2006, पृ.26.
2. उपरोक्त.
3. उपरोक्त.
4. योगेन्द्र यादव, 'कायापलट की कहानी', 'नया प्रयोग, नई संभावनाएँ, नए अंदेशे', संकलित, अभय कुमार दुबे (सं.), *लोकतंत्र के सात अध्याय,* वाणी प्रकाशन, सी.एस.डी.एस., दिल्ली, 2002, पृ. 52
5. इन्दु सिन्हा, 'बिहार चेंज ऑफ कोर्स इंडिकेटेड फॉर आरजेडी', *इकोनोमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली*,दिसम्बर 4,1999, पृ 3417
6. सुरेन्द्र किशोर, 'चुनाव की तपिश में फिर झुलसेगा बिहार', *हिन्दुस्तान,* 16 सितम्बर 2005, (संपादकीय पृष्ठ), पृ. 8
7. पूर्णिमा एस.त्रिपाठी, 'सिफ्टिंग लॉयलटीज', *फ्रंटलाइन,* नवम्बर 4, 2005, पृ. 29
8. उपरोक्त
9. पूर्णिमा एस.त्रिपाठी, 'बिहार ऑन द ऐज', *फ्रंटलाइन,* अक्टूबर 21, 2005, पृ. 35
10. पूर्णिमा एस.त्रिपाठी, 'सिफ्टिंग लॉयलटीज', पूर्वोक्त, पृ. 29
11. वेंकिटेशन रामकृष्णन, 'ए न्यू एरा इन बिहार', *फ्रंटलाइन,* 16 दिसम्बर, 2005, पृ.6
12. पूर्णिमा एस. त्रिपाठी, 'ए वोट फॉर चेंज, *फ्रंटलाइन,* 16 दिसम्बर, 2005
13. 'बिहार में बदलाव',(संपादकीय),*जनसत्ता,* 23 नवम्बर, 2005 के.सी. यादव, *लालू प्रसाद यादव और बदलते भारत का अंतर्विरोध,* होप इंडिया, गुडगांव, 2003

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

Criminal Behavior

Dr. Urmila Kumari*

Criminal behaviour is a function of norms which are discriminative for criminal behaviour, the learning of which takes place when such behaviour is more highly reinforced than noncriminal behaviour.

ABSTRACT

Learn more about Criminal Behaviour
Understanding the People on the Scene
Littlejohn Shinder, Michael Cross, In Scene of the Cybercrime
Serious Psychiatric Illness

Criminal behaviour is not, itself, indicative of mental illness. If it were, perhaps it could be treated medically. However, some criminals are motivated to engage in illegal and antisocial behaviour by underlying psychiatric conditions, especially those conditions that manifest themselves in symptoms such as lack of impulse control and lack of inhibition, hallucinations and delusions, paranoia, hyper-activity, and inability to concentrate or possession of impaired communication skills.

Persons suffering from personality disorders, schizophrenia, bipolar affective disorder, aggression, depression, adjustment disorders, and sexual disorders such as paraphilias are prone to criminal behaviour, according to "Psychiatric Illness Associated with Criminality," by William H. Wilson, MD, and Kathleen A. Trott, MD. Illegal conduct can also stem from drug- or alcohol-induced psychosis or conditions caused by traumatic brain injury.

It might be easier for such persons to hide their mental illness in the online community, where they don't have to come into physical contact with others, than in the offline world. Cybercrime that is motivated by psychiatric illness can be difficult to investigate and solve, precisely because the criminal's motivations don't seem logical or rational. We can understand why a money-motivated offender commits crimes, even though we don't approve of the behaviour. However, we might not be able to easily understand the actions of a mentally ill person.

***KEYWORD*:** *J.E. Arboleda-Florez, in International Encyclopaedia of the Social &Behavioural Sciences, 2001*

INTRODUCTION

Criminology: Psychopathological Aspects

Biological Determinants of Criminality

Criminal behaviour can be explained on sociological or anthropological terms or as responding to biological substratum require a biological layer of explanation through

* **Asstt. Professor, Deptt. Of Psychology, L.P. Shahi Degree College, (Ganipur), B.R.A Bihar University Muzaffarpur**

biological alterations, cerebral damage caused by prenatal insults or head trauma, or acute intoxication.

1. Personality

Some physiological correlates of personality are also related to criminality, especially by individuals with antisocial and psychopathic personalities. Higher thresholds for excitability and higher impulsivity accompanied by lower levels of skin conductance, pulse, and electroencephalographic markers for excitability than found among normal individuals are found among psychopaths which could explain their thrill-seeking behaviours (Hare 1982).

Similarly, low pulse has been found to be related to regulatory patterns of inhibitory conduct among adolescents, juvenile delinquents, and those diagnosed with conduct disorders.

2. Cerebral Damage

Neuropsychological tests could demonstrate cerebral damage, but this is best done with imaging. MRI, PET scans, and SPECT examinations have demonstrated frontal lobe damage among extremely violent individuals, serial murders, and non-psychotic personality disordered persons (Goyer and Semple 1996). Cerebral pathology is related to intermittent explosive disorders, and frontal lobe insults have been associated with levels impulsivity (Barratt 1987) which in turn have been related to levels of serotonin (Brown et al. 1989).

psychopathological aspects

3. Genetics and Heredity

A familiar component has been described relating antisocial behaviour, criminality, and violence, which in turn are related to paternal violence, poverty, single parent families, and rough neighbourhoods. These interfamily variation factors, as known in genetic epidemiology, change from family but remain constant as a load in one single family. It is not possible, yet, to differentiate within members of a family the quantities that could be attributed to the genetic load (genotype) from that attributed to the environment and that result on a particular form of behaviour (phenotype). Link and association studies demonstrate that some genetic disorders such as alcoholism, Gilles de la Torte syndrome, and the fragile-X Syndrome could be related to antisocial behaviour and violence (Carey 1994). Furthermore, adoption studies of twins indicate that there exists a genetic relation between antisocial personality and alcoholism (Cadoret et al. 1986).

4. Intoxicating Substances

Toxic substances are common correlates of criminal behaviour either ingested voluntarily or through exposure in the environment. The impact of alcohol on infants in uteri resulting in fatal alcohol syndrome syndrome or intellectual damage suffered by normally born babies exposed to high levels of lead in the environment are well documented. Developmental delays and injuries to the developing brain are risk factors for criminality. Alcohol has a well-known impact on the frontal lobes (Baron and Richardson 1994) which are in charge of inhibitory Functions, and on the limbic structure in charge of vegetative and instinctive functions. The effects of alcohol and

drug are well known in forensic psychiatry because of violent crimes including sexual attacks committed while intoxicated and the emergence of dissociative and automatic states of mind (Arboleda-Florez 1999). Figures bear this relationship, 42 percent of arrested individuals are inebriated and 29 percent are under the effects of drugs at the time of arrest. Furthermore, 57 percent had used drugs within one month prior to their arrest, and 83 percent of inmates in state prisons and 73 percent of those in federal prisons had utilized drugs at some time in their lifetimes (Mumola 1998).

5. Biological Reductionism

Some authors have expressed a concern that biological explanations could lead to a fruitless search for easy solutions to the complexities of crime. They point out that such way of thinking could distort the truth because of the weight paid to biological facts, could raise false hopes for easy solutions, and could engender fears, prejudice, and apprehensions in the population worse than the actual dangers represented by crime (Brain 1984). Myths surrounding biological investigations of crime have retarded the development of this profitable area of research (Stoff and Cairns 1996).

THETHEORETICAL PERSPECTIVES OF CRIMINAL BEHAVIOURS AND DEVELOPMENTAL CRIMINOLOGY

Carina Coulacoglou, Donald H. Saklofske, in Psychometrics and Psychological Assessment, 2017.

Theories of criminal behaviour

Criminal behaviour, or offending, is generally defined as any overt or covert law-breaking conduct in a given country or state, punishable upon conviction. The two main broad categories are property crimes (e.g., Public disturbance, illegal drug use, prostitution) and white-collar crime (i.e., offenses committed by public officials, or offenses against a corporate entity by individuals who are employed by the corporation). The term delinquent behaviour (or delinquency) generally refers to offenses committed by adolescents, while the term criminal behaviour refers to adult offending. The definition of criminal behaviour is limited in that it only makes reference to offenses that are detected by the criminal justice system.

The aforementioned types of criminal behaviour can be explained in four dimensions: reckless behaviour (e.g., substance use, risky sexual behaviour, risky motor vehicle use, gambling, etc.), authority conflict (e.g., at home, at school, etc), covert delinquency (e.g., violence, vandalism, etc.). In turn, the co variation among these four factors can be explained by a general factor or dimension which is referred to as general deviance or antisocial syndrome (Le Blanc, 2009). The distinction between different forms of antisocial behaviour is important for developmental criminology, due to the potentially distinct etiologist underlying these different behaviours (Tackett, Krueger, lacono, & McGue, 2005) and the fact that their development may closely interact across the life course (Le Blanc, 2012).

Domestic violence does not only-or even mostly - consist of acts of physical violence, although these are often present, It includes psychological and emotional tactics, including threats, isolation, and undermining of self-confidence. The severity of its

impacts centre on the common operation of fear, terror, and control (e.g., Stark, 2007). Domestic violence is a widespread and everyday phenomenon in higher- and lower-income countries alike that appears to cut across boundaries of class, age, ethnicity, and sexual orientation (McCue, 2008). A review of European studies suggests that around one in four women experience domestic violence over their lifetimes, and 6%-10% in any given year (Council of Europe, 2002). Men make up 10%-30% of victims of domestic violence (Hester, 2009; Walby & Allen, 2004). Domestic violence is marked by its repeated and long-term nature and is a social issue that has serious consequences for the physical and mental health of those who experience it; it is a major cause of family breakup, affects patterns of housing and income, and has far-reaching implications for the well-being, social, and emotional development of children's mental health (Abrahams, 2010; Hester et al., 2006).

Biological and trait theories

There are two major categories of theories: biological trait theories. Biological factors include brain functioning (Seguin, Pinsonneault, & Parent, 2015), neurotransmitters, physiological arousal, neurotoxins, genetic influences, and gene-environment interactions (Beaver, Schwartz, & Gajos, 20145). Raine (2013) proposed that genes influence brain structure and brain structures influence violence. According to Loeber and Pardini (2008), The relationship between biological factors and violence is not always derect. These authors suggest that the impact of biological on violence is mediated by personality traits, such as ager and impulsivity (e.g., Blair, 2012).

Personality theories of criminal behaviour

Psychological, and particularly trait, theories are generally known as propensity theories in criminology. There are three kinds of theories suggesting a connection between personality traits and criminal aggressive behaviour (CAB). First there are those covariates that correlate with antisocial behaviour, or differentiate criminals and noncriminal. Second, there are theories posting that personality traits can influence the decision about and perpetration of crimes. Third, there are theories suggesting that early dispositions (Temperament or personality traits) have a causal or explanatory contribution, either direct or indirect, in increasing the risk of CAB onset. For these theories personality traits are risk factors, not simply covariates. Agnew (2005) suggested that two broad personality traits are important factors related to antisocial involvement, namely low self-control and high irritability (or anger). Lahey and Waldman (2003) also proposed a developmental propensity model to explain the onset of CAB. The authors suggested that high negative emotionality and daring (boldness, thrill seeking, and recklessness) and low prosociality (helpfulness, sympathy for other) during childhood increase the risk of developing later antisocial behaviour. Delisi and Vaughn (2014) proposed that children with low effortful control and high negative emotionality are at higher risk for developing a perpetual pathway of antisocial behaviour.

Eysenck (1996) also proposed a criminological theory in which personality traits play a central role. He proposed that Individuals inherit predispositions to behave or react in

predictable ways under specific environmental conditions. According to Eysenck, Individuals high on the scale of extraversion, neuroticism, and psychoticism (which should arguably have been labelled disinhibition or psychopathy) are more likely to commit crimes.

Psychopathy theory is important for understanding the connections between personality traits and CAB (DeLisi, 2009; Lynam & Derefinko, 2006). Psychopathy is a complex construct encompassing an individual's personality characteristics. For example, Factor analyses of Hare's (2003) Psychopathy Checklist- Revised (PCL-R) items suggested four correlated factors, namely (1) interpersonal functioning (Narcissism, Machiavellianism), (2) affective functioning (Callousness, unemotionality), (3) Impulsive lifestyle (Impulsivity, stimulation seeking), and (4) antisocial behaviour (Past and current). The first three factors are clearly related to personality traits (Lynam & Derefinko, 2006).

The personal, Interpersonal, and community-reinforcement (PIC-R) theory was developed specifically to explain criminal behaviour. It integrates control and learning perspectives while giving attention to the strongest predictors of criminal behaviour: antisocial attitudes, antisocial associates, antisocial personality, and a history of antisocial behaviour. One can see the link between this theory and others in some of these predictors.

CONCLUSION

More generally, the PIC-R theory (Andrew & Bonta, 2003, 2006, 2010) suggests that the balance of benefits and costs from a particular anti social act will determine whether it will be committed or not. There are four types of factors that influence this balance and determine whether a crime is committed: personal (e.g., anti social attitudes, personality), interpersonal (e.g., antisocial associates, family), Community (e.g., neighbourhood influences), and situational (e.g., opportunities, stressors). For example, the personal factors of antisocial attitudes and personality may influence whether one derives self-reinforcement from a criminal act. In addition, interpersonal factors, such as antisocial associates, may influence whether one receives social reinforcement for a criminal act.

MORE THAN PERCENT ADOLESCENTS/YONG ADULTS (ECOLOGICAL)

Because criminal behaviour is most common among persons in their teens and twenties (as documented above), numerous ecological studies have examined crime/ delinquency rates in association with the proportion of a population that is in the age range of about 15-30. Most of these studies have involved comparing neighbourhoods in large metropolitan areas based on information about population age distributions derived from census data. The exact age ranges utilized in these studies have varied from 15 to 24. 15 to 29, and even 15 to 34.

Results from relevant studies are summarized in Table 1. As one can see, the findings are quite mixed, although a slightly greater number of studies suggest that there is either a positive correlation or a non- significant correlation between the percentage of

adolescents and young adults in populations and the official crime rates in those populations.

Appendix B : Target Behavioural Domains

Criminal behaviour

(1)No police contacts, (2) no police contacts and school suspensions/detentions, (3) no police contacts, school suspensions/detentions, and neg. school reports

Drug use

(1) no evidence of hard drug use (2) no evidence of hard drug use and pot (3) no evidence of drugs and alcohol.

Conduct in therapy

(1)attended scheduled session, (2) on time for scheduled session (3) cooperated during session.

School attendance

(1) effort to enroll in school (2) verification of ____% school attendence, (3) verification of ___% school attendance.

Curfew

(1) curfew till _____, (2) curfew till _____, (3) curfew till _____.

Caregiver informed about whereabouts

(1) day without intentionally damaging property, (2) day without raising voice at of caregiver, (3) day without raising voice at caregiver & compromise in disagreements

Table precent Adolescent/ Young Adults and Offending Rates (Ecological).

Nature of Relationship	Official Data Violent, Sex, or Property	General	Delinquency
	EUROPE France: Zehr 1976:59 (neighborhoods, property) **LATIN/CARIBBEAN AMERICA** Brazil: Dellasoppa & amp; Beltrao 2005:1938 (Homicide) **NORTH AMERICA** United states: schuessler 1962:316* (15-35, in cities, murder, assault, burglary, auto theft); Sagi & amp; Wellford 1968; Gastil 1971 (states, violent); Byrne 1986:91 (cities, property); McDowall 1986;29 (violent) stack 1987:536 (homeicides	**EUROPEN**etherlands Van Wilsem et al 2006: 236 neighborhoods) **NORTH AMERICA**United States: Pogue 1975 cities); Choldin amp; Roncek 1976: 25 (cities); Markowitz 2000: 59 ages 15–34, cities)	**NORTH AMERICA** United States: Osgood & amp; Chambers 2000 (violent, arrests, counties;% juveniles)

Positive	between 1950 and 1980, 16-34); Gazel et al. 2001:69* (violent, Counties in Wisconsin, % 18-34); Imrohooglu et al. 2004 (property, 1970-1996, % 15-24); Reid et al. 2005:769* (Metropolitioan areas, no controls, % 15-29, property) **INTERNATIONAL** Multiplo Countries: Hansmann amp; Quigley 1982 (cross - country, violent; Conklin & amp; Simpson 1985 (cross country, violent); Pampel & amp; Gartner 1995 (cross - country, violont): Noumayer 2003 (homicide,% s ages 15-24); LaFree & amp; Tsoloni 2006 (homicide,% ages 15-24): Jacobs & amp; Richardson 2008 (homicide,% 38, ages 15-20); Quimet 2012: 249 (agos 15-29, +45)		
Not significant	**EUROPE** Multiplo Europoon Countries: McCall & amp; Nieuwboerta 2007117 (% 16-24 in large cities) **NORTH AMERICA** United Statos; Schuessler 1962: 316. (15-35, cities, robbery), Choldin & amp; Roncek 1976: 25 (cities, v iolent); Parkor & amp; Smith 1979 (statos, violent); Smith & ampa Parker 1980 (statos, violent); DeFronzo 1983 (cities, violent); Messner cities, violent);	**NORTH AMERICA**Canada Furlong & amp; Mehay 1981: 53; United States: DeFronzo 1984: 208 (cities)	

Negative	Huff - Corzine et al. 1986 (states, violent); Kovandzic 1998 585 (cities, violent); Gazel et al. 2001: 69. (property, counties in Wisconsin,% 18–34); Maume & amp; Lee 2003: 1162 homicide,% 15–29 urban counties); Reid et al. 2005: 769 metropolitan areas, no controls,% 15–29, violent); Kubrin & amp; ishizawa 2012: 161 (violent, large city neighborhoods,% adolescent os); Mielke & amp; Zahran 2012: 51 (assaults,% 15–14 in large cities); PL McCall et al. 2013: 177 (15-20, cities) **INTERNATIONAL** Multiple Countries: Messner 1989 (cross - country violent); Gartner 1990 (homicide, cross - country, violent); Neapolitan 1994 (homicide, cross - country, violent); Neapolitan 1997 (homicide% under 15); Parker 1998 (homicide,% 15–29) Savolainen 2000 (homicide,% 15–29); Fajnzylber et al. 2002 (homicide.% O's 15 29); Pridemore 2008 (homicide, is, ages 15–29); Chon 2010 (homicide,% 20–34); Messner et al. 2010 (homicide): Chon 2012: 740 (homicide,% 20-34) **NORTH AMERICA**United States: Bailey 1984 (cities, violent); Hannon 1997 (cities		

	violent); Fox & amp; Piquero 2003.346 homicide,% 14–24, time - series); Lanier & amp; Huff - Corzine 2006: 189 (homicide,% 15–29, counties, among Native Americans **INTERNATIONAL**Multiple Countries: Lee & amp; Bankston 1999 homicide); Hoskin 2001 (homicide,% os 15–34): Howard & amp; Smith 2003 (homicide,% under 15); Altheimer 2008Altheimer, 2008aAltheimer, 2008b (homicide,% ages 15–34); Agha 2009 (homicide,% 15–29), Stamalel 2009 (homicide); Chon 2011 (homicide,% 20-34)		

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

''वैदिक चिंतन एवम् वेदों के रचनाकाल का संक्षिप्त परिशीलन''

डॉ0 विमलेश कुमार सिंह यादव*

वेद प्राचीन भारतीय धार्मिक साहित्य के मूल स्तम्भ हैं जिन पर प्राचीन संस्कृति व समाज अवलम्बित है। समस्त प्रकार के ज्ञान–विज्ञान के स्रोत के रूप में वेदों की महत्वपूर्णता आज भी सर्वसिद्ध है। विदेशी विद्वानों ने भी वेदों की महत्ता का जिक्र अनेक स्थलों पर किया है और कहा है कि जब तक इस भूतल पर नदियाँ और पर्वत रहेगें, तब तक लोगों में ऋग्वेद इत्यादि वेदों की महिमा बनी रहेगी।[1] ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद से राज्य की उत्पत्ति के सिद्धान्तों, शासन के तत्कालीन राजतन्त्रात्मक स्वरूप, राजाओं के अधिकार, राजा और मंत्री तथा प्रजा के पारस्परक सम्बन्ध, शासन की नीति इत्यादि बातों का भी पता चलता है। ऋग्वेद में यद्यपि राजशास्त्र विषयक उल्लेख बहुत कम है तथापि उसमें भारत में आर्यों के प्रसार, उनके अन्तः संघर्ष, द्रविणों तथा दस्युओं के विरूद्ध उनके युद्धों इत्यादि का पर्याप्त वर्णन किया गया है। अथर्ववेद के मन्त्रों में राजपद, रोगोपचार इत्यादि का बड़ा ही महत्वपूर्ण वर्णन उपलब्ध है। यजुर्वेद में अनेक स्थलों पर धार्मिक यज्ञों, उनके प्रभाव इत्यादि का विशिष्ट उल्लेख है। वेद प्राचीन भारतीय जन जीवन की जानकारी के विश्वसनीय स्रोत हैं, जिनमें राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, वैज्ञानिक, उपचारात्मक इत्यादि से सम्बन्धित ज्ञान भरा पड़ा है।

वेद संसार के प्राचीनतम ग्रन्थ हैं। ''वेद'' शब्द ज्ञानार्थक 'विद्' धातु में 'घञ' प्रत्यय के योग से निष्पन्न हुआ है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने ऋग्वेदभाष्य की भूमिका में 'वेद' शब्द का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया है – विन्दन्ति जानन्ति, विद्यन्ते भवन्ति, विन्दन्ति अथवा विदन्ते, लभन्ते विन्दन्ति विचारयन्ति, सर्वे मनुष्यः सत्यविद्या मैत्रेषु वा तथा विद्वांसन्च भवन्ति ते वेदाः।'' अतः वेद का मूल रूप इस प्रकार है – 1. वेद सत्यविद्या है, 2. वेद ज्ञानियों का विषय है एवं 3. वेद सभी मनुष्यों के लिए उपयोगी है। ये तीनों तथ्य जिस साहित्य में परिपक्व रूप में प्राप्त किये गये, प्राचीन आचार्यों ने उसी साहित्य को वैदिक साहित्य के नाम से अभिहित किया। वैदिक साहित्य में वैदिक संस्कृत भाषा ही दृष्टव्य है। अतः इन्हीं आधारों को लेकर वैदिक साहित्य को जिन रूपों में विकसित किया गया है, वे हैं – 1. संहिता–साहित्य, 2. ब्राह्मण साहित्य, आरण्यक सात्यि 4. उपनिषद साहित्य।

वैदिक साहित्य के रचना–काल के बारे में जान लेना विषय की सांगोपांगता की दृष्टि से अनिवार्य है। यद्यपि वेदों के प्रणयन के विषय में इदमित्थम्, कुछ भी नहीं कहा जा सकता, तथापि कुछ मान्यताओं पर प्रकाश डालकर किसी निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है। वेदों के रचना–काल को निर्धारित करने के लिए प्रमुख मत निम्नांकित प्रकार से है –

वेदों का अपौरूषेयत्व – भारतीय मत के आधार पर वेद ईश्वरीय कृति है – ईश्वरकृत हैं। ऋग्वेद के पुरूष–सूक्त में भी इसी मत की पुष्टि दृष्टव्य है –

तस्माद्यसात्सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे।

छन्दांसि जज्ञिरे तस्याद्यजुस्तस्मादजायत। ऋग्वेद, 10/90/9

* एसोसिएट प्रोफेसर – संस्कृत विभाग, भवन्स मेहता स्ना0महा0 भरवारी, कौशाम्बी, उ0प्र0

मनुस्मृति में ईश्वर द्वारा वेदों का ज्ञान अग्नि, वायु, सूर्य तथा अंगिरा को दिये जाने का वर्णन है –

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रम्ह सनातनम्।

देदोह यज्ञिसद्धयर्थमृग्यजुः सामलक्षण।। मनुस्मृति, 1/23

अध्यापयामास पितृक शिशुरामग्रसः कविः।। वहींगि 2/151

महर्षि दयानन्द ने वेदों को ईश्वरकृत मानकर उन्हें उतना ही प्राचीन सिद्ध किया है, जितनी कि यह सृष्टि प्राचीन है। उनके अनुसार ईश्वर ने मनुष्यों के कल्याणार्थ वेद को ऋषियों के हृदय में प्रकाशित किया था। 'सत्यार्थ प्रकाश' में इसका युक्तियुक्त प्रतिपादन किया गया है।

मैक्समूलर ने वैदिक साहित्य को चार भागों – छन्द, मन्त्र, ब्राह्मण एवं सूत्र में वर्गीकृत किया है। वे यह मान कर चले हैं कि गौतम बुद्ध के उद्भव के समय वैदिक साहित्य लिखा जा चुका था। अतः वैदिक साहित्य 600 ई0पू0 प्रणीत हो चुका था। यदि इन सूत्रों की रचना 600 ई0 पू0 स्वीकार की जाए तो उससे 200 वर्ष पूर्व ब्राह्मण ग्रन्थों की रचना हो चुकी होगी। अतः ब्राह्मण, आरण्यकों तथा उपनिषदों का रचना–काल 800 ई0पू0 निर्धारित किया जा सकता है। मैक्समूलर ने वेदों को मन्त्र तथा छन्द नामक दो भागों में विभाजित करके दोनों के विकास के लिए क्रमशः दो–दो सौ वर्षों का समय देकर यह सिद्ध किया है कि वेदों का रचना–काल 1200 ई0पू0 से लेकर 1000 ई0पू0 तक निश्चित होता है।

मैक्डोनल ने भाषा विज्ञान के आधार पर वेदों की रचना विधि 1300 ई0पू0 स्वीकार की है। डॉ0 आर0जी0 भण्डारकरने यजुर्वेद के 40वें अध्याय में प्रयुक्त 'असूर्या' शब्द को लेकर वेदों का सम्बन्ध असीरिया (मेसोपोटामिया) से जोड़ा है। इतिहास के अनुसार असीरिया के असुर 2500 ई0 पू0 भारत में आये थे। अतः यजुर्वेद से पूर्व रचित तथा विकसित ऋग्वेद का रचनाकाल 6000 ई0पू0 रहा होगा। जर्मनी के विद्वान जैकोबी तथा भारतीय विद्वान लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने ऋग्वेद का रचना–काल क्रमशः 4500 ई0पू0 सिद्ध किया है। इन विद्वानों के मतों का आधार ज्योतिषीय गणना है। नारायणराव भवनराव पारंगी ने भूगर्भशास्त्र के आधार पर ऋग्वेद का रचनाकाल 9000 ई0पू0 स्वीकार किया है। कतिपय सनातनी विद्वानों ने वेदों का रचना–काल लाखों वर्ष पुराना माना है।

गीता में कहा गया है कि सिद्ध पुरूष के हृदय में सारा मानव–समाज प्रतिबिम्बित हो जाता है तथा समस्त मानव समाज में वह सिद्ध पुरूष चरित्रतः प्रतिबिम्बित होने लगता है। अतः वह सिद्ध पुरूष सर्वत्र समदर्शी होने के कारण ईश्वरत्व को प्राप्त कर लेता है।[2] ऐसा ईश्वरस्वरूप व्यक्ति जब अपने अद्भुत ज्ञान की अभिव्यक्ति करता है तो वह ज्ञान रचना सर्वजीवहिताय होती है। हमारे यहाँ इसीलिए वेदों को ईश्वरकृत कहा गया है।

ऋग्वेद के पुरूष–सूक्त में 'पुरूष' शब्द चेतना का वाचक है। ज्ञान का सम्बन्ध अन्तश्चेतना से है। अतः 'ऋषियों मन्त्रद्रष्टार' जैसी उक्तियों के आधार पर यह स्वतः सिद्ध हो जाता है कि वेद ऋषियों की अन्तश्चेतना से व्यक्त हुए हैं, इसलिए उन्हें 'ब्रह्मविद, ब्रह्मैव भवति' अर्थात् ईश्वर का ज्ञाता ईश्वर ही हो जाता है जैसे सिद्धान्तों के आधार पर वेद पुरूषों की रचना न होकर अपौरूषेयत्व प्राप्त सिद्ध या ऋषियों की रचना है। वेदों के अवलोकन से भी यही बात

सुस्पष्ट है। वेदों का अवलोकन करने पर वेद के प्रणेताओं के निर्धारण हेतु निम्नांकित तथ्य ध्यान देने योग्य है –

1. वेदों के सूक्त–विभाजन विभिन्न ऋषियों के नामों की स्पष्ट सूचना देते हैं, वेदों में वशिष्ठ, विश्वामित्र, जमदग्नि जैसे मन्त्रद्रष्टाओं का स्पष्ट उल्लेख है।

2. वेदों की भाषा वैदिक संस्कृत है। वैदिक संस्कृत में शब्दों के रूप अनेक प्रकार के पाये जाते हैं। इसका ज्वलन्त प्रमाण यास्कीय निरूक्त है जो यह सिद्ध कर देता है कि वेद विभिन्नयुगों के अनेक ऋषियों द्वारा रचित है।

3. वेदों के अन्तिम भाग वेदान्त या उपनिषद् के रूप में प्रसिद्ध है। उपनिषदों में निवृत्ति मार्ग की प्रधानता है तथा वेदों में प्रवृत्तिमार्ग की। अतः निवृत्तिमार्ग द्रविड़ों तथा प्रवृत्तिमार्गी आर्यों के योग से ही वेदों की रचना हुई है। इस आधार पर विभिन्न संस्कृतियों के विभिन्न ऋषियों की सूचना स्वतः मिल जाती है।

4. वेदों की रूपक शैली[3] भी यह स्पष्ट करती है कि वेदों में इन्द्र एक प्रतापशाली देवता भी है तथा वह एक राजा भी है। 'इन्द्र' एक उपाधि[4] है। अतः ऐसे राजवंशों में अनेक राजकवियों का होना स्वतः सिद्ध है। अतः वेदों के प्रणेता अनेक युगों के अनेक कवि ही हैं।

5. वेदों की रचना विधि प्रागैतिहासिक मानी गई है। इतिहास पूर्व काल वैदिक संस्कृत भाषा का ही युग था। अतः उस समय के क्रान्तदर्शी विद्वानों अर्थात् कवियों ने समसामयिक भाषा में ही काव्य–रचना की। प्रत्येक कवि अपने समय की भाषा में ही साहित्य–सर्जन करता है। इसलिए वेद भी तत्कालीन कवियों द्वारा वैदिक संस्कृत में ही रचे गये, अतः वे इन सिद्ध कवियों के ही उद्‌गार हैं।

6. सत्य–विद्या सहज ज्ञान का विषय होने के कारण ईश्वरकृत मानी जाती है। इसीलिए तो 'वेद' को ब्रह्म वाक्य 'होली बाइबिल' को वर्ड्स ऑफ गॉड तथा 'कुरान शरीफ' को कलामुल्लाह माना जाता है। सत्य और अनन्त ज्ञान ही ब्रह्म है – 'सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म' (तैतिरीयोपनिषद्)। अतः जब प्रथम शताब्दी पूर्व तथा छठी शताब्दी में प्रचलित क्रमशः ईसाई एवं इस्लाम धर्मों के मूल धर्म ग्रन्थ ईश्वरकृत कहे जा सकते हैं तो 'वेद' को ब्रह्मकृत कहना स्वाभाविक और तर्कसंगत है, परन्तु इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि धर्मग्रन्थ महापुरूषों द्वारा विभिन्न परिवेशों को दृष्टिगत रखकर ही प्रणीत किये गये हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि 'वेद' अनेक क्रान्तदर्शी विद्वानों की ईश्वरीय प्रतिभा की अभिव्यक्ति है। ये विद्वान् विभिन्न युगों में अपने नाम के यश की परवाह किये बिना जन–कल्याणार्थ सहज ज्ञान को वेद के रूप में अभिव्यक्त करते रहे। वस्तुतः 'वेद' सहज ज्ञान या सत्य विद्या के रूप में होकर भी रस–साहित्य है और रस अभिव्यक्ति होने के कारण अनिर्वचनीय और ब्रह्मानन्द सहोदर होता है –

सत्वोद्रेकादखण्ड स्वप्रकाशानन्दचिन्मयः।

वेदान्तरस्पर्शशून्यो ब्रह्मानन्द सहोदरः।। साहित्य दर्पण

अब 'वेद' की अभिव्यक्ति को ईश्वरकृत कहने का मर्म मनोवैज्ञानिक सन्दर्भ में स्वतः स्पष्ट हो गया। वस्तुतः आधुनिक खोजों के द्वारा पृथ्वी की रचना का इतिहास अरबों वर्ष पुराना सिद्ध किया जा रहा है और साथ ही साथ ज्योतिष के आधार पर जैकोबी तथा लोकमान्य तिलक जैसे

विद्वानों ने 'वेद' का रचनाकाल 4500 ई0पू0 तथा 6500 ई0पू0 तक सिद्ध किया है, अतः यह स्वाभाविक ही है कि आर्यों और द्रविड़ों के समन्वय के उपरान्त वेदों को संगृहीत करके संहिताओं के रूप में प्रस्तुत किया गया होगा। आर्यों और द्रविड़ों का समन्वय एशिया माइनर में प्राप्त 1400 ई0पू0 के शिलालेखों से स्पष्ट है। यर्थाथतः यह समन्वय साधन तथा वेद मन्त्रों का संग्रहण किसी अल्पावधि की देन नहीं कहा जा सकता। अतः वेद संहिताओं का प्रणयन–काल कम–से–कम 2000 ई0पू0 समझना चाहिए। 'सिन्धु' शब्द का भाषा वैज्ञानिक विवेचन करने पर पता चलता है कि यह शब्द वैदिक संस्कृत में द्रविड़ अथवा आस्ट्रिक जातियों के भाषा भाषी लोगों की भाषा का है। तब तो हमें यह स्वीकार करना ही चाहिए कि प्रवृत्ति से निवृत्ति की ओर अग्रसर होने वाले द्रविड़ वैदिक संस्कृत के पूर्व काल में भी सहज ज्ञान से सम्बद्ध 'वेद' को अपनी भाषा में व्यक्त करते होगें। अतः वेद–रचना कब से प्रारम्भ हुई, इसका निर्धारण उसी भाँति अनिर्वचनीय है, जिस प्रकार की प्रथम सृष्टि का निर्धारण अकथ्य और अनिर्वचनीय है।

सन्दर्भ :

1. यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।
   तावदृग्वेदमहिमा लोकेषु ऽचरिष्यति।। मैक्समूलर
2. सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
   ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्रसमदर्शनः।। श्रीमद्भागवद्गीता – 6/29
3. आचार्य बलदेव उपाध्यायः पुराण विमर्श की भूमिका।
4. वाचस्पति गैरोलाः संस्कृत साहित्य का इतिहास पृष्ठ 229

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

गाँधीजी का जीवन परिचय

कुमार रमन किरण*

महात्मा गाँधी मूलतः राजनीतिक विचारक नहीं थे। वे राजनीतिक आन्दोलनकारी भी नहीं थे। वह मूलतः एक धार्मिक मानवतावादी, कर्मयोगी और अंतः प्रेरणा के पुरूष थे यद्यपि परिस्थितियों के वश उन्हें राजनीतिक क्षेत्र में आना पड़ा। पर जब वे एक बार राजनीतिक क्षेत्र में आ गये तो फिर उन्होंने अपनी पूरी प्रतिभा को उसमें लगाया तथा अपनी सात्विक प्रकृति परिश्रमशीलता, व्यावहारिक ज्ञान तथा अपनी सहृदयता से राजनीति तथा उसके उद्धेश्य को बहुत ऊँचा उठाया। उनका मूल मंत्र राजनीति को पवित्र करना, उसे अध्यात्म व नैतिकतायुक्त बनाना, मानव मात्र हृदय में प्रेम व अहिंसा का प्रसार करके विश्व में भातृ भावना को फैलाना, व्यक्ति की सच्ची स्वतंत्रता की पुर्नस्थापना करना तथा पुरूषार्थ के महत्व को सीखाना व उनकी प्रतिष्ठा करना था।

महात्मा गाँधी का पूरा नाम मोहनदास करम चंद गाँधी था। उनका जन्म 1857 के प्रथम भारतीय स्वतंत्रता के 12 वर्ष पश्चात् 2 अक्टूबर 1869 में सौराष्ट्र के पोरबन्दर नामक स्थान पर हुआ था। गाँधी परिवार इस क्षेत्र का प्रतिष्ठित परिवार था। गाँधीजी के दादा उत्तमचन्द गाँधी पोरबन्दर रियासत के दीवान थे। इसी पद को केवल 25 वर्ष की उम्र में गाँधीजी के पिता करमचन्द काबा गाँधी ने प्राप्त किया था।[1] इनके जीवन तथा प्रारंभिक चरित्र पर परिवार के वातावरण तथा माता का बड़ा प्रभाव पड़ा। गाँधीजी ने 15 वर्ष की आयु में राजकोट के एल्फर्ड हाई स्कूल में प्रवेश किया। इसी वर्ष इनका विवाह कस्तूरबा बाई से हो गया। 1887 में इन्होंने हाई स्कूल पास किया। गाँधीजी ने कहा है कि इसी समय उनके जीवन पर श्रवण पितृ भक्ति तथा हरिश्चन्द्र नाटक का बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा और उन्होंने यह निश्चय किया कि उन्हें भी अपने श्रवण कुमार या हरिश्चन्द्र जैसा बनाना है। हाई स्कूल के बाद उच्च अध्ययन के लिए गाँधीजी के चाचा ने गाँधीजी को इंग्लैण्ड भेजने का निश्चय किया । फलतः 4 सितम्बर 1888 को वे जहाज द्वारा लन्दन को गये। इंग्लैण्ड में वे दादा भाई नौरोजी व अन्य कई भारजीय विद्वानों के संरक्षण में रहे। इसी समय एरनोल्ड द्वारा अनुदित श्रीमद् भागवत गीता का अंग्रेजी रूपान्तर 'दी सांग सेलेस्चियल' तथा 'लाइट ऑफ एशिया' के अध्ययन का अवसर मिला तथा गीता इनके जीवन की सहचरी बन गयी।[2]

इंग्लैण्ड में 11 जून 1891 को उन्हें वकालत की परीक्षा में उत्तीर्ण घोषित किया गया और उसके दूसरे ही दिन उन्हें हाई कोर्ट के लिए पंजीकृत कर लिया गया। पर भारत में जागृत हो रही राजनीतिक चेतना व उथल–पुथल की ओर गाँधीजी का ध्यान आकृष्ट हो चुका था। अतः 12 जून 1891 को वे राजकोट के लिए रवाना हो गये जहाँ वे 1892 तक रहे।

अप्रैल 1893 में दादा अब्दुला एण्ड कम्पनी के निमंत्रण पर गाँधी जी दक्षिण अफ्रिका गये। वहाँ उन्हें 'रस्किन' के 'अन दू दिस लास्ट'(unto this last) तथा 'टॉलस्टाय' के 'दी किंगडम ऑफ गॉड इस विदिन यू'(The Kingdom of God within you) पढ़ने का अवसर मिला। अहिंसा व शांतिपूर्ण असहयोग के संबंध में उनकी मान्यताओं के इन ग्रन्थों से बहुत अधिक बल मिला।[3]

* पूर्व सहायक प्राध्यापक (तदर्थ) अनुग्रह नारायण सिन्हा मेमोरियल कॉलेज, औरंगाबाद, बिहार

सत्य, अहिंसा व सत्याग्रह का अनन्त प्रयोग जो उनकी मृत्युपर्यन्त चलता रहा, महात्मा गाँधी ने दक्षिण अफ्रीका से ही प्रारम्भ किया था। गाँधीजी सन 1914 तक अफ्रीका में भारतीयों के हितों की रक्षा के लिए संघर्ष करते रहे। सन 1915 में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की परिस्थितियों ने गाँधीजी को सक्रिय राजनीति की ओर आकृष्ट किया। सन 1916 में गोखले के परम शिष्यत्व में गाँधीजी ने लखनऊ पैक्ट के आधार पर हिन्दू–मूसलमानों के मध्य समझौता करवाया तथा स्वदेशी एवं स्वराज्य को अपना मूल मंत्र बनाया।[4]

1913 के जलियॉवाला बाग रौलट अधिनियम तथा अंग्रेजी शासन के अमानवीय कानूनों व कृत्यों ने गाँधीजी को अंग्रेजी सरकार के विरूद्ध असहयोग आन्दोलन प्रारंभ करने को बाध्य किया।[5] फलतः 1920–21 में संपूर्ण देश गाँधीजी के नेतृत्व में आ गया। इसी प्रकार का एक आंदोलन उन्होंने सन 1930–32 में भी संचालित किया जिसे 'सविनय अवज्ञा आंदोलन' का नाम दिया गया था। कांग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में उन्होने लंदन में सितम्बर 1931 में हुई द्वितीय गोलमेज परिषद में भी भाग लिया।[6] आंग्ल शासन के गलत कानूनों की अवज्ञा करने के प्रतिस्वरूप उन्होंने (मार्च–अप्रैल 1930 में) अपना इतिहास प्रसिद्ध दाण्डीकूच किया तथा दाण्डी पर 5 अप्रैल 1930 को नमक बनाकर नमक कानून को भंग किया।

गाँधीजी ने समय–समय पर कांग्रेस की गलत नीतियों की भी खूलकर आलोचना की। नवम्बर 1938 में कांग्रेस में बढ़ रहे अनुशासनहीनता तथा भ्रष्टाचार के विरूद्ध चेतावनी दी।[7] अक्टूबर 1940 में गाँधीजी ने व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा आंदोलन भी किया। इसी बीच 22 फरवरी 1944 को जब वे कारावास में थे, उनकी पत्नी कस्तूरबा की मृत्यु हो गई। गाँधीजी के जीवन पर इस घटना का गहरा प्रभाव पड़ा।[8]

देश की तात्कालिक परिस्थितियों ने गाँधीजी को देश की पूर्ण स्वतंत्रता के लिए कार्य करने को बाध्य किया। उनका दृढ़ विश्वास था कि विद्यमान संपूर्ण कठिनाईयॉ ब्रिटिश शासन के कारण थी तथा पूर्ण स्वतंत्रता को वे उनका एक मात्र उपचार समझते थे। उनकी स्वतंत्रता की कल्पना संपूर्ण भारतवर्ष के लिए थी जिसके अर्थ को स्पष्ट करते हुए उन्होंने 15 जुलाई 1946 को हरिजन में लिखा था कि स्वतंत्रता का अभिप्राय संपूर्ण भारती की स्वतंत्रता से है, जिसमें भारतीय देशी रियासते, फ्रांसीसी व पूर्तगालियों के अधीन क्षेत्र सभी सम्मिलित है। भारतीय स्वतंत्रता नीचे से प्रारंभ होनी चाहिए, जिससे वर्तमान देशी शासकों को भी जनता की इच्छा के अनुसार चलने के लिए बाध्य होना पड़े।[9] अंग्रजों की ओर से जब भारत के विभाजन का प्रस्ताव आया तो उन्होंने स्पष्ट कहा था कि भारत का विभाजन किसी भी तरह मान्य नहीं होगा। उन्होंने तो इस संबंध में यहाँ तक कहा था कि विभाजन उनके मृत शरीर पर ही हो सकता है। किन्तु अंत में कांग्रेस को भारत का विभाजन करना ही पड़ा। विभाजन की योजना को नेहरू तथा पटेल ने उचित ठहराया तथा गाँधी के विचारों की अवहेलना प्रारंभ कर दिया। विभाजन हुआ और भयंकर नरसंहार भी। भारत स्वतंत्र हुआ। गाँधीजी का मन हिंसक घटनाओं से व्यथित रहा किन्तु वे अपने आप को मूकदर्शक से अधिक नहीं मानते थे। नेहरू की अडंगेवाली नीति के कारण आचार्य कृपलानी ने कांग्रेस अध्यक्ष पद से त्याग पत्र दे दिया। गाँधीजी आचार्य नरेन्द्र देव को कांग्रेस अध्यक्ष बनाना चाहते थे किन्तु नेहरू तथा पटेल ने डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद को अध्यक्ष पद के लिए प्रस्तुत किया। गाँधीजी अन्यमनस्क होकर यह सब सहन करते गये। दिल्ली के मुसलमानों ने गाँधीजी को अपनी कठिनाईयॉ बताई तथा अपनी सुरक्षा की मांग की। गाँधीजी 12 जनवरी 1948 को दिल्ली में साम्प्रदायिक सद्भाव स्थापित करने के उद्देश्य को लेकर आमरण अनशन की घोषणा की। वे

समाज के पापों को प्रायश्चित कर रहे थे। उन्होंने कहा कि तलवार के स्थान पर जो स्वयं की हो अथवा अन्य की अनशन ही सत्याग्रही का अंतिम आश्रय है। गाँधीजी का अनशन सफल रहा और दिल्ली के विभिन्न सम्प्रदायों के प्रतिनिधियों ने गाँधीजी को सद्भाव एवं शांति बनाये रखने का वचन दिया। गाँधीजी ने अनशन त्याग दिया। किन्तु यह गाँधीजी का अंतिम सत्याग्रह था। अहिंसा के पूजारी को हिंसक मानव ने अपनी बर्बरता का शिकार बनाया। शुक्रवार 30 जनवरी 1948 को प्रार्थना सभा में जाते हुए वे हत्यारों के गोलियों के लक्ष्य बने। हे राम के अंतिम शब्दो के साथ मानवता का महान उपासक सदा के लिए चिर निद्रा में सो गया।[10] गाँधीजी के लिए इससे अधिक सुन्दर मृत्यु का वरण और क्या हो सकता था? गाँधीजी अमर है। भारत ही नहीं वरन सारा विश्व उनके समक्ष श्रद्धानवत है हमारे राष्ट्रपिता के रूप में उनकी दिव्य आत्मा भारत की सदैव मार्गदर्शक रहेगी।

गाँधीजी के विचारों की दार्शनिक पृष्ठभूमि– गाँधीजी जो कि अहिंसा तथा धार्मिक निष्ठा के वातावरण में पले थे, अपने इंग्लैण्ड प्रवास के दौरान पाश्चात्यचिंतन के प्रत्यक्ष प्रभाव में आये। गाँधीजी धर्म को अत्यंत विस्तृत अर्थ में लेते थे और सभी धर्मो के प्रति उनका दृष्टिकोण, केवल अपने राजकोट के अनुभव के कारण ईसाई धर्म को छोड़कर सहिष्णुता का था। किन्तु ईसाई धर्म के प्रति उनका विचार सर्वथा परिवर्तित हो गया जब उन्होने जोसिया ओल्ड फिल्ड के परामर्श पर बाइबिल का अध्ययन किया। 'वे सर्मन आन दी मांउट' से अत्यधिक भाव विहवल हुए। गाँधी को ऐसा अनुभव हुआ कि उनके अपने धार्मिक विचारों तथा विश्वास से बाइबिल के विचार मिलते जुलते थे। उन्होंने 'सर्मन ऑन दी मांउट' की गीता से तुलना की। त्याग को धर्म का सर्वोत्कृष्ट रूप जानकर वे अत्यधिक प्रभावित हुए।[11] उनके लिए गीता तथा न्यू टेस्टामेन्ट दोनों की शास्वत प्रेरणा के स्त्रोत थे। यद्यपि वे दोनों को समान महत्व नहीं देते थे। गाँधीजी ने एक बार कहा था कि हिन्दू धर्म से उनको पूर्ण आत्मिक शांति मिलती है और भागवत गीता तथा उपनिषदों में जिस संतुष्टि का बोध उन्हें होता है वह सर्मन ऑन दी मांउट से नहीं होता। जब उनके मन में संशय उत्पन्न होता है तो वे गीता के श्लोक पढ़ते हैं और दूसरे ही क्षण उनका विशाद उल्लास में परिवर्तित हो जाता है। उनके अनुसार गीता ने उनको बाह्य दुखों के कारण टुटने से बचाया हैं इसका यह तात्पर्य नहीं कि गाँधीजी ने गीता तथा सर्मन ऑन दी मांउट में कोई अन्तर देखा है। सर्मन ऑन दी मांउट में जो बात चित्रित की गयी है वही बात गीता में वैज्ञानिक फार्मूले के रूप में व्यक्त की गयी है। गीता ने प्रेम के नियम को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है। चूँकि गीता तथा सर्मन के उपदेशों में कोई संघर्ष अथवा विरोधाभास नहीं है वे दोनों ही एक कोमल एकता में समाहित हो जाते है।[12]

इस प्रकार इंगलैण्ड में गाँधीजी ने केवल कानून तथा अंग्रेजी रीति नीति का ही ज्ञान प्राप्त नहीं किया अपितु ईसा का संदेश तथा ईसाई धर्म का भी उन्होंने अध्ययन किया। दक्षिण अफ्रीका में वकालत प्रारंभ करने के पश्चात उन्हें अनेक महान ग्रंथों के अवगाहन का अवसर प्राप्त हुआ। विनसेन्ट सियान ने उन अनेक प्रभावों का उल्लेख किया है जो गाँधीजी के अहिंसा संबंधी विचारों के विकास में सहायक रहें। सियान के अनुसार 1888–1889 में इंग्लैण्ड में जबकि वे बीस वर्ष के थे, स्पष्ट दिखाई देता है। यह शक्तिशाली प्रभाव उनके दक्षिण अफ्रीका अनुभवों के दिनों में निरन्तर बना रहा। गीता ने जिसका प्रभाव उतना हीं पुराना था, गाँधीजी को तीस वर्षो के पश्चात और भी अधिक प्रभावित किया जब उन्होने संस्कृत में इसका अध्ययन किया। हिन्दु धर्म के हजारो वर्षों से उत्पन्न गीता की अमिट छाप गाँधीजी पर थी। वृद्वावस्था में गीता से उन्हें अन्य

सभी की तुलना में और अधिक प्रेम हो गया था और वे यीशु के उपदेशों का गीता के माध्यम से देखने लगे थे।[13]

गाँधीजी ने चिन्तन पर अन्य पाश्चात्य मनीषियों की छाप अंकित थी। उन्होने विश्व की अनेक कृतियों से विचार युक्त एकत्र कर अपनी चिन्तन माला में उन्हें पिरोया। उनके विचारों की यह समन्वयवादी विशेषता ही उनकी मौलिकता थी। यद्यपि उन्होंने सर्वथा नवीन चिन्तन प्रदान नहीं किया किन्तु अन्य चिन्तकों की वैचारिक अभिव्यक्ति पर अपनी विलक्षण विवेचना प्रस्तुत कर वे स्वयं अग्रणी चिन्तकों में सम्मिलित कर लिये गये। गाँधीजी के लेखों में जिन पाश्चात्य चिन्तकों का बारम्बार उल्लेख हुआ है वे मूलतः तीन है रस्किन, थोरू तथा टालस्टॉय।

गाँधीजी ने रस्किन, के विचारों से अनेक महत्वपूर्ण विचार अपने जीवन में उतारे। रस्किन की पुस्तक unto this last से गाँधीजी ने (1904) यह सीखा कि व्यक्ति की भलाई सबकी भलाई में निहित है। रस्किन ने एक वकील के कार्य को एक नाई के कार्य के समान मूल्यवान मानते हुए यह व्यक्त किया कि सबको काम से जीविकोपार्जन का समान अधिकार है। गाँधीजी ने श्रम का मूल्य इस विचार से पहचाना। इसी तरह रस्किन का यह विचार कि श्रम का जीवन अर्थात् जमीन जोतने वाले तथा हस्तशिल्पी का जीवन ही जीने योग्य जीवन है, गाँधीजी का प्रेरणा स्त्रोत बना। गाँधीजी रस्किन के उपर्युक्त प्रथम विचार से परिचित थे तथा द्वितीय विचार की उन्हें धूमितल अनुभूति हुई थी। किन्तु तीसरा तथा अंतिम विचार का अवगाहन कर उन्हें प्रतीत हुआ कि रस्किन के प्रथम विचार में ही द्वितीय तथा तृतीय विचार अन्तर्निहित था।[14] गाँधीजी ने रस्किन की पुस्तक का गुजराती में अनुवाद कर उसे 'सर्वोदय' नाम से प्रकाशित किया था।[15] गाँधीजी ने रस्किन से इस कारण प्रभावित नहीं हुए थे कि वे उन विचारों के संबंध में सर्वथा अनभिज्ञ थे। उनके प्रभावित होने का कारण यह था स्वयं गाँधी के विचार रस्किन की रचना के माध्यम से उभर कर प्रतिबिम्बित हो रहे थे। इतना ही नहीं, गाँधीजी ने रस्किन के विचारों को अपने शब्दों में व्यक्त नहीं किये किन्तु गाँधी के स्वयं के विचार रस्किन द्वारा व्यक्त थे।[16]

गाँधीजी ने थोरू के 'अर्स ऑन सिविल डिसओविडियेन्स' को 1908 में उस समय पढ़ा जब वे दक्षिण अफ्रिका में अपने प्रथम कारावास का दण्ड भुगत रहे थे। थोरू द्वारा राज्य नियमों की अवज्ञा के उदाहरण ने दक्षिण अफ्रीका में राज्य के नियमों की अवज्ञा का प्रचण्ड आंदोलन चला रखा था। थोरू की पुस्तक दक्षिण अफ्रीका के भारतीय सत्याग्रहीयों की मार्ग दर्शिका बन गई थोरू का अराजकतावाद तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता संबंधी प्रेम गाँधीजी के लिए प्रेरणादायक सिद्ध हुआ। उन्हे थोरू में मानव के मानव प्रति अन्याय से जूझने की सहानुभूति पूर्ण भावना प्राप्त हुई। किन्तु गाँधीजी ने सविनय अवज्ञा का विचार थोरू से ग्रहण नहीं किया था। उनके सत्याग्रह संबंधी दक्षिण अफ्रीका तथा भारत में किये प्रयोगों से स्पष्ट हो जाता है कि गाँधीजी ने थोरू से स्वतंत्र रूप में अपने सत्याग्रह दर्शन का विकास किया था। अपने एक पत्र में गाँधीजी ने व्यक्त किया था कि जब उन्हें थोरू के सविनय अवज्ञा संबंधी निबंध की प्रति प्राप्त हुई तब तक दक्षिण अफ्रीका में सता का विरोध काफी प्रगति कर चुका था। थोरू के निबंध की सिविल डिसओविडियेंस शब्द उन्होंने ग्रहण किया ताकि पाठकों को वे अपने आंदोलन से परिचित करा सके। बाद में उन्हें वह शब्द भी आंदोलन के समुचित अर्थ को समझाने में अपूर्ण दिखाई दिया। अतः उन्होंने सिविल रेजिस्टेन्स शब्द का प्रयोग प्रारंभ कर दिया। यह शब्द भी उन्हें अधुरा लगा तब उन्होंने गुजराती आंदोलनकारियों के लिए सत्याग्रह शब्द का सृजन किया।[17]

इस प्रकार थोरू का गाँधीजी पर प्रभाव वैसा ही था जैसा अन्य लेखकों का। वे गाँधीजी के विचारों तथा प्रयोगों से मेल खाते थे। उनके विचार किसी एक लेखक अथवा विचारक से ग्रहण किये हुए नहीं थे। चाहे उन पर स्त्रोत का कितना भी प्रभाव क्यों न दिखलाई दे। गाँधीजी ने विभिन्न स्त्रोतों से विचार ग्रहण कर उन्हें अपने विचारों के अनुरूप ढाल दिया। अपने सिद्धान्तों को स्पष्ट करने तथा अपनी धारणाओं को अपरिचितों तक पहुँचाने के लिए गाँधीजी ने न केवल धार्मिक पुस्तकों का अपितु रस्किन, थोरू तथा टालस्टॉय जैसे पाश्चात्य दार्शनिकों की रचनाओं का भी प्रभावशाली उपयोग किया।

टालस्टॉय की 'दी किंग्डम ऑफ गॉड इज विदिन यू' ने गाँधीजी को भाव विभोर कर दिया। इस पुस्तक का उन पर स्थायी प्रभाव पड़ा। ऐसे समय में जबकि दक्षिण अफ्रीका के ईसाईयों द्वारा भारतीयों की मांग के औचित्य पर कटाक्ष किये जा रहे थे, टालस्टॉय के विचारों से गाँधीजी को सत्याग्रह संघर्ष के लिए संबंध प्राप्त हुआ। कुछ वर्षो के बाद गाँधीजी ने यह स्वीकार किया कि अहिंसा में उनकी निष्ठा टालस्टॉय की उपयुक्त पुस्तक से जागृत हुई थी। टालस्टॉय के विचारों को पढ़कर चालीस वर्ष के बाद अहिंसा के औचित्य पर भ्रमजाल में से गाँधीजी को पुनः नवीन प्रकाश दिखाई दिया और वे अहिंसा के प्रति पुनः पूर्ण निष्ठावान बनें। गाँधीजी के अनुसार टालस्टॉय में सिद्धान्त तथा व्यवहार का लेश मात्र अंतर नहीं मिला। जैसा उन्होंने कहा ठीक उसी तरह उनका पालन भी किया। टालस्टॉय से वैचारिक परिचय बहुत पुराना था। 1890 में टालस्टॉय ने पेरिस के 'इफेल टावर' को मनुष्य की मूर्खता का स्मारक कहा था। गाँधीजी ने पेरिस में टावर को देखकर टालस्टॉय के समान ही निष्कर्ष निकाला। टालस्टॉय ने ईसा की अमर वाणी की व्याख्या करते हुए राज्य की भर्त्सना की और शासन के हिंसक ढांचे को अस्वीकार किया। वे प्रेम के सार्वभौमिक एवं असीमित क्षेत्र को प्रकट करते थे। गाँधीजी ने टाल्स्टॉय के अहिंसा पर व्यक्त विचारों को अपने जीवन का आदर्श बना लिया। दोनों के मध्य इस संबंध में पत्र व्यवहार भी हुआ।[18] पातंजलि के योग सूत्र के पंचयमों से भी उन्होंने अहिंसा की शिक्षा ग्रहण की । योग सूत्र को वे आध्यात्मिक विकास के अनुशासन का नियम मानते थे। जैन तथा बौद्ध साहित्य, हरिश्चन्द्र एवं श्रवण कुमार के नाटकों का भी उनके चिन्तन व जीवन पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। इन्हें उन्होने अपने जीवन के आदर्श के रूप में माना। अस्तेय (चोरी न करना) सत्य (झूठ न बोलना) ब्रहचार्य, अपरिग्रह तथा न्यास सिद्धान्त आदि की चर्चा उनके दर्शन में हमें गाँधीजी पर उपर्युक्त के प्रभाव के कारण ही मिलती है। उस उपनिषदीय शिक्षा का उन पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा जिसका सार यह है कि संसार को त्याग दिया जाना चाहिए अथवा उसे भगवान के उपहार स्वरूप ग्रहण किया जाना चाहिए। इस्लाम को बहुधा हिंसा और जोर दबाव से सम्बद्ध माना जाता है। पर गाँधीजी ने उससे भी अहिंसा की ही शिक्षा ली। उन्होंने इसमें दयालुता, शान्ति प्रेम और विचारशीलता का संदेश पाया। गाँधीजी जानते थे कि 'इस्लाम शब्द का मतलब ही है शान्ति सुरक्षा और मुक्ति। कुरान की एक महत्वपूर्ण शिक्षा है धर्म में जोर जबर्दस्ती नहीं होनी चाहिए। इनके अलावा प्लेंटो, थामस पेन, रॉलेन्स हेडरसन, हक्सले आदि विचारकों का भी गाँधीजी ने गहन अध्ययन किया तथा उनके उत्तम विचारों को अपने चिन्तन, जीवन तथा दर्शन में उपर्युक्त स्थान दिया।

संदर्भ सूची :

1. महात्मा– लाईफ ऑफ मोहनदास करमचन्द गाँधी, भौलूम–1 पृ023 डी0जी0तेन्दुलकर प्रकाशन विभाग द्वारा प्रकाशित (भारत सरकार)

2. वही, भौलूम–1, पृ0–26
3. वही, भौलूम–1, पृ0–39
4. वही, भौलूम–2, पृ0–185
5. वही, भौलूम–2, पृ0–25
6. वही, भौलूम–3, पृ0–285
7. वही, भौलूम–4, पृ0–360
8. वही, भौलूम–6, पृ0–238
9. वही, भौलूम–7, पृ0–168
10. वही, भौलूम–8, पृ0–347
11. गाँधी, ऑटोबायोग्राफी, पृ0–42
12. यंग इंडिया, अगस्त 6, 1925 तथा सितम्बर 22, 1927
13. विनसेन्ट शीयान, बीड काइण्डली लाईट, पृ0–55–56
14. गाँधी, ऑटोबायोग्राफी, पृ0–365
15. वही, पृ0–364–365
16. लुई फिशर, लाईफ ऑफ महात्मा गाँधी, पृ0–83
17. वही, पृ0–87
18. महात्मा, ऑटोबायोग्राफी, पृ0–198, 178 तथा 108

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

भारत में गठबन्धन सरकारें और उसकी चुनौतियाँ

प्रिय रंजन*

सारांश : प्रस्तुत शोध पत्र का मूल उद्देश्य ''गठबन्धन सरकारे और उसकी चुनौतियाँ का विश्लेषण प्रस्तुत करना है। भारत के संविधान के द्वारा केन्द्र एंव राज्य स्तर पर संसदीय शासन व्यवस्था को अपनाया गया है। इस संसदीय व्यवस्था में दोनों ही स्तर पर व्यवस्थापिका के लोकप्रिय सदन लोकसभा एंव विधान सभा के चुनाव होते है। इसके बाद जब एक राजनीतिक पार्टी को स्पश्ट बहुमत नहीं प्राप्त होता तो उस स्थिती में त्रिशंकु लोक सभा की स्थिति बनती है। ऐसे समय राजनीतिक पार्टीयों द्वारा गठबंधन की प्रक्रिया प्रारम्भ होने लगती है। फिर जो गठबंधन का नेता होता है उसके द्वारा सरकार गठन का कार्य किया जाता है और उसे ही गठबंधन सरकार कहा जाता है। गठबंधन सरकारों में कम से कम दो दल अथवा उससे ज्यादा भी हो सकते हैं ये सरकारें सम्मिलन की राजनीति का परिणाम है। जिसे विभिन्न राजनीतिक दल चुनाव के पूर्व और चूनाव के बाद अपना सकते है। और ये सभी देखा जाता है कि चुनाव के पूर्व जो गठबंधन बनता है उसके अवसरवादिता कम होती है। जबकी चुनाव के बाद के गठबन्धन में केवल अवसरवादिता ही भरी रहती है। इसी कारण गठबन्धन सरकारें दिन प्रति दिन कमजोर होती जा रही है।

प्रस्तावना : भारतीय शासन व्यवस्था में गठबन्धन की राजनीति नई नहीं हैं। कहाँ जा सकता है कि जब से चुनवों का दौर शुरू हुआ तब से गठबन्धन की राजनीति भी अपने अस्तिव में आने लगा। जिसके माध्यम् से सत्ता में विभिन्न दलों की भागीदारी सुनिश्चित करने का प्रयास माना जाता है और ये कहें तो भारत में इसका वजुद आजादी से पहले से ही मौजूद था। कोई भी आन्दोलन लोगों की भागीदारी के बिना सफल नहीं हुआ है। लोगों की भागीदारी अपने अधिकारों को लेकर उनकी जागरूकता का ही परिणाम है। आज वही जागरूकता राजनीतिक दलों में भी दिखाई दे रही है। गठबन्धन की राजनीति और सरकारें भारतीय राजनीतिक व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण अंग बन चुकी है। गठबन्धन का तात्पर्य ऐसी सरकारों से होता है, जो अनेक दलों द्वारा मिलकर बनाया जाता है। इस सरकार में गठबन्धन के सभी दलों के नेता मंत्रीपद ग्रहण करते है तथा सरकार में शामिल होते है। गठबन्धन सरकार की आवश्यकता विशेष रूप से तब होती है जब किसी भी पार्टी को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं होता। ऑग ने कहा है– ''मिली जुली सरकार एक ऐसे सहयोगी प्रबन्धन का नाम है जिसमें विभिन्न राजनीतिक दलों के सदस्य सरकार के गठन या मंत्रिमण्डल के निर्माण के लिए एक ही जाते है।''

भवानी सेन गुप्ता के शब्दो में –

''गठबन्धन सरकारों के गठन और जीवन तथा कार्यकरण के लिए जिस प्रतिभा और संस्कृति की आवश्यकता होती है। भारत के लोकतांत्रिक राजनीति में अभी तक वस्तुतः उसका अभाव रहा है। अस्थायी मिली जुली सरकारों या अल्पमत सरकारों के क्रम ने राज्य के संकट में योगदान किया है''। इंग्लिश शब्दकोश में इसे विभिन्न दलों व्यक्तियों अथवा राज्यों का स्थायी रूप से एक में विलीन हुए बिना किसी संयुक्त कार्यो के लिए किया गया समझौता कहा गया है। विलियम एच0 रिकर ने स्थानीय राष्ट्रीय तथा अंतराष्ट्रीय स्तर पर गठबन्धन को 'गेम थ्योरी' से

* शोध छात्र, राजनीतिशास्त्र विभाग, वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा, बिहार

जोड़ते हुए बताया है कि इस खेल में राजनीतिक खिलाड़ी एक व्यक्ति वर्ग या समूह हो सकता है। प्रत्येक राजनेता को एक बौद्धिक घटक कहा जाता है। गठबन्धन सरकारों में प्रमुख लक्षण विद्धमान होते है जो इस प्रकार निम्न है :–

1. गठबन्धन सरकारों में कम–से–कम दो या दो से अधिक राजनीतिक दलों की भागीदारी निश्चित होती है।
2. इसमें सामिल सभी दल कुछ–न–कुछ प्राप्त करने की आकांशा रखते हैं।
3. ये सरकारें समान्यतः अस्थायी होती है इनको कार्य काल पूरा करते हुए भी देखा गया है।
4. गठबन्धन सरकारों का गठन न्युनतम साझा कार्यक्रम के आधार पर किया जाता है।
5. गठबन्धन सरकारों में दलों के सम्मिलित होने के समीकरण हमेशा बदलते रहते हैं। कभी सहयोगी तो कभी विरोधी हो सकते हैं।

आज भारत में केन्द्र स्तर पर गठबन्धन सरकार का जो रूप है, वह कुछ बातों की दृष्टि से गठबन्धन सरकार के इन सभी पहलुओं से अलग हटकर है। राष्ट्रीय स्तर पर इसकी झलक 1967 के चुनाव के बाद ही देखी गई परन्तु प्रभावी ढंग से गठबन्धन सरकार की शुरूआत 1977 में मोरारजी देसाई के नेतृत्व में जनता पार्टी की सरकार के गठन के रूप में मानी जाती है। जिसमें जनसंघ भारतीय लोकदल, सोशलिष्ट पार्टी तथा लोकतांत्रिक कांग्रेस के साथ मिलकर जनता पार्टी की सरकार का गठन किया। परन्तु जनता पार्टी के घटक दल जनसाधारण विकास एंव स्वंय के दलीय आधार को मजबूत करने की अपेक्षा में गठबंधन के अन्दर अपने महत्व को लेकर अधिक संघर्ष करने लगे। इसके परिणाम स्वरूप पार्टी और सत्ता दोनों का अस्तित्व मिट गया । एक बार देश में संघीय स्तर पर इस तरह का गठबंधन का प्रयोग 1989 को हुआ। राष्ट्रीय मोर्चा की इस गठबंधन सरकार में मुख्य रूप से जनता दल, तेलगु देशम, असम गण परिषद्, कांग्रेस, डी0एम0के0 जैसे क्षेत्रीय राजनीतिक दल भागीदार थे। ये सभी दल सहयोगी होते हुए भी विभिन्न राष्ट्रीय मुद्दों पर विरोध और मतभेद में रहते थे। जो बाद में चलकर गठबंधन सरकार के पतन का कारण बना।

राजीव गाँधी की मृत्यु के बाद सहानुभूति के सहारे कांग्रेस ने पी0वी0 नरसिम्हा राव के नेतृत्व में छोटे–छोटे राजनीतिक दलों एंव निर्दलीय संसदों का समर्थन लेकर साझा सरकार का गठन किया। इस तरह से 1979, 1989, 1990 और 1991 तक कई बार गठबंधन सरकारों की स्थापना हुई और अपना कार्यकाल पुरा करने से पहले ही गिर गई। 1996 एवं 1997 में बाजपेयी व देवगोड़ा की गठबंधन की भी सरकार बनी जो कार्यकाल पुरा करने से पूर्व ही गिर गई।

आज हम यह कह सकते है कि 1999 आम चुनाव के बाद से लागातार कई गठबन्धन की स्थिर सरकारों को देखा गया जो कि भारतीय लोकतंत्र में एक नवीन परम्परा निर्माण की और अग्रसर होता हुआ दिख रहा है। जिसमें मुख्यतः राजग और संप्रग गठबंधन ने महती भूमिका निभाई है। यह परम्परा निश्चित रूप से भारतीय लोकतंत्र के विकास में एक सकारात्मक कदम के रूप में माना जा सकता है।

गठबंधन सरकारें और उसकी चुनौतियाँ :–

विविधता से पूर्ण भारतीय राजनीति में गठबंधन सरकारें भले आज एक आवश्यक विकल्प के रूप में उभरी हो, लेकिन इनकी गंभीर और चुनौतियाँ इस प्रकार निम्न है :–

6. **सत्ता–सुख के लिए** :– ऐतिहासिक विश्लेषण से स्पष्ट है कि गठबंधन में शामिल घटक दलों में सत्ता–सुख प्रमुख कारण रहा है। मार्च 1977 में आम चुनाव में जनता पार्टी के प्रायाशियों को इंदिरा विरूद्ध अभियान में प्राप्त अप्रत्याशित सफलता से बनी जनता पार्टी सरकार में प्रधानमंत्री मोरार जी देसाई तथा चौधरी चरण सिंह में खिंचतान प्रारम्भ हो गई। जिसके चलते 1978 में चौधरी चरण सिंह को वित्त मंत्रालय सहित उप प्रधानमंत्री का आदेश दिया गया। इसके बावजूद 23जून 1979 को चौधरी साहब के इसारे पर राजनारायण का जनता पार्टी से त्यागपत्र देना और चौधरी चरण सिंह द्वारा देसाई सरकार से अलग होकर 28 जूलाई 1989 को अल्पमत सरकार का गठन करना उसके सत्ता– सुख के चलते ही हुआ। इसी प्रकार 10 नवम्बर 1990 को चन्द्रशेखर का वी0पी0 सिंह की जनता दल सरकार से निकल कर कांग्रेस के बाहरी समर्थन पर प्रधानमंत्री बनता सत्ता–सुख के संदर्भ में ही देखा जा सकता है।
7. **राष्ट्रीय चरित्र की कमी :–** गठबंधन सरकारें राष्ट्रीय और राजनीतिक दायित्वों के प्रति गैर जिम्मेवार और गैर जबावदेह होती है। ऐसे गठबंधन सरकारों का राष्ट्रीय चरित्र नहीं होता है। उदाहरण के लिए 1988 में सम्पन्न गहयावधि चुनाव के बाद अटल बिहारी बाजपेयी के नेतृत्व में बनी गठबंधन सरकार में घटक दलों के नेताओं में राष्ट्रीय चरित्र की कमी, जयललिता की नाराजगी और क्षेत्रीय आकांक्षओं के चलते सिर्फ एकमत से 13 माहों में ही गिर गई।
8. **अस्वाभाविक गठबंधन :–** अस्वाभाविक गठबंधन भारतीय राजनीति की व्यावहारिक सच्चाई रही हैं ऐसी गठबंधन सरकारें वैचारिक मतभेदों के बावजूद भले ही गठित हो जाए। वे स्थायी नहीं हो सकती है। उदाहरण के लिए 1989 के चुनावों के बाद वी0पी0 सिंह के नेतृत्व में नेशनल फ्रंट की सरकार वामदल और भाजपा के सहयोग से तो बनी, लेकिन 1990 में वी0पी0 सिंह सरकार द्वारा मंडल आयोग की सिफारिशों को लागू करने के बाद भाजपा द्वारा समर्थन वापस लेने से 11 महीने में ही सरकार गिर गई। इसी प्रकार 14वीं0 लोकसभा चुनाव के बाद 2004 में गठित मनमोहन सिंह की सरकार ने जब 2005 में अमेरिका से असैन्य परमाणु समझौता किया तब वामपंथी दलों ने मनमोहन सरकार से अपना समर्थन वापस लेकर सरकार के समक्ष बड़ी चुनौती उप्तन्न कर दी।
9. **नीतियों में बदलाव के लिए दबाव की लगातर बाध्यता :–** गठबंधन सरकार के समक्ष यह भी चुनौती रही है कि सरकार में शामिल घटक दलों के बीच आम सहमति कैस बनाई जाए। उदाकरण के लिए मनमोहन सिंह के नेतृत्व में युपीए सरकार के समय भारत अमेरिका नागरिक परमाणु समझौता को लेकर वामपंथी दलों ने सरकार पर लगातार दबाव बनाया। इसी प्रकार 1999 में राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन में सम्मिलित घटक दलों के दबाव के कारण ही भाजपा को अपने विवादास्पद राजनीतिक मुद्दे अनुछेद 370, समान नागरिक संहिता एंव राम मंदिर निर्माण आदि मसलों को सरकार की कार्यसूची से बाहर रखना पड़ा।
10. **राजनीतिक सजातीयता सिद्धांत का विरोध :–** राजनीतिक सजातीयता का आदर्श है कि एक ही दल और विचारधारा के लोग सरकार का निर्माण करें। इससे लोकहित की पूर्ति होती है। गठबंधन सरकारें में विभिन्न परस्पराविरोधी घटक दलों के सम्मिलित होने से राजनीतिक सजातीयता के सिद्धांत का अनुपालन नहीं हो पाता।

11. **मंत्री पद के लिए घटक दलों में मतभेद :–** अनुभाव बताते है कि गठबंधन के बाद विभिन्न राजनीतिक दलों में नेता पद और मंत्री के लिए होड़ हो जाती है ऐसी स्थिती में राजनीतिक दलों के नेताओं द्वारा गठबंधन से समर्थन वापस लेकर सरकार गिरा देने से गंभीर और भयानक राजनीतिक परिणाम होते है। जनता पार्टी सरकार के विदेश मंत्री अटल बिहरी वाजपेयी ने मेरार जी देसाई सरकार की पराजय का एक मात्र कारण आपसी मतभेदों को बताते हुए 22 जनवरी 1980 को पटना के गाँधी मैदान में चौधरी चरण सिंह को इसके लिए उत्तरवादी ठहरायां
12. **घटक दलों के बीच सैद्धांतिक आदर्शो में मतभेद :–** विभिन्न घटक दलों से मिलकर बनी गठबंधन सरकार को विभिन्न सिद्धांतों के मध्य उत्पन्न मतभेद को पाटने के लिए एक समन्वय बनाकर असंतुलन की स्थिती से बचना पड़ता है। अतः आदर्शो पर मतभेद गठबंधन राजनीति की बड़ी चुनौती है।
13. **स्थायित्व को खतरा :–** गठबंधन सरकार बनने से स्थायित्व को खतरा है और इससे राजनीति में नकारत्मक स्थिति का जन्म होता है। 1996 में अटल बिहारी वाजपेयी की 13 दिन चली सरकार और उसके बाद जुन 1996 से अप्रैल 1997 के बाद अल्पावधि तक चली एच0डी0 देवेगौड़ा और इन्द्र कुमार गुजराल की सरकारों का आना और अल्पावधि में चले जाना इसकी संपुष्टि करते हैं कि पुनः1998 के मध्यावधि चुनाव के बाद अटल बिहारी वाजपेयी की 13 महीने की सरकार ने भी गठबंधन राजनीति की इस दुर्बलता को देश के सामने रखकर गठबंधन सरकारों के समीकरणों में स्थायी अस्तित्व के संकट की झलक को उजागर किया।
14. **राष्ट्रीय हितों के विपरीत –** गठबंधन सरकार की एक मुख्य चुनौती उसमें सम्मिलित दलों की आपसी खींचतान भी है जिसके चलते घटक दल अपने क्षेत्रीय हितों के प्रति अधिक संवेदन शील होते है। क्षेत्रीय हितों का राष्ट्रीय हितों पर हावी हो जाने से राश्ट्रीय स्तर पर विविध तरह की समस्याएँ उत्पन्न होती है।
15. **प्रधानमंत्री के विशेषाधिकार का हनन :–** संसदीय शासन व्यवस्था में मंत्रीमंडल के लिए सहयोगियों का चयन हमेशा प्रधानमंत्री का विशेषाधिकार माना जाता है। लेकिन, गठबन्धन सरकार में प्रधानमंत्री का यह विशेषाधिकार बुरी तरह प्रभावित होता है। क्योंकि क्षेत्रीय दलों के नेता यह तय करते है। कि मंत्रिमंडल में उनके दल का नेतृत्व कौन करेगा और उन्हे कौन–कौन विभाग जाएगा। गठबंधन सरकार में सम्मिलित पहले से ही मंशा पाले रखते है। कि उन्हे कौन सा पद लेना है और इस मजबूरी के चलते प्रधानमंत्री को उनकी बात माननी पड़ती है।
16. **सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धांत का हनन :–** गठबंधन सरकारों में सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धांत का पालन नहीं हो पाता है। क्योंकि मंत्रिमंडल में सम्मिलित विभिन्न राजनीतिक दलों के होते है। जो दलीय प्रमुखों के निर्देश पर काम करते हैं।

उपुर्यक्त विवेचना के बावजूद गठबंधन सरकार के कुछ सकारात्मक पक्ष भी है। (1999 से 2019 तक) देखा जाये तो गठबंधन की सरकारें काफी हद तक राजनीतिक स्थिरता पाई है। साथ ही गठबंधन में सामिल विभिन्न राजनीतिक दलों के बीच न्यूनतम साझा कार्यक्रम के द्वारा सहयोग एंव सामंजस्य स्थापित कर आम सहमति से कार्य करने की प्रवृति का विकास होता है। केन्द्रीय स्तर पर गठबंधन सरकारों में क्षेत्रीय दलों की भागीदारी वास्तविक अर्थो में राजनीतिक संघवाद को मजबूती प्रदान कर रही है। गठबंधन सरकार में किसी प्रकार की राजनीतिक

तानाशाही का कोई स्थान नहीं होता है। साथ ही गठबंधन द्वारा आम चुनावों के बिना भी अलोकप्रिय नेतृत्व में परिवर्तन सम्भव हो पाता है। गठबंधन सरकार से लोकतांत्रिक व्यवस्थाएं एंव मान्यताएं मजबूत होती है तथा क्षेत्रीय आकांक्षाओं की पूर्ति गठबंधन सरकार के दौर में होती है। जिसमें संतुलित क्षेत्रीय विकास के लक्ष्य को प्राप्त में सहायता मिलती है।

निष्कर्ष :– निष्कर्ष के रूप में हम यह कह सकते है। कि गठबंधन की सरकार वर्तमान राजनीति की आवश्यकता बनती हुई दिखाई देती है यह कहा जा सकता है कि पिछले दो दशक में भारत की राजनीति में जो नया मोड़ आया है उसमें गठबंधन की सरकारों को नाकारा नहीं जा सकता है। गठबंधन सरकारों के समक्ष उत्पन्न होने वाली चुनौतियों के सामाधान के लिए सुझाव के रूप में यह कहा जा सकता है कि इसकी सफलता के लिए हमें अपने देश में राजनीतिक परिस्थितियों के अनुरूप मार्ग खोचना होगा। हम यह भी कह सकते है। कि किसी भी गठबंधन सरकारों की सफता उसके घटक दलों के आचरण पर निर्भर करता है । गठबंधन को चुनाव के पूर्व ही करना चाहिए ताकि सभी दलों का विचार आपस में मेल जोल खाता हो। चुनाव के बाद का गठबंधन हमेशा अपनी महत्वकांक्षा के कारण सफल नहीं होता है। गठबंधन राजनीति उच्च श्रृंखला का शिकार न होने पाये। दल का कोई घटक सरकार गिराने का भय दिखाकर अपनी महत्वाकांक्षा पुरा न करे। राष्ट्रीय एवं अंतराष्ट्रीय हितों को दुष्प्रभावित करने की कोशिश भी न करें। जिसके लिए सर्वसहमति से गठबंधन धर्म बनाया जाता चाहिए। सभी घटक दलों को यह चाहिए कि उसका पालन अवश्य करें। तभी गठबंधन सरकारे सफलता पूर्वक कार्य कर सकती है। और राजनीति में स्थात्यित्व प्रदान कर सकती है।

संदर्भ–सूची :

1. फड़िया, डॉ0 वी0 एल0 एवं डॉ0 कुलदीप फड़ियाः भारतीय शासन एवं राजनीति, साहित्य भवन अगरा, 2018 पृ0 669
2. गुप्ता, भवानी सेनः इन्डिया– प्राबलम्स ऑफ गवर्नेन्श कोणार्क पब्लिशर, नई दिल्ली, 1996 पृ0104
3. कश्यप एवं गुप्तः राजनीति कोश, हिन्दी माध्यम् कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय 2009, पृ0 57
4. दि आक्सफोर्ड डिक्शनरी, द्वितीय संस्करण, आक्सफोर्ड, पृ0 382
5. रिकर, विलियम एच0ः द थ्योरी ऑफ पोलिटिकल कोलिशंस, मेल युनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन 1962 पृ0712
6. सिंहल, डॉ0 एस0सी0ः भारतीय शासन एवं राजनीति लक्ष्मीनाराण अग्रवाल, आगरा, 2009–10 पु0–332–333
7. उप्पल भवेताः स्वतंत्र भारत के राजनीति, एस0सी0ई0 आर0टी0 जून 2007 पृ0–178
8. टाईस ऑस इण्डिया लखनऊ 23.05.2004
9. जायसवाल, डॉ0 रामकृष्णः भारतीय राज्यों में शासन एवं राजनीति शांति प्रकाशन फैजाबाद 1994 पृ0–213–214
10. गठबंधन का दौर, www.livehindustan.com
11. Time of India (Editorial) Lucknow 10th sep 2004 P.J.
12. गठबंधन की राजनीति में किस प्रकार की दिक्कतें आती हैं। https://hiquora.com

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

अनुवाद : संदर्भ और प्रयोग

डॉ0 विजयकुमार रोडे
सहयोगी प्राध्यापक
हिंदी विभाग
सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय, पुणे–7

वैश्विक मानव समुदाय अपनी सभ्यता और संस्कृति के कारण बेहद विविधतापूर्ण अवस्था में है। हर देश–प्रदेश की हजारों वर्षों की अपनी प्राचीन परंपरा रही है और इस परंपरा में मानव ने अपनी सामाजिक सुरक्षा, सभ्यता, आमोद–प्रमोद, भाषा आदि को निरंतर विकसित करने का प्रयास किया है। किसी भी देश की सभ्यता की विकास प्रक्रिया में 'भाषा' ने अहम भूमिका निभायी है। हजारों वर्ष पूर्व अलग–अलग देशों के आदि आचार्यों ने संवाद, समन्वय और सूत्रबद्ध सामाजिक व्यवस्था के लिए भाषायी संरचना की ओर बहुत अधिक गंभीरता से देखा और अपनी सामाजिक तथा भौगोलिक व्यवस्था के अनुसार भाषा को गढना आरंभ किया। इसमें उच्चारण से लेकर शब्द निर्माण तक की प्रक्रिया हुआ करती थी। इन सारी प्रक्रियाओं में भाषा उनकी अपनी थी, शब्द उनके अपने थे। इस कारण किसी प्रदेश के अंतर्गत एक दूसरों के साथ संवाद बनाना आसान हो गया।

वैश्विक मानव सभ्यता में संवाद तथा विचारों के आदान–प्रदान के लिए भाषा ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। परंतु इन सबके बीच भाषायी भिन्नता होने के बावजूद विश्व मानव समूदाय एक दूसरे के साथ जुड़ा कैसे? इसका एकमात्र कारण है 'अनुवाद'। अनुवाद जैसी कोई प्रक्रिया अस्तित्व में नहीं होती तो शायद विश्व मानव भिन्न सभ्यताओं तथा भिन्न संस्कृतियों को कभी नहीं समझता क्यों कि मनुष्य केवल अपनीही भाषा में किए गए संवाद को बहुत अच्छी तरह समझ सकता है। भाषा प्रयोग के संदर्भ में विख्यात राजनयिक नेल्सन मंडेला कहते हैं, 'अगर आप किसी से ऐसी भाषा में बात करते हैं, जिसे वह समझता है तो वह उसके दिमाग तक जाती है। यदि आप उससे उनकी ही भाषा में बात करते हैं तो वह उसके हृदय तक जाती है।' इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीनकाल से ही मनुष्य ने जैसे ही भाषा को आविष्कृत किया तब से वह अपनी ही भाषा में सहजता से व्यवहार करता आया है। पर अन्य भाषा से वह अनभिज्ञ होने के कारण कोई भी कार्य वह उस भाषा में नहीं करता था। अर्थात मनुष्य ने अपनी ही भाषा में सहजता से कार्य करने के लिए प्राथमिकता दी।

भाषायी संप्रेषणीयता के संदर्भ में चीनी संत कन्फूशियस का मंतव्य बहुत ही सार्थक है–'यदि भाषा का प्रयोग सही रूप से नहीं होता तो जो कहा जाता उसका वही अर्थ नहीं मिल पाता। जिस अर्थ की अपेक्षा हो, वह कहा न जाए तो जो कुछ करना चाहिए वह बिना किए रह

जाता है। यदि बिना कुछ किए रह जाता है तो नैतिकता और कला भ्रष्ट हो जाती है। यदि नैतिकता और कला भ्रष्ट हो जाती है तो न्याय नहीं हो पाता और जन समाज भ्रम में पड़ा असहाय हो जाता है।' इस दीर्घ मंतव्य का तात्पर्य है कि दो मनुष्यों को बीच, दो समूहों के बीच वार्तालाप के लिए प्रयुक्त भाषा सरल, सुबोध और सार्थक हो। मनुष्य अपने समूह या समाज के अंतर्गत अपनी ही भाषा का प्रयोग करता है, परंतु किसी अन्य भाषा में लिखित या मौखिक ज्ञान या विचारों को समझने के लिए उसे 'अनुवाद' जैसी प्रक्रिया का आधार लेना पड़ता है। अनुवाद जैसी कोई प्रक्रिया अस्तित्व में न होती तो शायद विश्व मानव एक–दूसरे के प्रति अजनबी होता। परंतु मनुष्य ने अपने भीतर की जिज्ञासा के कारण अन्यों की संस्कृति, सभ्यता प्रदेश को जानने, समझने के लिए अनुवाद का आविष्कार किया। विश्व में भाषायी विविधता न होती तो शायद अनुवाद की आवश्यकता ही न होती।

अनुवाद मूलतः एक अनुशासनात्मक प्रक्रिया है। अनुवाद प्रक्रिया को सफलतापूर्वक संपन्न बनाने में अनुवादक की बहुतही महत्वपूर्ण भूमिका होती है। ''अनुवादक विश्व संस्कृति के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाकर सांस्कृतिक पुनर्जागरण के अग्रदूत का काम करता है। जब वह अनुवाद करता है, तो वस्तुतः वह भाषा का अनुवाद नहीं करता, बल्कि अनुवाद के रूप में एक समाज की संस्कृति में अंतरण करता है, क्योंकि अनुवाद में जो मूलतत्व होता है, वह संस्कृति ही है; भाषा तो उसका माध्यम मात्र है।''[1] अतः वैश्विक संस्कृति, परंपरा, सभ्यता, समाज आदि के आपसी तालमेल के लिए अनुवाद ने अपना महत्व प्रतिपादित किया। ''आज के युग में अधिकांश देशों में बहुभाषिकता की स्थिति देखने को मिलती है; किंतु किसी भी व्यक्ति के लिए सभी भाषाओं को जानना संभव नहीं है और इसके बिना काम भी नहींचलता, क्योंकि मानव एक–दूसरे पर निर्भर है। ऐसी स्थिति में लोगों के भावों–विचारों को अभिव्यक्त करने का कार्य आसान काम नहीं है। इस लिए इस बहुभाषिकता की रक्षा के लिए आज अनुवाद कार्य की सहायता लेना आवश्यक हो गया है। राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न राष्ट्रों के बीच राजनीतिक, आर्थिक, वैज्ञानिक, प्रौद्योगिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक स्तर पर आदान–प्रदान दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है और इसलिए अनुवाद का क्षेत्र भी पहले की अपेक्षा व्यापक होता जा रहा है। अतः आज अनुवाद की व्यापकता और उस पर हमारी निर्भरता एक अनिवार्य स्थिति के रूप में हमारे समक्ष उभरकर आ रही है।''[2] भूमंडलीकरण के परिप्रेक्ष्य में बदलते विश्व के लिए अनुवाद प्रक्रिया को व्यापक, पारदर्शी और अत्यधिक सरल बनाने की भी आवश्यकता महसूस जा रही है।

वर्तमान समय में दो भिन्न देश, समाज, संस्कृतियों की अपने आप को लघु से दीर्घ बनाने की संकल्पना ने अनुवाद को एक नयी पहचान दिलायी है। भिन्न देश, व्यापार के भिन्न क्षेत्र, भिन्न संस्कृतियां मात्र अपने लाभ के लिए अपना दायरा विस्तिर्ण करने हेतु अनुवाद का आधार ले रहे है। ''अनुवाद का अभियान ही संभवतः इसी वजह से शुरू हुआ है कि एक भाषा के भावों तथा विचारों से दूसरे भाषा–भाषी लोग परिचित हो और उनसे लाभान्वित भी।''[3]

वास्तविक रूप में 'वसुदैव कुटुंबकम्' की भावना को विकसित करने में अनुवाद ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। जहाँ मनुष्य की भाषा द्वारा भाव, विचार, ज्ञान तथ कलाओं को प्रसारित करने की मर्यादाएं दिखने लगी वहाँ अनुवाद ने इन मर्यादाओं को दूर करने का प्रयास किया।''

आज अनुवाद मौलिक विधा एवं अनुशासन के समतुल्य ही नहीं उससे आगे निकल रहा हैं अनुवादकों तथा अनुवाद से जुड़े साधकों की साधना अब रंग ला रही है। प्रकाशन संस्थाएं, अकादमियाँ, विश्वविद्यालय, शोध–संस्थान, भाषा एवं साहित्य सेवी जगत् सभी जगह अनुवाद एक अनिवार्यता बनकर प्रवेश कर चुका है। अब अनुवाद अपेक्षित, दोयज दर्जे का कार्य भी मौलिक सृजन की तुलना में हीन नहीं रहा। अनुवादकों ने राष्ट्र के समक्ष यह प्रतिपादित एवं प्रतिष्ठित कर दिया है कि राष्ट्र का बहुमखी विकास अनुवाद के बिना असंभव है।''[4] अर्थात अनुवाद की प्रक्रिया उत्तरोत्तर विश्व मानव के लिए अनिवार्य कार्य बन गया है। ''वर्तमान युग में अधिकतर राष्ट्रों में यदि एक भाषा प्रधान है तो एक या अधिक भाषाएं गौण पद पर दिखायी देती हैं। दूसरे राष्ट्रों में एक ही राजनीतिक–प्रशासनिक इकाई की सीमा के भीतर भाषायी बहुसंख्यक भी रहते हैं और भाषायी अल्पसंख्यक भी। इक्कीसवीं सदी में इस स्थिति ने संस्थात्मक रूप ग्रहण कर लिया है। लोकतंत्र में सब लोगों का प्रशासन में समान रूप से भाग लेने का अधिकार तभी सार्थक हो सकता है जब उनके साथ उनकी भाषा के माध्यम से संपर्क किया जाए। इससे बहुभाषिकता की स्थिति पैदा होती है और उनके संरक्षण की प्रक्रिया में अनुवाद कार्य का आश्रय लेना अनिवार्य हो जाता है।''[5] स्पष्ट है राष्ट्र चाहे जो हो, समाज चाहे जो हो उसे अन्यों के साथ संपर्क कायम करने के लिए अनुवाद की आवश्यकता होती है। अनुवाद ने ही वैश्विक भाषायी विविधता की दूरियों को कम करने में सफल रहा है। ''अनुवाद मानव सभ्यता के साथ ही विकसित एक ऐसी तकनीक है, जिसका अविष्कार मनुष्य ने बहुभाषिक स्थिति की विडंबनाओं से बचने के लिए किया था।''[6]

'आज वह समय नहीं है। हम बहुत आगे निकल चुके हैं। विदेशी कंपनियाँ और बहुदेशीय व्यापार तंत्र हमारे देश में प्रविष्ट हो रहा है। हम भी विदेशों में जाकर भारतीय व्यवसाय–भारतीय व्यापार चिंतन तथा संस्कृति के प्रचार–प्रसार का कार्य कर रहे हैं। हमारा वित्तीय निवेश ही नहीं, वैचारिक प्रवेश भी विश्व के कोने–कोने में हो रहा है। हमारी राष्ट्रभाषा हिंदी का प्रचार–प्रसार भी अब विश्व स्तर पर हो रहा है। इन सभी कार्यों के लिए आज सर्वाधिक कारगर औजार या उपकरण के रूप में ''अनुवाद'' को देखा जा रह है। ''अतः भाषा की अनिवार्य और प्राथमिक शर्त विचार–विनिमय है और वही संपर्क का महत्वपूर्ण चरण भी। इस दृष्टि से अनुवाद भी भाषा की ही तरह 'वैचारिक–विनियम' द्वारा संपर्क कराने ओर उसे प्रगाढ संबंध में बदलने वाली एक चिर–प्रासंगिक विधा के रूप में सामने आ रहा है। आज विकासशील विश्व में अनुवाद की ऐतिहासिक भूमिका न केवल बदली है, अपितु विकास तथा प्रगति के नए द्वार खोलने वाली भी बनी है। 'विश्व कुटुंबकम्' के भावात्मक संकल्प को अनुवाद ने आज एक नयी किंतु व्यावहारिक अर्थवत्ता प्रदान की है।''[7] वैश्विक दूरियों को मिटाने हेतु अनुवाद को अपनाना हमारी आवश्यकता है।

वैश्विक मानवीय सामाजिक व्यवस्था में अनुवाद कार्य अस्तित्व में न होता तो शायद भिन्न देश, भिन्न लोग एक–दूसरे से अनिभिज्ञ होते। ''प्रत्येक देश और काल की विशेष सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि परिस्थितियाँ होती हैं जो काल विशेष के सृजन कर्म में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।''[8] ''वर्तमानकाल में जीवन के संभवतः सभी क्षेत्रों में अनुवाद को

प्रतिष्ठा मिल चुकी है। केवल देश–विदेशों के भिन्न–भिन्न सामग्री का ही नहीं किसी एक देश की बहुभाषिक समस्याओं का परिचय पाने के लिए किसी एक भाषा में अर्थात सर्वजन स्वीकृत राष्ट्रभाषा में अनुवाद होना आवश्यक हो गया है। इतनाही नहीं तो अनुवाद की प्रायोगिकता की ओर सभी वर्गों के लोग आकर्षित हो गए हैं। वर्तमान काल में 'वसुदैव कुटुंबकम्' की उक्ति को चरितार्थ करने में अनुवाद विज्ञान का विपुल एवं प्रमुख योगदान है।''[9]

वर्तमान युग सूचना तकनीक का युग है। आज संभवतः सभी कार्य सूचना माध्यमों के द्वारा पूरे किए जा रहे हैं। विज्ञान और तकनीक मानव समाज का अनिवार्य अंग बन गए हैं। ''विज्ञान और टेक्नोलाजी का विकास समाज को प्रभावित किए बिना नहीं हो सकता। विकासशील देश नैसर्गिक संपदा पर निर्भर है जबकि विकसित देश टैक्नोलाजी के विविध प्रयोगों से लाभान्वित होते रहते हैं। वैज्ञानिक सिध्दांतों के आधार पर ही टेक्नोलाजी का विकास होता है। विकसित और विकासशील देशों के बीच का अंतर जन सामान्य के लिए विज्ञान साहित्य की उपलब्धि से भी अनुमानित किया जा सकता है। विज्ञान के बढ़ते महत्व को नकारा नहीं जा सकता।''[10] ''भाषा प्रौद्योगिकी के इस युग में एकाधिक भाषाओं के ज्ञानार्जन की महत्ता जितनी बढ़ी है अनुवाद कला एवं अनुवाद विज्ञान की प्रासंगिकता भी आज तेजी से बढ़ी है। अनुवाद सामाजिक–सांस्कृतिक स्तर पर एक तरफ 'ट्रांसरिलेशन' अर्थात मित्रता–विस्तार एंव परस्पर आत्मियता के संचार का महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है। तो दूसरी ओर एक स्वतंत्र विधा, एक दुर्लभ अनुशासन बनकर रोजी–रोटी, कामकाज तथा व्यावसायिक विनिमय के लिए एक सशक्त सुदृढ सेतु की भूमिका निभा रहा है।''[11] अतः यह कहा जा सकता है कि ''सभ्यता के उद्‌भव और विकास में मानव संप्रेषण का इतिहास छिपा हुआ है और संप्रेषण के मूल में अनुवाद या अनुवाद की धारणा हैं। भाषिक दिक्काल द्वारा उपन्न रिक्तता को दूर करने वाले अनुवादक संभवतः इस लिए दुनिया के सबसे पुराने पेशोवरों से एक में है।''[12]

समकालीन समय में वैश्विक स्तर पर सभी क्षेत्रों में विनिमय की प्रक्रिया व्यापक हो गयी है। इस लिए व्यावसायिक लेन देन के लिए अनुवाद जैसी प्रक्रिया तेज हो गयी है। लग–भग सभी क्षेत्रों में अनुवादकों द्वारा कार्य में सुचारुपन लाया जा रहा है। ''एशिया के सबसे विशाल देश की हैसियत से भारत के लिए विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में प्रगति करना अनिवार्य है। स्वतंत्र भारत इस दिशा में तेजी से आगे बढ भी रहा है।''[13] परंतु अभी भी अनुवाद के क्षेत्र में शीघ्रता और विशुद्धता लाने के लिए जिस प्रकार की तकनीकी सरलता चाहिए वैसी नहीं है। वर्तमान में अनुवाद का क्षेत्र विस्तार पा रहा हैं विज्ञान एवं तकनीकी क्षेत्र की सामग्री का अनुवाद करने हेतु अनुवादकों की सहायता पर्याप्त नहीं। अतः मशीनी अनुवाद का आधार लेना अनिवार्य हो गया है। अतः यह कहना गलत नहीं होगा कि ''आज जब विज्ञान ने हमारे जीवन में गहन अंतःप्रवेश कर लिया है तो मूलतः मानवीय मस्तिष्क का कार्यकलाप समझी जानेवाली अनुवाद जैसी कला भी तकनीकी और विज्ञान से भरपूर लाभान्वित हो रही है। कम्प्यूटर द्वारा अनुवाद आज एक सामान्य गतिविधि हो गयी।''[14] अतःअंत में यह कहा जा सकता है, ''सूचना प्रौद्योगिकी के इस युग में भाषा की प्रगति में अनुवाद का महत्वपूर्ण योगदान हैं। आज नवीनतम सूचना प्रौद्योगिकी के साथ अनुवाद के क्षेत्र में गंभीर अनुसंधान कार्य किया जा रहा है और इस कार्य में

सामने आनेवाली विभिन्न सैद्धांतिक और प्रयोजनमूलक समस्याओं का हल तलाशा जा रहा है।''[15] भविष्य में अनुवाद मानवीय व्यवहार का अनिवार्य अंग बनकर उभरेगा।

संदर्भ सूची

1. भाषा (जन.–फर. 1999) सं. डॉ. भ. प्र. निदारिया, पृ.13
2. अनुवादः अवधारणा और आयाम. डॉ. सुरेश सिंहल, पृ.11–12
3. हिंदी अनुवाद परंपरा एक अनुशीलन– डॉ. किशोरीलाल कलवार, पृ.13
4. अनुवाद : अनुभूति और अनुभव–सं. डॉ. सुरेश सिंहल, (प्राक्कथन से)
5. अनुवाद सिद्धांत की रूपरेखा– डॉ. सुरेश कुमार, पृ.21
6. अनुवाद (अक्तू–दिसंबर, 1997) सं. डॉ. सुलेखचंद गुप्ता, पृ.11
7. अनुवाद के विविध आयाम– डॉ. पूरनचंद टंडन, पृ.62
8. अनुवाद प्रक्रिया एवं परिदृष्य– रीतारानी पालीवाल, पृ.101
9. अनुवाद विज्ञान– डॉ. मुरलीधर शहा, पृ.22
10. अनुवादः विविध आयाम– सं. मा. गो. चतुर्वेदी, पृ.80
11. अनुवादः संवेदना और सरोकार– डॉ. सुरेश सिंहल, (अभिमत से)
12. अनुवाद और रचना का उत्तर जीवन– डॉ. रमणसिन्हा, पृ.13
13. अनुवाद शतक दो– सं. डॉ. पूरनचंद टंडन, पृ.68
14. अनुवाद प्रक्रिया एवं परिदृश्य– रीतारानी पालीवाल, पृ.123
15. गवेषणा (अक्तू–दिसं. 2007) सं. परमलाल अहिरवाल, पृ.85

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

तहसील सैदपुर, जनपद– गाजीपुर की जलवायु की दशाएं

डॉ0 अशोक कुमार सिंह

प्रवक्ता भूगोल विभाग,

कूबा पी0 जी0 कालेज दरियापुर नेवादा

जलवायु :

भूमि उपयोग को प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से प्रभावित करने वाले प्राकृतिक कारकों में जलवायु का सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान है। जलवायविक विशिष्टताये क्षेत्र विशेष के भूमि उपयोग के स्वरूप एवं गहनता से प्रकट होती है। जलवायु की विशिष्टता के अनुरूप अध्ययन क्षेत्र में जलवायु के विभिन्न तत्वों एवं उनकी ऋत्विक दशाओं की विशिष्टता है अतः प्रस्तुत अध्ययन में जलवायविक तत्वों का विश्लेषण विशेषतया उनकी उन ऋत्विक दशाओं के संदर्भ में किया गया है। जिनका फसल उत्पादन पर विशेष प्रभाव पड़ता है। अध्ययन क्षेत्र में वार्षिक जलवायु परिस्थितियों का वर्णन समीचीन है।

माह	तापक्रम डिग्री सेन्टीग्रेट में			आद्रताप क्रम	औसत वर्षा	सापेक्षिक आर्द्रता
	अधिकतम	न्यूनतम	औसत			
जनवरी	27.4	6.4	17.1	17	1.55	84.0
फरवरी	33.5	7.4	20.5	19	1.55	71.2
मार्च	35.1	13.9	27.4	23	0.74	65.0
अप्रैल	40.9	13.9	27.4	27	0.56	49.2
मई	41.9	22.5	32.9	30	1.90	54.1
जून	41.9	21.4	31.5	32	13.87	65.3
जुलाई	37.9	23.4	29.1	30	28.24	85.0
अगस्त	34.9	23.4	29.1	29	28.19	83.4
सितम्बर	35.4	21.2	28.6	27	18.19	87.1
अक्टूबर	36.6	11.2	23.9	23	7.10	68.2
नवम्बर	32.9	7.9	20.4	22	0.40	70.1
दिसम्बर	25.5	4.6	15.1	16	0.40	84.0

TAHSIL SAIDPUR

CLIMATIC CONDITION

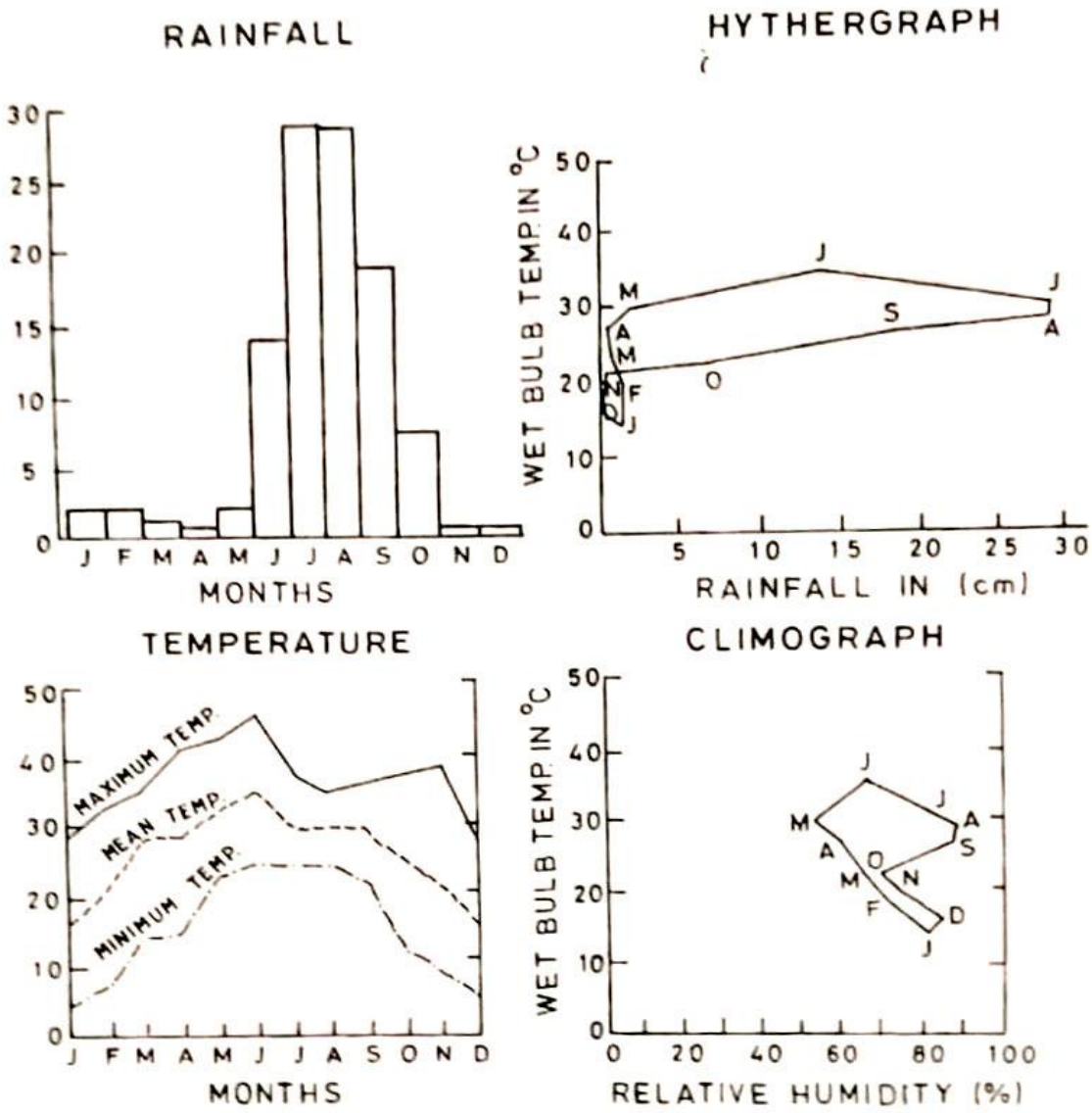

FIG. 1

तापमान :

अध्ययन क्षेत्र का औसत वार्षिक तापमान 25.45 डिग्री सेन्टिग्रेट है। मई एवं जून का औसत तापमान क्रमशः 32.9 डिग्री सेन्टिग्रेट एवं 31.5 डिग्री सेन्टिग्रेट है जबकि दिसम्बर एवं जनवरी माह में औसत तापमान 15.1 डिग्री सेन्टिग्रेट एवं 17.1 डिग्री सेन्टिग्रेट रहता है तापमान में ऋत्विक परिवर्तन स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। शीतकाल में जहॉ तापमान गिर जाने से रबी की पाला ग्रसित हो जाती है। वही जून में अधिक तापमान के कारण खरिफ की सब्जियॉ एवं चारे की फसल लू से प्रभावित होती है तथा वर्षा ऋतु में दलहन की फसले अधिक वर्षा के कारण नष्ट हो जाती हैं।

वायुभार :

शीत ऋतु के अक्टूबर माह का वायुमंडलीय दाब 1809.9 मिलीबार रहता है।

इसमें उत्तरोत्तर वृद्धि होती है एवं दिसम्बर का वायुमंडलीय दाब 1016.5 मिलीबार तक पहुॅच जाता है। जनवरी माह में वायुमंडलीय दबाव 1014 मिलीबार तक हो जाता है। फरवरी माह के पश्चात तामक्रम में वृद्धि के परिणाम स्वरूप वायुदाब घटने लगता है और मई में यह 1002.3 मिलीबार तक पहुॅच जाता है तथा जून एवं जूलाई में वायुदाब क्रमशः 996 एवं 991.2 मिलीबार होता है।

वायुदिशाः

अध्ययन क्षेत्र में ऋत्विक परिवर्तन के साथ–साथ वायुदिशा में भी परिवर्तन पाया जाता है। जून के अन्तिम सप्ताह से अक्टूबर के मध्य तक दक्षिणि–पश्चिमी मानसूनी हवाएं चलती हैं जबकि शीत ऋतु में अर्थात मध्य अक्टूबर से फरवरी तक उत्तरी–पूर्वी हवाओं का संचरण होता है। ग्रीष्म ऋतु में मार्च के प्रारम्भ से जून तक सामान्यतः पश्चिमी गर्म हवाएं चलती हैं जिन्हे लू कहा जाता है। कभी–कभी धूल भरी आधियों एवं झंझावातों की प्रचण्डता से अध्ययन क्षेत्र प्रभावित होता है।

सापेक्षिक आर्द्रता :

वर्षा के विभिन्न महिनों में औसत सापेक्षित आर्द्रता 75.9 से 80 प्रतिशत के मध्य रहती है। अधिकतम सापेक्षिक आर्द्रता 87.1 प्रतिशत सितम्बर माह एवं न्यूनतम आर्द्रता 49.2 प्रतिशत अप्रैल माह में पायी जाती है। दिसम्बर एवं जनवरी माह में सापेक्षिक आर्द्रता क्रमशः 84 प्रतिशत पायी जाती है।

वर्षा :

जलवायविक तत्वों में वर्षा का महत्वपूर्ण स्थान औसत वर्षा 120 सेमी है, परन्तु वर्षा कि मात्रा में प्रति वर्ष विभिन्नता पायी जाती है। वर्षा का मासिक वितरण बड़ा ही असंतुलित है, अधिकांश वर्षा चार महिनों (जून से सितम्बर) में होती है इसके साथ ही साथ मानसून कभी विलम्ब से शुरू होता है तो किसी वर्ष पहले ही समाप्त हो जाता है। किसी वर्ष वर्षा ऋतु के मध्य में लम्बी अवधि तक सुखा रहता है तो कभी प्रारम्भ में ही सुखा रहता है वर्षा प्रदायी दिनों की संख्या की दृष्टि से अगस्त माह

(25 दिन) सितम्बर माह (22 दिन) एवं जूलाई माह (20 दिन) है। नवम्बर, दिसम्बर एवं जनवरी में वर्षा के दिनों की संख्या मात्र (1) है।

अध्ययन क्षेत्र कि जलवायविक विशिष्टताओं का यथेष्ट एवं सुगम अध्ययन विभिन्न ऋतुओं अंतर्गत उचित होगा। अध्ययन क्षेत्र में मूलतः तीन ऋतुएं पायी जाती हैं।

1. शीत ऋतु
2. ग्रीष्म ऋतु
3. वर्षा ऋतु

शीत ऋतु :

शीत ऋतु शांत एवं सुहावनी होती है कुहरायुक्त प्रातः काल, सूर्य के उत्तरोत्तर स्थान के साथ साधारण गर्म दोपहरी, ढलते सूर्य के साथ बढती हुई क्रमशः कठोर ठंढक वाली रात्री में बदल जाती है। अक्टूबा का औसत तापमान 26 डिग्री सेन्टिग्रेट एवं सोपेक्षिक आर्द्रता 75.3 प्रतिशत रहती है शीत ऋतु में दैनिक तापान्तर में वृद्धि होती जाती है। शीत ऋतु का औसत उच्चतम एवं निम्नतम तापमान क्रमशः 25.5 एवं 10 डिग्री सेन्टिग्रेट तथा तापान्तर 18 डिग्री सेन्टिग्रेट पाया जाता है। दिसम्बर एवं जनवरी चक्रवात आते हैं तथा शीतयुक्त पछुआ वायु प्रवाहित होती है। कभी–कभी यह दशा कुछ दिनों तक बनी रहती है वायू कि गति तीव्र होती जाती है जिसे शितलहर की संज्ञा दी जाती है। इसके साथ चक्रवाती वर्षा रबी की फसल के लिए उपयोगी होती है शीत ऋतु में ओला वृष्टि भी होती है वर्ष का सर्वाधिक शीतल माह दिसम्बर के अंतिम दो सप्ताह एवं जनवरी माह का प्रथम सप्ताह होता है जिसमें औसत तापमान 14.3 डिग्री सेन्टिग्रेट पाया जाता है।

ग्रीष्म ऋतु :

मध्य मार्च से मध्य जून तक अध्ययन क्षेत्र में ग्रीष्म ऋतु पायी जाती है। इसी ऋतु में सर्वाधिक तापमान जून के महिने में अंकित किया गया है। इस माह का अधिकतम तापमान 46.3 डिग्री सेन्टिग्रेट तथा न्यूनतम 25.8 डिग्री सेन्टिग्रेट होता है अधिकतम तापमान की प्राप्ती के कारण वायुभार निम्न हो जाता है। क्योकि तापमान और वायुदाब में विलोम सम्बन्ध पाया जाता है। इस समय अध्ययन क्षेत्र में वायुभार की मात्रा 991.2 मिलीबार होती है। ग्रीष्म ऋतु पूणतया शुष्क होती है इस ऋतु में अधिक तापमान और तीव्र गति से चलने वाली शुष्क पछुआ हवाओं का साम्राज्य होता है परन्तु वर्षा की न्यूतम मात्रा प्राप्त होती है कभी–कभी वसन्त ऋतु में चक्रवाती वर्षा हो जाती है।

वर्षा ऋतु :

घनघोर काले बादलों का अच्छादन तीव्र वायु गर्जन एवं दामिनी की दमक के साथ प्रथम वर्षा दक्षिण–पश्चिम मानसून का द्योतक है प्रायः 15 से 20 जून तक इस क्षेत्र में मानसून सक्रिय हो जाता है परन्तु किसी–किसी वर्ष विलम्ब से प्राप्त होता है जुलाई एवं अगस्त में सर्वाधिक वर्षा होती है औसत वार्षिक वर्षा 180 सेमी जिसका की 90.32 प्रतिशत वर्षा ऋतु में ही हो जाती है। जुलाई माह में अधिकतम तापमान 36.7 डिग्री सेन्टिग्रेट और न्यूनतम तापमान 24.4 डिग्री सेन्टिग्रेट होता है अगस्त माह में 33.5 डिग्री सेन्टिग्रेट अधिकतम तापमान जबकि न्यूनतम तापमान 22.4 डिग्री सेन्टिग्रेट होता है।

प्राचीन मान्यता के अनुसार निम्नवायुदाब की ओर उच्च और उच्च वायुदाब से ऋतु विशेष में पवनों के चलने को मानसून कहते हैं। जबकि कोटेश्वरम के अनुसार दक्षिण–पश्चिम मानसून

विकास के पूर्व इस क्षेत्र में पूर्वी जेट स्ट्रीम का विस्तार एशिया एवं अफ्रिका के उष्ण कटिबन्धिय क्षेत्रों तक रहता है। दूसरे सूर्य कि विकिरण शक्ति का प्रभाव तिब्बत के पठार पर जहॉ सूर्य की किरणे सीधी पड़ती है, पूर्वी जेट स्ट्रीम का जन्म होता है। कोटेश्वरम के मतानुसार मानसून वास्तव में निम्न धरातल पर लौटने वाला वह प्रवाह है जो देशान्तरिय संचालन के कारण उत्पन्न होता है। दक्षिणी–पश्चिमी पवनों के द्वारा अध्ययन क्षेत्र में वर्षा होती है।

References :

1- Clous. H.D. Rural Geography An Introductory Survey, Pergamen, London, 1972.
2- Singh, A.N. and Singh B., Changing Climate in Bundelkhand Region of M.P. Uttar Bharat Bhoogol Patrika, 12, 1976, pp 23-30
3- Siddiqi, M.F., " Climate analysis A review of methodology", The Geographer 18, 1907, pp 81-99

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

मोहन राकेश के 'आधे अधूरे' नाटक में आधुनिक–बोध

पंकज
प्रवक्ता–हिन्दी
रा0उ0मा0 बाल विद्यालय,
सराय रोहिल्ला, दिल्ली

मोहन राकेश का नाटक 'आधे अधूरे' 1969ई0 में रचित आधुनिक युगबोध से प्रेरित एक सशक्त नाटक है। आधुनिक बोध के मापन का कोई एक मानक नहीं है। जो रचनाकार अपने युग से जितना अधिक सम्पृक्त होता है और जितना अधिक टूटन बिखरन महसूस करता हुआ भी अपने अस्तित्व के प्रति जागरुक बना रहता है। वह उतना ही आधुनिक बोध से युक्त होता चला जाता है। सामान्यतः तीन प्रकार के बोध होते हैं– युगबोध, जीवनबोध और आत्मबोध। युगबोध के सर्जक मोहन राकेश ने इस कृति में आधुनिकता की प्रक्रिया को भी अपनाया है। इस नाटक में एक परिवार के माध्यम से जिन स्थितियों को, प्रश्नों को, समस्याओं को उठाया गया है वे पूरी तरह आधुनिक है। 'आधे अधूरे' नाटक में परम्पराओं के बोझिल मान–मूल्यों से टूटकर अलग होते हुये सभी प्रकार के सम्बंधों की विसंगतपूर्ण स्थितियों से पीड़ित निम्नमध्यवर्ग को प्रस्तुत किया गया है।

आज का मानव व्यक्ति के स्तर पर पारम्परिक मूल्यों के बोध के कारण टूटता बिखरता जा रहा है। इस नाटक में इसी टूटन, बिखराव और व्यक्ति के माध्यम से समाज में फैलते जा रहे आधे–अधूरेपन को व्यक्त किया गया है। चारों ओर व्याप्त असंतोष, अविश्वास और संशयजनित तरह–तरह के भाव मन को बेधते रहते हैं। परिणामस्वरुप व्यक्ति चाहे परिवार में हो, चाहे समाज में हो, दबी हुयी घुटी हुयी जुबान में बात करता है। वह क्रांति करने की सोचता है, कभी–कभी कर भी लेता है किंतु अन्ततः विवशता ही उसके हाथ लगती है। 'आधे–अधूरे' नाटक में प्रत्येक पात्र व्यक्ति के विभाजित अंशो का प्रतीक और परिचायक बनकर आया है। इन सभी खण्डों को मिलाकर भी हम वर्तमान परिस्थितियों में एक सम्पूर्ण मानव की रचना करने में असमर्थ है।

वास्तव में ये सभी खण्ड आज के व्यापक वर्ग या समाज के ही अंग है जो विविध प्रकार की संगतियों और विसंगतियों से जूझते हुये परम्परा और आधुनिक बोध के बीच में लटके हुये हैं।

विघटन की यह समस्या आज व्यक्ति या व्यक्तियों तक सीमित नही रह गयी है, वह तो व्यक्ति से परिवार, परिवार से समाज और उससे भी आगे बढ़कर पूरे देश में फैल गयी है। 'आधे – अधूरे' नाटक में आधुनिकबोध की स्थिति प्रारम्भ से ही स्पष्ट होने लगती है। तीन दरवाजों वाले एक बन्द कमरे में काले सूट वाले आदमी के दाखिल होने के बाद एक युगल इस प्रश्न का

उत्तर ढूंढता दिखाया गया है कि 'मानव की स्थिति व नियति क्या है? यह प्रश्न प्रमुख है इसलिये नाटक मे यदि काले सूट वाले आदमी की बात को अलग भी रख दे ंतो भी यह स्पष्ट हो जाता है कि इसकी शुरुआत एक कमरे से तो हुयी है जो घर नहीं है पर उसमें चीजें बिखरी हुयी है और उसी में एक फालतू आदमी भी है। यहीं से पति पत्नी में तनाव का या एक दूसरे से कट जाने का बोध होने लगता है। यह वह घर है जिसकी बड़ी लड़की भाग चुकी है, छोटी गुस्ताख हो गयी है, लड़का बेकार है और बाप भी बेकार है। ऐसी स्थिति में घर को चलाने व संभालने का पूरा दायित्व पत्नी के कन्धों पर है। पत्नी नौकरी करती है, इसके साथ ही उसे बहुत कुछ और करना पड़ता है। इस घर में एक नया आदमी आता है जो पहले से आता रहा है और वह स्त्री के खालीपन को भरने की कोशिश करता है एक प्रकार से उसके अधूरेपन को पूर्णता में बदलने की चेष्टा करता है। बड़ी लड़की के नये घर में भी सब कुछ गलत है। इसका कारण नाटक में हवा को बतलाया गया है जो बड़ी लड़की और मनोज के बीच से गुजर कर स्थिति को गड़बड़ बना देती हैं। यहीं पर आधुनिकता का बोध होने लगता है।

डॉ0 इन्द्रनाथ मदान का कथन है कि, ''इस टूटते बिखरते परिवेश में आधुनिकता का बोध इतना मानव की नियति के स्तर पर नहीं है, जितना उसकी स्थिति के स्तर पर है। और इतना–जितना इसलिये कि एक स्तर को दूसरे स्तर से अलगाया नहीं जा सकता। इसी तरह फालतू आदमी के जवाबों में उसका इतना दब्बूपन नहीं है जितना उसके व्यक्तित्व का विसंगत होना है। उसके लिये घर में सब एक रबर स्टैम्प है और वह खुद रबर का एक टूकड़ा है।'' एक प्रकार से मदान नें 'आधे–अधूरे' नाटक की आधुनिकता को स्पष्ट कर दिया है फिर भी कुछ स्थितियां ऐसी हैं जो आधुनिक बोध को व्यक्त कर देती हैं। समूचे नाटक में ऐसे संवाद पर्याप्त है जो व्यर्थताबोध, रिक्तताबोध, अकेलेपन, अजनबीपन और अपरिचय में परिचय ढूँढने की स्थितियों को व्यक्त करते हैं। इस आधुनिक बोध को नाटक में कीड़े का संकेत और गहरा देता है। बड़ी लड़की मनोज से कटकर अपने घर में मेहमान है। उसमें अजातीयता का बोध आधुनिकता के बोध को और गहरा देता है। सभी घर के भीतर होकर भी घर से बाहर है या बाहर निकलना चाहते हैं। स्त्री जगमोहन के साथ और पुरुष एक जुनेजा के साथ। इस तरह नाटक में घर की बात को बार–बार दोहराया गया है। नाटक में जो आधा–अधूरापन दिखाया गया है वह भी आधुनिक बोध की स्थिति को व्यक्त करता है।

सावित्री का यह कथन आधुनिक बोध को यथार्थ रुप में व्यक्त कर देता है–, ''सब के सब एक से है, अलग–अलग मुखौटे पर चेहरा? चेहरा सबका एक ही।'' पुरुष चार के इस जबाब में भी आधुनिकता बोध है कि, ''तुम्हे लगता है कि तुम चुनाव कर सकती हो लेकिन दायें सें हटकर बायें, सामने से हटकर पीछे, इस कोने से हटकर उस कोने में क्या सचमुच कहीं कोई चुनाव नजर आया है तुम्हें? नाटक में जो प्रस्तावना है वह भी आधुनिक बोध को स्पष्ट करती है। इसमें आधुनिकता के बोध का मात्र निरुपण ही नहीं है, अपितु उसका स्वरुप भी व्यक्त हो गया है। नाटक के पात्र, नाटक का शिल्प, व्यक्तियों का अधूरापन आदि सभी कुछ नाटक को आधुनिकता बोध से जोड़ देता है। नाटक का शीर्षक भी आधुनिक बोध से ही जुड़ा हुआ है। आधुनिकता बोध की दृष्टि से यह नाटक सफल है। आधे–अधूरे मोहन राकेश का तीसरा किंतु

बहुचर्चित यथार्थबोध और आधुनिक बोध का नाटक है। यह एक ऐसा नाटक है जिसमें युग परिवेश ही इसका प्रतिपाद्य हैं। आज का जीवन न केवल अनिश्चित है, अपितु कड़वाहट से भरा हुआ, विसंगतपूर्ण और अधूरा भी है। आधे–अधूरे नाटक में प्रमुख रुप से विघटन की प्रक्रिया का ही अंकन हुआ है। नाटक के आरम्भ में ही काले सूट वाला पुरूष यह कहता है कि, ''बात इतनी ही है कि विभाजित होकर मैं किसी अंश में आपमें हरेक व्यक्ति में हूँ और यही कारण है कि नाटक के बाहर हो या अन्दर, मेरी कोई भी एक निश्चित भूमिका नहीं है। .... मैने कहा था यह नाटक भी मेरी तरह अनिश्चित है। उसका कारण भी यही है कि मैं इसमें हूँ और मेरे होने से ही सब कुछ इसमें निर्धारित या अनिर्धारित है। एक विशेष परिवार, उसकी विशेष परिस्थितियाँ, परिवार दूसरा होने से परिस्थितियाँ बदल जाती है, मै वही इस परिवार की स्त्री के स्थान पर कोई दूसरी स्त्री किसी दूसरी तरह से मुझे झेलती या वह स्त्री मेरी भूमिका ले लेती और मैं उसकी भूमिका लेकर उसे झेलता। नाटक अन्त तक फिर भी इतना ही अनिश्चित बना रहता।''

'आधे–अधूरे' नाटक के अन्तर्गत स्त्री–पुरुष के सम्बन्धों, उनकी दुविधायुक्त मनः स्थितियों, आधी–अधूरी इच्छाओं, अतृप्त भावनाओं आदि का निरुपण आधुनिक संदर्भों में किया गया है। यह एक ऐसा नाटक है जिसमें एक ही परिवार में रहने वाले स्त्री–पुरुष ही नहीं बच्चे भी अपने ढंग से जीते हुये अपनी कामनाओं का बोझ लेकर टूटते बिखरते हुये अपनी मनमानी करते हुये दिशाहीन होकर क्रियाशील है। दिशाहीन होकर क्रियाशील होना ही उनकी नियति है और इसी नियति को बड़ी खूबी के साथ नाटक में चित्रित किया गया है।

'आधे अधूरे' नाटक में आज के जीवन के विशेषतः मध्य और निम्न मध्य वर्ग के जीवन के अधूरेपन को ही दर्शाया गया है। नाटक में जिन पात्रों को दर्शाया गया है वे एक प्रतीक या माध्यम है। नाटक में चित्रित परिवार की सबसे बड़ी बिडम्बना यह है कि उसमें निषेधात्मक पक्ष ही अधिक है। इसी कारण परिवार का छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा प्रत्येक पात्र अपने अधूरेपन को अस्वीकार करके दूसरे को ही अधूरा बतलाता है और उसे अधूरे रुप में ही स्वीकार करता है। सभी अपने अधूरेपन में जिये जा रहे हैं और विडम्बना यह है कि सभी को पूर्णता की तलाश है और इस तलाश में कोई भी किसी दूसरे की चिंता नही करता है सबको अपनी अपनी चिंता है, अपनी मनमानी करने की इच्छा है। इस नाटक की भाषा में वह सामर्थ्य है जो समकालीन जीवन के तनाव को व्यक्त कर सके–

पुरुष एकः मुझे तो उसी तरह आयी लगती है। (स्त्री चाय का प्याला उसकी तरफ बढ़ा देती है)

स्त्री : चाय ले लो।

पुरुष एकः (चाय लेकर) इस बार कुछ समान भी नहीं है साथ में।

स्त्रीः हो सकता है थोड़ी देर के लिये आयी हो।

पुरुष एकः पर्स में सिर्फ एक रुपया ही था। स्कूटर रिक्शा का पूरा किराया भी नहीं।

स्त्रीः क्या पता कही और से आ रही हो।

पुरुष एकः तुम हमेशा बात को ढकने की कोशिश क्यों करती हो? एक बार उससे पूछती क्यों नहीं खुलकर?

इस प्रकार स्पष्ट है कि 'आधे–अधूरे' नाटक कथ्य, भाषा शिल्प व प्रयोगधर्मिता सभी दृष्टियों से आधुनिकबोध का एक सफल नाटक है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास स0 डा0 नगेन्द्र, मयूर पेपर बैक्स, नोएडा 2007ई0।
2. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, बच्चन सिंह लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2007ई0।
3. हिन्दी नाटक, उद्‌भव और ओर विकास, डा0 दशरथ ओझा, राजपाल एण्ड संस, नई दिल्ली, 2008 ई0।
4. हिन्दी गद्यः विन्यास और विकास, डॉ0राम स्वरुप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, 2006ई0।
5. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ0 लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली 2010ई0।
6. हिन्दी साहित्य का इतिहास, विजयेन्द्र स्नातक, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली 2012 ई0।
7. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ0 हृदयेश मिश्र व शिव लोचन पाण्डेय, भारती भवन, पटना 2006 ई0।

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

भोजपुरी प्रदेश का लोकजीवन एंव लोकत्व

डॉ0 गंगा उपाध्याय
शोध पत्र
जय प्रकाश वि0वि0, छपरा

भोजपुरी प्रदेश में भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठ एवं विकृत दोनों ही तरह की परम्पराओ का चित्र देखने को मिलता है। भोजपुरी लोकगीतों में वर्णित राजनीतिक, सामाजिक, नैतिक, धार्मिक एवं आर्थिक स्थितियाँ प्रायः यथार्थ रूप में सामने आती हैं। यह क्षेत्र परम्परागत रूप से राजनीतिक चेतना सम्पन्न क्षेत्र है, जिसमें शोषण, अत्याचार एवं पराधीनता से लड़ने की क्षमता है। मुगलों के शासन के समय स्त्रियों पर होने वाले अत्याचार का बड़ा ही यथार्थ वर्णन इन लोकगीतों में मिलता है।

जहाँ तक 'लोक' शब्द की व्युत्पत्ति का प्रश्न है, यह भारतीय परम्परा में आदि काल से ही प्रचलित है। महर्षि यास्क के निरुक्त में प्रत्येक शब्द को धातुज बताया गया है। इस आधार पर 'लोक' शब्द को भी धातुज कहा जा सकता है। कुछ विद्वानों ने इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत के 'लाकदर्शने' शब्द में 'घञ्' प्रत्यय लगाने से माना है। कुछ के अनुसार 'लोक्यतेऽसौ लोकः' या 'लोक्यते जना' आस्मिन् इति लोकः' या फिर 'लोक्यते अनेन (करने से घञ्) इति लोकः' बना है। चाहे जो भी हो इस तरह की व्युत्पत्ति करने पर जनसमुदाय का ही बोध होता है।[1] लोक शब्द की व्युत्पत्ति के बारे में अन्य शब्दों की तरह भारतीय वैयाकरण पाणिनि और पाश्चात्य वैयाकरणों में मतभेद देखने को मिलता है। भारतीय वैयाकरण 'लोकदर्शने' के अर्थ में इस शब्द को ग्रहण करते हैं, वहीं पाश्चात्य विद्वान 'रुक' या 'रोक' (चमकने) के अर्थ में स्वीकार करते हैं।

ऋग्वेद में एक मंत्र आया है, जिसमें 'लोक' शब्द सामान्य जन के अर्थ में प्रयुक्त है।
यथा –

नाभ्यां आसीदन्तरिक्ष शीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रास्तथालोकां अकल्पयन्।।[2]

लोकजीवन से तात्पर्य सामान्य जन के जीवन से है जो परम्परागत रूप से चली आ रही जीवन शैली को सीधे–सीधे स्वीकार कर लेता है। वह समाज जिसमें आदिम मानव के अवशेष अर्थात् रहन–सहन, विचार तथा विश्वास को किसी–न–किसी रूप में जीवन शैली का आधार बनाया है। लोकतत्त्व हम उन्हीं तत्त्वों को कहते हैं, जो विचारों से अनभिज्ञ परम्परगत जीवन शैली के रूप में स्वीकृत होते रहे हैं। भोजपुरी लोकगीतों में आज भी आदिम मानव के अवशेष इन्हीं विश्वासों के रूपों में देखे जा सकते हैं। यह विश्वास श्रुत्रि परम्परा से प्राप्त होते रहते हैं और आज भी ये तत्त्व लोकमानस में समाहित हैं। लोक तत्त्व किसी विशिष्ट व्यक्ति या व्यक्तित्व से सम्बद्ध नहीं होते, इन पर पूरे समाज का अधिकार और विश्वास होता है। यही कारण है कि ये तत्त्व सामूहिक होते हैं, व्यक्तिगत नहीं।

प्राचीन भारतीय जीवन शैली और उसकी परम्परा पर यदि हम ध्यान दें तो यह बात शायद ठीक प्रतीत होगी कि वेद से लेकर पुराण, रामायण तथा महाभारत तक में लोकतत्त्वों की प्रचुरता है। यही कारण है कि वैदिक साहित्य भी लोकगीतों के निकट देखने को मिलता है। ऋग्वेद के अनेक मंत्रों में गाथा शब्द का प्रयोग मिलता है, जो निश्चित रूप से लोकप्रचलित गीत ही रहे होंगे। यथा –

अग्नि मीडिष्वाबसे
गाथाभिः शीरशोचिषम्।।[3]

'गाथिनि' शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में गाने वाले के लिए किया जाता था। यथा–

'इन्द्रमिगाथिनो वृहत्।
इन्द्रमकेभिर्राकणः।
इन्द्रं वाणीरनूषत्।।[4]

इसी तरह 'मैत्रायनी' संहिता में विवाह के समय गाये जाने वाले गीतों का वर्णन मिलता है। 'गृह्मसूत्र' में विवाह सम्बन्धी गाथाओं का भी उल्लेख है–

यस्यां भूतं समभवद्
यस्यां विश्वमिदं जगत्।
तामद्य गाथां गास्यमि
या स्त्रीणामुत्तमं यशः।।[5]

वाल्मीकि रामायण में राम के जन्म के समय स्त्रियों द्वारा सरस तथा मनोर×जक लोकगीत गाने का वर्णन मिलता है–

जगुः कलं च गन्धर्वाः ननृतुश्याप्सरोगणः।
देव दुन्दुभयोनेदुः पुष्प वृष्टिश्च स्वातपतत्।।[6]

भोजपुरी प्रदेश के ग्रामीण जीवन में लोक सन्दर्भों का जीवन्त रूप देखने को मिलता है। भोजपुरी क्षेत्र का लोक जीवन अपने आप में पूर्ण हैं, जिसके कारण विविध आवेगों, उत्साहों और उससे जुड़े हुए अन्यान्य लोक सन्दर्भों की लोकगीतों में प्रतिष्ठा हुई है। यही नहीं इन लाकगीतों में इस क्षेत्र के लोकजीवन की अनेक प्रकार के विश्वासों और विसंगतियों का जैसा ठोस, संश्लिष्ट और लोकधर्मी चित्रांकन किया गया है, वह सब अपने आप में अनूठा है।

भोजपुरी लोकजीवन में कुछ लोग देवी की पूजा करते हैं, तो कुछ लोग श्रीराम, शिव या हनुमान भक्त होते हैं, किन्तु कुछ लोग भूत–प्रेत, पिशाच, परी या मृतात्माओं की पूजा में संलग्न रहते हैं। भोजपुरी जन–मानस में भूत–प्रेत, बरम, डीह, जाखिनी, बगहा, रकसहा, जैसी प्रेतात्माओं के प्रति अटूट श्रद्धा है। इस भोजपुरी प्रदेश में ज्ञानी, योगी और पंडित की ही तरह तांत्रिक एवं सोखा–ओझा को भी प्रतिष्ठा दी जाती है।

भोजपुरी लोकगीतों में सर्वजन हिताय और सर्वजन सुखाय का उद्देश्य स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। आज भी गाँवों में परोपकार के लिए कुआँ खोदवाने, तालाब बनवाने तथा बाग लगाने के प्रति विश्वास है। यह प्रथा चिरन्तन काल से चली आ रही है। भोजपुरी लोकगीत में इस विश्वास को देखा जा सकता है।

पोखरा खोनवले कवन फल ए विप्र दी न बतलाई।
जहवाँ गइया पानी पीहें, ऊहे फल होई।।[7]

तालाब से सिर्फ मनुष्य ही नहीं, अपितु पशु–पक्षी भी जल जीवन धारण करते हैं। इसी प्रकार पुत्री के जन्म को पुण्य का कार्य माना है, क्योंकि कन्यादान का अवसर पुत्री के जन्म से ही मिलता है।

धीया जनमवाले कवन फल हो ए विप्र मोहे समुझाई।
जब बाबा दीहें कन्यादान तबहि फल होई।।[8]

प्राचीनकाल से आज तक लोकजीवन में देवी–देवताओं के प्रति आस्था एक–सी बनी हुई है। भोजपुरी लोकगीतों में जन–मन के धार्मिक जीवन का सजीव चित्रण अंकित किया गया है। इन गीतों में प्रधान देवी–देवताओं के साथ ही, गणेश, तुलसी तथा गंगा आदि की पूजा और व्रत का भी उल्लेख मिलता है। विवाह गीतों में शिव–पार्वती के विवाह का वर्णन लोक जीवन की सफल प्रस्तुति है।

पुरइन पात पर सुतेली गउरा देई सपना देखेली अजगुत।
कवना ही देशे बजन एक बाजेला केकर होखेला बिआह।
पास परोसिन तु हू मोरे गोतिन सपना के करना विचार।
मोरंग देसे बजन एक बाजेला सिव जी के होखेला बिआह।।[9]

सन्तान के लिए प्रायः स्त्रियाँ सूर्य षष्ठी व्रत रहती हैं यह व्रत सिर्फ भोजपुरी प्रदेश में ही पहले प्रचलित था, पर अब देश भर में फैल गया है –

गोड़वा दुःखइले रे डांडवा पिरइले कब से बानी हम ठाढ़।
आरे हाली–हाली उगत आदितिमल अरघ देती हम तोहार।।[10]

यह सच है कि लोकतत्त्वों के कारण ही लोकगीत अधिक प्रभावशाली तथा आकर्षक बन पाये हैं। यदि हम ध्यान दे तो भोजपुरी लोकगीतों में हमें भूत–प्रेत, पिशाच, डायन तथा शाकिनी–डाकिनी के प्रभाव तथा उससे मुक्ति के लिए ओझा, सोखा तथा तांत्रिकों के प्रयास देखने को मिलेंगे। इस प्रकार भोजपुरी लोकगीतों में लोकतत्त्वों की चतुर्दिक् परिव्याप्ति हैं। ये लोक गीत अपनी सारी विशेषताओं के कारण एक अलग पहचान रखते हैं।

सच तो यह है कि भोजपुरी लोकगीतों में लोकजीवन का कोई भी पहलू अछूता नहीं बचा है। एक ओर वर्णव्यवस्था और जाति व्यवस्था, तो दूसरी ओर आपसी साम×जस्य भी बना हुआ है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद गाँवों में बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ है और वैज्ञानिक अनुसंधानों के कारण नई तकनीक हर क्षेत्र में देखने को मिलती है, फिर भी गाँवों मे, लोकविश्वास में बहुत अधिक परिवर्तन नहीं हुआ है। गाँवों का जन–जीवन देखने में तो सहज और उदार है, परन्तु उसके भीतर अन्तर्विरोध भी बहुत अधिक है। यहाँ का लोक मानस वैचारिक स्तर पर निरन्तर परिवर्तित होते हुए भी किसी एक निश्चित तथ्य या लोकसत्य पर स्थिर नहीं है। उसकी अवधारणाएँ निरन्तर बदलती रहती हैं। आज भी सोखा, ओझा पर विश्वास अटूट है। जिस गाँव में पढ़े–लिखे लोगों की संख्या अधिक है, वहाँ भी गाँव के लोग हाथ जोड़कर सोखा के सामने खड़े रहते है, वह प्रेत लीला का स्वरूप प्रस्तुत करता है। भोजपुरी लोकगीतों में लोकतत्त्व का समावेश विशिष्ट सन्दर्भों में उसे लोकोन्मुखी बनाता है।

संदर्भ :

1. वाचस्पत्यम्, षष्ठ भाग, चौखम्बा संस्कृत ग्रन्थमाला, ग्रन्थ सं. 94, पृ. 4833
2. ऋग्वेदए 10/90/14
3. ऋग्वेद 8/71/14
4. ऋग्वेद 117/11/11
5. गृह्मसूत्र
6. वाल्मीकि रामायण
7. पारम्परिक
8. पारम्परिक विवाह गीत
9. पारम्परिक शिव विवाह गीत
10. पारम्परिक छठ गीत

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

Jahangir as a patron of justice

Dr. Ananta Kumari

At.-Mednimal Katra, Hajipur, Vaishali

Jahangir was a great lover of justice and he took a keen interest in its administration. The most noticeable and attractive feature of the royal court was the golden chains and bells hung up by the emperor Jahangir. One end of chain was fastened to the battlement of the shah burj of the fort at Agra, and the other to a stone post fixed on the bank of river. The device was adopted by the emperor so that litigants and the aggrieved persons could tie their petitions to be drawn up to the emperor and avoid the harassment of the porters and court underlings. He did not want that any of his courtiers should hinder the oppressed in their approach to him and so installed a golden chain of justice. Jahangir writes, "it was a chain of pure gold, thirty gaz in length and containing sixty bells. If the officers of the court of justice should fail in the investigation of the complaints of the oppressed and in granting the redress, the injured persons might come to this chain and shake it, and so give notice of their wrongs."[1]

This institution made great impression on the people. Khafi khan praises this innovation of Jahangir very much. He writes that Jahangir made a proclamation that anyone who was oppressed might, through the bells, bring his complaint to king's ears. 2 v.a.smith points out that in india and in asia generally appalling sentences of mutilation of limbs and flaying alive were customary. Jahangir interdicted the cutting of noses and ears, and no death sentence could be inflicted without its permission and confirmation. Again from the travel of monsieur de Thevenote, we find that "all the sentences of death passed whether by civil or criminal judges had to wait for executions until the emperor's confirmation was obtained."

But at times he would go into fits of passion and committed barbarous act. Thus he writes "on the 22nd, when i got within short of a nilgaw, suddenly a groom and two kahars appeared, and the nilgaw escaped. In a great rage, I ordered them to kill the groom on the spot and to hamstring the kahars and mount them on asses and parade them through the camp, so that no one should again have the boldness to do such a thing."[3]

Such incidents gave to the European travelers a very bad impression about the emperor. Terry for example, regards him as a man of extremes, cruel as well as wild, given to excessive drinking himself but punishing that faulting others.4 he also observed that the trials concluded speedily. The execution of sentences took place quickly and the culprits were usually executed in the market place.5 sir tomas roe supports terry in this assertion and mention the absence of any written laws at that time.6 But jahangir was very particular about dispending justice. He had especially reserved on day in the week for tat duty. De lact's evidence is worth quoting:

"Once a week on tuesday, he takes his seat on the tribunal, and hears patiently all cases that are brought before him, both civil and criminal, and pronounces judgment on each, which is final. Capital punishment is generally inflicted before his eyes and with great cruelty, whether in capital city or wherever he is holding his court. Those found guilty are punished with severity, being either beheaded, hung impaled or thrown before elephants or other wild bests, according to the nature of crime."[7]

It appears from here and elsewhere that the provincial governors could not inflict capital punishment unless specially authorized by the emperor. Thevenote writes in connection with surat: "The king reserves that power to himself, and therefore when any man deserves death, a courier is dispatched to know his pleasure, and they fail not to put his orders in execution as soon as the courier comes back."

It also appears that ordinary cases were attended to by the king in the open durbar every day and important cases requiring the evidence of witnesses were attended to by him on the day of the week fixed exclusively for the administration of justice, i.e. On tuesday. It is very significant that jahangir followed this practice even during his expeditions and pleasure trips and above all, even when he was indisposed. Even when in pain or sorrow, he observed his fixed custom. At ahmadabad he selected an open place for administering justice to the "weak hearted and wretched" people of that place.[9]

Jahangir was easily accessible to his subjects. A gardener of the royal gardens once approached him and complained against the servant of the governor who had taken away some plants under his charge. After investigating the matter, he found that the complaint was true, so he ordered that both the thumbs of the accused be chopped off.Another european traveler.Hawking, praises his methods very much. According to him the rayats' complaints were heard and prompt action was taken against oppressive officials. He would at once summon the person shaking the chain of justice and allow him to present his case in person.[11]

That jahangir's love of justice was high is shown by many cases on record. Jahangir came to know that hoshang, who was the nephew of a great noble, khan alam, had committed a murder. The guilt was proved, so he ordered his execution and declared:" God forbid that in such affairs, i should consider princes and far less that i should consider amirs."[12]

Besides, he was also very anxious about the fate of prisoners. He visited the ranthambor fort and examined the cases of all prisoners and issued orders about them. Even the great nobles could not escape him. The eunuchs of said khan chagtai troubled the poor, jahangir sent him a message to the effect that he could not tolerate oppression and that great or small had no meaning for him. He warned him that he would receive due punishment, if the blunder was again repeated.[13] jahangir set free all the prisoners confined in the prison for long periods. In 1611, jahangir issued orders to the amirs forbidding them to punish and persons ordering him to be blinded. He also instructed them not to impose muslim burdens on any one. There were some rules which were promulgated under the title of in- i —Jahangiri.14 in 1618, he further issued orders that criminals sentenced to death should not be executed till sunset, and if up to that time no reprieve was issued, the punishment should be inflicted.[15]

These various cases show jahangir's great passion for justice, and that he can justly claim to be impartial in dispensing justice. A very interesting case is cited by Beni Prasad in his history of Jahangir. He writes, "a respected muslim pir whose family migrated from afghanistan to sindh, refused to prostrate himself before the emperor jahangir. He was thrown into prison, but the emperor soon repented his harshness, released the pir and begged his pardon. The lineal descendants of the pir still count among their followers from ten to twelve lakhs of persons."

Jahangir's judiciary had a destine of organization and officers of its own. Except in grave matters, the village was generally left undisturbed, and the village or cast panchayats were every where suffered to exercise a sort of jurisdiction. But every town generally even a very small town had a qazi and a miraddl who formed a judicial bench. The former investigated the case, while the latter pronounced the sentence. In all important cases, an appeal lay to the court of the provincial diwan, or qazi or governor, who likewise exercised original jurisdiction in all case that occurred round there seats. From the provisional courts, appeal could be preferred, doubtless only in important cases, to the imperial diwan or qazi or the emperor himself, who likewise sat to decide original cases arising around the headquarters. When the emperor sat at the jharokha, one had only to hold up petition to be heard and answered. From the jharokha, the emperor would come down to the diwan -i- khas at about eight a.m. And sit on the throne of justice till midday. The officers of justice presented the plaintiffs one by one,

and reported their grievances. His majesty very quietly ascertained the facts by inquiry took the law from the ulema and pronounced judgment accordingly.

The procedure of the court was simple and summary. No sooner were the accused apprehended than they were produced before the court. It was seldom that a man had to wait for more than twenty four hours for his trail. The parties to every civil suit or criminal cases were examined by the judges. Witnesses were summoned and severity cross- examined. Hindus had to swear as a cow, muslim on the quran, and christians on the bible. It is a tribute to the on lightened character of the mughal administration that it did not recognize the ordeal as a mode of judicial trial.

Jahangir himself tries to establish as a just monarch. He pronounced his attitude in this regard that my justice would not put up with oppression from any one, and that in the scales of equity neither smallness nor greatness was regarded. He proclaimed that if any cruelty or harshness should be observed on the part of his people, he would receive punishment without favour. 16 for example muqarrab khan, the emperor's favorite was punished with the reduction of his mansab by half for an individual act of cruelty. Chin qulich khan, the tyrant of jaunpore, was likewise recalled and would have been suitably punished if he had not died on the way. Abdullah khan firoz jang, governor of gujarat, one of the valiant soldiers of the empire and a favorite of the powerful shah jahan, was recalled and had to undergo the uttermost humiliation and to seek the good offices of his patron to secure pardon.[17] justice indeed, was the strong points of jahangir.

Foreign travelers have also mentioned Jahangir as a great long of law and justice. Europeans visited india during the reign of jahangir and some of them have left their impressions about the court of the emperor and the condition of the country. Hawkins' account is mainly confined to the description of the personal character of jahangir and his daily routine. But it must be noted that all these accounts are not entirely free from exaggerations. Sir Thomas Roe's accounts reveal that most of the subahdars were exacting and tyrannical in their dealings with their subjects. According to some sources the nobility was courteous and the courtiers as a class were corrupt and unprincipled. The highest officials were extravagantly paid and bribery was commonly practiced. The provincial governor s behaved as despots and their allegiance to the central government was half-hearted.

But by setting up the 'chain of justice', jahangir became an innovator in the domain of justice. This chain is an illustration of the eagerness of Mughal emperors to do justice to their subjects. No doubt, jahangir in spite of all his weakness had a large share and even to this day he is spoken of with respect by mohammedans on account of his love of justice.

References:

1. Jahangir emperor: Tuzuk-i-jahangiri or memories of jahangir english translation by rogers and beveridge.new dewlhi,1968 vol-i,page-7
2. Khafi khan: Munitakhab-ul-lubab (per text) bib.ind, 1964, by beni prasad in history of jahangir 3rd edn, allahabad, 1940, page-in.
3. History of jahngir, op.cit. page- iii.
4. Memories of jahangir vol.- i, page 164
5. William fester's early travelers in india. 331
6. Ibid.
7. Ibid.
8. Thevenot: Travels in the levent, eng translation, 1986 vol.-iii, page-19.
9. Early travelers in india, op.cit.,page- 326
10. Hawkins.purcha's piligrims,vol.-iii,pp.13-14
11. Tuzuk-i-jahangiri (r&b)vol.-ii,pp. 13-14
12. Tuzuk-i-jahangiri (r&b)vol.-ii,p.14
13. Tuzuk-i-jahangiri (r&b)vol.-ii,p.13
14. Tuzuk-i-jahangiri(r&b) vol.-i, page-13, blockmann.page- 331
15. Tuzuk-i-jahangiri (r&b)vol.-i,page-421

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

Love, Sex, Lust and Melancholy in the short Stories of Kamala Das: An Analysis

Dr. Tripurari Kumar

M A (English), Ph.D, M Ed, PGCTE

Abstract

The present paper depicts the inadequacy of love and intolerable sexual tyranny as well as subjugation and melancholy in the short stories of Kamala Das. Famous as a poet and short story writer Mrs. Das has created a prelude of such beautiful literary creations which reveal the tradition and value of Indian social make up. Primarily being a poet, using symbols and images in her short stories, she shows the cruel condition of society towards women. With growing maturity she has developed a detached outlook and turns to the interior landscape of the soul. She also shows her frustration in love and subsequent feelings of melancholy and yearning for a detached existence. She emerges out of the narcissistic world of the self and recognizes the reality of suffering in the outer world. She communicates a powerful female sensibility. Being a confessional and autobiographical writer she writes about her own experience of frustration in love and drudgery in married life. Though she does not write the conventional story of woman with its romantic and domestic plot centered on a man and marriage and motherhood she presents all variations on the feminine stereotype in radically subverted form. Like in her poems and her autobiography in most of the stories there is a serious questioning of the existing basis of male female relations and a more or less sustained refusal to the values of a male dominated society get expressed.

Key words: love, sex, boredom, melancholy, frustration, alienation.

Introduction

Kamala Das, a bilingual writer in English and Malayalam occupies a unique place in literary world. She was born in a respectable conservative Nair family in 1934 in Malabar, Kerala. She is also known as Kamala Suraiya who converted herself into Islam in 1999 at the age of 65. Her esteem in Kerala is based chiefly on her short stories and autobiography. Kamala Das's most important achievement is her own sense of writing in Indian English. Her great uncle Nalapat Narayan Menon, a well-known

writer influenced Kamala Das to write poems and short stories. She also got encouragement from her poetess mother Nalapat Balamani Amma. She spent most time of her early life in Calcutta where her father was working.

Kamala Das got world-wide popularity after the publication of her confessional autobiography *My Story (1976).* Kamala Das has published several short stories in Malayalam, under the pen name Madhavikutty. Some of these are now available in translation. A Doll for the Child Prostitute, 1977 and Padmavati, the Harlot, 1992 are two collections of short stories published in English. Though Kamala Das is a well known poet in English her short stories deserve equal attention as her poetry because they are vital tales of feminine suffering, dilemma, resistance and rectitude. Her stories published mainly in magazines like Reader's Opinion, Quest, Debonair and Beautiful. Many of her short stories published in dailies like The Hindu, Deccan Herald, Times of India, National Herald, World Literature Today, Sunday Standard and Business Standard etc. The major stories of Kamala Das includes 'A Doll for Child Prostitute', 'December', 'A Little Kitten', 'Darjeeling', 'The Sign of the Lion', 'Moongphali', 'That Woman', 'The Princess of Avanti', 'The Sea Lounge', 'Iqbal' 'Equity Shares', 'Walls' and 'Grandfather'.

Generally her short stories set in interior of the houses like hospital, temple, hotel, public garden etc. So much so that she has applied the names of months like August, September, October, November and December. She uses traditional as well as modern techniques. She applies the first person point of view with flashbacks in some of her stories. The settings of some of her short stories show the mind set of Kamala Das 'Grandfather' sets in an urban area 'Walls' in a house, 'The Sea Lounge' in Taj Hotel in Bombay, 'The Princess of Avanti' in a public garden, 'That Woman' set in a house, 'Moongphali' also in a house in Delhi against the historical background of Indira Gandhi, 'The Tattered Blanket' in a village in Kerala, 'The Sign of the Lion' in a home, ' Darjeeling' in hospital, 'A Little kitten' set in small flat at Dadar in Bomaby, 'December' in a cottage, 'The Young Man with the Pitted Face' in a hospital room.

Her famous short story 'A Doll for the Child Prostitute' set in Bombay which presents a house of Bombay brothel. In this story she mainly shows how a brothel house is being run. Many problems are faced by the head of the brothel house with competition from other such houses in the neighbourhood. The leading character is Lachmibai who is called Ayee which means 'mother' in Marathi. Ayee is the head of the brothel. Some of other characters in the story are Mira, Saraswati, Radha, Sita, Rukmani, Anusuya, Kausahalya, Sindhutai and the inspector. In the brothel the girls have ironically been named__ Saraswati, Mira, Radha, Sita, Rukmani and so on. Young Rukmini was brought to Ayee by her own mother for a meager amount of money. At

home there is not only poverty and acute hunger but also the sexual harassment from the stepfather who had raped the little girl. The child Rukmini was not happy about leaving her home. He not only beat up her mother every night but squeezed her own little breasts, hurting her dreadfully when she was alone in the house. Last week, he pierced her body until she bled all over the floor. To the helpless mother the brothel seemed the only safe haven for her daughter where she could procure two square meals a day and some shelter. Though she was not unaware of the evils of brothel life, she had to decide and choose between two equally difficult situations. Sita, whom Rukmini meets at the brothel, is a victim of circumstances. The cholera epidemic created havoc in her life; she lost her parents and all her three brothers and was forced to end up in the brothel. Sita being more experienced initiated innocent Rukmini into the mysteries of brothel life. In their pre-pubertal days when life seemed all fun carefree and joyful-they hardly knew the significance of the sexual act. For them it came as an occasional punition meted out for some obscure reasons, which made them resent the frequent interruptions during their game of hopscotch. While the coarse men, old enough to be their grandfathers, took the pleasure off their young bodies, the two girls' minds were-far away, hopping in the large squares of chalked diagram on the floor of the porch. They were suffering for no fault of their own and Kamala Das rightly points out "their only mistake was that they were born as girls in a society that regarded the female as burden, a liability." Sita's unexpected pregnancy, forced abortion and painful death left a shocking and debilitating effect on young Rukrnini's mind. As T.N.Geeta says:

Pain resulting from loveless living aches dulled by routine sobs stifled by unfeeling society, life lighted by disease and death goodness soured into harshness by callous necessity such are themes of her stories which have the effect of disturbing reader’s complacency and heightening his awareness of the misery around him.(1989:18-19)

Loss of her only friend brought relentless agony to her. Her first heinous rendezvous at the brothel with the old police inspector left her nauseated too. This man of her father's age tried to lure her with promises of expensive gifts-a red frock, frilly panties and an imported doll. Being satiated with women this ugly man keeps his lecherous eyes on Rukmini and plans to make a deal with Ayee to avail Rukmini's service solely to himself. Besides Rukmini and Sita all the other occupants of the brothel are also portrayed in sufficient details. Ayee, the caretaker is shown as caring but also demanding at times. Her repeated assurance of availability of nutritious meals at the brothel for the girls sounds more boastful and exaggerated than her real concerns for their health. Ayee not only cares them a lot but she feeds them every morning with a meal of paratha dripping with vanasapati and egg curry and tipped by a glass of milk and sometimes with fish also. She combs the girls’ hair with Brahmi oil. Every week

they are taken to a doctor to ensure that they are not infected. She loves them in her own way. Yet, she is not as cruel and wicked as her rival, Koushalya, who whips her girls to make them docile. The scandalmonger, Sindhuthai, with her accursed tongue is portrayed as a devilish woman. When little Rukmini first stepped into the brothel, she felt that a woodpecker was pecking at her skin. The brothels used Sindhuthai's service (unskilled expertise) to abort unwanted pregnancies. In exchange she gets some food, money for her liquor, pan and bidi and occasional shelter. Her life is like a stray bitch. Radha and Saraswati are shown as fully preoccupied with their art of alluring and enticing the visitors and to give them optimum satisfaction. Young and beautiful Marathai cherishes the dream of having her own sweet home and her family made an unsuccessful attempt to elope with her student lover but soon realized that the outside world is agonistic towards prostitutes. She thus realized that the brothel is the only abode for women like her where they can be safe and secure. Pre-pubertal girls like Rukmini and Sita are victimized for no fault of theirs. Kamala Das ends this tragic, crude and melancholic story of women's suffering and exploitation with a positive note as she seems to lay open the possibility of change and internal reformation through the power of female strength.

Ayee, expresses her desire to retire from the worldly life and dreams of going on a pilgrimage to Benaras, the holy city. In her youth she had a Brahmin lover by whom she bore a son who fled away from home leaving the lady for her occupation. She waits eagerly for her son’s return. After a long duration of period she comes to know that her son is coming back and she decides to get retired from the profession. She has planned to provide the charge of brothel house in the hands of Saraswati and wants to lead her remaining time in Benaras. She is overwhelmed after leaving the place and claims that the girls are well bred. Ayee decides to marry innocent Rukmini to her son. Her son too regrets his mistakes and begins to accept the fact that every profession has its own code of manner and that he ought not to feel ashamed of his own mother. After ten years of silence he decides to return home. Thus there is a gradual change in the individual stance of some of the characters and the readers witness hatred giving way to love, attachment to detachment and dereliction to homecoming, delusion to rational consideration.

In "The Princess of Avanti," Kamala Das focuses on the theme of sexual perversion in men. This is a pathetic story of an old woman. The old woman was under the delusion that she was the princess of Avanti, so when in the park she encountered three young men who flattered her she lost her sensibility and fell a victim to their sexual perversion. The three megalomaniac men declared themselves as king of Vangarajya, Kalinga and Kerala. Together they lured the old woman with false promises of her nuptial celebration in the park. Being a myopic person she disregarded

her age, physical frailty and the time factor and failed to comprehend the unctuousness in the proposal of the pseudo rajas. They are self-proclaimed monarchs and their cowardice is revealed in their intention to act surreptitiously in the dark. Yet, the old lady waited for them without any fear, hesitation and suspicion. When darkness engulfed the place her hope of celebrating her marriage was shattered with the three bully men physically overpowering her making her gasp and pant for her last breaths. The young men removed her dress. She had no undergarments. One took a long look at the sagging breasts and guffawed. The woman in this story symbolically stands for senility, dependency, and vulnerability. Kamala Das in this story metaphorically suggests the victimization of women by the male.

"Padmavati, the Harlot" is written in a similar vein. Here the female protagonist, a middle-aged harlot, herself a victim of sexual prejudices at the end of the story is seen walking away in a coy. Her fears and foibles, her struggle in life and her unshakable devotion are towards God. She narrates her doleful tale of having been disowned, abandoned and ditched by her family. She who struggled to financially support her mother, brothers and sister was abandoned by all because of her low profession. Having been forsaken by everyone she now turns towards the Lord whose holy shrine she had long desired to visit. Eventually, she arrives at her desired destination but she was very late and the temple door was shut. The priest had left and darkness loomed large all over the place while some hooligans purposefully attempted to torment her with obscene words. The avaricious loafers also robbed her of the fruits she intended to offer at the altar of the Lord. With tears in her eyes and in an utterly perplexed state of mind she could not decide where to proceed and what to do. The loafers then followed her incessantly demanding sexual pleasure.

But though a harlot, Padmavati was not a nymphomaniac craving for physical pleasure so she proved no easy prey to the brutes sexual appetite. Turning a deaf ear to their lascivious words and lecherous gestures she hurried up the stone steps leading to the temple yard. Ultimately, she achieves her goal and the writer describes her sublime state of mind, her communion with the lord with a touch of sensuousness.

Here in this story, Kamala Das reverses this conventional understanding and attempts to erase the malign image of this marginalised and exploited woman. The prostitute is shown as a sincere, caring, devoted and determined person. Many writers have written on prostitutes but few could portray them in a positive light endowing them with normal feminine attributes.

"A Little Kitten" is the story of a newly married couple. After a short period of ecstatic love and happiness they seek comfort outside the marital relationship. Both of them started quarrelling. As the boss falls in love with his secretary, the frustrated wife

grows restive and feels ditched and betrayed. The lonesome wife desires to have a kitten to keep her company while her husband is away busily engaged with his routine office work. As days passed by the newly wedded wife sulked and lost her bridal beauty thinking unkind thoughts incessantly. Life in the city was not a bed of roses for her and she packs up her belongings and decides to depart. She cannot expect her parents to be considerate, reliable and friendly when it comes to disclosing and sharing her painful secrets. The woman in the story realized this and so she balked hearing the husband's words. However, she decides to stay back not as a loyal and subdued person but one who adventures to seek out her own kitty all by herself. The act of transgression is metaphorically referred to as a scratch from the playful kitten.

Thus, Kamala Das balances the lopsided picture of conjugal relationship by implicitly showing the woman's capability to deviate from the culturally prescribed role of a wife that demands her to prostrate before her husband with joined palms, closed eyes and blind faith. Here the woman is not indulging in illicit love affairs; she is not carried away by paroxysms of joy arising from consummated love and new found freedom. Kamala Das has not intended to show her as an adulterous. Rather, she is shown as a woman who is simply capable of finding her own solution to the problem created by her better or worse half though her horizon remains shrouded, engulfed in an amorphous smoky form indicating a blurred vision.

Conclusion

The poetic self of Kamala Das is well expressed with qualities of stubbornness, hatred for an aggressive male, claim for right womanhood and equality with men in her short stories. Her long stories have the ‘unity of impression’ and ‘density of expression’. One finds pictorial quality in her stories that are really powerful portrayal of different individuals. They are like miniature paintings. She projects both images of Indian Woman submissive’ and aggressive. Kamala Das has not painted only one-sided picture of women as sentimental, soppy, introvert and silent victims of patriarchal prejudices she has painted a multi-dimensional canvas, a mosaic of different hues and shades where women have postured in different moods and attitudes with varied feminine qualities.

Though her heroines try to break barriers of male dominance and patriarchal system but they do not succeed. So they end their lives tragically. In real life Kamala Das herself has asserted that she is a ‘new woman’ but she has rarely reflected her own image in her stories. Indeed she is one the most of remarkable women short story writers. She makes an important change in her themes and techniques. Her style shows emotions with remarkable ease and clarity. Her use of words, phrases and clauses are very apt. Symbols and images assume a wider and more concrete significance.

Works Cited:

Das, Kamala; A Doll for the Child Prostitute. New Delhi: India Paperbacks,1977

_____; Padmavati, the Harlote and Other Stories. New Delhi: Sterling Publishers, Pvt.Ltd., 1992

_____; *My Story*, New Delhi Sterling Paperbacks.

_____; The Old Play House and Other Poems Madras: Orient Longman, 1973

Iyengar, K R S; *Indian Women Novelists, Indian Writing in English*, New Delhi: Sterling Publishers Pvt. Ltd., 1962.

Iyengars, K R S; *Indian Writing in English*. New Delhi: Sterling Publishers Pvt Ltd, 1978

K Srivastava, Ramesh ; Perspective M. Anita Desai, Ghaziabad: Vimal Prakashan, 1984.

Mitti, H S; Women Short Story Writers, Current Publications, Agra 2006

Naik, M K; A History of Indian English Literature. New Delhi: Sahitya Akademi: 1982

Rahman, Aniser; The Expressive Forms in the Poetry of Kamala Das. New Delhi: Abhinav Publishers, 1981

T.N, Geeta; "Women Short Story Writers in Indian Writing in English" An Unpublished Ph.D., dissertation submitted to Gulbarga University, Gulbarga, 1989

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

आर्थिक उदारीकरण कि व्याख्या : भारतीय अर्थव्यवस्था में

डॉ ० संतोष कुमार
पूर्व शोध छात्र , अर्थशास्त्र विभाग,
वीर कुंवर सिंह विश्व विद्यालय, आरा, भोजपुर

उदारीकरण का अर्थ उदार दृष्टिकोण से होता है | यह उदार दृष्टिकोण चाहे राजनैतिक क्षेत्र से संबंधित हो अथवा सामाजिक या आर्थिक क्षेत्र से | हम आर्थिक क्षेत्र में उदारीकरण की चर्चा करेंगे | उदारीकरण की नीति का अर्थ है- सरकारों द्वारा आर्थिक क्रियाओं में न्यूनतम हस्तक्षेप |

उदारीकरण का अर्थ:-

उद्यमियों को अपने निर्णय स्वयं लेने में समर्थ बनाने के लिए उसमें छूट देने के लिए तथा उद्यमियों के क्रियाकलापों की खुली छूट देने वाली आर्थिक नीति को ही हम 'आर्थिक उदारीकरण ' की नीति कहते हैं | इस तरह से उद्यमियों को किसी भी उद्योग व्यापार व्यवसाय में प्रवेश करने की पूरी तरह आजादी देना है |

उदारीकरण के उद्देश्य:

उदारीकरण के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित है:-

(1) उद्योगों को अनावश्यक एवं कष्टप्रद नियंत्रण से मुक्त करना

(2) उद्यमियों की विकास संवर्धन क्षमताओं को आगे करना

(3) बाजार तंत्र के लिए उचित नियंत्रण की स्थापना करना

(4) विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन करना

(5) तकनीकी में सुधार करना

(6) अंतरराष्ट्रीय प्रतियोगिता को विकसित करना

आज भारत ही नहीं वरन समूचा विश्व भयानक, हिंसा,नरसंहार इत्यादि घटनाओं के दौर से गुजर रहा है | बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में आर्थिक विकास एवं समृद्धि की दिशा में विश्व का ही नहीं अपितु भारत का ध्यान भी इस ओर केंद्रित हुआ है | आर्थिक विकास के चलते ही आर्थिक नीतियां बनाई गई| वर्तमान समय में आर्थिक कार्यक्रमों के संबंध में न केवल राजनेताओं बल्कि साधारण लोगों की भी रुचि नहीं है| राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में विभिन्न पहलुओं के संबंध में 1991 में दिए गए अनेक सरकारी नीति विषयक बातों ने नई आर्थिक नीति को स्पष्ट किया है | नई आर्थिक नीति की प्रमुख विशेषता आर्थिक उदारीकरण है |

आर्थिक प्रतिबंधों की न्यूनता को ही उदारीकरण कहते हैं | वर्तमान समय में सरकार द्वारा उदारीकरण की नीति को जोरदार समर्थन चाहती है | उदारीकरण से पूर्व जो विदेशी कंपनी भारत में थी उसने भी भारत के हितों का ध्यान नहीं रखा तथा अपनी पूंजी को बढ़ाना शुरू कर दिया इस तरह उद्योगपतियों को लगने लगा कि भारतीय उद्योगों का विदेशी कंपनियां अपने अधीन करती जाएगी | जिसका परिणाम यह हुआ कि चार-पांच साल तक भारतीय घरेलू कंपनियां और विदेशी कंपनियों में खुली प्रतिस्पर्धा की वकालत करने वाले सभी तरह के संगठनों ने यह कहा चालू कर दिया किशतप्रतिशत मालिकाना हक़ विदेशी निवेश की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए | वास्तव में पिछले कुछ वर्षों के सुधार कार्यक्रम ने यह सबक दिया है कि बहुराष्ट्रीय कम्पनिया और विकसित देशों के साथ 'भारत बहलाओ और हड़काओ की नीति का संचालन करना होगा जैसे कि चीन ने सफलतापूर्वक आजमाया है | अतः आर्थिक मामलों में कोई भी देश अंतरराष्ट्रीय प्रभाव की पूरी अवहेलना नहीं कर सकता परंतु जिस प्रकार बहुराष्ट्रीय कंपनियों का भारत के आर्थिक क्षेत्र में आने का खुली छूट दी गई, उसने भारतीय अर्थव्यवस्था के आर्थिक,सामाजिक तथा राजनीतिक क्षेत्र को काफी प्रभावित किया है|

व्यक्ति की तरह समाज और राष्ट्र के जीवन पर भी आर्थिक स्थिति का गहरा प्रभाव पड़ता है| संसार की प्राचीनतम संस्कृतियों और सभ्यताओं का विकास उसी क्षेत्र में हुआ, जहां की भूमि और जलवायु ऐसी थी की थोड़े प्रयत्न में जीवनयापन के लिए पर्याप्त धन उत्पन्न किया जा सकता था | रोटी कमाना और पेट भरना प्रथम आवश्यकता होती थी जब उसकी यह आवश्यकता पूरी हो गई तब उसका मन और उसकी बुद्धि कलात्मक कामो और चिंतन की ओर अग्रसर होने लगी और सभ्यता और संस्कृति का विकास होता गया |

भारत में विकसित अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से दो धुरो पर चलती है | भारतीय अर्थव्यवस्था की पहली धुरी कृषि और कृषि से संबंधित आधारित उद्योग धंधों ने भारतीय

अर्थव्यवस्था की दूसरी धुरी आर्थिक मामलों में लोगों और देश का स्वालंबन था | कर वसूली के अतिरिक्त आर्थिक मामलों में शासन तथा राजा का हस्तक्षेप लगभग न के बराबर था | शक्र आदि कुछ चिंतकों के अनुसार जहां राजा आर्थिक मामलों में दखल देता है स्वयं व्यापार करने लगता है, वहां देश और प्रजा का अनिष्ट होता है | वैश्य समुदाय को धन कमाने की छूट थी परंतु उसे यह धन उसे केवल अपने सुख के लिए थी | उसका कर्तव्य था कि वह अपने धन को समाज के हित में खर्च करें. धर्मशालाएं , बावलियां, मंदिर आदि बनवाएं और शिक्षा संस्थानों को चलाने में मदद करें |

प्रकृति की अनुकंपा और इस व्यावहारिक तथा यथार्थवादी अर्थव्यवस्था के कारण भारत एक समृद्ध देश बन पाया | इसकी यह आर्थिक समृद्धि विदेशी आक्रमण का भी कारण बनी कई आक्रांता यहां केवल लूट के लिए आए | ब्रिटिश लोग भी भारत की आर्थिक समृद्धि का लाभ उठाने और इसके साथ व्यापार करने हेतु इसकी और आकर्षित हुए लेकिन अपनी सत्ता कायम कर लेने के बाद उन्होंने भारत का ब्रिटेन के हित में योजनाबद्ध ढंग से आर्थिक शोषण एवं दोहन किया इससे भारत की अर्थव्यवस्था चरमरा गई और समृद्धि एक सपना बन गया था | लेकिन परिस्थितियां बदली और पहले विश्वयुद्ध के काल से ब्रिटिश सरकार ने ब्रिटेन की युद्ध सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भारत के औद्योगिक विकास की ओर ध्यान देना शुरू किया इसका लाभ भारत और ब्रिटेन दोनों को हुआ |

1947 में जब भारत खंडित रूप से स्वतंत्र हुआ तब यह यातायात और विकास की दृष्टि से चीन समेत एशिया के लगभग सभी देशों से आगे था लेकिन युद्ध के कारण जापान की स्थिति बिगड़ने के फलस्वरुप भी भारत आगे था | अगर भारत स्वतंत्र भारत सरकार की नीति और विशिष्ट परिस्थिति को ध्यान में रखकर यथार्थवादी, व्यवहारिक और जनकल्याणकारी आर्थिक नीतिया अपनाता तो आर्थिक क्षेत्र में बहुत आगे बढ़ गया होता, यह समृद्ध देश बन गया होता परंतु हुआ इसके विपरीत पंडित जवाहरलाल नेहरू जो ब्रिटिश सरकार और गांधीजी के प्रत्यक्ष दबाव और अनुचित दबाव के कारण स्वतंत्र भारत के पहले प्रधानमंत्री बने थे आर्थिक चिंतन की दृष्टि से समाजवादी थे लेकिन समाजवाद ने उनका दूर तक कोई नाता नहीं था समाजवाद के नाम पर 1990 तक अपनाई गई आर्थिक नीतियों ने भारत की अर्थव्यवस्था को चौपट कर दिया जिसके कारण संकट की स्थिति उत्पन्न हो गई |

इन संकट की परिस्थिति से उबरने के लिए कोई न कोई उपाय की जरूरत महसूस होने लगी ताकि हमारी अर्थव्यवस्था में सुधार हो सके | इसलिए हमें हर क्षेत्र में, हर कार्य में सरकारी

हस्तक्षेप को शून्य करना पड़ा उदार नीति अपनानी पड़ी जिसके कारण उद्योगों, कल-कारखानों आदि के नियमों में ढील देनी पड़ी ताकि उद्यमियों को आकर्षित किया जा सके और हमारी अर्थव्यवस्था पटरी पर आ सके |

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भारतीय अर्थव्यवस्था में उदारीकरण की नीति के कारण औद्योगिकरण ही नहीं बल्कि कृषि जगत को भी काफी आगे बढ़ाया है जिससे हमारी अर्थव्यवस्था मजबूती की ओर बढ़ने की तरफ अग्रसर हुई है |

सन्दर्भ :-

(1) अमित भादुड़ी : उदारीकरण
(2) भारतीय अर्थव्यवस्था नई दिल्ली
(3) राजकमल प्रकाशन : अर्थव्यवस्था
(4) द इकोनॉमिक्स टाइम्स

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

सचेतन कहानी : एक समीक्षात्मक विवेचन

डाँ. शिल्पी कुमारी
पूर्ववर्ती शोध छात्रा
स्नाकोत्तर हिन्दी विभाग
वीर कुँअर सिंह विश्व विधालय आरा(बिहार)

अकहानी का दौर अभी समाप्त भी नही हुआ था न ही सातवाँ दशक का दौर समाप्त हुआ था इसी बीच सचेतन कहानी की चर्चा होने लगी। नयी कहानी की प्रतिक्रिया स्वरुप अकहानी प्रारम्भ हुई और सचेतन कहानी की शुरुआत दोनो नयी कहानी एवं अकहानी की प्रतिक्रिया के रुप मे हुई। डाँ. महीष सिंह के 'आधार' पत्रिका के 'सचेतन कहानी विशेषांक' से सचेतन कहानी आन्दोलन का आरम्भ माना जाता है। जिसके माध्यम से युवा पीढ़ी ने अकहानी को समय से कटी हुई कहानी घोषित कर दिया। 'सचेतन' नामकरण का श्रेय डाँ. महीष सिंह को दिया। 'आधार' पत्रिका के सचेतन कहानी विशेषांक (नवंबर,1964) के एक आलेख में डाँ. महीष सिंह ने लिखा है कि- "सचेतना एक दृष्टि है, जिसमें जीवन जीया भी जाता है और जाना भी जाता है। अपने संक्रान्ति काल में हमें चाहे जीवन अच्छा लगे या बुरा लगे चाहे उसे घूँट-घूँट पीकर हमें तृप्ति प्राप्त हो, चाहे नीम के रस की तरह हमें उसे आँख मूंदकर निगलना पड़े, परन्तु जीवन से हमारी सम्पृक्ति छूटती नहीं। कड़वे घूंटो से घबराकर जीवन से भाग खड़े होने वाले की कथा व्यक्तिक रुप से मानव-इतिहास मे अनेक बार दुहराई गई है और हर बार किसी न किसी प्रकार का दार्शनिक बौध्दिक आधार देकर उसके औचित्य की स्थापना का प्रयास किया गया है। परन्तु मनुष्य की प्रकृति जीवन से भागने की नही रही है। जीवन की ओर भागना ही उसकी नियति है।"

उक्त कथन से यह स्पष्ट होता है कि इस आंदोलन ने जावन के प्रति सचेतन दृष्टि अपनाने पर बल दिया था सचेतन कहानी ने कहानी में पश्चिम आयातित आधुनिकता और उनके मूल्यों का विरोध किया था। 'अकहानी में निहित निराशा, कुण्ठा, ऊब, अकेलापन और अनास्था पलायन, परायापन, मृत्यु का भय आदि व्यक्तिक प्रवृतियों के प्रतिकार को कहानी का लक्ष्य

माना गया था। महीष सिंह सचेतन कहानी को नई कहानी की आत्मापरकता से दूर रखना चाहते थे।'

'सचेतन' कहानी ने भारतीय परिवेश में प्रवाहमान जीवन मूल्यों को कहानी में उतारने का प्रयास किया था। महीष सिंह, काल जोशी, मनहर चौहान आदि कहानीकार इस आन्दोलन से जुड़े थे।

देवेन्द्र इस्सर ने इसे नयी कहानी की कोख से उत्पन्न माना है-"नई कहानी जिस ऐतिहासिक मोड़ पर उभरी उसमें प्रगतिवाद से असंतुष्टि और भ्रांति भंग की तीव्र प्रतिक्रिया थी। समस्त मूल्यों का भ्रम खुल चुका था और ऐसा कोई आदर्श या कारण नहीं था जिसके लिए संघर्ष किया जा सके।" (हिन्दी-कहानी : दो दशक कीयान्ताक पृष्ठ 222)

'सचेतन' कहानी व्यक्ति को संघर्ष से पलीयनवादी न बनाकर जागरुक बनाती है, वह मनुष्य को सर्वांग और सम्पूर्ण रुप मे देखना चाहा, उसके अचेतन और अवचेतन अस्तित्व से लेकर उसके सचेतन रुप तक को दर्शाया है।

सचेतन कहानी ने पहली बार रुपवाद, व्यक्तिवाद, मृत्युवाद, अनास्थावाद अस्पष्ट रहस्यवाद तथा नियतिवाद के विरुध्द मोर्चा लिया और हिन्दी कहानी को इस सब भँवडाम्बरो से दूर रखने की कोशिश किया।

सन् 1960 के बाद की कहानी एक विशेष प्रकार की संवेदना की अभिव्यक्ति का माध्यम बनकर रह गई जिसमे जीवन की घुटन और ऊब को बार-बार दुहराया जाने लगा। यौन-व्यापार प्रधान विषय बन गया। कहानी वापस वही पहुँच गयी। उस समय के कहानियो पर फाँयड का प्रभाव था। औरत को सेम्स खिलौने का दर्जा दिया जाने लगा। किसी भी बदलाव के पिछे एक ही कारण होते है। लेकिन यह भी एक कारण था जिससे सचेतन कहानी के बीज अंकुरित हुए। उन सबको देखते हुए सचेतन कहानी ने मनुष्य के सम्पूर्ण अस्तित्व को स्थापित करते हुए जीवन को यथा स्थिति मे स्वीकारने का स्वर बुलंद किया। इसी लिए इस कहानी के अंतर्गत महत तनाव का चित्रण नही अपितु संघर्ष का चित्रण मिलता है। 'आधार' के 'सचेतन विशेषांक' के लेखक राजीव सक्सेना ने लिखा था कि – "सचेतन शब्द से यथार्थ के प्रति, परिवेश के प्रति और जीवन के प्रति एक विशेष दृष्टि का बोध होता है। मनुष्य की चेतनता और सक्रियता का बोध

होता है। दूसरे शब्दो में सचेतन कहानीकार मनुष्य को सर्वांग और सम्पूर्ण रुप में देखना चाहता है।"

डाँ. इन्द्रनाथ मादन के अनुसार- "जो कुछ दिखाई पड़ रहा है, उसे दिखाना ही लेखक का कार्य नहीं है। जो कुछ अनदेखा रह जाता है। उसे पकड़ना और संप्रेषित करना किसी भी लेखक का परिवेशन और विचारगत जागरुकता को प्रमाणित करता है और इससे स्थितियों तथा व्यक्तियो के भीतर पीड़ा और विसंगति और विडंबना का सही उदघाटन हो पाता है।"

डाँ. रामदरश मिश्र के अनुसार- "सचेतना का अर्थ यही है कि लेखक व्यक्ति और उसके परिवेश की समस्त विसंगति, तनाव और जटिलता को पहचानता हुआ, भोगता हुआ उसे एक अर्थ देना चाहता है। "

"तनाव को भोगना और उसमे सक्रिय होकर जीवन मुझे आधुनिक युग की दृष्टि लगती है। मै उसे सचेतन दृष्टि कहता हूँ।" (सचेतन कहानी, महीष सिंह, उद्दत हिन्दी कहानी और परख, पृष्ठ : 92)

डाँ. देवेश ठाकुर की मान्यता है कि- " कथा आन्दोलनों मे सबसे सशक्त और योजनाबध्द रुप सचेतन कहानी आन्दोलन कहानी का रहा है जो स्पष्टतः नयी कहानी की स्पर्दा मे सामान्यतः उन कथाकारो द्वारा चलाया गया जिनके नाम नयी कहानी के पुरस्क्रताओ ओर सहयोगियों में छूट गये या छोड़ दिये गये है।" (हिन्दी-कहानी का विकास,पृष्ठ-115)

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट होता है 'सचेतन' यानि कि सक्रिय और सचेत। सर्तक हो अपने भोगे हुए तनाव या अनुभव को कहानी के माध्यम से व्यक्त किया गया हो उक्त विवेचनो से यही स्पष्ट होता है।

सचेतन कहानी के कहानीकार हिन्दी को प्रगतिशील परम्परा से एक दूरी बनाये रखना चाहते थे। ये अपने सिध्दान्तो में जिस कहानी का आदर्श सामने रख रहे थे वे प्रेमचन्द जैसे कहानीकारों के करीब बैठते थे। मगर महीप सिंह प्रगतिशील परम्परा से एक खास दूरी बनाये रखना चाहते थे। डाँ. महीप सिंह ने 'सचेतना' नाम से एक त्रैमासिक पत्रिका का सम्पादन प्रारंभ किया। यह पत्रिका सचेतन कहानी आंदोलन का प्रमुख मंच बनी।

<u>सचेतन कहानी की प्रमुख प्रवृत्तियाँ</u> :-

1. इसमे जीवन का संघर्ष है न कि पलायन। यह मानव जीवन को जोड़कर चलती है।
2. यह एक विचार प्रधान आंदोलन है।
3. सचेतन कहानी आत्मसजगता व सक्रियता को दर्शाती है। यह समाज व व्यक्ति की टूटती आस्थाओ के बीच नये मूल्यों के निर्माण का स्वर मुखरित करती है।
4. कथ्य के आधार पर सचेतन कहानी का कलंक बहुयायी है।
5. सचेतन कहानी शिल्प के स्तर पर भी सहजता को प्रश्रय देती है।
6. यह भारतीय परिवेश और जीवन से सम्बध्द है।
7. सचेतन कहानी पाश्चात्य है। संस्कृति मे कथा धारा का विरोध करती है।
8. इसमे यथार्थ की पदक की सहजता है।

<u>सचेतन कहानी की प्रमुख कहानियां तथा उनके कहानीकार</u> :-

सचेतन कहानी के कहानीकार अपनी कहानियो मे यथार्थवादी दृष्टि और सक्रिय जीवन बोध को दिखाया है। 'सचेतन' का अर्थ यही है कि लेखक व्यक्ति और उसके परिवेश की समस्त विसंगति, तनाव तथा जटिलता को पहचानता हुआ, भोगता हुआ उसे चित्रित करते समय एक अर्थ देना चाहता है। यह भारतीय जीवन मे मूल्यो के विघटन को नगरीय तथा महानगरीय परिवेश मे देखती है। मनोहर चौहान की कहानी 'बीस सुबहों के बाद', महीप सिंह की 'धुंध वो कोहरे' तथा सुरेन्द्र अरोड़ा की कहानी 'बर्फ' मे महानगरीय जीवन मे मित्रो, पिता-पुत्र तथा माँ-बेटे के संबंधों मे आये बदलाव को चित्रित किया गया है। स्त्री-पुरुष के काम-सम्बन्धो पर आचारित कहानियाँ 'अकहानी' में लिखी गयी है किन्तु यहाँ अकहानी वाला दृष्टिकोण नहीं है 'सचेतन' कहानी मे काम-संबंधो में दन्द उत्पन्न करने वाली असंगत स्थितियो का रेखांकन है। 'कील' (महीप सिंह), लौ पर रखी हुई हवेली (रामकुमार भ्रमर), 'और भी कुछ' (महीप सिंह) 'जड़ता' (कुलदीप बंग्गा) आदि सचेतन कहानियां है, कथ्य के आधार पर बहुस्तरीय फलक सचेतन कहानी में है इसमे सभी प्रकार की समस्याओ तथा सामाजिक जीवन की विविध विसंगतियो का चित्रण हुआ है। सुखवीर की कहानी 'दीवारे' तथा 'उड़नेवाला घोड़ा' शिक्षा जगत की विसंगतियो को सहज ढंग से उभारने वाली कहानियाँ है। इसी तरह योगेश गुप्त का 'सीट'

एक प्रतीकात्मक कहानी है। 'एक खुला आकाश' संजीव की प्रतिनिधि सचेतन कहानी है तथा वेद राही की 'दरार' मे कुछ प्रसंग का अंकन हुआ है।

निष्कर्षता कहा जा सकता है कि सचेतन कहानी जीवन की स्वीकृति की कहानी है इसमे जीवन के व्यर्थता बोध का सहज निराकरण किया गया है। यह मनुष्य की आस्था और संघर्ष की कहानी हैष इसके पात्र जीवन से नही बल्कि जीवन की ओर भागते है।

<u>संदर्भ-स्त्रोत</u>

1. 'आधार' (सचेतन कहानी विशेषांक, नवम्बर 1964)
2. हिन्दी कहानी के दो दशक- पृष्ठ-222
3. हिन्दी कहानी के सौ वर्ष- डाँ. दीनानाथ सिंह
4. हिन्दी कहानी का विकास- डाँ. देवेश ठाकुर (1973)
5. सनठोन्तरी हिन्दी कथा साहित्य : एक विवेचन
6. 'स्वातन्त्रोत्तर' हिन्दी कहानी का विकास- डाँ. सूबेदार राय(1981ई.)
7. 'सचेतन' (त्रैमासिक पत्रिका) सम्पादन डाँ. महीप सिंह

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

संविनय अवज्ञा आन्दोलन

डा0 बिरेन्द्र कुमार

एम0 ए0, इतिहास,
मगध विश्वविद्यालय, बोध गया

यद्यपि सविनय अवज्ञा आन्दोलन की विधिवत घोषणा महात्मा गांधी के द्वारा 12 मार्च, 1930 ई. को की गयी किन्तु ऐसे किसी आन्दोलन की पृष्ठभूमि कुछ समय पूर्व से ही, विभिन्न कारणोवश भारत में तैयार हो रही थी। 1922 ई. में महात्मा गांधी द्वारा असहयोग आन्दोलन को अचानक बन्द कर देने से भारतीयों ने उनका सम्मान करने के कारण आन्दोलन बन्द कर दिया था, किन्तु उनकी मांगें पूर्ण न होने के करण उनके हृदय में अग्नि न बुझ सकी थी। असयोग आन्दोलन के बाद से 1930 ई. तक स्थिति और भी गम्भीर हो गयी तथा भारतीयों में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध रोष बढ़ता चला जा रहा था। यही कारण थ कि पहले जहां कांग्रेस अधिराज्य (होमिनियन स्टेटस) प्राप्त कर लेने की मांग से ही सन्तुष्ट थी वही अब पूर्ण स्वराज्य की अपेक्षा कर रही थी। 1929 ईं. की लाहौर कांग्रेस में जवाहरलाल नेहरू ने कहा, ''आज हमारा सिर्फ एक लक्ष्य है स्वाधीनता का लक्ष्य। हमारे लिए स्वाधीनता है पूर्ण स्वतन्त्रता।'' सरकार की नीतियों ने देश की आर्थिक एवं राजनीतिक स्थिति को क्षीण कर दिया था। इसी समय उत्पन्न विश्वव्यापी आर्थिक संकट ने भारतीय किसानों व उद्यमियों की स्थिति और खराब कर दी, किन्तु अंग्रेजी सरकार ने अपनी शोषण की नीति में कोई परिवर्तन न किया। यही नहीं, आर्थिक मन्दी के इस कठिन दौर में इंग्लैण्ड की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए उन्होंने उपनिवेशों पर और अधिक बोझ डाला, जिससे जनता के कष्टों में और अधिक वृद्धि हुई व जनता के समझ सत्याग्रह जैसे आन्दोलन के अतिरिक्त और कोई रास्ता इस स्थिति से निबटने का नहीं था। इसका एक प्रत्यक्ष उदाहरण गुजरात में बारदोली के किसानों ने 1928 –1929 ई. में प्रस्तुत कर भारत के लोगों को उत्साहित किया। बारदोली में सरकार द्वारा भूमिकर 25 प्रतिशत बढ़ा देने के विरोध में यह आन्दोलन किया गया था, जिसमें किसानों ने वल्लभभाई पटेल के नेतृत्व में शान्तिपूर्ण सत्याग्रह का आश्रय लिया और सरकार को लगान बढ़ाने के आदेश को वापस लेने पर विवश किया। इस धटना से यह स्पष्ट हो गया कि यदि अपनी मांगों के लिए संगठित रू‍प से देशव्यापी आन्दोलन किया जाए तो सरकार को झुकने पर विवश किया जा सकता है। साइमन कमीशन के भारत आगमन वे नेहरू रिपोर्ट को स्वीकार न किए जाने से भारतीयों में असन्तोष व्याप्त था। इसी समय भारत में रूसी क्रान्ति से प्रभावित होकर अनेक समाजवादी व साम्यवादी शक्तियों का विकास हो रहा था जिनको कुचलने के सरकार द्वारा प्रयत्न किए जा रहे थे। भारत में अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन की भी स्थापना हो चुकी थी। अतः आर्थिक शोषण के विरुद्ध असन्तोष की भावनाएं इन संगठनों के प्रयत्नों से और भी तीव्र होती जा रही थीं। इसके पश्चात् भी ब्रिटिश शासकों के रुख में परिवर्तन नहीं हुआ था। वे शासन में भारतीयों का सहयोग स्वीकार करने को तैयार न थे। सीतारमैय्या ने ब्रिटिश नीति के विषय में लिखा है, ''यह पूर्णतया स्पष्ट था कि भारत को न तो

आत्मनिर्णय करने की, न संयुक्त रूप से निर्णय करने की, अपितु दूसरों के निर्णय करने की, अपितु दूसरों के निर्णय पर निर्भर रहने की, आशा करनी चाहिए।'' ऐसी स्थिति में भारतीयों में व्याप्त असन्तोष उत्पन्न होना स्वाभाविक ही था, अतः अब और ब्रिटिश प्रशासन को सहना भारतीयों के लिए असम्भव हो गया था तथा यह भावना प्रबल होने लगी थी कि ''ब्रिटिश शासन को अब और स्वीकार करना मनुष्य और ईश्वर दोनों के प्रति पाप करना है। यदि हमने स्वेच्छापूर्वक सरकार के साथ सहयोग करना और कर देना बन्द कर दिया और उकसाए जाने पर भी हिंसा का सहारा नहीं लिया तो वह अमानवीय शासन निश्चित रूप से समाप्त हो जाएगा।''

इन परिस्थितियों में महात्मा गांधी ने 30 जनवरी, 1930 ई. के 'यंग इण्डिया' में एक लेख के द्वारा सरकार के समक्ष कुछ मांगें रखीं तथा यह भी स्पष्ट किया कि यदि सरकार इन्हें स्वीकार कर लेगी तो सत्याग्रह नहीं किया जाएगा। ये मांगें निम्नलिखित थीं–

1. रुपए विनियम दर घटाकर 1 शिलिंग 4 पैंस की जाए।
2. ल्गान 50 प्रतिशत कम की जाए।
3. सविल सर्विस के कर्मचारियों का वेतन आधा किया जाए।
4. पूर्ण नशाबन्दी लागू की जाए।
5. भारतीयों को बन्दूकें रखने का लाइसेंस प्रदान किया जाए।
6. नमक पर से कर समाप्त किया जाए।
7. अहिंसात्मक ढंग से कार्य करने वाले राजनीतिक बन्दियों को छोड़ दिया जाए।
8. गुप्तचर विभाग बन्द कर दिया जाए अथवा उस पर सार्वजनिक नियन्त्रण स्थापित हो।
9. तटीय यातायात रक्षक विधेयक पारित किया जाए।
10. सैनिक व्यय में कम से कम 50 प्रतिशत की कटौती की जाए।
11. रक्षात्मक शुल्क लगाए जाएं और आयातित कपड़ो के आयात में कमी की जाए।

गांधीजी के इस लेख ने भारतीय राष्ट्रय कांग्रेस के नेताओं को हतप्रभ कर दिया, क्योंकि इनमें से अधिकांश मांगें आर्थिक थी तथा कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में लिए गए 'पूर्ण स्वराज्य' का कहीं नाम तक न था। गांधीजी ने सरकार को यहां तक आश्वासन दे दिया था कि यदि ये मांगे स्वीकार कर ली गयी तो आन्दोलन नहीं किया जाएगा। अतः कांग्रेस के नेताओं द्वारा गांधीजी की कटु आलोचना की गयी। सरकार ने गांधीजी की उपरोक्त मांगें की ओर कोई स्थान नहीं दिया। इसके साथ ही सरकार ने कांग्रेस के प्रमुख नेताओं की बन्दी बनाना प्रारम्भ कर दिया। इसी समय सरकार की आर्थिक नीतियों के विरोध में केन्द्रीय तथा प्रान्तीय व्यवसथापिकाओं के 172 सदस्यों ने त्याग–पत्र दे दिया।

आन्दोलन का प्रारम्भ होना

सरकार द्वारा मांगें स्वीकार न किए जाने पर गांधीजी के समक्ष यह समस्या उत्पन्न हुइ कि आन्दोलन किस प्रकार प्रारम्भ किया जाए व भविष्य में उसकी रूपरेखा क्या हो, क्योंकि ऐसी स्थिति में आन्दोलन का प्रारम्भ ऐसे कार्य से होना आवश्यक था जिससे आन्दोलन लोकप्रिय हो व जनसमूह को उसमें भाग लेने हेतु आकर्षिक कर सके। अतः गांधीजी ने इस आन्दोलन का शुभारम्भ 'नमक कानून' को तोड़कर करने का निर्णय लिया क्योंकि इस कानून से समाज के प्रत्येक वर्ग व विशेषकर गरीब वर्ग अधिक प्रभावित होता था। गांधीजी का यह निर्णय अत्यन्त प्रभावशाली हुआ क्योंकि यदि वे पूर्ण स्वराज्य की मांग को लेकर आन्दोलन प्रारम्भ करते तो सम्भवतः उतना समर्थन उन्हें न मिलता, किन्तु रोज काम आने वाली वस्तु पर कर का विरोध

करने से वे जन साधारण को इस आन्दोलन में सम्मिलित करने में सफल हुए। गांधीजी ने यह भी धोषणा की, कि पैदल यात्रा करके समुद्र तट पहुंचेंगे व नमक कानून का उल्लंधन करेंगे। किन्तु आन्दोंलन प्रारम्भ करने से पूर्व 2 मार्च, 1920 ई. को उन्होंने पुनः वायसराय को पत्र लिखा, जिसमें अपनी मांगें स्वीकार करने के लिए अनुरोध करने के साथ ही उन्होंने अंग्रेजी शासन को भारत के लिए अभिशाप बताया। गांधीजी ने वायसराय को लिखा कि किस प्रकार सरकारी नीतियां भारत का राजनीतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक शोषण कर रही हैं तथा भारत के इन कष्टों का निवारण तभी सम्भव है जबकि उन्हें स्वराज्य प्राप्त हो। सरकार क्योंकि इस दिशा में कोई कदम उठाने के लिए तैयार नहीं है, अतः भारतीयों को विवश होकर सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ करना पड़ रहा है। गांधीजी ने वायसराय को यह भी लिखा कि यदि उनकी मांगें को 11 मार्च 1930 ई. तक स्वीकार न किया गया तो वे 12 मार्च को नमक कानून का उल्लंधन करके सविनय अवज्ञा आन्दोलन कर देंगे। इसके साथ ही गांधीजी ने सत्याग्रहियों को भी पूर्णतः अहिंसात्मक प्रदर्शन करने की शपथ लेने को कहा।

जैसा कि अपेक्षा थी, वायसराय ने गांधीजी की शर्तों को स्वीकार करने से मना कर दिया तथा कहा कि उसे खेद है कि गांधीजी ऐसे मार्ग पर जा रहे हैं जिससे कानून का उल्लंधन होता है तथा जन शान्ति खतरे में पड़ सकती है। गांधीजी ने इसका उत्तर देते हुए कहा, ''मैंने घुटने टेक कर रोटी मांगी, परन्तु मुझे रोटी के बजाए पत्थर मिला।'' उन्होंने पुनः कहा, 'भारत एक विशाल कारागार है। मैं इस कानून को नहीं मानता देश में डण्डे के जोर से शन्ति स्थापित है। मैं इससे उब गया हूँ और इससे मुझे बड़ा दुख होता है। मैं उसको भंग करना अपना कर्तव्य समझता हूँ। इस शान्ति से राष्ट्र की सास रुक रही है, क्योंकि उसको निकलने का कोई मार्ग नहीं है।''

डाण्डी यात्रा (Dandi March)– पूर्व–नियोजित कार्यक्रम के अनुसार 12 मार्च, 1930 ई. को प्रातः 6 बजकर 30 मिनट पर साबरमती आश्रम से गांधीजी ने अपने 78 अनुयायियों के साथ 241 मील दूर डाण्डी नामक स्थान के लिए पद यात्रा प्रारम्भ की। ताराचन्द ने लिखा है कि यह एक ऐसा प्रयास था जो मानव इतिहास में बेजोड़ था। राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास का यह अनूठा पहलू था। रास्ते में जन समूह द्वारा गांधीजी का अद्भूत स्वागत किया गया। रास्ते पर पानी का छिड़काव किया गया तथा ''गांधीजी की जय' के नारों का उद्घोष किया गया। रास्तें में गांधीजी के उपदेशों से प्रभावित होकर कितने ही लोग कांग्रेस के सदस्य बन गए व सरकारी कर्मचारी त्याग–पत्र देने लगे। 24 दिनों में यात्रा पूरी करके महात्मा गांधी व उनके सहयोगी 5 अप्रैल को डाण्डी पहुंचे व 6 अप्रैल को प्रातः काल में गांधीजी समुद्र तट पर पहुंचे तो सरोजिनी नायडू ने उनका स्वागत करते हुए कहा, ''विधि भंजक ! (कानून तोड़ने वाले) तुम्हारा स्वागत है।'' गांधीजी ने वहां नमक एकत्र कर नमक कानून को भंग कर दिया और इस प्रकार 6 अप्रैल, 1930 ई. को सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ हो गया। गांधीजी ने 9 अप्रैल को इस आन्दोलन के कार्यक्रम की धोषणा की जिसमें प्रमुख बातें निम्नलिखित थीं –

1. गांव–गांव में नमक कानून तोड़ा जाए।
2. छात्र सरकारी विद्यालयों व कर्मचारी दफ्तर को छोड़ दें।
3. विदेशी वस्त्रों को जलाया जाए।
4. सरकार को कर न दिया जाए।
5. नारियाँ शराब, अफीम व विदेशी वस्त्रों की दुकानों का घिराव करें।

सभी को विश्वास था कि नमक कानून का उल्लंधन करने के आरोप में गांधीजी को गिरफ्तार कर लिया जाएगा, किन्तु तत्कालीन स्थिति को देखकर सरकार को ऐसा करने का साहस न हुआ। शीध्र ही यह आन्दोलन सम्पूर्ण भारत में फैल गया। जगह–जगह नमक कानूनों को तोड़ा गया। मोतीलाल नेहरू ने स्वयं गैर–कानूनी ढंग से निर्मित नमक बेचा। अनेक स्थान पर विदेशी वस्त्रों को जलाया गया व स्त्रियों द्वारा शराब की दुकानों वा धिराव किया गया। मजदूरों व किसानों ने लगान देना बन्द कर दिया व छात्रों ने विद्यालयों व कॉलेजों का बहिष्कार करके आन्दोलन को सशक्त बनाया।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन की लपटें पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त तक भी पहुंची वहां पर खान अब्दुल गफ्फार खां के नेतृत्व में लाल कुर्सी (Red Shirt) नामक संस्था ने, कांग्रेस के नेतृत्व को स्वीकार करते हुए, सरकार के विरुद्ध प्रदर्शन किए। नेताओं की गिरफ्तारी के लिए बख्तरबन्द गाड़ियां भेजी गयीं, जिन्हें जनता ने अग्नि को समर्पित कर दिया, अतः जनता पर पुलिस द्वारा गोलियां चलायी गयीं जिससे सैकड़ों लोग मारे गए। उल्लेखनीय है कि उत्तर–पश्चिम सीमा प्रान्त के पठानों ने अवज्ञा आन्दोलन में ऐसी स्थिति में भाग लिया था जबकि भारत में अन्य मुसलमान इसके सहयोगी न थे।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. " On bended kness, I asked
For bread and received a
stone instead. The only
peace that nation knows
is the peace of the public
prison. India is a vast
prison-house. I repudiate
this British law and
regard it as my sacred
duty to break the
mournful monotony of
compulsory peace that is
chocking the heart for
want of free vent. "

- Gandhi

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

कर्ण के चरित्र का उद्धार मानवता की स्थापना का प्रयास है

डा0 नवीन कुमार

रश्मिरथी के प्रमुख पात्र 'महाभारत' के प्रख्यात पात्र किंतु उनकी चरित्र सृष्टि में कवि ने युगीन चिंतन का समावेश किया है। दिनकर जी ने रश्मिरथी में पौराणिक कथा का आधुनिक परिवेश में प्रस्तुतीकरण किया है।

कर्ण को रश्मिरथी का नायकत्व दिया गया है और उसे ही रश्मिरथी कहा गया है जिसका अर्थ होता है वह व्यक्ति जिसका रथ रश्मि (पुण्य) हो। कर्ण का चरित्र इस काव्य में अत्यंत ही पुष्पमय और प्राज्जवल है। कृष्ण, अर्जुन तथा दुर्योधन आदि के रहते हुए भी कवि ने कर्ण को नायक बनाया है। रश्मिरथी की भूमिका में स्वयं कवि ने लिखा है– ''यह युग दलितों और उपेक्षितों के उद्धार का युगहै। दिनकर का ध्यान उस चरित्र की ओर गया जो हजारों वर्षों से हमारे सामने उपेक्षित और कलंकित मानवता का मूक प्रतीक बनकर खड़ा है। कर्ण चरित्र का उद्धार एक तरह से नई मानवता की स्थापना का ही प्रयास है।

वस्तुतः कर्ण का जन्म बचपन शिक्षा–दीक्षा आदि विवादास्पद और प्रतिकूल ही रहा। सूर्य और कुंती के तेजस्वी पुत्र कर्ण का पालन पोषण परिस्थितिजन्य में जन्म विवशता के कारण सूत वंश में हुआ। वह राधा सुत होकर भी गर्व और स्वाभिमान से भरा है। उसमें क्षत्रियत्व का असीम तेज है। जन्मजात स्वर्णिम कवच–कुंडल से उसका शरीर पूर्णतः सुरक्षित है। द्रोणाचार्य और कृपाचार्य के शिष्यत्व से वंचित होकर भी कर्ण युद्ध कला में पूरी तरह निपुण है। यह उसकी स्व अर्जित योग्यता है। अर्जुन को गुरू द्रोण और कृपाचार्य ने हर तरह से अजेय योद्धा बनाया है। एक तरह से अर्जुन अजातशत्रु की तरह है किन्तु रणभूमि में कर्ण ने अर्जुन को ललकारा।

उसके अद्वितीय तेज के सामने सभी पांडव मालिन पड़ गए। गुरू द्वय घबड़ा गए। अर्जुन की अजेयता संदिग्ध हो गया। तब जाति और गोत्र के बहाने कर्ण को निस्तेज करने का प्रयत्न किया गया।

''क्षत्रिय है वह राजपुत्र है, योही नही लड़ेगा,
जिस–जिससे हाथापाई में कैसे कूद पड़ेगा ?
अर्जुन से लड़ना हो तो मत गहो सभा में मौन नाम–
धाम कुछ कहो बताओ की तुम जाति ही कौन''

कृपाचार्य की साजिश को समझते हुए कर्ण ने जो उत्तर दिया वह उसके वीरोचित व्यक्तित्व के अनुकूल है रूढ़िग्रस्त परम्परा का विखंडन है। नयी शक्ति का अभ्युदय है।

''पूछो मेरी जाति शक्ति होते मेरे भुजबल से
रवि समान दीप्ति ललाट से और कवच
कुडल से पढ़ो उसे जो अलक रहा है मुझमें तेज प्रकाश,
मेरे रोम–रोम में अंकित है मेरा इतिहास''

रणभूमि में कर्ण के तेज और पौरूष से हतप्रभ सभी लोग स्तध्ध हो गए। दुर्योधन ने अंग देश का मुकुट कर्ण के मस्तक पर सजाया, कर्ण के सौभाग्य ने उसे बराबर छला है महातपस्वी शस्त्र और शास्त्र में निपुण, महा प्रतापी परशुराम का शिष्य बनकर उससे अपनी गुरू भक्ति से शस्त्र विद्या में दक्षता प्राप्त की। परंतु जब अपनी जाँघों के कट–दंश को सहते हुए कर्ण ने गुरू भक्ति का अद्वितीय परिचय दिया, वही उसका अभिशाप बन गया। गुरू परशुराम ने कर्ण की सहन शक्ति को क्षत्रिय की शक्ति जाना और शाप देने के दिए तत्पर हो गए।

''सिखलाया ब्रहास्त्र तुझे जो, काम नहीं वह आयेगा,
है यह मेरा शाप समय पर उसे भूल तू जायेगा''

कर्ण के अतुलित बल को कृष्ण भी पहचानते थे। पांडवों के अज्ञातवास से लौटने पर उन्होंने दुर्योधन से सिर्फ पाँच गाँवों की माँग की जिसे उसने अस्वीकार कर दिया और युद्ध के लिए ललकारा।

पाण्डवों के लिए युद्ध आप धर्म बन गया। कृष्ण जानते थे कि कर्ण की सहायता दुर्योधन को मिलेगी और तब कौरवों को परास्त करना पाण्डवों के लिए आसान नहीं होगा। वे कर्ण के पास एक चतुर राजनीतिज्ञ बन कर गए किंतु उनके सारे प्रलोभनों को उसने ठुकरा दिया तथा दुर्योधन की मित्रता को जीवनपर्यंत कायम रखने का संकल्प दुहराया।

कृष्ण ने कहाः–

''कुंती का तू ही तनय ज्येष्ठ बल बुद्धि शील में परम श्रेष्ठ
मस्तक पर मुकुट धरेंगे हम तेरा अभिषेक करेंगें हम''

कर्ण का उत्तर उदात्त व्यक्तित्व का परिचय है। एक सच्चे मित्र की अद्वितीय मिसाल है।

''जिस नर की बाँह गही मैंने जिस तरू की छाँह गही
मैने उस परवार न चलने दूँगा कैसे कुठार चलने दूँगा''

कर्ण की दानशीलता की महिमा सर्वविदित है। पार्थ पिता इन्द्र भी जानते हैं कि जब तक कर्ण के पास कवच कुंडल है, उसे जीत पाना असंभव है। इन्द्र छल से उससे कवच कुंडल ले लेते हैं। अपनी दानशीलता पर कर्ण अपना संकल्प दुहाराता है।

''मेघ भले लौटे उदास हो किसी रोज सागर से
याचक फिर सकते निराश पर, नहीं कर्ण के घर से''

उसके सामने इन्द्र भी नतमस्तक हो गए। कवच कुंडल उन्हें भले ही मिल गया किंतु वे आत्मग्लानि से भर गए। और दानी कर्ण का गुणगान करते हुए स्वयं आभाचित एक बार ही प्रयोग करने वाला अमोघ अस्त्र देकर चले गए। इन्द्र अर्जुन की जीत पक्की कर दिए। कर्ण ने कुंती को भी भर्त्सना करते हुए यह कहकर आश्वस्त करता है कि कुंती हर स्थिति में पाँच पुत्रों को माता बनी रहेगी। द्वंद्व युद्ध में भी अर्जुन को कर्ण पछाड़ता रहा। मगर कृष्ण की चतुराई से वह वीरगति को प्राप्त हुआ।

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

Women empowerment challenges
(with special reference to minorities)

Dr. Md Javed Khan

(Ph.D., M.A.), T.M.B.U, Bhagalpur, Bihar

Abstract

The great Indian history, Women play very huge performance in many sectors but on the other side, it imitation added challenges faced by women in many sectors like education, business and politics in comparison to their male equal. As far as women's social status is concerned, they are not regards as equal to men in all the circle. Women constitute almost 49% of the India's population, but they conclude it resting on an sensitive ground. With dynamics sketched the grant of women in progress and other economic activities is said to be on the rise but development activities have benefited only a diminutive segment of the women. The advancement of handful women at a glance showcases the peek of women empowerment. On the negative immense women of the society are still deprived of access to fundamental rights, which put down them in the woeful situation and also undermine her real power. World tenting depicts that more than 70% women are under the poverty line, around 80% of the world's refugees are women and world's two third women are illiterate. Domestic violence, female feticide, rape, molestation & eve teasing, unequal wages and gender inequality are the global reality, which burden women empowerment. To deal with the issue of women empowerment, women have to unite in order to be heard in the formation and strict administration of laws and public policies with the purpose to assure their economic empowerment and gender consistent.

Keywords: Women empowerment challenges agents the social and economical evils.

Introduction:-At old human society is habitually identify by social separation. Gender based separation is one. Men had the role of work out sides from home and women had the role of reproduction of inheritor and home making. A historical understanding of status of women in early Indian society shows a ,deny trend in the position of women. The historical analysis of the position of women in ancient India shows that women did not share an equal position with men. Women were recognised only as partner and mothers. Their position was as helper to men. The Indian patriarchal[1] society that

dominates the social, political and economic life of people in the country has never encouraged its women in any field, except kitchen or religious work at indoor.

Hinduism in Gita[2] says about women

Adharmābhibhavātkṛṣṇa

Praduṣyantikula-striyaḥ

Strīṣuduṣṭāsuvārṣṇeya

Jāyatevarṇa-saṅkaraḥ[3]

(When irreligion is prominent in the family, O Kṛṣṇa, the women of the family become polluted, and from the degradation of womanhood, O descendant of Vṛṣṇi, comes unwanted progeny.)

Māṁ hi pārthavyapāśritya[4]

Ye 'pi syuḥpāpa-yonayaḥ

Striyovaiśyāstathāśūdrās

Te 'pi yāntiparāṁgatim

(O son of Pṛthā, those who take shelter in Me, though they be of lower birth – women, vaiśyas [merchants] and śūdras [workers] – can attain the supreme destinations)

Mṛtyuḥsarva-haraścāham[5]

Udbhavaś ca bhaviṣyatām

Kīrtiḥśrīrvāk ca nārīṇāṁ

Smṛtirmedhādhṛtiḥkṣamā

(I am all-devouring death, and I am the generating principle of all that is yet to be. Among women I am fame, fortune, fine speech, memory, intelligence, steadfastness and patience.)

Krishna[6] says that women are not an obstacle on the path to God but they can be a distraction and a distraction can become an obstacle if you don't take action. Women have a lot of wonderful qualities such as purity, power, joy, faith, glory and compassion. They are the manifestations of these qualities.

Once Vivekananda[7] said "if you give me 50 women I could change the world but you could give me 5000 men I don't think I could."

In Islam the status of women is by Quran[8] "O Mankind! Reverence your Guardian-Lord,Who created you from a single person, created of like nature. His mate, from them scattered countless men and women. Fear Allah, through whom you demand your Mutual rights and reverence the wombs (that bore you), for Allah ever watches over you.[9]

"Never will I waste the work of a worker among you, whether male or female, the one of you being from the other.[10]

(Thus, in the Islamic tradition, a woman has an independent identity. She is a responsible being in her own right and carries the burden of her moral and spiritual obligations.)

In Bible :- The LORD God said, "It is not good for the man to be alone. I will make a helper suitable for him." (NIV, Genesis 2:18) However, being a "helper" does not imply that the woman was inferior or subservient to the man; the same Hebrew word, `ezer, translated as "helper," is used to describe God, Himself, in Psalms 33:20, 70:5, 115:9-11. In fact, God created both men and women in His own image and made them equal custodians of all His creation:[11]

All about upper some explanation we can say it very gentle women's status is good according to religious book . The why we asked or read and watching too many problems about women one side we worship women and other side take her rights very proudly. Now a days women violence is worldwide issue UNO alomany step taken in this field.

It is estimated that 35 per cent of women worldwide have experienced either physical and/or sexual intimate partner violence or sexual violence by a non-partner (not including sexual harassment) at some point in their lives. However, some national studies show that up to 70 per cent of women have experienced physical and/or sexual violence from an intimate partner in their lifetime. Evidence shows that women who have experienced physical or sexual intimate partner violence report higher rates of depression, having an abortion and acquiring HIV, compared to women who have not.[12] It is estimated that of the 87,000 women who were intentionally killed in 2017 globally, more than half (50,000- 58 per cent) were killed by intimate partners or family members, meaning that 137 women across the world are killed by a member of their own family every day. More than a third (30,000) of the women intentionally killed in 2017 were killed by their current or former intimate partner.[13] At least 144 countries have passed laws on domestic violence, and 154 have laws on sexual harassment. However, even when laws exist, this does not mean they are always compliant with international standards and recommendations or implemented .[14] In a survey of 3,706 primary schoolchildren from Uganda, 24 per cent of 11 to 14-year-old girls with disabilities reported sexual violence at school, compared to 12 per cent of non-disabled girls.[15]

Uttar Pradesh has been ranked as the worst state for women's security and Madhya Pradesh as the state where rape is most rampant. According to the statistics, while UP registered 59,445 cases of crime against women, Madhya Pradesh registered 5,450 rapes, the maximum in 2018. In all, 3,78,277 cases of crimes against women were reported across the country in 2018.[16] After that reading data of violence against women government plans are only shows on paper work which is below .

Women Empowerment Schemes[17]

1. *Beti Bachao Beti Padhao Scheme*
2. *One Stop Centre Scheme*
3. *Women Helpline Scheme*
4. *UJJAWALA : A Comprehensive Scheme for Prevention of trafficking and Rescue, Rehabilitation and Re-integration of Victims of Trafficking and Commercial Sexual Exploitation*
5. *Working Women Hostel*
6. *Ministry approves new projects under Ujjawala Scheme and continues existing projects*
7. *SWADHAR Greh (A Scheme for Women in Difficult Circumstances)*
8. *Support to Training and Employment Programme for Women (STEP)*
9. *NARI SHAKTI PURASKAR*
10. *Awardees of Stree Shakti Puruskar, 2014 & Awardees of Nari Shakti Puruskar*
11. *Awardees of Rajya Mahila Samman & Zila Mahila Samman*
12. *Mahila police Volunteers*
13. *Mahila Shakti Kendras (MSK)*
14. *NIRBHAYA*

Conclusion:- Respect the woman we know the"Yatranary astupujyanteramantetatra Devata, yatraitaastunapujyantesarvaastatrafalaahkriyaah" is a famous sloka taken from Manusmruthi which means where Women are honored, divinity blossoms there, and where women are dishonoured, all action no matter how noble remain unfruitful.

Reference :

1. Patriarchy is a social system in which men hold primary power and predominate in roles of political leadership, moral authority, social privilege and control of property. Some patriarchal societies are also patrilineal, meaning that property and title are inherited by the male lineage.
2. The holy book of Hindu.
3. Gita's Vers1.40
4. Gita's Vers 9.32
5. Gita's Vers 10.34
6. Lord of Hinduism
7. Indian thinker , Spiritual and moral motivator.

8. Islamic Holy book
9. "AL-Qur'an" 4:1
10. Al-Qur'an 3:195
11. What Does the Bible Say About Women's Rights?, page 01
12. World Health Organization, Department of Reproductive Health and Research, London School of Hygiene and Tropical Medicine, South African Medical Research Council (2013). Global and regional estimates of violence against women: prevalence and health effects of intimate partner violence and non-partner sexual violence, p.2. For individual country information, see UN Women Global Database on Violence against Women.
13. United Nations Office on Drugs and Crime (2019). Global Study on Homicide 2019, p. 10.
14. World Bank Group (2018). Women, Business and the Law 2018, database.
15. Devries, K., Kyegome, N., Zuurmond, M., Parkes, J., Child, J., Walakira, E. And Naker, D. (2014). Violence against primary school children with disabilities in Uganda: a cross-sectional study, p. 6
16. The Print 10 January, 2020.
17. Ministry of women and child development .

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

विद्यापति की पदावली मे गीतात्मकता के तत्त्व : एक अवलोकन

प्रभा नन्दा
शोध छात्रा, हिन्दी विभाग,
पटना वि0वि0 पटना, यूजीसी नेट

महाकवि विद्यापति के जन सरोकार, जनचेतना, भावनात्मक उत्कर्ष, अनुभूति की सूक्ष्मता का परिचय सही अर्थो में इनकी पदावली ही देती है जो लोक भाषा में लिखी गई हैं। पदावली श्रेष्ठ गीति काव्य है। इनमें भावों की लयात्मक गति के साथ – साथ काव्य और संगीत का अनूठा सामंजस्य है। उनका यह काव्य लोकसंस्कृति से गहरे रूप से जुड़ा हुआ है।

रससिद्ध कवि विद्यापति तुलसी, सूर, कबीर, मीरा सभी से पहले के कवि हैं। हालॉकि अमीर खुसरो इनसे पहले हुए थे। इनका संस्कृत, प्राकृत अपभ्रंश एवं मातृभाषा मैथिली पर समान अधिकार था। विद्यापति की रचनाएँ संस्कृत, अवहट्ठ एवं मैथिली तीनों में मिलती हैं। इनकी संस्कृत रचनाएँ तो इनकी पांडित्य की द्योतक है। बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न इस महाकवि के व्यक्तित्व में एक साथ चिन्तक, शास्त्रकार तथा साहित्य रसिक का अदभुत समन्वय था। संस्कृत में रचित इनकी पुरूष परीक्षा, भु–परिक्रमा, लिखनावली, शैवसर्वश्वसार, प्रमाणभुत पुराण–संग्रह, गंगावाक्यवली, विभाग सार, दानवाक्यावली, दुर्गाभक्तितरंगिणी, गयापतालका एवं वर्षकृत्य आदि ग्रंथ एक और जहाँ इनके गहन पाण्डित्य के साथ इनके युगद्रष्टा एवं युगस्रष्टा स्वरूप के साक्षी है तो दूसरी तरफ कीर्तिलता एवं कीर्तिपताका महाकवि के अवहट्ठ भाषा पर सम्यक ज्ञान के सूचक होने के साथ–साथ ऐतिहासिक, साहित्य एवं भाषा संबंधी महत्त्व रखने वाला आधुनिक आर्य भाषा का अनुपम ग्रंथ है। परन्तु विद्यापति के अक्षय कीर्ति का आधार मैथिली में रचित पदावली है, जिसमें राधा एवं कृष्ण का प्रेम प्रसंग समस्त उत्तर भारत में गेय पद के रूप में प्रकाशित है।

हिन्दी में और खासकर मैथिली में विद्यापति गीतकाव्य परंपरा के प्रणेता के रूप में उभरते हैं। विद्यापति जी जिस समय पदावली की रचना कर रहे थे, उस समय उसका अखिल भारतीय स्वरूप मौजूद था।आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं कि लीला के पद कबसे लिखे जाने लगे, यह निश्चत रूप से नही कहा जा सकता किन्तु दसवीं एवं ग्यारहवीं शताब्दी में मात्रिक छन्दों में श्रीकृष्णलीला के गाने की प्रथा चल पड़ी थी, इसमें कोई संदेह नहीं। जयदेव का गीत गोविन्द इसी प्रकार के मात्रिक छन्दों में लिखा गया था।. . . . जयदेव के बाद उसी प्रकार की पदावली बंगाल के चंडी दास और मिथिला के विद्यापति नामक कवियों ने लिखि । जिस प्रकार के पद बंगाल और उड़िसा में प्रचलित थे उसी प्रकार के पद सुदूर पश्चिम में भी प्रचलित थे। अर्थात पूरब से पश्चिम तक संपूर्ण भारत में ऐसे पद व्याप्त थे।[1]

पदावली के कारण हीं विद्यापति मैथिल कोकिल कहलाए। उन्होंने जन भाषा मैथिली में काव्य रचना की। विद्यापति जन कवि थे।विद्यापति की पदावली में तीन प्रकार के पद है–

1. राधा– कृष्ण संबंधी पद

2. शिव, विष्णु, गंगा, जानकी, दुर्गा आदि के स्तुतिपरक पद
3. आश्रयदाता राजाओं की स्तुति भरे पद

राधा–कृष्ण संबंधी पदों में श्रृंगार रस की प्रधानता है। यहाँ रीतिकालीन काव्य के सारे लक्षण मिल जाएंगे , यथा रति क्रीड़ा, नखशिख वर्णन, विरह वर्णन आदि। दूसरे भाग में शिव, दुर्गा, विष्णु आदि के स्तुतिपरक गीतों में विद्यापति का भक्ति भाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। तीसरे प्रकार के पदों में विद्यापति ने अपने आश्रयदाताओं की वीरता का गुणगान किया है।

विद्यापति पदावली की भाषा मैथिली है। अपनी भाषा और अपनी रचनाओं के बारे में विद्यापति इतने आश्वस्त थे, उन्हें इतना आत्म–विश्वास था कि प्रारंभिक कृति कीर्तिलता में उन्होंने घोषणा कर दी–'बालचन्द विज्जावइ भासा । दुहु नहि लग्गइ दुज्जन हासा' अर्थात बालचन्द्रमा और विद्यापति की भाषा– दोनों हीं दुर्जनों के उपहास से परे हैं। इसी तरह "महुअर बुज्झइ कुसुम रस, कव्व कलाउ छइल्ल"– अर्थात मधुकर ही कुसुम रस का स्वाद जान सकता है, जैसे काव्य रसिक हीं काव्य कला का मर्म समझ सकता है। विद्यापति की अवहट्ट भाषा अयोगात्मकता में आधुनिक भारतीय भाषा हिन्दी आदि के बहुत निकट आ गई है।[2]

मैथिली विद्यापति की मातृभाषा थी। उस काल के साहित्य या उससे पूर्व भी ज्योतिरीश्वर ठाकुर रचित "वर्णरत्नाकर" के अनुशीलन से पता चलता है कि मैथिली उस समय की पर्याप्त समुन्नत भाषा थी। कीर्तिलता और कीर्तिपताका के बाद महाकवि ने मैथिली में ही लिखा और ये रचनाएं हैं इनकी पदावली। विद्यापति की भाषा भाव–बिंबात्मकता और अलंकार विधान की दृष्टि से भी उत्कृष्ट है। विरह मिलन के पदों में और राधा–कृष्ण के सौंदर्य वर्णन में कवि पूरा बिंब हमारे सामने परोस देता है :

गगल अब घन मेह दारून , सघन दामिनी झलकाई।
कुलिश पातन सबद झनझन, पवन खरतर बलगई।।

पदावली श्रेष्ठ गीतिकाव्य है। इनमे भावों की लयात्मक गति के साथ साथ काव्य और संगीत का अनूठा सामंजस्य है। यही कारण है कि उनके असंख्य गीत लोककंठ में बस गए हैं। उनका यह काव्य लोकजीवन से बहुत गहरे रूप में जुड़ा हुआ है। उनके काव्य में सामान्य जन जीवन की सच्चाई दिखाई पड़ती है। बड़ा कवि अनुकरणीय होता है। उससे उसके युग के कवि प्रभावित होते है। विद्यापति से भी गोविंद दास , हरि दास आदि मैथिली कवि प्रभावित हुए। सूरदास के लीला पदों में भी विद्यापति के गीतों का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। यहाँ तक की निराला के गीतों में भी विद्यापति की गीतात्मकता का प्रभाव देखा जा सकता है।

गीतिकाव्य की कुछ विशेषताएँ होती है। वे हैं– मुक्तकपद, गेयता, भावना की तीव्र अभिव्यक्ति तथा घटना प्रवाह की त्वरा। अर्थात वाद्ययंत्रों के साथ गाया जाने वाला क्षण वध काव्य। लेकिन ध्यान देने कि बात यह है कि एक श्रेष्ठ कलाकार इतिहास ग्रंथ के पाठ को भी वाद्ययंत्र के साथ गा देंगे किन्तु इससे इतिहास ग्रंथ मे संगीतात्मकता का तत्व नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उसमें भावनात्मक अनुभूति का चित्रण भी होना चाहिए और वह भी ऐसी भावनात्मक अनुभूति जिसमे संक्षिप्तता और मानवीय भावनाओं के रंग और गति हों। संक्षिप्तता इसका बड़ा ही आवश्यक बंध है। गीति वाद्यों के साथ गाया जाने वाला महा काव्य गीति काव्य नही कहलाएगा। इन दो शर्तों के साथ शीघ्रता भी बहुत आवश्यक है। अर्थात घटना प्रवाह की त्वरा। गीति काव्य के पूरे छन्द मे संबद्धता अनिवार्य है। अर्थात नई बात कहकर उसे तुरन्त

पूर्वकथित हिस्से से जोड़ देना और इससे रसोद्रेक उत्पन्न कर प्रभाव को उत्कर्ष देना, एक सफल गीतकार का कोशल हीं है।

काव्य की अन्य विधाओं की तरह गीति काव्य चूँकि सचेत बुद्धि व्यापार से उत्पन्न वस्तु नहीं है, इसलिए आदि मानव के अतिपुरातन और आरंभिक भावों के साथ हीं गीति काव्य का जन्म हुआ। हलांकि यह कहना कठिन है कि गीतिकाव्य के आविर्भाव का निश्चत काल क्या है। किन्तु इतना तो सहज अनुमेय है कि संवेगों की तीव्रता और उद्वेलन की सामान्य परिस्थितियों में भावाकुल अभिव्यक्ति ने स्वरों का रूप लिया– ऐसे शब्द और अर्थ तथा उनकी पुनरावृत्ति – यही गीति काव्य है।[3]

गीतकाव्य व्यक्ति के संवेदनशील चित्त मे रूपायित भावनाओं का आवेगमय लयात्मक सहज प्रकाशन है। भावनाओं की तीव्र आत्मअनुभूति गीतकाव्य का प्राण है, और लयात्मक निश्छल अभिव्यक्ति उसका सार्थक रूप। गीत काव्य में कवि के व्यक्ति चित्त और लोकचित्त का एकात्म्य होना जरूरी है।[4] इस आलोक में यदि विद्यापति के गीतों का अनुशीलन किया जाय तो साफ–साफ दिखता है कि यहाँ कवि का जीवनानुभव आम जनता का अनुभव बनकर सामने आया है।

सपने देखल हरि, गेलाहुं पुलकें पुरि
जागल कुसुम सरासन रे।
ताहि अवसर गोरि नीन्द भांगल मोरि,
मनहि मलिन भेल वासन रे।
की सखि पओलह सुतलि जगओलह
सपनेहुं संग छड़ओलह रे।

नारी मन की इस व्यथा को राधा के द्वरा व्यक्त करते हुए महाकवि ने आवेगमय भावनाओं का जिस लयात्मकता के साथ चित्रण किया है उसे सिर्फ महसूस किया जा सकता है।

महाकवि विद्यापति के यहाँ शब्द संगीत, नाद संगीत और भाव संगीत तीनों एकमेक होकर ऐसी त्रिवेणी बहा रहा है, मानो गीतिकाव्य का आनन्दातिरेक यही से शुरू होकर यही खत्म हुआ चाहता है। जब ' सखि हे, हमर दुखक नहिं ओर,' "सखि की पूछसि अनुभव मोहि ", "प्रथम सूमागम भुषल अनंग," "उगना रे मोर कतए गेलाह," "जय–जय भैरवि असुर भयाउनि" , "बड़ सुखसार पाओल तुअ तीरे"[5]. . . . जैसे गीतों के पद पढ़े जाते हैं तो इन्हें गाने की जरूरत नहीं होती , यहाँ संगीत तत्त्व इतना बलवान है कि वह स्वतः फूट पड़ता है।

विद्यापति के गीत लोक गीत के रूप में प्रचलित है। इनके यहाँ राग–विराग, दुख–सूख, हर्ष–विशाद , संयोग–वियोग क्रोध–स्नेह, रंग और पानी की तरह घुलामिला है। इसी के आगमन के लिए काक–शकुन की प्राचिन परंपरा मिथिला में है। महाकवि विद्यापति जब विरह व्याकुल नायिका द्वारा कौआ की खुशामद करने वाले गीत में इस लोक प्रचलित सत्य को व्यक्त करते हैं तो वह एक परिष्कृत रूप के साथ सामने आता है। आज भी इस पद की पंक्ति किसी प्रतीक्षा करती नायिका के मुँह से निकल जाति है–

मोरा रे अंगनवां चनन केरि गछिया
ताहि चढ़ि कुररय काग रे
सोने चोंच बोधि देब तोयं वायस
जओ पिया आवत आज रे।

विद्यापति ने गीतिकाव्य के रूप में पदावली की रचना मुक्तक शैली में सफलतापूर्वक की। इसमें आए भाव अपने आप में पूर्ण और स्वतंत्र हैं। गीतिकाव्य में भावनाओं की अभिव्यक्ति की प्रमुखता होती है। विद्यापति पदावली में राधाकृष्ण ने व्यक्तिगत प्रेम का सूक्ष्म अंकन हुआ है। संगीतात्मकता और कोमल कांत पदावली के लिए तो विद्यापति की पदावली प्रसिद्ध है। उनकी कविता में काव्य और संगीत का अदभूत मेल हुआ है। विद्यापति पदावली के गेय तत्व और काव्यत्व इस कदर एक दूसरे में घूलमिल गए हैं कि उन्हें एक–दूसरे से अलग करना मुश्किल होता है। भावों की तीव्र अभिव्यक्ति और संक्षिप्तता विद्यापति के गीतों की विशेषता है। से सब तत्व मिलकर विद्यापति पदावली को एक श्रेष्ठ गीतिकाव्य बनाते हैं।

संदर्भ सूची :

1. विद्यापति साहित्य का आदिकाल – आचार्य हजारी प्र0 द्विवेदी, पृ0 सं0 109
2. वीरेन्द्र श्रीवास्तव–कीर्तिलता, पृ0 – 30
3. डॉ0 शिव प्रसाद सिंह– विद्यापति , पृ0 – 19
4. प्रो 0 मैनेजर पांडेय – भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य , पृ0–281
5. रामवृक्ष बेनीपुरी (सं0) – विद्यापति की पदावली

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

HISTORY AND GROWTH OF DICGE

Dr. Pravir Kumar Singh

Assistant Professor in commerce

A.B.S. College, Lalganj ,Vaishali B.R.A.B.O. Muz.

India banking sector have responsible commitment to brighten the agricultural sector in lending. India growing in population --ends more food production even to meet its own demand. It is critical OW that agricultural sector has been pushed as secondary sector rather -:Zan primary. Author has conceptually presented in this article the need 7-or banking sector to consider improving their lending schemes. The primary objective of the author is to highlight that banks data are not sufficiently supporting the Priority sector lending which in turn is going.

to have big impact on the agricultural sector itself. The factors like branch operations, number of branches in rural areas, financial inclusion and its impact, credit deposit ratio, lending policies, RBI policy, sect oral development and other factors are analyzed with empirical evidence and statistical relevance. Authors are of opinion that agricultural sector needs more attention from union government and also they should watch how their policies are implemented in banks. More researcher should drive their academic and empirical research to show how rural branches at micro level functions. Authors are given their own suggestions and conclusions based on the statistical data collected from different reliable sources.

Key words — Banks, agricultural lending, priority sector lending, financial inclusion "One of the reforms to be carried out during the incoming administration is a change monetary and banking laws, so as to secure greater elasticity in the forms of currency available for trade and to prevent the limitations of law from operating to increase the embarrassment of a financial panic (William Howard Taft (185- 1930),U.S. President)".

Introduction

Banks are always referred as "backbone" for developing countries, Commercialized banks need to support various sectors to have balanced growth in the economy. It should ensure that economic growth percolates through all sections of masses. But unfortunately, in agricultural sector small and Marginal farmers suffer seriously due to non availability of funds for their occupation. Medium and large scale farmers may get necessary funds through submission of adequate collateral, while small

and marginal farmers deprived of all comforts including capital investment. World Bank report pronounces around 1.1 billion people's in India is poor at rural area (WDR, 2008). One of the major reasons for the poverty is a low accessibility for credits by rural poor. This leads authors to think deeply about the contribution of banks towards the agricultural sector and what role they currently play in the economy. If banks are helping agricultural mass heavily, then the concern about low accessibility and disbursement raises doubts about the performance of financial sectors in India. In this article, author tries to bring the importance of banks in helping and restoring the confidence in the minds of rural farmers by providing more accessibility towards credits and other facilities.

Indian financial system and financial institution

India banking sector has undergone numerous reforms and changes over the past decades to enhance its performance to the international level. The financial independence of the country depends onthe sound financial system operating within the country. India one of the largest country in south Asia, it has varied financial institutions, instruments and financial system. Indian banking system was considered as well developed with the presence of foreign and domestic banks including well developed stock market (Bery, 1996). Below table shows the latest data on Banks, branches until 2008.

Table No. 1
Of Banks in India

Bank Group	As on March 31				
	2004	2005	2006	2007	2008
	(1)	(2)	([3])	(4)	([5])
State Bank of India and its Associates	13836	13983	14261	14611	15512
Nationalized Banks $	34492	35042	35754	37227	38725
Foreign Banks	221	242	259	272	280
Regional Rural Banks	14721	14752	14777	14802	14957
Other Scheduled Commercial Banks	5951	6454	6819	7401	8265
Non-Scheduled Commercial Banks	27	25	28	33	33
Total	**69248**	**70498**	**71898**	**74346**	**77773**

Notes : No. of Offices includes administrative offices.

$ Includes IDBI Bank Ltd.

Source : Data for 2004 to 2007 have been revised and data for 2008 are provisional.

Master Offices File (latest updated version) on commercial banks, Department of Statistics and information Management, RBI.

Table 1 reveals that nationalized banks are in the increasing trend and have extended into different areas. In comparison with previous year, the trend shows generally increasing and positive. Nationalized banks opened more branches while others are also seen in the increasing trends.

Below table 2 shows number of branches opened during 2004-08 based on four different division's viz. rural, semi-urban, urban and metro places. RBI statistics claims that most of the branches are inaugurated on rural sides than metro cities. The proportion of bank branches in rural areas exceeds the metro numbers. It seems that number of offices opened in rural areas during 2006/07 was 112 and that of urban seems to be 509 in number and that of metro 344. It is evident, even though number of branches in operation exceeds in rural than urban; of late the concentration of banks were on urban and metro areas.

BOOKS

Baken Henary and Marvin, A. Schavis, Economics of Co-operative Marketing.

Brech, E.F.L., Management: Its Nature and Significance, London, 1967.

Coale. A.J. and Hoover, E.M., Population Growth and Economic Development in Low Income Countries, Princeton, 1988.

Chakrawarty, S.K. The Behaviour of Prices in India 1952-1976 A Empirical Study, Delhi, 1977.

Corey. E. Raymond, Industrial Marketing : Cases and Concepts. New Delhi, 1976.

Choudhari, Parmit, Readings in Indian Agricultural Development, London, 1972. Cohan. R.L. , The Economics of Agriculture, London, 1955. Cahuhan. D.S., Agricultural Economics, Agra, 1953 . Dhillan.. G S.. India's March Towards Accelerated Agricultural and Rural Development, New Delhi, 1987. Dwivedi. R.C. New Strategy of Agricultural Development in India, Meerut, 1987. Darrel B. Lucas and Steurt Henderson Brett, Measuring Advertising Effectiveness, New York, 1963. Dantwala. M.L. (ed.) , Indian Agricultural Development Since Independence, New Delhi, 1986.

Dhillon. G S.. India's March Towards Accelerated Agricultural and Rural Development , key Role of Technology, New Delhi, 1987.

Das, Arvind N.. Agrarian Unrest and socio-Economic change in Bihar (1900-1980). New Delhi, 1983.

Datta, Bhabatosh. Essays in Plan Economics, Calcutta, 1963.

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

भारतीय लोकतंत्र में मतदान का बदलता स्वरूप : एक अवलोकन

डॉ० रवीन्द्र कुमार
अतिथि व्याख्याता,
राजनीति विज्ञान विभाग,
सबौर, कॉलेज, सबौर
ति०मां०भा०, विश्वविद्यालय, भागलपुर

आजादी के बाद भारत में चुनावी प्रक्रिया ने एक लंबा रास्ता तय किया है और स्वतंत्र भारत के महत्वपूर्ण सांस्कृतिक पहलू भी रहे हैं। वैसे भी किसी भी लोकतांत्रिक एवं आधुनिक संविधाकारवादी व्यवस्था में आम चुनाव वहाँ के नागरिकों की राजनीतिक प्रक्रिया में सक्रिय सहभागिता का सूचक है। चुनाव प्रक्रिया को लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं के अस्तित्व निर्माण एवं शासन संचालन की आधारशिला कहा जाता है। जनतांत्रिक व्यवस्थाओं में चुनाव एक ऐसी सशक्त प्रक्रिया एवं साधन है जिसमें भागीदारी करके जनसाधारण अपनी इच्छानुसार पसंदीदा उम्मीदवारों का चयन करते हैं और राजनीतिक सत्ता की जनउत्तरदायी प्रवृत्ति तथा जनसम्प्रभूता की अवधारणा की वजह से एक सीमा तक अपने प्रतिनिधियों पर नियंत्रण भी रखते हैं। इस दृष्टिकोण से हम कह सकते हैं कि चुनाव किसी भी राजनीतिक व्यवस्था में सत्ता का निर्धारित पदों को प्राप्त करने का खुली या बंद प्रतियोगिता है और जिस विधि से जनसाधारण अपनी प्रतिनिधियों को चुनने के लिए अपनी सार्वभौम शक्ति का प्रयोग अथवा प्रदर्शन करता है उस माध्यम को मतदान व्यवहार कहा जाता है उस माध्यम को मतदान व्यवहार कहा जाता है आम मतदाताओं में इन दोनों के प्रति अभिरूचि इत्यादि पर बहुत हद तक मतदान प्रतिशत निर्भर करता है।

भारत में चुनावी इतिहास पर गौर करें तो अभी तक लोकसभा चुनाव सम्पन्न हो चुके हैं और इसके साथ ही विधान सभा का पहला आम चुनाव तो भारतीय लोकतंत्र के अध्याय इतिहास का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अध्याय है और सच पूछा जाए तो यह कई मायनें में आज भी अर्थपूर्ण और प्रासंगिक है तब से प्रत्येक आम चुनाव का महत्व निरंतरता के साथ बरकरार है। हम देखते हैं कि 2004 में भारतीय चुनावों में 670 मिलियन मतदाताओं ने भाग लिया, यह संख्या दूसरे सबसे बड़े यूरोपीय संसदीय चुनावों के दो गुणे अधिक थी और इसका घोषित खर्च 1989 के मुकाबले तीन गुणा बढ़कर 5300 मिलियन हो गया। इन चुनावों में दस लाख से अधिक इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीनों का इस्तेमाल किया गया।[1] 2009 के चुनावों में 714 मिलियन मतदाताओं ने भाग लिया, जो अमेरिका और यूरोपीय संघ की संयुक्त संख्या से भी अधिक है।[2] निर्वाचन आयोग मतदाताओं की विशाल संख्या को देखते हुए चुनावों को कई चरणों में आयोजित किया जाना आवश्यक हो गया। 2004 के आम चुनावों में चार चरण और 2009 के आम चुनावों में पाँच चरण में संपन्न कराए गए। चुनावों की इस प्रक्रिया में चरणबद्ध तरीके से काम किया जाता है और इसमें भारतीय चुनाव आयोग द्वारा चुनावों की तिथि की घोषणा, जिससे राजनैतिक दलों

के बीच "आदर्श आचार संहिता" लागू होती है। चुनाव तिथि से लेकर परिणामों की घोषणा और सफल उम्मीदवारों की सूची राज्य या केंन्द्र के कार्यकारी प्रमुख को सौंपना शामिल होता है। परिणामों की घोषणा के साथ चुनाव प्रक्रिया का समापन होता है और नई सरकार के गठन का मार्ग प्रशस्त होता है। इतने महत्वपूर्ण अभियान में मतदान प्रतिशत कम होना जहाँ चुनाव महाकुंभ के जोश को ठंडा कर देता है। वहीं अधिक मतदान प्रतिशत की अधिकता न सिर्फ चुनावी माहौल में जोश, उत्पन्न करता है, वहीं लोकतंत्र के लिए अत्यंत लाभकारी भी है।

मतदान प्रतिशत से अभिप्राय है कुल मतदाताओं में से मत देने वाले मतदाताओं की संख्या अर्थात अपेन मतों के प्रयोग करने वाले मतदाताओं का प्रतिशत। लोकतंत्र के लिए यदि मतदान प्रतिशत में वृद्धि अच्छी और सकारात्मक बात है तो इसमें गिरावट लोकतंत्र के लिए शुभ संकेत नहीं कहा जा सकता है इसके लिए जहाँ मतदाताओं में अपने कर्तव्यों के प्रति लापरवाह माना जा सकता है तो वहीं दुसरी ओर चुनावी वातावरण और राजनीतिक दलों को भी जिम्मेदार ठहराया जा सकता है।

यदि अपने देश की राजनीतिक पार्टियां पर गौर करें तो इसमें कोई दो राय नहीं कि राजनीतिक पार्टियाँ किसी भी जनतांत्रिक राजनीतिक ढाँचे के आधार पर होती है लेकिन आज वे भारतीय राजनीतिक व्यवस्था की सबसे कमजोर कड़ी बन गई हैं। राजनीतिक पार्टियां और पार्टी प्रणाली में ह्रास हो रहा है और उसमें कई बीमारियाँ पैदा हो गई है। सभी पार्टी के अंदर अस्थिरता, गुटबाजी, टूटे–फूट और बिखराव, लगातार नई पार्टियां को बनते रहना, अकुशल कार्य–प्रणाली, अस्थायी साझा और मोर्चे एवं सरकारों का बनना एवं नेता एवं कार्यकत्ताओं का एक पार्टी को छोड़ दूसरी पार्टी में शामिल होना, और लगातार अपनी वफादारी को बदलते रहना अधिकतर पार्टियों में जनतंत्र एवं बहस की कमी विकास कल्याण और सामाजिक न्याय सरीखे विषयों पर ध्यान देने और जनमत इकट्ठा करने की कमी, कठिन परिस्थितयों मे जी रहे लोगों पर ध्यान न देना और न ही उन्हें हिस्सेदारी दिलाने की कोशिश सिवा चुनावों के वक्त जैसे सवाल शामिल हैं। अधिकतर राजनैतिक पार्टियाँ बिना दुरगामी राजनीतिक कार्यक्रमों, विकास एवं योजनाओं के रूप–रेखा बगैर कार्य करती है। वे दिन व दिन गति विधियों पर जिंदा रहती है। वे कार्यक्रमों एवं नीतियों पर बहस करने के बजाय गौण प्रश्नों और व्यक्तिगत सवालों पर बातें करती हैं। उदाहरण के लिए 1989 में अखिल भारतीय चुनाव कई अर्थहीन प्रश्नों पर लड़े गए जैसे बोफोर्स, हवाला, मंदिर, आरक्षण, देशी वाजपेयी बनाम विदेशी जन्म की सोनिया गांधी इत्यादि।

सत्ता हासिल करने के लिए और सत्ता में बने रहने के लिए पार्टियाँ असीमित प्रचारवाद का सहारा लेती है। वे वोटरों को बेहिसाब मदद देने और सब्सिडी मुफ्त बिजली, सस्ता चावल इत्यादि का वादा करते हैं। कई पार्टियाँ और नेता व्यक्तिगत भुमिका और व्यक्तिगत शासन पर जोर देकर राजनैतिक समस्याओं को ही कमजोर करती है चाहे वो कितने बूढे और बदनाम हो, नेता रिटायर होने से इंकार कर देते हैं। इन सब का परिणाम यह होता है कि राजनैतिक नेतृत्व जनता के बीच अपनी साख खो देती है। इसका सबसे खतरनाक परिणाम यह होता है कि राजनीति के संपूर्ण क्षेत्र का अवमूल्यन होते जाता है। जनता के बीच राजनीतिज्ञों एवं राजनीतिक पार्टियों के प्रति अविश्वास और व्यंगात्मक रूख बढ़ता जाता है। अधिकतर लोग राजनैतिक और सार्वजनिक जीवन को पाखंड तथा भ्रष्टाचार के साथ जोड़ते हैं। सार्वजनिक जीवन में इस प्रकार बदनाम होने के कारण आदर्शवादी युवा राजनीति में शामिल होते ही नहीं हैं जो शामिल भी होते

हैं वे इसे सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में बढ़ने का जरिया मानते हैं। ऐसी स्थिति का असर स्वभाविक रूप से मतदान प्रतिशत पर पड़ता है।

हिंसा विशेष कर नक्सली एवं आतंकवादी हिंसा की आशंका के भ्य से बहुत से मतदाता घर से निकलना मुनासिब नहीं समझते हैं जिसका मतदान प्रतिशत पर प्रभाव पड़ता है। देश के कुछ हिस्से विशेष कर आन्द्र प्रदेश, बिहार, झारखण्ड, छत्तीसगढ़ और उड़ीसा में नक्सलवाद एक विध्वंसात्मक ताकत बनी हुई है। वामपंथी उग्रवादी हिंसा में 1996 में पहली बार वृद्धि हुई है। वर्ष 2001 में 1209 घटनाओं में 564 लोगों की मौत हुई जबकि वर्ष 2005 में 1594 घटनाओं में 516 लोगों की मृत्यु हुई।[3]

नक्सलियों के भय से एवं लोकतंत्र विरोधी फरमान के भय से मतदाता अपने–अपने घरों से बाहर निकलना उचित नहीं समझते। जब पुलिस ही नक्सली इलाके जाने में सशंकित रहते है तो आम मतदाताओं का क्या कहना। इसी तरह पूर्वोत्तर राज्यों एव जम्मू–कश्मीर में विभिन्न आतंकवादी गुटों के धमकियों और कार्यवाहियों का भी चुनाव प्रचार और मतदान प्रतिशत पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

आजादी के बाद से ही, खास कर हाल के दशकों में ऐसे अवांछित लोगों ने राजनीति में अपनी जगह बना ली है जिसका उधेधश्य किसी प्रकार से चुनाव जीतकर अपने स्वार्थों का पूरा करना है। ऐसे लोग चुनाव जितने के लिए हर प्रकार के कानूनी एवं गैर–कानूनी हथकंडे का सहारा लेते हैं। हमारे देश की चुनावी प्रक्रिया में कुछ ऐसे कानूनी प्रावधान भी हैं जो ऐसे लोगों के मनसूबे को पूरा करने में सहायक होते हैं। यहाँ की निर्वाचन प्रणाली में प्रावधान है कि एक व्यक्ति एक से अधिक स्थानों मे चुनाव लड़ सकता है एक साथ। यदि प्रत्याशी एक से अधिक स्थानों से चुनाव जीतता है तो उसे एक स्थान के अलावा अन्य स्थानों पर से त्यागपत्र देना पड़ता है इस स्थिति से प्रत्याशी को लाभ तो मिलता है परंतु यहाँ जनता और देश के लिए अनुपयोगी और बर्बाद छोड़ कर कुछ भी नहीं है।

भारत में साधारण बहुमत की जो निर्वाचन पद्धति अपनायी गई है, उसके अतिरिक्त अंतर्गत निर्वाचन क्षेत्र में वह उम्मीदवार निर्वाचित घोषित होता है जिसे सब से अधिक मत मिला हों विरोधी और पराजित उम्मीदवारों को मिला मत का योग से प्राप्त मतों से कितना भी अधिक हो। इसके परिणामस्वरूप बहुदा ऐसे दलों को सरकार बनाने का अवसर मिल जाता है, जिसे देश के बहुमत का समर्थन प्राप्त नहीं है और छोटे दलों को उन्हें प्राप्त जन समर्थन की तुलना में सूची प्रणाली एवं अपनाने का सुझाव दिया गया। इससे जहाँ मतदाता अधिक से अधिक मत डालने के लिए अग्रसर होंगे एवं वहीं लोकतंत्र का वास्तविक रूप भी लोगों के सामने प्रकट होगा।

इसके साथ ही भारतीय राजनीतिक दलों में विचारधाराओं का समानता रहने के बावजूद पार्टियों को अपनी डफली अपनी राग है। चुनाव आयोग भी राष्ट्रीय एवं राज्य स्तरीय दलों को जो मान्यता प्रदान करता है वह विचारधाराओं पर न होकर एक निश्चित प्राप्त स्थान मतदान प्रतिशत के आधार पर है दलों की भरमार से आम जनता भ्रमित हो जाते हैं राजनीति की अपेक्षा करने लगते हैं जिसका प्रभाव मतदान प्रतिशत पर पड़ता है। चुनाव में घन कुबेर का बोलबाला रहा, निवर्त्तमान में 1997 के प्रावधानों में यह प्रावधान किया गया कि लोकसभा में अधिकतम 15 लाख तथा विधान सभा में 6 लाख व्यय किया जा सकता है लोकसभा सदस्य को अपने चुनाव में

30 से 40 लाख रूपये खर्च करने पड़ते हैं औसतन 65 करोड़ रूपया लोकसभा के चुनावों में खर्च करने पड़ते हैं और लगभग 15 करोड़ विधान सभा पर। [7]

इस स्थिति में भ्रष्ट राजनीति और काले घन के बीच एक गठबंधन स्थापित हो जाता है, जो पूरे चुनाव को भ्रष्टाचार में सम्मलित कर लेता है इससे गलत लोग बढ़ जाते हैं इसके लिए चुनाव आयोग द्वारा जमीन पर कार्य होना अति आवश्यक है। बहुत ही कम स्थान प्राप्त होते हैं उल्लेखनीय है कि कांग्रेस को पहले तीन आम सभा चुनावों में 70 प्रतिशत से अधिक चौथे आम चुनाव में 54 प्रतिशत, 1971 में 68 प्रतिशत और 1980 में लगभग 64 प्रतिशत स्थान प्राप्त किए, परंतु किसी भी चुनाव में 50 प्रतिश मत प्राप्त नहीं कर सकी थी।[4] 1980 के लोकसभा के चुनावों में एक विसंगति इस रूप में देखी गई कि जनता पार्टी ने मतदाताओं को 19.94 प्रतिशत, लोक–दल को 9.43 प्रतिशत मत प्राप्त किए, लेकिन उस पार्टी को जनता पार्टी के तुलना में 10 स्थान अधिक प्राप्त हुआ। 1999 के 13वीं लोकसभा चुनाव में कांग्रेस को 28.42 प्राप्त मत के साथ 114 स्थान तथा भाजपा को 182 स्थानें के साथ 23.70 प्रतिशत मत प्राप्त हुए [5]

1996 में संपन्न हुए लोकसभा के चुनावों में प्राप्त विभिन्न दलों के सीटे और मत प्रतिशत[6]

क्र०सं०	राजनीतिक दल	मत प्रतिशत	प्राप्त स्थान
01	इन्दिरा कांग्रेस	28.8	140
02	जनता दल	8.1	46
03	भाजपा	20.3	161
04	साम्यवादी दल	2.0	12
05	मार्क्सवादी दल	6.1	32

लोकतांत्रिक व्यवस्था के अन्तर्गत इस स्थिति को न्याय संगत नहीं कहा जा सकता है। इसलिए आनुपातिक प्रतिनिधित्व दो तिहाई बहुमत ग्रामीण हैं और उनके विकास कोई खास मायने नहीं रखता है। लेकिन यह चीजों को संकुचित नजरियों से देखने जैसा है, जो सही नहीं है शहरीकरण एक ऐतिहासिक ताकत है जिसे कोई रोक नहीं सकता है लोग गाँव से शहर और महानगरों की ओर जा रहे हैं मनरेगा और मुफ्त आवास उन्हें गाँवों में रोककर नहीं रख सकते हैं ताकि वे कांग्रेस के पक्ष में वोट देते रहे। भविष्य के खिलाफ दाँव लगाना मूर्खता ही साबित होगा।[5]

लोकतंत्र में वोट के महत्व को देखते हुए आम मतदाता में इसके प्रति घटता रूझान निश्चित रूप से भारत के लोकतंत्रीय व्यवस्था के लिए प्रतिकुल है इसको देखते हुए सरकार, निर्वाचन आयोग एवं निजि संस्थान आम मतदाता को अपने मताधिकार के प्रति जागरूक कर रहे है विधान सभा चुनाव में मतदान प्रतिशत बढ़ाने हेतु मतदाताओं को जागरूक करने के लिए विशाल जनसेवा शिक्षा समिति के द्वारा मतदाता जागरूकता अभियान का शुभारंभ किया गया। मतदान करते समय योग्यता, विकास, जनकल्याण व देशहित का पूरा ख्याल रखेंगे। किसी भी दबाव, प्रभाव व प्रलोभन में अपने बहुमूल्य महाशक्ति का ह्रास न तो करेंगे न करने देंगे। अभियान

के तहत संस्था के लोगों ने घर–घर जाकर 200 व्यक्तियों को स्वच्छ एवं स्वतंत्र मतदान की शपथ व संकल्प दिलाया।[51]

इसके साथ आम जनता को वोट का महत्व समझना होगा। और अपनी उत्तरीदायी भी समझना होगा। इसके प्रभाव स्वरूप जहाँ मतदान में होने वाले प्रतिशत में आने वाले ह्रास में अंकुश लगेगा वहीं मतदान प्रतिशत में भी बढ़ोत्तरी होगी और यह भारतीय लोकतंत्र के लिए अत्यंत शुभ लक्षण होगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि व्यवहार और सामाजिक कारकों की एक संख्या व्यक्ति मतदान के व्यवहार से संबंधित है। व्यवहार कारकों के अलावा, उम्मीदवारों की व्यक्तिगत विशेषताओं का आंकलन सरकार के प्रर्दशन का मूल्यांकण, विशिष्ट नीतिगत मुद्दों, पार्टी की पहचान और विचारधारा पर झुकाव के उम्मीदवार के चुनाव के प्राथमिक निर्धारक हैं। सामाजिक कारकों के लिए जाति, धर्म, क्षेत्र और सामाजिक वर्ग के सबसे निकट हैं। और इन्हीं सब बातों पर मतदान प्रतिशत निर्भर करता है।

संदर्भ सूचीः–

1. डेविड बटलर, अशोक लाहिरी और प्रणांय राय, इंडिया डिसांइड्सः इसेक्शंस 1952–95, नई दिल्ली, 1995, पृ० 171.
2. पूर्वोक्त
3. इंडिया टुडे, सितम्बर, 2006, पृ० 41
4. पूर्वोक्त, पृ. 39.
5. पूर्वोक्त
6. पूर्वोक्त, अक्टूबर, 1996 पृ. 26.
7. पूर्वोक्त
8. पूर्वोक्त
9. पूर्वोक्त

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

Sir Walter Scott as a King of Romancers: A Critical Analysis

Subhash Kumar
Research Scholar
B.N.M.U. Madhepura

Scott was a great writer of fiction who was never a good novelist, as some critics aver. To his contemporaries he appeared to toss them off in careless profusion, and their popularity was so well established that the contemporary critic 'apologized for reviewing at all works that were everywhere bought, borrowed, and stolen.' During his life-time, he was hailed as a great novelist who saved the reading-public from the horrors and blood-cording narrations of the Gothic Romancers by providing them life-like glimpses of the past. And this was his greatest contribution to the English novel.

Scott did not care for the present; he did not meddle his head with the contemporary forms of the novel, he approached with a sense of what can only be called piety. The past was hallowed because it was the past, and in the presence of what the past has sanctioned his own beliefs were irrelevant. He never lost his physical contact with the past. His novels show the strong tide of imagination realised by the Romantic movement sweeping back into the past, flushing the stones of history with colour and imagination. Scott's greatest contribution to the English novel was, therefore, in the field of historical novel. He chose a definite period of history for the background of his narration. He introduced real historical characters. But to function as a novelist in the real spirit, he assigned to his historical personages only the minor roles, thus he made the historical characters subordinate to the characters of imagination. He permitted himself only the same licence as Shakespeare in changing the sequence of events occasionally for dramatic effect, but characters and motives remained inviolate. He made it felt that the approach of the novelist and the poet is same, through terms of an inspired imagery, interpreting always from the particular to the general ad never resting content with a mere cataloguing of facts or a scientific recording.

Along with Robert Burns, Walter Scott stands as one of Scotland's pre-eminent writers. Like Burns, it is difficult to separate the myth from the man and to gain any real perspective on his work Also like Burns is his prominence on the Scottish tourist trail – from his eye-arresting landmark monument on Edinburgh's Princes Street (the famous 'Gothic rocket') to his pastoral home at Abbotsford in the Borders, interest in Scott himself often transcends and obscures his writing. Even Edinburgh's Waverley train station was named after one of his books.A lot of it has to do with Scott's

reinvention of Scotland.During Scott's time Scotland was a country very much ill at ease with itself and had been living through a period of great upheaval and change. The Union of the Parliaments in 1707 had divided the country in half – those in favour of Union, those against. Many were worried that Scotland would lose its distinct national identity altogether; others saw that as a reasonable price to pay for political and financial stability. There were a number of real advantages to Scotland's union with England, but these were offset by some serious drawbacks. These arguments still go on today. In Scott's time, however, the wind of change had cast a lot of cultural debris, and it was difficult for people to see a way ahead. Scotland was changing, old ways were dying out, new ways were arriving in an inexorable flood and being resisted.

A talented and energetic person, Scott became a lawyer, and pursued this profession all his adult life, in spite of his numerous social commitments and prolific writing. He made his first literary appearance with The Minstrelsy of the Scottish Border a collection of ballads, but his first success as an author was in poetry with *The Lay of the Last Minstrel*, and most outstandingly, *The Lady of the Lake*, a best seller. Scott promoted an image of a wild, bloody, romantic, mysterious Scotland, which is still a valid stereotype of the country today. Abandoning poetry, he took to novel writing, and with his anonymous sequence of *The Waverley* Novels (*Waverley, Guy Mannering, Rob Roy, Heart of Midlothian* and others), he gained worldwide acclaim.Scott produced a new novel every year, and his appetite for money led him to a mis-investment. His subsequent bankruptcy Scott faced with dignity and an ever increasing literary output. For six years, he wrote to clear his debts, at a terrible price to his health. He suffered a series of strokes, and died in 1832.Scott is best remembered for his fiction, but he produced a great amount of poetry, biography, translations, and critical prose as well. He had a huge influence on the Romantic movement worldwide, and it was not just literature, but also painting and opera appropriating his characters, scenes and ideas about Scotland.

Scott knew a thing or two about the nation's history. He even created some if it himself. He loved his country deeply, but as a lawyer and a Tory he believed that the Union was the best option for Scotland (particularly for those with money). Separation would turn the clock back 100 years. While he was studying for his Bar exams, he took walking tours in the Border country. This was his ancestral home where he had grown up with tales and songs from relatives and neighbours for whom the Battle of Culloden was still within living memory. Scott began to note these ballads down as he travelled through the Borders, adapting and amending their rhymes and rhythms, tweaking existing verses, adding his own. The ballads were published as *The Minstrelsy of the Scottish Borders* in 1802 and became an immediate and surprisingly popular success which encouraged Scott in his own original writings.Inspired by his work in the Borders, a few years later he published The Lay of the Last Minstrel, his first major poetic work. It too was an instant success in Scotland and in England, selling many thousands of copies. After this he continued to publish long narrative poems, such as

Marmion and The Lady of the Lake, each one more successful than the last. His poems made him a household name in Britain and secured his reputation as a great writer in many countries in Europe, and in the USA. Scott rode a wave of fame andadulation unheard of until the arrival of Lord Byron, whose poetry proved to be even better and more successful than Scott's.

At this time, with sales of his latest long poem, Rokeby (1812), down substantially on his previous works, Scott realised that Byron had stolen his crown and he didn't attempt to win it back – at least not through poetry. He turned to novels.His first was Waverley. Waverley Published in 1815, it had been several years in the making and had been inspired by Scott's travels in the Highlands and by the stories he heard there from people who had witnessed and could remember the revolution in 1745, when the followers of the Stuart family tried to reassert their claim on the monarchy. The revolution had failed but a great deal of resentment and pro-Jacobite feeling remained in Scotland, particularly in the north. The Highland Clearances were also in operation at this time, bringing about the extermination of an ancient way of life in order to clear a path for a more modern culture. The 1745 rebellion provided the historical and scenic backdrop for Waverley Waverley and the theme of cultural conflict would run through the majority of his novels thereafter.

The kind of reception that greeted Waverley on publication would make every modern writer jealous. The first edition sold out within days, the critics loved it, and it set Scott on course to becoming one of the wealthiest writers in the country. He had created the first literary bestseller.He wrote many more novels, each time exploring a different aspect of Scottish history, much of it very recent and within living memory. In a way you could say that Scott gave Scotland back to the people. For too long the fate of the nation had been in the hands of politicians and nobles and landowners and businessmen. The Scots as a nation felt the country was slipping out of their grasp. What Scott did was to give the people a history they could feel and become emotionally involved in. It was history – but with plenty of emphasis on 'story'.

And Scott was never one to let facts get in the way of a good story, despite thorough research. Indeed the few negative reviews that Waverley received were critical of its inaccuracies. There are parallels here in the way that Hollywood treats factual subject matter, notably with the epic William Wallace bio-pic *Brave-heart* (1996), which was roundly boo-ed by historians and academics for getting all manner of things wrong – from dates to costume, from who said what to whom, and who was alive and who wasn't born yet. Yet it was the biggest movie of the year. It was loved by audiences the world over who flocked to it in their millions, and in Scotland it caused a resurgence in nationalist feeling and gave the Scottish National Party a healthy boost up the opinion polls. The comparison may be crude, but Scott's fiction had much the same impact. In fact, it would be true to say that movies like *Brave-heart* are direct descendants of Scott's novels.

Scott's achievement was to personalise massive events. If one thinks of a historical event that you see on television or in the paper – like a war, or an earthquake, or a famine – it is impossible to comprehend the enormity of it. We think of it abstractly, see it as a collection of horrible images, a line of terrified faces; we find it difficult to put ourselves in the places of the people caught up in it. We are, inevitably, at a distance – in time, in place, in emotion. But when we hear the stories of these people, when we listen to what they went through then we begin to relate in a more humane way to this event.

This is what Scott did with Scottish history. He introduced psychology, made it personal. Before Scott, there were history books and there were novels. The history books were written with a view to the bigger picture: the great leaders, the battles, the crucial events. In novels, historical events are like a scenic backdrop in a theatre against which various romances are played out – we see what's going on behind the characters, but they aren't really involved in it. Scott brought the two forms together, something no-one had done before. He threw his characters into that history, and often his fictional characters would meet 'real' historical characters. The landscape – physical and political – was a real one in his books, not just a backdrop. He shows the real impact of history on the lives of ordinary – and extraordinary – individuals. We see and share their suffering, their joy, their loves, their deaths. And we gain an insight into the forces that shaped their lives and the world around them.But he was a novelist, not a historian; he was writing entertainment, not reporting history. Of course he got some of the historical stuff wrong – his characters must take precedence. But, like all great fiction writers, he included enough of the truth to make his novels seem the more convincing.

The popularity of his books in Scotland made the Scots proud once again of their nation and the culture they thought was about to be swallowed by their more powerful neighbour. Scott not only gave the Scottish people a history and characters they could believe and invest their emotions in, he also gave it to the world. The romance – and the myth – of the Highlands was born.

Scott's influence has been downplayed a lot in the past, but recently critics have increasingly been acknowledging the place Walter Scott has in the history of the development of the novel. His work was written at the beginning of the 19th century, the golden age of the novel. He was read widely, not only at home in Britain, but across the Atlantic and throughout Europe. From Dickens to Dumas, Hawthorne to Hugo, Tolstoy to Trollope, Scott's craft informed and shaped the craft of future novelists who would plunder history for their fiction. He created the blueprint for literary fiction that these writers and others would refine and take to a level of sophistication that looking back makes Scott seem like a mere apprentice. But it was his example they followed.

Scott lived through extraordinary times. His achievement was not only to reflect the changes going on around him, but to define them. Much of the Scotland we recognise in tourist adverts and Hollywood movies, many of our most familiar symbols

and myths can be traced right back to the remarkable and original fiction of Walter Scott. S.T. Coleridge summarized the achievement of Scott's work with his usual generosity:

> "Scott's great merit, and the same time, his *felicity*, and the true solution of the long-sustained *interest* novel after novel excites, lie in the nature of the subject, not merely, or even chiefly, because the struggle between the Stuarts and the Presbyterians and sectaries, is still in lively memory…yet great as all these causes are, the essential wisdom and happiness of the subject consist in this, - that the contest between the loyalists and their opponents can never be *obsolete*, for it is the contest between the two great moving principles of social humanity…Well therefore, may we contemplate with intense feelings those whirl-winds which are for free agents the appointed means, and the only possible condition of that equilibrium in which our moral being subsists; while the disturbance of the same constitutes our sense of life." [1]

Carlyle, in his lengthy essay on Scott, which formed his review of Lockhart's *Life*, was less generous, though he makes some fair points. Scott, naturally, never read Carlyle's review, but coincidentally he answers many of the accusations in it in his dialogue with Captain Clutterbuck in the Introductory Epistle to The Fortunes of Nigel. 'Are you aware', asks the Captain, that an unworthy motive may be assigned for this rapid succession of publication? You will be supposed to work merely for the lucre of gain. Scott replies:

> "Supposing that I did permit the great advantages which must be derived from success in literature, to join with other motives in inducing me to come more frequently before the public….Hadst thou not fifteen pence? I profess I think our modern Athens much obliged to me for having established such an extensive manufacture."(*The Fortunes of Nigel*, Introductory Epistle)

Again, he defends himself against the accusation that he does not take time to arrange his story:

> "I have repeatedly laid down my future work to scale, divided it into volumes and chapters, and endeavoured to construct a story which I meant should evolve itself gradually and strikingly, maintain suspense, and stimulate curiosity; and which, finally, should terminate in a striking catastrophe…When I light on such a character as Bailie Jarvie, or Dalgetty, my imagination brightens, and my conception becomes clearer at every step which I make in his company, although it leads me many a weary mile away from the regular road, and forces me to leap hedge and ditch to get back into the route again." (*The Fortunes of Nigel*, Epistle)

This is Scott at his most characteristic, demystifying himself, justifying Carlyle's accusation that his only aim was to amuse:

> "The Genius of rather a singular age – an age at once destitute of faith and terrified at scepticism….and found him walking the dusty Outer parliament-house of Edinburgh with his advocate-gown on his back; and exclaimed, That is he."[2]

But Carlyle, who reckoned amusement low in the desiderata of human life even while he acknowledged that the amusement that the Waverley novels provided was of high order, was not blind to one aspect of Scott's achievements:

> "These Historical Novels have taught all men this truth, which looks like a truism, and yet was as good as unknown to writers of history and others, till so taught: that the bygone ages of the world were actually filled by living men, not by protocols, state-papers, controversies and abstractions of men….It is a great service, fertile in consequences, this that Scott has done; a great truth laid open by him; - correspondent indeed to the substantial nature of the man; to his solidity and veracity even of imagination, which, with all his lively discursiveness, was the characteristic of him." [3]

Carlyle was right and history did thereafter take thought of it. In the words of G.M. Trevelyan, Scott not only invented the historical novel, but he enlarged the scope and revolutionized the study of history itself; and this is in very truth due to what Carlyle had called Scott's veracity of imagination. He calls in evidence Macaulay, who, writing in the *Edinburgh Review* in 1828, said:

> "Sir Walter Scott has used those fragments of truth which historians have scornfully thrown behind them, in a manner which may well excite their envy. He has constructed out of their gleanings works which, even considered as histories, are scarcely less valuable than theirs. But a truly great historian would reclaim those materials which the novelist has appropriated." [4]

It is a point also made by Heine, when he says that Scott's novels sometimes reproduce the spirit of English history much more faithfully than Hume. It was also these factors that stimulated feelings of patriotism and national pride that had not previously existed of anything like the same degree, and this too Lukacs ascribes to the consequences of the French Revolution:

> "In its defensive struggle against the coalition of absolute monarchies, the French republic was compelled to create mass armies. The qualitative difference between mercenary and mass armies is precisely a question of their relations with the mass of the population….Such propaganda cannot possibly, however, restrict itself to the individual, isolated war. It has to reveal the social content, the historical presuppositions and circumstances of the struggle, to connect up the war with the entire life and possibilities of the nation's development." [5]

Scott was not only an antiquarian by nature; he spent his formative years in the upheavals that followed the French Revolution. He himself served in one of the

volunteer regiments raised to defend the country against French invasion. In all that he wrote, he saw the need for a reconciliation between the opposing forces, contest between whom ushered in any major change in constitution or monarch. He was not a reactionary: he understood, and in general supported, the need for change; but he understood equally the pain that change could inflict on the losing side, and frequently suffered it himself.

His imagination was too generous to see the faults or virtues of one side only, wherever his own instinctive sympathies might lie. He understood that the resentments that lay behind the Jacobite rebellions had little to do with whether a Stuart or a Hanoverian sat on the throne in London, but much to do with the fact that the Hanoverian settlement left the feudal chiefs unable to provide for their clansmen. He understood and sympathized with the Episcopalian side in the religious struggles of the seventeenth century, but he could equally sympathize with the principles that underlay the Calvinist faith. His nondescript unexciting heroes are decent me, sop placed that they can always see both sides of the question: it is indeed one of the main reasons for their mediocrity, that they are able to act as bridges between the two sides, seeing the virtues and vices of both history and he sees that the most bitter wars and disputes have eventually found a *via media* and have settled down in reconciliation, Saxon with Norman, Hanoverian with Jacobite, Whig with Tory, Puritan with Prelatist, and, most of all, Scotsman with Englishman.

For this reason it is inadequate to dismiss him as an escapist, most of all at the end of the twentieth century and the beginning of the twenty-first, when so much of the best of modern fiction is, like Scott's, being set in the past, and for not dissimilar reasons. Nor can anyone who influenced so much of the best of nineteenth-century European writing be lightly disregarded. His popularity in Europe during his lifetime was extraordinary. Goethe, who had started off by dismissing Scott with the words, I cannot learn anything from him. I have time only for the truly excellent, was writing to Eckermann on 8 March 1831, 'Walter Scott is a great genius, who does not have an equal…He gives me much to think about, and I discover in him a wholly new art, which has its own laws.'[6]Scott's novels were pirated in Germany often as soon as they were published in Edinburgh (sometimes, interestingly, under his own name, at a time when the author of *Waverley* was still hiding behind his anonymity at home). They were published in translation in the 1820s in France, Italy, and Hungary among other places. Manzoni was to write, *a propos* of his own I *PromessiSposi*, 'se non ci fosse stato Walter Scott, a me non sarebbevenuto in mente di scrivereunromanzo.' [7] If it is considered that the novel as a literary form did not exist in Italy until Manzoni's I *PromessiSposi*, it will be seen that Scott's influence on the development of Italian literature was even more inarticulate.

He was directly to influence writers in Europe and America from Pushkin to Balzac and later. It is highly unlikely that Tolstoy's *War and peace*, with its vivid battle scenes and its blend of historical and fictional characters, would have been written as it

was if Scott had not written before him. Tolstoy said that he learned from Stendhal how to describe war; but Stendhal learned first from Scott to describe the confusion and revulsion that are experienced, for example, by Waverley and Henry Morton when they find themselves caught up on a battlefield and to understand the impact of history on those who are entangled in it. *What is Art*? Tolstoy summarizes what he had in fact learned almost involuntarily from Scott about the art of the historical novel: 'What can be older than the relations of married couples, of parents to children, of children to parents; the relations of men to their fellow-countrymen, and to foreigners, to an invasion, to a defence, to property, to the land?'[8] If one adds to this his influence on Macaulay and the historians who followed him, it will be seen that what he produced was no mean body of work. His achievement was best summarized by his friend and political enemy Lord Cockburn, who had happened to be passing Abbotsford on the day of Scott's death, and noted in his journal, 'I saw it reposing beside its gentle Tweed, and amidst its fading woods, in the calm splendour of a sweet autumnal day. I was not aware till I reached Edinburgh that all that it then contained of him was his memory and his remains. Scotland never owed so much to one man.' [9]

References

1. *Coleridge's Miscellaneous Criticism*, ed. T.M. Raysor (1936), 339-40.
2. Thomas Carlyle, *Critical and Miscellaneous Essays* (7 vols.; 1889), iv. 49-50.
3. Ibid. 77-8.
4. G.M. Trevelyan, in Allan Frazer (ed.), Sir Walter Scott: *An Edinburgh Keepsake* (Edinburgh, 1971), 27-8.
5. Georg Lukacs, *The Historical Novel*, trans. H. and S. Mitchell (1962), 23-4.
6. Quoted in Paul M. Ochojski, 'Waverley UeberAlles', in Alan Bell (ed.), *Scott Bicentenary Essays* (Edinburgh, 1973), 264-5.
7. Quoted in R.D.S. Jack, 'Scott and Italy', in Bell (ed.), *Scott Bicentenary Essays*, 295.
8. Leo Tolstoy, *What is Art*?, ed. Gareth Jones, trans. Aylmer Maude (Bristol, 1994).
9. Henry Cockburn, *Journal*, 1831-54 (2 vols.; Edinburgh, 1874), i. 37.

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

Use of Symbolism in the Works of J.M. Synge and W.B. Yeats

Udhyami Kumari

Yeats and Synge penned their works during a period of national liminality; or what critic Seamus Deane refers to as "the long process of its [Ireland's] transformation from a British colony into a modern, independent state". The literature of both writers is reflective of this transitional context, and is exhibited in how they draw from past tradition to forge a distinct literary identity. This can be explored in their use of symbolism, as both rely on myth and folklore – often Irish in origin – to portray a country in the process of reclaiming its own voice and autonomy. Nevertheless, what brand of nationalism this technique is used for is occluded by the contradictory nature of their works, not in the least because Synge's depiction of Irish peasantry in his plays were seen by nationalist groups to perpetuate stereotypes, and Yeats in his poems appears to prioritise the flourishing of the arts above that of the good of the masses.

Both Yeats and Synge use symbols that are often plucked from Irish folklore to create narratives that borrow from the traditions of realism and the fantastic, yet paradoxically both writers claimed their works to be realistic presentations of Ireland.

The language of Synge's The Shadow of the Glen is saturated with – at times – obscure symbols, such as in the Tramp's advice to Nora: "maybe if you'd a piece of grey thread as a sharp needle – there's safety in a needle". The use of the needle for protection from "evil spirits" originates in the wisdom of an old man Synge encountered in the Aran islands[ii], a specificity that is indicative of a determination to represent the peasant psyche. Indeed, Synge's inspiration for the play came from overhearing servant girls in the kitchen of his boarding house, stating in his diary that astute representation and observance is the "matter, I think, that is of importance, for in countries where the imagination of the people, and the language they use, is rich and living, it is possible for a writer to be rich and copious in his words, and at the same time to give the reality, which is the root of all poetry, in a comprehensive and natural form." Thus, despite the fact his language indulges in the mystical, Synge asserts that his works are accurate representations of Ireland itself; a country that he sees as inextricably tied to the "imagination of the people".

Yet not all the symbols within the play are this esoteric, for example the Tramp himself acts as an anonymous personification of Synge's simultaneously wild yet idealised Irish landscape. This is most evident in his final piece of dialogue: "come along with me now, lady of the house, and it's not my blather you'll be hearing only, but you'll be hearing the herons crying out over the black lakes".The critique of Irish domestic life through the symbol of a personified, exotic Ireland in the form of the Tramp, provoked reactionary responses from contemporary nationalists, famously Arthur Griffith who stated "Mr. Synge-or else his play has no meaning-places Norah [sic] Burke before us as a type-'a personification of an average'-and Norah Burke is a lie. It is not by staging a lie that we can serve Ireland or exalt art". The representation of Nora can be directly contrasted to that of Yeat's 'Cathleen niHoulihan' whose is the female, symbolic peasant embodiment of the heroism of Ireland yet is also desexualised as she proclaims, "with all the lovers that brought me their love, I never set down the bed for any". In contrast female sexuality is at the heart of Synge's controversy, also shown in The Playboy of the Western World whereby the female peasants lust after the Christy despite his supposed patricide. Much of the backlash against Synge derived from how he questioned, in his use of symbolism, constraints put on upon a movement that had to consistently show, in the words of Lady Gregory, W. B. Yeats, and Edward Martyn, "that Ireland is not the home of buffoonery and easy sentiment, as it has been represented, but the home of an ancient idealism".

Nevertheless, akin to Synge, Yeats also gives voice to the "imagination of the people" in his play Countess Kathleen, as Teig cries out in the very first scene "they've the shape and colour of horned owls. And I'm half certain they've a human face". Yet these views are not simply expressed as representations of the peasant psyche, rather the folklore of the play becomes the basis of the narrative, reflective of Yeats' own interest in spiritualism.

The "substantial" nature of these beings is emphasised in how they are material enough – or at least as material as any other object – to cast "shadow". Their reality may seem at odds with the otherwise naturalistic presentation of the lives of peasants afflicted with famine; as the piece displays in the words of critic Michael McAteer "the kind of seriousness characteristic of Ibsen, concealed within the frivolity of its fairy motif"[vi]. This presents a duality that cannot solely be justified through appeal to a supposed Irish imagination, as one must also refer to Yeats' own interest in occultism – a facet of his life that has been well documented by critics. Yeats himself claimed, following his disillusionment with Victorian neo-religion, "I made myself a new religion". The framework from which he constructs his "religion" can be explored in the poem 'To Ireland in the Coming Times', in which Ireland is personified in the female form of "the red-rose-bordered hem / Of her.This theme is echoed in the "lidless

eye" of 'Upon a House Shaken by the Land Agitation', here the unblinking eye of the eagle – ultimate perception – is under threat of artistic annihilation at the hands of reduced income rents prompted in part by a growing nationalist influence in governmental policy. While the former poem saw Yeats wishing to place himself amongst the nationalist icons of "David, Mangan, Ferguson", in the latter he places artistic blossoming – which he sees as intrinsically tied to the maintenance the aristocratic house ("where passion and precision have been one / Time out of mind") – above nationalist, or at least populist, sympathies. Moreover, the dread of artistic stagnancy is further expressed in The Fascination of What's Difficult whereby the symbol of Pegasus is used to represent Yeats poetic impotence – with the rhyme pattern itself undermined by the use of enjambment, especially when contrasted to strict line by line rhyme scheme of 'To Ireland in Coming Times'.

Yeats uses symbolism in his poems to focus on the value of poetry and art itself, as Seamus Deane argues in Celtic Revivals, "Irish literature tends to dwell on the medium in which it is written because it is difficult not to be self-conscious about a language which has become simultaneously native and foreign". The importance of establishing identity through language is something that Synge showed particular fascination in, and unlike Yeats, he spent much time studying and mastering the Irish language, stating in his diary "American lack of literary sense [Is] due to the absence in America of any mother tongue with a tradition for the whole population". Synge hoped to instill "literary sense" through appealing to the luxury of having an old linguistic tradition. Indeed, as Declan Kiberd argues "He [Synge] saw that he could never hope to return to the other side – that an attempt to re-impose Irish would lead only to another barren century for literature – but he resolved to fill the rift by uniting the divided traditions". Yet irrespective of his critical reception, the way in which he fuses his knowledge of both English and Irish has an enduring effect on his symbolism. For example, Kiberd notes the striking similarities between the 'Chanson de la malmariée' from DantáGrá, which narrates the story of a woman whose husband "is hard and dour; he batters her. He fails to meet her sexual needs. She strikes out against the marriage … she would love her husband to die – she would make off with a young lover"and The Shadow of the Glen. Both plotlines closely resemble one another with the "géagafuara" (cold limbs) of the chanson mirrored in the Nora's description of Dan as "cold every day that I knew him". Not only is symbolism contained within the play, but following this analysis the play itself can be seen as symbol for the old Irish tale. As Kiberd concludes: "Each of his plays and poems represents a fusion, in a single work, of both traditions and an attempt by the power of his imagination to make them one". To extend upon this point, the symbolism inherent within this tradition, in conjunction with

an understanding of Irish literary heritage, allows Synge to forge a distinctly Irish identity in the face of a "simultaneously native and foreign" English lexicon.

While Synge attempts a lexical fusion of Irish and English, Yeats opts for a fusion of the mystical and material hand in hand with the subjective and objective. In his review of Maeterlink's essay on mysticism, Yeats proclaimed "we are in the midst of a great revolution of thought, which is touching literature and speculation alike; an insurrection against everything which assumes that the external and the material are the only fixed things, the only standards of reality". Yeats fluid assessment of reality – one in which the physical and spiritual coincide – has been compared by some critics to the philosophy of George Berkeley, a proponent of idealism whose principle "esse is percipi" revolved around the idea the denial of a mind-independent reality. Yeats himself references Berkeley in 1929 poem 'Blood and the Moon':

And God-appointed Berkeley that proved all things a dream, That this pragmatical, preposterous pig of a world, its farrow that so solid seem, Must vanish on the instant if the mind but change its theme.

Thus, if we are to take the position that Yeats conforms to the tenants of idealism, then his claim that fantastical dreamscape can provide knowledge of our reality is justified. Within Berkeley's conception of reality, all perception, both veridical and that of dreams, are in essence mind dependent. This justifies his realistic presentation of the merchants, elemental beings, and 'fairies' that engulf his writing – spiritualism and materialism cannot be distinguished from one another.

Both writers appear to use symbolism in an attempt to bind together binaries. In the representation of peasant folklore Synge uses symbols in an attempt to accurately represent what he sees as a nation bound in the "imagination of the people". Nevertheless, his symbolic use of the peasantry conflicted with many contemporary nationalists who saw his treatment of their characters as immoral and not in line with the framework established by other writers including Yeats. Due to this critical backlash, much of his valuable linguistic advances have been overlooked until Kiberd's rightful reappraisal of his ability to accurately combine symbolism derived from Irish with an English lexicon. While Yeats was also committed to portraying the imaginations of the peasantry, his use of symbolism is also deeply entrenched in his own fascination with the supernatural and the occult. While he exhibits conflicting views on nationalism in part because of a prioritisation of the value of the arts and poetry, his symbolism can also be viewed as an expression of a conception of reality that isn't strictly realist, in part due to its appreciation of the fantastical.

Indeed, one could even interpret Yeats work by appealing to a Berkeleyan idealism as a justification for his blurring of the material and the spiritual. Crucially then, it is clear that both writers strive for a fusion of dualities; for Synge, this manifests itself in a linguistic fusion of English and Irish tradition, while in Yeats this follows the fusion of the material with the spiritual.

References:

Deane, Seamus. Celtic revivals: Essays in modern Irish literature 1880-1980. Faber & Faber, 1985.

Synge, John Millington. Playboy of the Western World and Other Plays. Oxford University Press, 1998.

Williams, Raymond. Drama from Ibsen to Brecht. Random House, 2013.

Pilkington, Lionel. Theatre and Ireland. Palgrave Macmillan, 2010.

McAteer, Michael. Yeats and European Drama. Cambridge University Press, 2010.

Deane, Seamus. Celtic revivals: Essays in modern Irish literature 1880-1980. Faber & Faber, 1985.

Synge, John Millington. The Aran Islands. Penguin UK, 1992.

Kiberd, Declan. Synge and the Irish language. Springer, 1979.

Ibid p47

Ibid p65

W. B. Yeats, “The Adoration Of The Magi” [1897], in G. J. Watson, ed., W. B. Yeats: Short Fiction Harmonsworth: Penguin 1995

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

स्वराज दल

डॉ0 कुमारी संगीता
इतिहास विभाग
वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

भारतीय विधान सभा और प्रांतीय विधानपरिषदों में चुने गए स्वराज पार्टी के अस्य मांग करेंगे कि ब्रिटिश शासन राष्ट्रीय मांगों को एक निश्चित तिथि के पहले पूरा करे। अगर उनकी माँग न मानी गई तो वे लगातार बाधा डालकर विधानमंडलों के जरिए देश पर शासन करना असंभव बना देंगे। पार्टी ने यह भी हिदायत दी कि उसका कोई भी सदस्य ब्रिटिश शासकों द्वारा दिया गया सरकारी पद किसी भी हालत में स्वीकार न करे। उसने नगरपालिकाओं के चुनाव में हिस्सा लेने ए मजदूरों के संगठन के काम को बढ़ाने , ब्रिटिश वस्तुओं के बहिष्का र, एशियाई देशों के संघ की स्थापना, कांग्रेस के रचनात्मक कार्यों के समर्थन आदि का फैसला किया।

स्वराज पार्टी की स्थापना में कांग्रेस के अंदर 'परिवर्तनवादियों' और 'अपरिवर्तनवादियों' के बीच संघर्ष बढ़ गया। अपरिवर्तनवादी आगामी चुनावों से अलग रहकर अपने आपको गाँधी के रचनात्मक कार्य, चर्खा कताई, शराब बंदी, अस्पृश्यता निवारण आदि समाज सुधार के कार्यों में लगाना चाहते थे। दूसरी ओर , स्वराजियों ने सितंबर, 1923 में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन होने तक अपनी शक्ति काफी बढ़ा ली थी। वे गया के प्रस्ताव को अस्वीकृत कराके उसके स्थान पर कौंसिलों में प्रवेश करने के पक्ष में नया प्रस्ताव पास करा लेने में सफल हुए। विधान-मंडलों का चुनाव नवंबर 1923 में हुआ और उसमें स्वराज पार्टी ने अपने उम्मीदवार खड़े किए। चुनाव में उसे अच्छी-खासी सफलता मिली। भारतीय विधानसभा की चुनी हुई सीटों में से लगभग आधी सीटों पर स्वराजियों का कब्जा हो गया। मध्य प्रांत विधानसभा में उन्हें बहुमत प्राप्त हुआ। बंगाल की विधानसभा में बहुमत न मिलने पर भी उनका गुट काफी शक्तिशाली था। अन्य प्रांतों में उन्हें बहुत सीटें नहीं मिल सकी , फिर भी चुनावों के परिणाम उनके लिए संतोषजनक कहे जा सकते थे। स्वराजियों की कम सफलता का कारण कांग्रेस में एकता का अभाव था। यद्यपि कांग्रेस ने उन्हें चुनाव लड़ने की इजाजत दे दी थी लेकिन कांग्रेस का एक हिस्सा चुनाव में शामिल नहीं हुआ था। अपरिवर्तनवादियों ने गाँधी का रचनात्मक कार्यक्रम ग्रहण करके , यह ध्वनित किया था कि गाँधी कौंसिल प्रवेश कार्यक्रम के विरुद्ध हैं।

चुनाव के उपरांत स्वराजियों का अन्य दलों के साथ एक समझौता हो गया जिसके परिणामस्वरूप केंद्रीय विधानसभा में मुख्य प्रश्नों पर लगभग सभी निर्वाचित सदस्य एकमत हो जाते थे। सभी सदस्यों ने मिल-जुलकर पहली माँग यह रखी कि भारतीय नेताओं का एक गोलमेज सम्मेलन बुलाया जाए तथा सरकार भारत में पूर्ण उत्तरदायी शासन की स्थापना के लिए एक योजना तैयार करे। भारत सरकार ने इस प्रस्ताव पर मौन धारण कर लिया। इसके बाद केंद्रीय विधानसभा

ने बजट के अनुदानों का एक अंश अस्वीकृत कर दिया और धन विधेयक (money bill) को पेश करने की इजाजत नहीं दी। इसके बाद सरकार की हार पर हार हुई।

प्रांतीय विधान परिषदों में भी स्वराज पार्टी ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। मध्य प्रांत में- जहाँ स्वराजियों को पूर्ण बहुमत प्राप्त था-उन्होंने गवर्नर की कार्यकारिणी परिषद् में हस्तांतरित विभागों के मंत्रिपद अस्वीकार कर दिए और इसके बाद जब दूसरे दलों से मंत्रियों को नियुक्त कर लिया गया तो उन्होंने उन मंत्रियों के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पास कर उन्हें कर दिया। पुनः विभिन्न विभागों के लिए अनुदान की माँग अस्वीकृत करके उन्होंने संविधान को आंशिक रूप से कर दिया। इसी प्रकार ए बंगाल में स्वराजियों ने कुछ निर्दलीय सदस्यों से (जिनमें अधिकांश मुसलमान थे) मिलकर का प्राप्त कर लिया और सरकार द्वारा जितने भी प्रस्ताव लाए गए उन सबको अस्वीकृत कर दिया। 1925 के शुरू में मिली पार्टी ने तीन बार सरकार को हरा दिया। कौंसिलों में किए गए प्रस्ताव पास करके भलीभाँति प्रदर्शित कर दिया गया कि सरकार जनता की इच्छाओं पर नहीं चलती। इस प्रकार स्वराज पार्टी ने सारे देश में और विदेशों में भी जाहिर कर दिया कि अंग्रेजी राज स्वेच्छाचारी है और लोकमत का तिरस्कार करता है।

इधर कांग्रेस में स्वराजियों का प्रभाव क्रमश: बढ़ता जा रहा था। फरवरी 1924 में गाँधी को खराब स्वास्थ्य के आधार पर जेल से रिहा कर दिए जाने पर चितरंजन दास और मोतीलाल नेहरू उनसे मिलने गए। दोनों पक्षों ने अपनी नीति को सही साबित करने और दसरे पक्ष को अपनी नीति समझाने की कोशि श की. लेकिन किसी को सफलता नहीं मिली। अपने संयुक्त बयान में नेहरू और दास ने तर्क दिया कि विधानमंडलों में प्रवेश करना असहयोग के कार्यक्रम के अनुरूप है। उन्होंने यह भी जोर देकर कहा कि गाँधी के रचनात्मक कार्यक्रम का पूरा समर्थन करेंगे और इस कार्य को वे कांग्रेस संगठन के जरिए करने को तैयार हैं। गाँधी ने अपने बयान में कहा कि वे अब भी असहयोग आदि के कार्यक्रम में तथा विधानमंडल के बहिष्कार में विश्वास करते हैं। साथ ही उन्होंने कौंसिलों में प्रवेश के समर्थकों को ईमानदार बताया और कांग्रेस के दिल्ली के अधिवेशनों के उन फैसलों का समर्थन किया जो कांग्रेसजनों को चुनाव लड़ने की इजाजत देते थे। फिर भी वे स्वराजियों को प्रवक्ता और नेता बनाने के लिए तैयार नहीं थे। किंतु शीघ्र ही उन्हें पीछे हटना पड़ा। नवंबर , 1928 में गाँधी, चितरंजन दास और मोतीलाल नेहरू ने एक संयुक्त वक्तव्य दिया जो 'गाँधी-दास पैक्ट' के नाम से मशहूर है।

इन समझौते में कहा गया कि असहयोग अब राष्ट्रीय कार्यक्रम नहीं रहेगा ताकि देश के हितों की रक्षा के लिए और दमन-नीति के विरुद्ध विभिन्न गुट और पार्टियाँ मिलकर काम कर सकें। स्वराज पार्टी को अधिकार दे दिया गया कि वह कांग्रेस के नाम पर और कांग्रेस के अभिन्न अंग के रूप में विधानसभाओं के अंदर काम करे , इन बातों की पुष्टि बेलगाँव कांग्रेस ने कर दी जिसकी गाँधी ने स्वयं अध्यक्षता की थी। पट्टाभि सीतारमैया के शब्दों में ए बेलगाँव कांग्रेस एक "गाँधीवाद के विरुद्ध विद्रोह का बहुमत देखकर सितंबर , 1925 में गाँधी ने कांग्रेस का अध्यक्ष पद मोतीलाल नेहरू को सौंप देने का प्रस्ताव किया। आखिर में तय हुआ कि गाँधी बाको अवधि-अर्थात् दिसंबर तक कांग्रेस अध्यक्ष बने रहें। कांग्रेस महासमिति के इस (पटना) अधिवेशन में स्वराज पार्टी का सारा कार्यक्रम अपना लिया। इस प्रकार गाँधीवादियों और स्वराजियों की टक्कर में स्वराजियों की विजय हुई। 1925 के बाद कांग्रेस स्वराजियों के नेतृत्व में मुख्य रूप से विधानमंडल के अंदर काम पर ध्यान देती रही

और गाँधी अपने रचनात्मक कार्यक्रम का प्रचार करते रहे। असहयोग के प्रस्ताव की कसौटी से कौंसिल के भीतर चलाई जानेवाली लड़ाई एक कोरा मजाक थी और कौंसिल प्रवेश के समर्थकों का चाहे जो भी विश्वास रहा होए परंतु जनसाधारण के लिए वह एक पलायनवादी कदम था।

कालांतर में स्वराज पार्टी के कई सदस्य तथाकथित प्रति-सहयोग की नीति अपनाकर सरकारी सम्मान और प्रतिष्ठा की ओर खिंचने लगे। इस दिशा में शुरूआत मध्यप्रांत कौंसिल में स्वराज पार्टी के नेता एस.बी. ताम्बे ने. की , जिन्होंने गवर्नर की कार्यकारिणी परिषद् में मंत्रिपद स्वीकार कर लिया। ताम्बे का उदाहरण स्वराज पार्टी में फूट का कारण बन गया। साथ ही , स्वराजी नेताओं ने सरकारी समितियों में भी पद स्वीकार किए । मोतीलाल नहरू ने 1925 के आरंभ में 'इंडियन सैंडहर्स्ट कमेटी' का सदस्य बनना स्वीकार कर लिया था। सरकार के साथ प्रति-सहयोग की नीति के परिणामस्वरूप कांग्रेस में स्वराज पार्टी का जोर क्रमशः कम होता चला गया और 1926 के चुनाव में मद्रास को छोड़कर अन्य प्रांतों में स्वराजियों की करारी हार हुई । सरकारी पदों के लोलुप सदस्यों ने कांग्रेस छोड़कर और लिबरल सदस्यों से मिलकर एक नई पार्टी , नेशनल पार्टी, गठित की । इस तरह स्वराज पार्टी क्रमशः मृतप्राय हो गई।

स्वराज पार्टी के पतन का एक महत्वपूर्ण कारण था जून 1925 में श्री चितरंजन दास की असामयिक मृत्यु । न केवल अखिल भारतीय स्तर पर पार्टी संगठित करने में सफल हुए थे बल्कि अपने अद्वितीय गुणों के कारण पार्टी के उद्देश्यों के गाँधी का समर्थन प्राप्त करने में भी सफल हुए थे। उनकी मौत से संगठन को गहरा धक्का लगा था।

गाँधी द्वारा असहयोग आंदोलन वापस लिए जाने के बाद जनता के बीच व्याप्त घोर असंतोष की एक नई दिशा देकर बाजियों ने एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई । किंतु इसका एक परिणाम यह भी हुआ कि कांग्रेस संगठन असहयोग आंदोलन जमाने से भी अधिक कमजोर हो गया । उसका मुख्य कारण स्वराज पार्टी की कौंसिल प्रवेश की नीति थी , जिनसे जनता का ध्यान स्वाधीनता संग्राम की ओर से हटाकर दूसरी ओर मोड़ दिया था। इस समय देश की फिजा जिस प्रकार की थी , उसमें यदि स्वाधीनता संग्राम में कुछ समय के लिए विराम आ जाता तो भी उतना नुकसानन पहुँचता जितना जनता का ध्यान कौंसिलों की ओर मोड़ देने से हुआ । यद्यपि स्वराजियों को कुछ सफलता मिली थी किंतु 1919 के सुधार अधिनियम के अंतर्गत उनकी कुछ सीमाएँ थीं जिनके कारण वे ज्यादा कुछ भी कर सकने में असमर्थ थे । साथ ही कौंसिल में प्रवेश करके सरकार को विफल कर देने की पार्टी की नीति में भी क्रमशः परिवर्तन आ गया और इसका स्थान प्रति-सहयोग की नीति ने ले लिया। कुछ लोग सरकारी पदलोलुपता के बहाव में बहते चले गए। चितरंजन दास ने ए यद्यपि 98 प्रतिशत के लिए स्वराज की बात कही और नए कार्यक्रम में मजदूरों और किसानों के संगठन की जरूरत पर जोर दिया किंतु वास्तव में इस दिशा में कोई भी प्रयत्न नहीं किए गए । स्वराज पार्टी शुरू से ही भारतीय पूँजीपति वर्ग के हितों का प्रतिनिधित्व करती रही। इसने कौंसिलों के काम पर ही विशेष जोर दिया परिणामस्वरूप इसे जनसाधारण का समर्थन प्राप्त न हो सका।

संदर्भ सूची

1. Ibid.
2. Ram Gopal, op. cit.

3. Tara Chand, History of the Freedom Movement in India, Volume-IV,(Publication Division, 1972), pp. 33-36.
4. A. R. Desai, Social Background of Indian Nationalism (Popular Book Depot, 1959). p. 328.
5. Ram Gopal, How India struggled for Freedom (Bombay, Book Centre, 1967), Chap. 17.

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

Life and Mission of Babu Jagjiwan Ram: A Brief Study

Talat
MA in English, UGC NET

Great leaders are rarely found in our society. If they are found in our society or any nation, leaders are really pride for us because they deserve to be leaders; the reason is that there is a continual self sacrifice of the personality practised by them for the humanity. We call them leaders because they have done some revolutionary deeds on socio, cultural, historical, economical, religious and literary works for the construction of the shape of the society by the passage of time. HW Longfellow, a great artist in the history of English literature and history of great people of the world says: ”Lives of great men all remind us, we can make our lives sublime, And, departing, leaves behind us, Footprints on the sands of time.” That gives the meaning a man is nothingelse what he makes of himself. It is true, a man is known is nothingelse, his soul departs because the life too short and it fleets by time but for what he is remembered in this world that his struggle and achievement committed for the sake of the society and human beings. It is also true, the earth is not an ideal place to live in because there are many anomalies in our ideology, full of rationality and irrationality, meaningfulness and meaninglessness and enlightenment and absurdity, and it is very difficult to make an ideal picture in our lives. Dealing with these binary opposites of our life, we can have ideal picture, though it is a matter of debate to us but we respect those who carry the responsibility of the work for the sake of human beings and give a sound structure of the society. Finally we assume that there are very rare people in the world who have sacrificed their lives with strong commitment and dedication to shape the structure of the society and the nation. Of course they must be remembered and read in the history books of rare people.

Thomas Carlyle, a great historian and philosopher of the nineteenth Century promotes the idea of progress and great deeds for the society and human beings. It is an inevitable to go through his message that gives commentary why the leaders are called great. His study to evaluate the deeds of great leaders is biographical in nature that highlights the formula of sublime sources assimilated by them in their lives. In the portrayal of great leaders of the society, he compiles some of their great actions and passionate willingness that changed history for better. He strongly mentions that great heroes of the time born rarely who shown their heroic temperament that step forward to lead the masses for true progress of society. He states: ”The Poet who could merely sit on a chair, and compose stanzas, would never make a stanza worth much. He could not sing the Heroic warrior, unless he himself were at least a Heroic warrior too” in his

famous book On Heroes, Hero Worship and the Heroic in History. He writes with great reverence about the history of great heroes filled with progressive temperament and practical intelligence to society from myth to religious movements who have been social reformers, great poets and military conquerors of time. The deeds of these great heroes have shown the values of resoluteness, industriousness and obvious sincerity to structure of socioeconomic and political empire. In portraying the heroic deeds of great leaders and religious reformer of society, he exemplifies one of the great leaders in the history of human civilisation, as the Prophet Muhammad the book and emphasises the yardstick of all the attributes of greatness in him. As he writes in his book On Heroes, Hero Worship and the Heroic in History : "It is a great shame for anyone to listen to the accusation that Islam is a lie and that Muhammad was a fabricator and a deceiver. We saw that he remained steadfast upon his principles, with firm determination; kind and generous, compassionate, pious, virtuous, with real manhood, hardworking and sincere. Besides all these qualities, he was lenient with others, tolerant, kind, cheerful and praiseworthy and perhaps he would joke and tease his companions. He was just, truthful, smart, pure, magnanimous and present-minded; his face was radiant as if he had lights within him to illuminate the darkest of nights; he was a great man by nature who was not educated in a school nor nurtured by a teacher as he was not in need of any of this." Similarly we get the portrayal of great leaders of our society who sacrifice their lives for the sake of human beings as they Jesus Christ and Mahatma Buddha. These leaders are timelessly remembered by us in our literature and society. In fact they are ideal heroes and embodiments of God's gifts of our society whose right missions, paths and thinking are laws of our lives.

The present paper is mainly concerned about a leader and social reformer who is a follower of the above mentioned great leaders whose life has remained steadfast on true moral values, dry honesty and sincerity and amalgamation of great deeds and love for people of society in the corner of the modern world history is called Babu Jagjivan Ram from Ara, a small town in Bihar. Babu Jagjivan Ram was an outstanding leader, a brilliant administrator and a powerful communicator of our nation. His towering and versatile personality put a great and revolutionary impact on our country's social, political and parliamentary life. He embodied the following traits: compassion, integrity, humanism and erudition which are used instrumental in solving the problems and travails of the masses. He relentlessly fought for the weaker and downtrodden section in the caste ridden structure of the society. His main mission was about to annihilate the scourge of poverty and socio-economic inequalities and build an egalitarian society. Today we call him the messiah for the subaltern and Dalits of the society.

He lived an iron man and one of the serious leaders of power, potency, courage and of strong commitment in the Indian history. During freedom struggle, he played an active role in mobilising the masses and delivering strong speeches at the public speeches against the British rule and repression and atrocities perpetuated by them on

the citizens of the nation. When there was political crisis in the nation, he was busy in the invaluable services: building a rational, strong, progressive, inclusive and egalitarian India. It is to be worth mentioning to highlight his strength and talent as he seems to self taught. On his strength, he emerged as a national figure and held such important portfolios as Labour, Railways, Agriculture, Defence, Transport and Communications, etc. in the Union Government and rose to occupy the high office of the Deputy Prime Minister of the country. He had burning passion for the egalitarian society because he experienced very closely the wretchedness of the community and ongoing generation struggling for better lives. He spared many sleepless night praying to be blessed with strong courage so that he could save his people from the identity of being burden because being born in the low caste. But his constant work for the nation was seen in the numerous works and decision in piloting several ministers and eminent leaders of the time.

Babu Jagjivan Ram entered the First Lok Sabha in 1952, after distinguishing himself as a Member of the Central Legislative Assembly and the Constituent Assembly. As a member of the Lok Sabha for eight consecutive terms, he nurtured a deep interest in the polity and made a distinct mark in it, became a leader of eminence, and widely respected across the nation and the political spectrum. He spent many years as a strong statesman at public sphere and always tried to build an inclusive and equitable society based on socioeconomic justice and equality. After Ambedkar, he positioned himself in revolutionary spectrum in order to embody the dawn of a new era of justice, fairness, equality and socio-economic empowerment of the poor and the marginalised section of the society. His lofty vision of a rational, casteless and inclusive society and his emphasis on the need to eradicate the deeply-entrenched caste prejudices is of abiding relevance for our time and country. His lucid and powerful speeches in Parliament on political and developmental issues will ever be a source of inspiration for generations of parliamentarians. His rational and pragmatic approach towards the system, long years of the seven consecutive decades of political experience in administration and diplomacy, understanding the wide range of the numerous issues altogether would be an effective instrument to deal the socioeconomic issues and problems and development of the nation.

Shri Jagjivan Ram was undoubtedly one of the shining examples of success amidst adversity and socio-economic handicaps. His humble and disadvantaged background did not prevent him from forcefully speaking out and struggling against the pernicious and inhuman caste system and its attendant evils which were corroding the society and the country. He was never deterred by difficulties and formidable odds and earned a place of admiration and reverence in the annals of social reformers in our country. His luminous message that all are equal, regardless of the primordial identities of caste, creed and religion, as also economic background and status, will always be remembered by the people of India.

The present paper also highlights his unconditional support and vision to college, Jagjiwan College. Judging his spirit and invincible stature to learn the world, he expected from his society some personality who can be equal to him or more than that. He thought many more figures should turn up to do pending work of the nation and the society. Suddenly his genius is sparked and he thinks critically, the place he has come, needs the light of education and enlightenment. He realises that the system of his place has not yet developed; it is in tender stage; it will perhaps take a couple of decades or more than this for the system here to come to the developed state. It might be impertinent to have such expectation because all of us don‘t have conscious mid. Human beings by nature appear to be passive for the work but they need to be awoken. It is might be too late to do something for the hometown and i should take this responsibility for my land and people fast; perhaps faster than the time. At midnight study, he gets spontaneous flow of his powerful feeling for the meaning of making the history and position of the place better. He concentrates his mind from his locality and gets disconcerting over the stark facts: dark belief, utter illiteracy and scourge of poverty as people living but partly living and it is most unfortunate and disappointing remark that there is no constructive agency is working to uplift people here. He thinks it is high time to empower the people of his locality that is populated by Dalits and subaltern. He took especial interest to donate the land for the establishment of the college; today it is called Jagjiwan College, a Constituent Unit of Veer Kunwar Singh University, Ara. The College stands to welcome students of his locality with larger percentage of admission and disseminates its meaning of empowerment, enlightenment, wisdom and core education and skill.

He sometimes cried and shouted too when he remembered the days of the past when he was student of the government school, Ara. In the flashback he narrates about the government school which is highly populated from the students of the upper caste Hindu and unfortunately there is no representation for Dalits from the administration side. With shame, it can be said that the structure of the Government school was based on the caste system and the practice of untouchability. The social structure of the caste system had badly affected the school campus. Within these oddities and stubborn ideologues, Babu Hagjiwan Ram gets admission there with happiness and dream. But he didn‘t know the binary opposites of the social structure; he had been there for education and discipline for how to be a gentle person in life. But he was surprised to see the inhuman practice such as untouchability and communal homogenisation prevalent on the campus. He felt that he was an insult to the school campus because of the strata he comes from and the word like education; it don‘t go parallel in the society. The picture of idealism and the worship of goddess Saraswati were getting faded because he had an ideal view about education. As a student Jagjiwan Ram was passively accepting all the oddities such as communal homogenisation and oppression and humiliation on him. He was really shocked when he had experience on the arrangement o separate pitchers to drink water. He too arranged separate pitchers to drink water in the heat of the day. After a couple of classes when he comes to drink

water, he found his pitchers broken. This incident hurts him and compelled him to give up college and study as well. Despite all these circumstances he remained static like pole star and pushed himself to the momentum of the progression similar to the nature of the great leader. There could be another vision that Jagjiwan College were established for its plural and just and inclusive treatment to the society irrespective of the caste creed and religion.

With the student life he started to know the reason of the caste ridden structure of the society and ghettoisation of Dalits. He developed a deep curiosity in the history of the religious book that gave him the knowledge of the bitter fact. Developing his knowing the truth he came to the word of Varnasaramdharam that define the fourfold rule of Manu's book *Manusmriti*. Further he extends his knowledge that society has been divided into four parts known as Brahman, Kshatriyas, Vaishyas and Shudras. To add the extensive coverage of this matter, rules underline that Brahmans are born from the mouth of Brahma. Since their position is at highest level of the hierarchy, their work and positions will be supreme and sublime with knowledge as knower of the whole Universe. But the rule homogenises the identity of Brahmins. As a matter of the fact there are many Brahmins by birth who are meaningless to the society and the knowledge system. The rule brings cunning passage to justify the meaning of the superiority in the society. However Manu says that the fourfold rule is divine in the structure and meaningful in the context of the society. But it is totally artificial in the structure and sense and it is an intelligent mechanism to befool a certain community. Now the second position stands for Kshatriyas who have been born from the shoulder of the Brahma. Since it comes just below the anatomical position of the Brahmin, Kshatriyas will be in the service to Brahmins and they are also liable by their duty to take care of their need in terms of their protection against enemies. Now the third defines the position of Vaishyas (farmers and businessmen) and their work is to channelize from where they are to the above hierarchically defined positions with the relative economy and different commodities. The last position of this hierarchy is for the Shudras, since they are born anatomically from the feet of the Brahma, their positions are defined like to do the menial work and they are in service to clean the ambiences and surrounding of the above mentioned hierarchy. This exploitative rule of the *Manusmiriti* left him cried and disheartened from the society because he was a hero to construct the shape of the society and do good for people. It is a long story for him to make journey of Dalit history and movement and Dalit lives full of painful narratives and humiliations. Babu Jagjiwan Ram came to know he remained untouched at his school. What he suffered in his life, he did not want his own people to suffer the oppression of the caste. Without replying to people and any kind of confrontation he nurtured his vision for uplifting the education level of his own people. He knew one day in India, the caste system would not matter but it depends on the change of the attitude of the upper caste. People could mix to one another and speak for one another at the public sphere. There would be practice of inter-sitting and inter-dinning and inter-negotiating but it will take time for such major change because it is a sociological

issue. He donated land for Jagjiwan College and gave unconditional support to the institution whenever the institution needs from his family. To articulate his vision regarding the establishment of this college, he said ”let the education may come from different corners of the society”. This college can bring a new surrounding in his locality. He did not want to see people left uneducated of the society; symbolically it was suggestive that no Dalit in his locality should remain uneducated and illiterate. His village should be enlightened by the power of education. After his death, the college got his statue built in the college campus and at every occasion particularly his commemoration Day, Meira Kumar, the daughter of Babu jagjiwan Ram comes to deliver speech and celebrates rituals in his remembrance. She also gives unconditional support to the institution whenever administration wants to take support from her.

In the history of India, we hardly come across some renowned Dalit leaders who have left footprints on the sands of time. There are select leaders ‘names such as Jyotirao Phule, Dr Ambedkar and Babu jagjiwan Ram stands one of them for his historical reformation to his own community and other communities as well. From Bihar he is counted as the first Dalit leader and social reformer known at national and international level for his deeds and immense potentiality. The nation is indebted for heroism and his sublime deeds for the sake of the society and the history of better India and gives special space in the history of great heroes of India.

Reference

Ramchandra K. Shrisagara (1994), *Dalit Movement in India and its leaders, 1857-1956*., New Delhi.

Ram Jagjivan (1977), *Four Decades of Jagjivan Ram‘s Parliamentary Career,* S.Chand., New Delhi.

Sing, Nau Nihal (1977), *Jagjivan Ram; symbol of social change*, Sundeep Prakashan. New Delhi.

Sanjay Paswan, pramanshi: Jaidev (2002) *Encyclopaedia of Dalits in India: Leaders*, Gyan Publishing house, Mumbai.

Ram Jagjivan (1977), *Four Decades of Jagjivan Ram‘s Parliamentary Career*, S.Chand., New Delhi.

K.L.Chanchreak(2006) *Babu Jagjivan Ram: A Nation builder,* shree publishers and Distributors. New Delhi

Ramesh Chandra, Sangh Mittra(2003). *Jagjivan Ram and his times*., Commenwealth Publishers ISBN 8171697372, New Delhi.

Ramchandra K. Shrisagara (1994), *Dalit Movement in India and its Leaders,* 1857-1956., New Delhi.

Chanchreck and kanhaiyala (1975), *Jagjivan Ram : A Select Bibliography*, 1908- 1975, S. Chand., New Delhi.

Secretariat, lok sabha (2005) *Babu Jagjivan Ram Parliament: a Commemorative volume*, Lok Sabha Secretariat. New Delhi

Sing, Nau Nihal (1977), *Jagjivan Ram; Symbol of Social Change*, Sundeep Prakashan. New Delhi.

Sanjay Paswan, *Pramanshi: Jaidev (2002) Encyclopaedia of Dalits in India:leaders*, Gyan Publishing house, Mumbai.

Ramchandra K. Shrisagara (1994), *Dalit Movement in India and its leaders*, 1857-1956., New Delhi.

Ramesh Chandra, Sangh Mittra(2003). *Jagjivan Ram and his times*, Commonwealth Publishers, New Delhi.

Maury, Dr. Omprakash, *Babu Jagajivan Ram*, Publication division, govt of India., New Dehli.

Maury, Dr. Omprakash, *Babu Jagajivan Ram*, Publication division, govt of India., New Dehli.

Ramesh Chandra, Sangh Mittra(2003). J*agjivan Ram and his times*., Commenwealth Publishers, New Delhi.

Ram Jagjivan (1977), *Four Decades of Jagjivan Ram's Parliamentary Career*, S.Chand., New Delhi.

Thomas Carlyle. *On Heroes, Hero-worship and the Heroic in History*, Chapman and Hall, Harvard University, 1840.

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

Rural credit policy

Dr. Pravir Kumar Singh

Assistant proffesor in commerce
A.B.S. College Lalganj Vaishali
B.R.A.B.0 Muz.

RBI has identified priority sectors like small scale industries, agriculture as important sector to finance and issue more credits for their development. In a recent article, Ramasubba Reddy (March, 2009) claims that C-D ratio (Credit-deposit ratio) for metro cities by commercialized banks were highest to 87% and that of rural was 57% only. As of March 2009, rural deposits were Rs. 3.65 lakh crores, where as credits were extended to Rs. 2.09 lakh crores only. If the same ratio like metro could have been maintained the balance of Rs. One lakh crore should have been issued as credit to the rural mass but reality is that it has been directed towards the metro credits and developments. Poor framers were left in the hands of loan sharks with heavy interest payments. Extrapolating the data from the RBI website, Reddy presents the below table statistics showing application of funds towards metro region exceeds the other regions in total.

Deposits and Credit of Scheduled Commercial Banks
MAHARASTRA STATE March 2009 (Rs. in crore)

	No. of Offices	% share in the total	Credit-Amount	% share in the total
Rural	**21118**	**29%**	**14301**	**1.56%**
Semi-Urban	**1397**	**19%**	**18599**	**2.04%**
Urban / Metro	**3879**	**52%**	**870468**	**96.40%**
Total	**7494**	**100**	**912, 368**	**100**

Source : RBI — Qtly Dep- Credit-Mar 09-Computed

Reddy claims that "Major chunk of credit to the extent of 6% of the total credit in the State is given in Metro agglomerations. A merge 4% of the total credit is given in the rest of the vast of Maharastra." The discrimination between Metro and other regions are evident and also clearly understood from the bank stand point of view. Also to note

that banks vision has changed from Agricultural development to Industrial development issues.

Debt profile of rural farmers

From the above graph, it is clearly evident that commercial banks credit policy has shifted towards Industry sector rather than agricultural sector. The above graph depicts the banking activities for 2007, showing that agriculture credits were in the range between 12-13% from nationalized banks and scheduled banks. Only rural banks have more agricultural attention than other banks. The questions of availability of funds and huge cartel of funds might be available from nationalized banks rather than rural banks. Most of the regional rural banks will be operating as co-operative society, who has its own limitation for sourcing funds because of member's subscription, awareness of capital share and other elements. More over regional rural banks operations were also restricted to a particular region as standalone institution. This might not help much for Indian farmer's population who need more help to save them out of the crisis. Unless, a nationalized banks comes out with more agricultural credit and loan to help the marginal and small rural farmers, the fate of agriculture is always under conspiracy.

Debt profile of rural households (in %)
Source: Ministry of Labour, Rural Labour Enquiry Report

SOURCE OF DEBT	193.94	1999-2000
Government	8.31	5.4
Co-operative Societies	7.9	13.1
Employees	11.4	6.9
Money Lenders	27.6	31.7
Shopkeepers	7.3	7.1
Relatives& Friends	12.4	15.1
Others	6.2	3.5
Banks	18.9	17.2

The above table on debt profile clearly projects the data for year between 1993-94 and 99-2000 on source of debt for rural farmers. It was found that most of funds were generated from Money lenders and it has considerably increased from 27.6% to 31.7% instead banking credit allocation were only between 18.9% and 17.2% during these years. The trend seems scary for economy because banks are leaving farmers unattended in the hands of guilty loan sharks who are exploiting the need of farmers in greater extent and leaving them in streets wandering for food and shelter even. Unless bank or government steps into this situation to protect the poor gullible farmers, there is going to be a massive.

BOOKS

Das, Nabagopal, Indian Economi Under Planning, Calcutta, 1976. Desai, Vasant, Agricultural Development : A Case Study, Bombay. 1976. Dale, Ernest, Management : Theory and Practice, New York, 1973. Drucker. Peter F., The Practice of Management , New York, 1954.

Elhance, D.N. and Sharma, M.D. Role of Co-operative Credit In Agriculutral Development, Orient and Longman, 1970.

Galbraith, J.K. , A Theory of Price Control, London, 1952. Ghosh, A.B., Price Trends and Policies in India, Delhi, 1974. Gupta, S.C., Food Prices in India, Meerut, 1970. George, Black, Planned Industrial Publicity, Chicago, 1952. Gyanchand, The Menace of Inflation, Bombay, 1957.

Hermann, Dr. Luis f., Agricultural Price Policy in India. New Delhi, 1966.

Harrod, D. Laswell, Power and personality, New York, 1948. Hayek. F.A. Prices and Production, London, 1941. Heady. Dari 0., Economics of Agricultural Production and Resource Use, New York, 1952. Islam, Nurul, Agricultural Policy and Developing Countries, London, 1974. Jha. B . Agricultural Price Stabilization in India, Calcutta, 1971. Joseph. S.C.. Food Policy and Economic Development in India, Bombay, 1961.

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

रूसी की व्यावसायिक आचार एवं नीति

पुष्पा कुमारी
पीएचडी शोध छात्रा, रूसी भाषा,
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली–110067
पताः मुसाफिर बैठा, बसंती निवास, दुर्गा आश्रम गली, शेखपुरा, पटना–800014

शोध–सार– इस आलेख का उद्देश्य रूस में कारपोरेट (निगमीय) व्यवसाय के दायित्वों का अध्ययन करना है। इस कारण, सामाजिक एवं नैतिक व्यवसाय के एक क्षेत्र–विशेष को शोध–अध्ययन की विषय–वस्तु के रूप में चुना गया है ताकि इस अध्ययन के जरिये नैतिकता की जमीन पर रूसी व्यवसाय जगत के विकास की विशेष्ताओं को रेखांकित किया जा सके। इस अध्ययन के द्वारा नैतिक सिद्धांतों के मद्देनजर कॉरपोरेट सामाजिक दायित्वों के निर्माण की आवश्यकता के औचित्य को भी सिद्ध करने का प्रयास शामिल है। यह निष्कर्ष लिया गया है कि एक उद्यमी व उद्योग मालिक को समझना चाहिए कि उसके और उसके कामगारों के हितों में टकराव की स्थिति में व्यावसायिक नैतिकता के मानकों का पालन ही इस टकराव की समस्या का एकमात्र संभव निदान प्रस्तुत कर सकता है। इन पंक्तियों के लेखक, शोधकर्ता, का सुझाव है कि रूसी मॉडल की व्यवसायिक नैतिकता के तहत उद्यमी और कामगारों के बीच समन्वय स्थापित करने में राज्य की भूमिका महव्तपूर्ण हो जाती है और इसके तहत आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में जहाँ एक ओर कामगारों का अपनी कार्य–दक्षता प्रदर्शन करना जरूरी हो जाता है वहीं दूसरी तरफ उद्यम–मालिकों के लिए अपने कामगारों के हितों के प्रति अपने नैतिक दायित्वों का निर्वहन भी आवश्यक है।

मुख्य शब्द (Keywords) : कॉरपोरेट, व्यवसायिक, निगमीय, उद्यमी, कामगार, श्रमिक, सुरक्षा, सामाजिक, नैतिकता, निर्माण, उत्पादन, सूचकांक, बाजार, अर्थव्यवस्था, क्रियान्वयन, संवर्द्धन, गुणात्मक, संक्रमण, मानक, मानदंड, वैज्ञानिक।

1917 में सोवियत राज्य की स्थापना के पूर्व के 'रूस में व्यवसाय जगत नैतिक एवं सामाजिक रूप से अपनी तरह की जिम्मेदार स्थिति रखा करते थे। सन 1861 में जारशाही के अंत के साथ यह परम्परा और बढ़ी औ र सन 1917 की प्रसिद्ध अक्तूबर क्रांति के बाद मूलभूत सामाजिक पुनर्निर्माण के प्रभाव में व्यवसायिक जगत का यह नैतिक और सामाजिक रूप खत्म हो चला। उन दिनों धार्मिक पुरातन पंथियों के प्रभाव में व्यवसाय के क्षेत्र में धर्म–प्रेरित नैतिकता का जोर था। पीटर महान के काल से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक वाणिज्यिक एवं औद्योगिक व्यवसाय निरंकुश राजसत्ता के अधीन था। इसके बाद के समय में यह स्थायी तौर पर सीधे राज्य के अधीन आ गया। इस बीच तृतीय सामाजिक वर्ग का भी उदय हुआ जिसका हस्तक्षेप पारम्परिक कुलीन वर्ग (एलिट क्लास) अभिजात वर्ग एवं नौकरशाह वर्ग को नागवार गुजरा। पूंजीवाद के विकास ने रूसी समाज के पारम्परिक पितृसत्तात्मक किसानों, खासकर,

पारम्परिक रूप से सत्ता पर कब्जा जमाए वर्गों को परेशान किया। पूंजीवाद की समाजवादी आलोचना में पितृसत्तात्मक, बौद्धिक, नौकरशाही जन्य एवं कुलीनता परक वर्चस्व की विपरीतता के बरअक्स सामान्यतः सांस्कृतिक फेनोमिना की एक स्वाभाविक सम्बद्धता बनती है। इस पारंपरिक व्यावसायिक नैतिकता को साम्यवादी विचारधारा ने नहीं स्वीकारा। साम्यवादी हिसाब की व्यावसायिक नैतिकता में अब श्रमिक का सम्मान ऊंचा मूल्य रखती थी। बेहतरी लाने एवं उद्यमों में उत्पादन की गुणतत्ता बढ़ाने में श्रमिकों की रूचि को प्रोत्साहित करने तथा प्रबंधन एवं श्रमिक के बीच के संबंध को सुधरने की दिशा में सन उन्नीस सौ पचास के मध्य से रूस में काफी प्रयास किये गये। तदन्तर, श्रमिकों के नैतिक एवं मनोवैज्ञानिक परिवेश को बेहतर करने के लिए उत्पादन के साथ श्रमिकों को पारितोषिक एवं लाभांश देने की युक्ति अमल में लाई गयी। आगे चलकर श्रमिक संबंध जैसे प्रबंधक एवं अधीनस्थ सहयोगी कर्मी, कर्मियों के बीच आपसी संबंध जैसे व्यवसाय की नैतिकता से जुड़े अहम मसलों को प्रमुख रूप से सम्बोधित करना आवश्यक माना गया।

व्यावसायिक गतिविधियों में सामाजिक दायित्व का महत्व :

'कॉरपोरेट सामाजिक दायित्व निर्णय लेने की एक प्रक्रिया है जो कामगार, उपभोक्ता एवं पर्यावरण के प्रति चिंता–भाव रखते हुए सामाजिक एवं पर्यावरणिक प्रभावों पर आधारित व्यावसायिक गतिविधियों से सम्बद्ध होता है। वैज्ञानिक शोध के लिहाज से कॉरपोरेट सामाजिक दायित्व कामगार एवं उनके मालिक के बीच बाजार के अर्थतंत्र की सामाजार्थिक समस्याओं को सुलझाने की वह सहकारी प्रक्रिया है जिसमें मालिक और कामगार दोनों की रूचि होती है। यह धारणा इसके क्रियान्वयन के नए तरीकों की तलाश, व्यावसायिक स्थितियों की समझ तथा व्यावसायिक गतिविधियों के सक्रिय संवर्द्धन की जरूरत को संकेतित करती है। कॉरपोरेट सामाजिक दायित्व न केवल तकनीकी एवं आर्थिक सूचकांकों में गुणात्मक सुधार को संबोधित है बल्कि सामाजिक श्रम संचय, सामाजिक एवं वैयक्तिक संचय तथा रचनात्मक संचय के उपयोग से भी सम्बद्ध होता है। रूस सहित विकसित देशों में कॉरपोरेट नागरिकता की अवधारणा वायुमंडल प्रदूषण, श्रमिक सुरक्षा तथा व्यावसायिक विषयों के विविध मानकों के चलते उत्पन्न हुई है। यह श्रमिकों की कमी को देखते हुए उनके निष्क्रमण, व्यावसायिक क्रियाकलापों से कार्मिकों का स्व–निष्क्रमण, श्रम एवं उत्पादन प्रबंधन से सम्बद्ध नये विचारों की खोज विषयक सहभागिता के संदर्भ में हुआ है। यह परिवर्तन आधुनिक व्यवसाय में अधिक देखने को मिलता है।

'बाजार–अर्थवयवस्था के परिपेक्ष्य में कॉरपोरेट सामाजिक दायित्व विषयक कोई कार्यकलाप वैधानिक एवं नैतिक दोनों मानकों से संचालित होता है जो कि व्यवसाय में लगे हर व्यक्ति के लिए व्यापारिक नैतिकता है। व्यवसाय में समाजार्थिक न्याय को सुनिश्चित करना सामाजिक एवं नैतिक व्यवसाय का उच्च मानदंड होना चाहिए। बाजार–अर्थ व्यवस्था में हमेशा जटिल स्थिति बनी रहती है। उद्यमियों के लिए एक तरह की व्यवसायिक स्वतंत्रता रहती है। जैसे, कोई उद्यमी, उत्साही, संसाधनों से संपन्न, चालाक एवं दृढ़–संकल्पी हो सकता है। जबकि उद्यमिता के क्षेत्र में स्थित एक उद्यमी के चरित्र में घूस, चोरी, वित्तीय धोखाधड़ी, श्रमिक कानूनों का उल्लंघन को बल देने वाले दोषों का नैतिक एवं मनोवैज्ञानिक रूप से घर कर जाना गलत है। उद्यमी समाज के बीच में ये चारित्रिक कमियां देखी जा रही है। चूँकि एक उद्यमी के लिए उद्यमिता के अवसर पैदा होने काफी जरूरी है एवं उसके परिणाम उसके लिए आशाजनक होते हैं, इसलिए उद्यमिता बाजार–अर्थव्यवस्था का एक मुख्य घटक बन गयी है।

इस शोध–अध्ययन का उद्देश्य रूसी व्यवसाय जगत के लिए सामाजिक एवं नैतिक दायित्वों को बलित करने वाले उपायों को प्राप्त करने के लिए काम करना है। रूसी शोघ–अध्ययन बताते हैं कि देश के बड़े शहरों में जनमत एवं जनता के रूख से ऐसा लगता है कि लोग व्यावसायिक जगत से सामाजिक हित के क्रियाकलापों में सहभागिता भी चाहते हैं। श्रमिक समूहों के बीच पाई जाने वाली नैतिक एवं नृजातीय उद्यमशीलता विषयक मौजूदा समस्याएं उद्यमी एवं कामगारों के बीच पलते जमीनी वाह्य द्वंद्वों से निर्धारित होती है। उनका रूख अलग–अलग मुद्दों पर अलग–अलग होता है। जहाँ उत्पादन संबंधी गतिविधियों के उद्देश्य को लेकर कामगारों के हितों के पक्ष में अधिकतम मजदूरी प्राप्त करना, तथा उद्यमियों के हित में अधिकतम लाभ प्राप्त करना फिर, उत्पादन के परिपेक्ष्य में, कार्यस्थल पर काम की स्थितियां सुचारू रखने का प्रयत्न तो उद्यमी के हित के ख्याल से उत्पादन भंडार समृद्ध करना और उत्पादन–कार्य को बेहतर गति देना। वहीं, सामाजिक रूप से कमजोर वर्ग के कामगारों के अभिप्रेरण एवं मनोबल–वृद्धि के ख्याल से उनको उचित वेतन दिलवाना, आदि। ऐसा देखा जा रहा है कि व्यावसायिक क्रियाकलापों में बेहतर संभावनाओं एवं लाभ को लक्ष्य करते हुए रूस के उद्यमी नैतिकता एवं ईमानदारी के रास्ते से भटक जाते हैं और, इस भटकन के प्रभाव में उद्यमी एवं कामगारों के आपसी संबंधों में तनाव संचरित न हो, बरकरार न रहे, इसके लिए उद्यमी और उसके कामगारों के हितों में टकराव के विन्दुओं को कम करने पर काम करने की जरूरत है। इन उद्देश्यों एवं मूर्त वैज्ञानिक समस्याओं का हल पाना संभव है और यह ऐसे कि इसके लिए रूसी मॉडल के सच्चरित्र व नैतिक व्यवसाय के सिद्धांत की स्थापना करने में सहायक रूस के सच्चरित्र व्यवसाय की विशेषताओं को चिन्हित किया जाए। रूस में स्थापित उत्पादन संबंध एवं प्रबंधन मशीनरी ने ऐसा वातावरण तैयार किया है जिसमें एक कामगार के लिए अपने उद्यम–मालिक के आदेशों को शिरोधार्य करने के अलावा कोई चारा नहीं है क्योंकि नौकरी के बाजार की स्थिति एवं रूसी परिसंघ के श्रम संहिताओं की निगरानी करने में राज्य एवं राज्य के श्रमिक संघ बहुत सजग भूमिका नहीं निभा रहे।

रूसी व्यवसाय जगत में नैतिकता के अवयव

'बाजार–अर्थव्यवस्था में कॉरपोरेट जगत के सामाजिक जगत के सामाजिक उत्तरदायित्वों के बारे में भिन्न–भिन्न मत है। हमने पहले भी रूसी परिसंघ के श्रमिक कोड (संहिता) को लागू करने में कोताही का उदाहरण रखा है। कार्यस्थलों पर बाल श्रम पर प्रतिबन्ध, स्वास्थ्य एवं सुरक्षा सम्बन्धी प्रावधानों का पालन जैसी चीजें भी कॉरपोरेट सामाजिक दायित्व के तहत आती है। 'कॉरपोरेट सामाजिक दायित्व' (corporate social responsibility) जैसे टर्म कामगारों के लिए एक तरह से दायित्व–बोध कराने वाला होना चाहिए ताकि सामाजिक सुरक्षा का स्तर ऊंचा उठ सके। सामाजिक दायित्वो ं के तय उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए हम व्यवसाय के स्थिर विकास को प्रभावित करने वाले आर्थिक, सामाजिक एवं पर्यावरणीय कारकों की पडताल करते हैं। एक उद्यमी के आकलन में यह होना चाहिए कि उद्यमी एवं काम पर लगाये गये कर्मियों के हितों के टकराव को यथासंभव न्यून करने के लिए नै तिकतापूर्ण व्यवसाय के आदर्शों–मानकों का पालन करना जरूरी है। रूसी बाजार अर्थव्यवस्था में उत्पाद संबंधों में आया ताजा गुणात्मक सुधार भी उद्यमी एवं कामगारों के आपसी रिश्ते में विश्वास नहीं जगा पाया है।

नैतिकता युक्त व्यवसाय के मापदंडों की स्थापना के आयाम

स्थूल अर्थों में नैतिकता युक्त व्यवसाय उद्यमी एवं काम पर लगे गये कर्मियों को जोड़ने की एक महत्वपूर्ण कड़ी है जिसके आधार पर बाजार–अर्थ व्यवस्था की जमीनी सफलता आंकी जा सकती है। आजकल व्यवसाय की नैतिकता के निर्धारक तत्व काफी गिरी स्थिति में है। नागरिक अधिकारों की तयशुदा गारंटी देने से व्यवसायिक विचलन, मनचाहा काम की स्थितियों का निर्माण, अधिकारों एवं रूचियों का ख्याल रखना आदि जरूरी बिंदु है। यह भी कि एक उद्यमी को चाहिए कि वह अपने कामगारों को संबोधित करते समय उनकी समानता पाने की भावना का ध्यान रखें। अपने कामगारों को उन्हें बतौर सहयोगी देखना चाहिए और सम्मान की चाह, काम के प्रति गर्व भावना को महत्व देना चाहिये। साफ–साफ कहें तो एक उद्यमी का नैतिक जवाबदेही से युक्त व्यवहार उसके क्रियाकलापों एवं निर्णयों को निर्धारित करता है। साथ ही, उसके ये आचार उसके सामाजिक एवं आर्थिक दायित्वों का द्योतक होने के साथ व्यवसाय के सम्यक व वांछित गति पाने में एक महत्वपूण प्राथमिक शर्त की तरह काम करते है। यह अलग बात है कि उसका यह सदाशय और नैतिकता भरा आचरण हर बार व्यवसाय को समृद्ध करने वाला न भी हो। ध्यान रखने की बात है कि व्यावसायिक संचार ही एक व्यवसाय को चलाने की मुख्य प्रक्रिया है और, अन्य देशों की तरह व्यावसायिक कंपनी के रूतबे से ही उसके समझौता वार्ता के रंग–ढंग एवं प्रकार निर्धारित होते है। इन व्यावसायिक वार्ताओं के संदर्भ में आगे बात करें तो 'रूस के व्यापारी संयुक्त राज्य अमेरिका के अपने समधर्मियों के मुकाबले मौखिक वार्ता का अधिक सहारा लेते हैं। लिखित में वैचारिक आदान–प्रदान की बनिस्बत आमने–सामने की वाचिक वार्ता अधिक फलदायी होती है क्योंकि प्रतिभागी जन आपस में मुद्दों पर बात–विमर्श कर लेते हैं। इस सम्बन्ध में एक रोचक निर्देश हमें 'न्यूयार्क बिजनेस एटिकेट गाइड' के जरिये मिलता है। रूस के सदर्भ में इस व्यवसाय–निर्देशिका के अनुसार, ''मीटिंग के तय समय से पर्याप्त पहले उसकी तिथि निर्धारित कर लिया जाना चाहिए तथा रूस में मीटिंग करने के लिए पहँचने के समय और जाने के कुछ दिन पहले भी मीटिंग के न टलने की सूचना अगले से बात कर प्राप्त कर लेनी चाहिए। फिर मीटिंग–स्थल पर निर्धारित समय या उससे थोड़ा पहले ही पहुँच जाएं, मगर, अपने रूसी समधर्मी से इस बात की कतई अपेक्षा न रखें। ये रूसी आदतन देर से मीटिंग में पहुँचते हैं और मीटिंग में आए अन्य देश के सहभागियों से इसके लिए माफी न मांगकर अपने उन बिजनेस पार्टनरों के धैर्य की परीक्षा लेते हैं।''

उपन्यास एवं अनुशंसा

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर व्यवसाय व व्यापार पर उतरने वाले व्यवसायी लोगों को सबसे पहले अन्य समाज की सांस्कृतिक आमद को सीखना और उसका सम्मान करने आना चाहिए, क्योंकि विभिन्न सभ्यताएँ हमें विभिन्न प्रकार के जीवन मूल्य और व्यवहार सिखाते हैं। संभव है एक देश में जिस बर्ताव को विनम्रता का पर्याय माना जाता है वही दूसरे देश में अशोभनीय एवं आपत्तिजनक माना जाता हो। ऐसी संवेदनशील बातों से अनभिज्ञता व्यावसायिक चुनौतियों को आमंत्रित कर सकती है जिससे व्यापारिक सौदे ही नहीं वरन व्यवसाय का भविष्य भी कालांतर में प्रभावित हो सकता है।

कड़ वी सच्चाई यह है कि रूस में व्यवसाय जगत की साम्प्रतिक स्थिति यह है कि वह व्यवसाय के नैतिक मानकों पर बिल्कुल खरी नहीं उतरती। व्यावसायिक लोग उद्यम जगत के अंदर खाने चल रहे संघर्ष–मतभेद, समस्याओं के निराकरण अथवा बिगाड़ के मुद्दे तथा उसके

उद्देश्य एवं निर्णय–प्रक्रिया आदि को सतह पर लाकर उनके अच्छे–बुरे पक्षों पर अक्सर विचार करने से बचते है। उद्यमियों के चालाक बर्ताव का नतीजा है यह। निश्चय ही उद्यमियों को एक तय हद में रहना चाहिए किसी व्यवसायी के तुच्छ लाभ के लिए व्यवसायिक नैतिकता को ताखे पार नहीं रखा जा सकता। रूस में व्यवसायियों का एक बड़ा वर्ग अपने कामगारों की कर्तव्य–निष्ठा और समर्पण को उस उद्यम के विकास की निरन्तरता को कायम रखने में यश का भागीदार नहीं मानता। ऐसे में राज्य की जिम्मेदारीएक निगहवान की सामने आती है। राज्य को चाहिए कि वह कॉरपोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व के विकास को समर्थित करे। यह निर्मित उत्पाद, काम, सेवा सामान्य जन की सुरक्षा, कार्मिकों की स्थिति में सुधार के उपाय, उद्यमों में काम की स्थितियां, समुचित मानदेय प्रणाली की व्यवस्था, आर्थिक पारितोषिक, अस्थायी कामगारों के हितों की सुरक्षा, कामगारों एवं विशेषज्ञ कार्मिकों की शैक्षिणक योग्यता का उन्नयन आदि पर ध्यान देकर किया जा सकता है। इस तरह की नीतियाँ दीर्घकालिक होनी चाहिए। राज्य द्वारा तमाम तरह की परिसंपत्तियों में व्यवसायिक गतिविधियों को बल देने के लिए विभिन्न प्रकार से अवसर मुहैया कराना जरूरी है। सामाजिक दायित्वपूर्ण व्यवसाय की जरूरी परिस्थितियों के निर्माण एवं उसे समृद्ध करने के लिए केवल और केवल राज्य को जिम्मेदारी उठानी पड़ेगी। हम देखते हैं कि साम्प्रतिक समय में रूस का व्यवसाय एक संक्रमण के दौर से गुजर रहा है। यह स्थिति सामान्यतः रूसी अर्थव्यवस्था, विचारधारा तथा रूसी समाज के सतर्क रुख के चलते आई है। रूस में उद्योग क्षेत्र में निजीकरण राज्य, खासकर, उसकी नौकरशाही की छत्रछाया पाकर फला–फूला। सामाजिक–आर्थिक व्यवस्था में आया परिवर्तन सामाजिक नैतिकता के निर्माण के ख्याल से मिलाजुला रहा। हालाँकि इन सुधारों एवं परिवर्तनों ने नैतिक आयामों को गति प्रदान की। व्यवसायिक क्षेत्र के सांस्कृतिक वातावरण में आए हालिया सकारात्मक परिवर्तन इस बात का द्योतक है कि व्यवसायियों का नैतिक होना वस्तुतः लाभदायक है।

संदर्भ :

1. Arslan-Ayaydin et al., 2014; Giannarakis, 2016; Thalassinos et al., 2013.
2. Averina et al., 2016; Hamid and Won Kie, 2016; Novokreshchenova et al., 2016.
3. URL:http://www.etiquetteoutreach.com/blog_new-york-etiquetteguide/bid/93212/ Business.Com.
4. URL:http://smallbusiness.chron.com/difference-between-americans-russians-cultu

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

भारत में स्त्रियों की प्रस्थिति एवं प्रमुख समस्याएँ

श्रीधर दयानिधि
एम. ए. समाजशास्त्र
यूजीसी–नेट

महिलाएँ आधी दुनिया का प्रतिनिधित्व करती हैं और ऐतिहासिक रूप से इनकी स्थिति पर विचार करें तो दुनिया के लगभग सभी समाजों में ये पुरुषों से पिछड़ी रही हैं और इनके साथ कई निर्योग्यताएँ एवं समस्याएँ सम्बद्ध रही हैं। कई विचारकों और समाजशास्त्रियों की इस संबध में मान्यताएँ भिन्न–भिन्न रही हैं। कुछ विचारकों की स्पष्ट मान्यता है कि स्त्री कुछ जन्मजात दोषों के कारण पुरुष के समान नहीं मानी जा सकती, उसे पुरुष के समान स्तर पर नहीं रखा जा सकता। डॉ रूबेक का कथन है कि स्त्रियों में जन्म से अस्थिरता का दोष पाया जाता है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक फ्रायड का विचार है कि स्त्रियों के मस्तिष्क में ईर्ष्या से भरे होने से उनमें न्याय की भावना बहुत कम होती है। सैद्धांतिक रूप से भारतीय समाज में स्त्रियों के संबंध में इस प्रकार की कोई भ्रांत धारणा नहीं पाई जाती। सैद्धांतिक रूप से यहाँ स्त्री को सम्मानपूर्ण स्थिति प्राप्त रही है। उन्हें अर्द्धांगिनी माना गया है। उनको सुख–समृद्धि और ज्ञान की प्रतीक समझा गया। स्त्री के अभाव में पुरुष को अधूरा माना गया है।[1] लेकिन वास्तविक स्थति इससे भिन्न रही है। जेण्डर भेदभाव के कारण आज विश्व भर में महिलाओं की अनेक समस्याएँ मौजूद हैं। भारत जैसे परम्परागत समाजों में जहाँ नारी को देवताओं की भांति पूजा जाता रहा है, वहाँ आज दहेज, सती, बाल–विवाह, कन्या भ्रूण हत्या, वेश्यावृत्ति एवं विधवाओं संबंधी अनेक समस्याएँ मौजूद हैं।[2]

''महिला पैदा नहीं होती अपितु समाज द्वारा बनाई जाती है'' सिमोन–द–बुआ जैसी नारीवादी लेखिका का यह कथन सही लगता है जब हम सम्पूर्ण परिवेश में स्त्रियों की प्रस्थिति का अवलोकन करते हैं। पहनावे से लेकर काम करने के क्षेत्र और कैरियर तक जेण्डर के आधार पर निर्धारित कर दिए गए हैं। लिंग भेद प्रकृति प्रदत्त है लेकिन जेण्डर भेदभाव सामाजिक सांस्कृतिक देन है।[3]

आज विश्व के लगभग सभी समाजों में महिलाओं का स्तर पुरुषों के समान नहीं है। वर्तमान सामाजिक ढांचे में पुरुषों को अधिक अधिकार, संसाधन और निर्णय करने की शक्ति प्राप्त है। महिलाओं को परम्परागत भूमिकाएँ सौंपी गई हैं। गांवों में महिलाएँ खेती का अधिकांश कार्य जैसे पशु–पालन, बीज छींटना, पौधारोपण, खाद–पानी, फसल की कटाई एवं उन्हें घर लाने तक सभी कार्य करती हैं, फिर भी महिलाओं को कृषक की श्रेणी में नहीं रखा गया है। एक समान कार्य के लिए पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं को कम वेतन, कम मजदूरी दी जाती है। नौकरियों में भर्ती एवं पदोन्नति में भी भेदभाव किया जाता है। जीवन भर मां–पिता की सेवा के बावजूद हिन्दू समाज में मुखाग्नि देने का अधिकार केवल पुत्र को ही है। आर्थिक रूप से स्वतंत्र होने पर भी घर के मुख्य निर्णयों की जिम्मेदारी उन्हें नहीं सौंपी जाती। यहाँ तक कि पुलिस विभाव में कार्यरत अधिकांश मलिलाओं को ऑफिशियल कार्यों में ही संलग्न किया जाता है। अमेरिका जैसे विकसित देश में भी अभी तक कोई महिला राष्ट्रपति नहीं बन पाई है।

भारत में स्त्रियों की प्रस्थिति का मूल्यांकन करने से स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि अलग–अलग कालखण्डों में स्त्रियों की स्थिति में भिन्नता पाई जाती है। उच्च जातियों और निम्न जातियों में स्त्रियों की स्थिति में अन्तर रहा है। निम्न जातियों की स्त्रियाँ कई मायनों में अधिक आत्मनिर्भर और आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र रही हैं। जनजातीय समाज की स्त्रियों के बारे में भी यही बात कही जा सकती है।[4]

विभिन्न काल–खंडों में स्त्रियों की प्रस्थिति का आकलन–

ऋग्वैदिक काल जिसका समय लगभग ईसा पूर्व 2500 से ईसा पूर्व 1500 तक माना जाता है। इस काल में स्त्रियों की स्थिति तत्कालीन स्रोतों के आधार पर अच्छी कही जा सकती है। इस काल में स्त्री–पुरुष के बीच में असमानताएँ कम थीं। स्त्रियों को शिक्षा का भी अधिकार था। इस काल में स्त्रियों का विवाह युवावस्था प्राप्त करने के बाद ही होता था। जीवन साथी चुनने में शिक्षित लड़कियों की राय को महत्व दिया जाता था। वे धार्मिक तथा सामाजिक उत्सवों में शामिल होती थीं। दम्पत्ति को गृह का संयुक्त स्वामी माना जाता था। एक–विवाह प्रथा का प्रचलन था। इस काल में सती प्रथा नहीं पाई जाती थी। इस काल में स्त्रियों को सम्पत्ति के अधिकार संबंधी बहुत स्पष्टता नहीं है। यद्यपि परिवार का ढांचा पितृसत्तात्मक ही था लेकिन स्त्रियाँ कमतर नहीं मानी जाती थीं।[5]

ईसा पूर्व 1500 से ईसा पूर्व 500 तक जिसे उत्तरकालीन संहिताओं, ब्राह्मण ग्रंथों एवं उपनिषदों का काल माना जाता है, के समय तक समाज के उच्च वर्गों में लड़कियों के लिए उपनयन संस्कार जारी रहा और उनके लिए शिक्षा की व्यवस्था भी थी। परन्तु धीरे–धीरे स्त्री शिक्षा का ह्रास होता गया। केवल उच्च घरानों में स्त्रियों की शिक्षा पर ध्यान दिया जाता था। स्त्रियों के धार्मिक अधिकार भी धीरे–धीरे सीमित किए जाने लगे थे। यद्यपि इस काल तक उनकी विवाह की आयु में अन्तर नहीं आया था। अब भी युवावस्था में ही उनका विवाह होता था और उसमें उनके मत और इच्छा को भी महत्व मिलता था। विधवा को पुनर्विवाह का अधिकार भी था। वह अपने देवर अथवा किसी अन्य व्यक्ति के साथ विवाह कर सकती थी। इस समय तक सती–प्रथा जैसी कुप्रथाओं का चलन नहीं हुआ था और पर्दा–प्रथा नहीं शुरु हुई थी। परन्तु इस काल में स्त्रियों की प्रस्थिति में गिरावट आनी शुरू हो गई थी। इस काल में स्त्रियों का सार्वजनिक सभाओं में सम्मिलित होना प्रायः बन्द हो चुका था। फिर भी यह माना जा सकता है कि इन दो काल–खण्डों में स्त्रियों की स्थिति संतोषजनक थी। डॉ अल्तेकर ने इसका कारण बताते हुए कहा है कि पुरुषों के युद्ध कार्यों में लगे रहने के कारण, स्त्रियाँ कृषि, युद्ध–सामग्री के निर्माण एवं अन्य आर्थिक क्रियाओं में सक्रिय भाग लेती थीं, वे समाज की उपयोगी सदस्य थीं।

500 ईसा पूर्व से 500 ई. तक के काल–खंड को सूत्रों, महाकाव्यों और प्रारंभिक स्मृतियों का काल कहते हैं। इस समय में स्त्रियों को शिक्षित करने के कई उदाहरण मिलते हैं। महाभारत मे भीष्म पितामह का कथन है कि स्त्री को सदैव पूज्य मानकर उससे स्नेह का व्यवहार करना आवाश्यक है जहाँ स्त्रियों का आदर होता है, वहाँ देवताओं का निवास होता है। लेकिन एक जगह और महाभारत में भीष्म पितामह के कथन में महिलाओं की नकारात्मक छवि दिखलाई पड़ती है। इस काल में बौद्ध और जैन धर्म के प्रभाव में वृद्धि हुई और बौद्ध और जैन साहित्य में पढ़ी–लिखी स्त्रियों का उल्लेख मिलता है। अशोक की बहन संघमित्रा, तथा थेरीगाथा के लेखकों में 83 महिला–लेखक का उल्लेख मिलता है। डॉ अल्तेकर के कथन से यह निष्कर्ष निकलता है कि करीब ईसा के 300 वर्ष पूर्व तक खुशहाल परिवारों में स्त्रियों को उचित मात्रा में शिक्षा प्रदान की जाती थी। यह कहा जा सकता है कि इस समय तक स्त्रियों की स्थिति सन्तोषजनक थी।

ईसा के करीब 300 वर्ष पूर्व से भारतीय समाज में कुछ ऐसे परिवर्तन हुए जिनसे महिलाओं की प्रस्थिति में स्पष्ट गिरावट के लक्षण दिखने लगे। डॉ अल्तेकर की मान्यता है कि अनार्य स्त्रियों के साथ विवाह–संबंध के कारण यह स्थिति आई। यहाँ के मूल–निवासियों पर विजय प्राप्त कर आर्यों ने उन्हें अपनी सामाजिक संरचना में चौथे वर्ण अर्थात शूद्र के रूप में स्थान दिया। उन्हें अर्द्ध–दासों के रूप में सेवा कार्य सौंपा। फिर अनार्य के साथ विवाह संबंध सामान्य होने लगे। कर्मकांड की जटिलता, अशिक्षा आदि के कारण स्त्रियों का धार्मिक संस्कारों में सक्रिय रूप से भाग लेना संभव नहीं हो सका। आर्यों के राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित होने के बाद आरामदायक जीवन बिताने की उनकी आकांक्षा के कारण लड़कियों के विवाह की आयु घटती गई। पुत्र संतान का धार्मिक कारणों से महत्व बढ़ गया। स्त्रियों को शिक्षा और धार्मिक संस्कारों के सम्पादन के अधिकार से वंचित किया जाने लगा।

ईसा के 500 वर्ष से 1000 ई. तक के काल–खंड को उत्तरकालीन स्मृतियों, टीकाकारों एवं सार संग्रह लेखकों का काल कहते हैं। इस समय सामाजिक और धार्मिक संकीर्णताएँ बढ़ गयीं। स्त्रियों के लिए उपनयन संस्कार समाप्त हो गए, उन्हें शूद्र के समान स्थिति प्रदान की गई। आगे 13वीं शताब्दी में मुस्लिम स्त्रियों में प्रचलित पर्दा–प्रथा को हिन्दू स्त्रियों ने अपनाना आरंभ कर दिया। स्त्रियों की प्रस्थिति को गिराने में अनेक शास्त्रकारों द्वारा दी गई व्यवस्थाओं का योग रहा। इस समय पातिव्रत्य का एक–तरफा आदर्श प्रस्तुत किया गया। मनु ने कहा कि स्त्रियाँ कभी भी स्वतंत्र रहने के योग्य नहीं हैं, बाल्यावस्था में उन्हें पिता, युवावस्था में पति और वृद्धावस्था में पुत्र के संरक्षण में रहना चाहिए।[6] डॉ अल्तेकर ने लिखा है कि ईसा के 200 वर्ष पूर्व से 1800 वर्ष पश्चात के करीब 2000 वर्षों के काल में स्त्रियों की स्थिति लगातार गिरती गई।

ब्रिटिश काल अर्थात 18 वीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों से 20वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक स्त्रियों की निर्योग्यताओं में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया। सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों में स्त्रियों की स्थिति पूर्ववत ही बनी रही। इस काल में अंग्रेजों का यह प्रयत्न रहा कि लोगों के सामाजिक और धार्मिक जीवन में यथासंभव हस्तक्षेप नहीं किया जाए। यद्यपि भारतीय राजनेताओं के प्रयास और कुछ ब्रिटिश वायसराय के प्रयास से स्त्रियों के प्रति बनी कुछ बेहद क्रूर और संवेदनहीन कुप्रथाओं पर रोक तो लगी लेकिन स्त्रियों की प्रस्थिति में कोई विशेष सुधार संभव नहीं हो पाया।

19वीं शताब्दी में प्रगतिशील लोगों के विचारों और दृष्टिकोण में अनेक कारणों से परिवर्तन हुए। पाश्चात्य शिक्षा और उदारवादी विचारों से लैस लोगों ने समाज में अनेक तरह के बदलावों को जन्म दिया या बदलावों की भूमिका तैयार की। राजा राममोहन राय के प्रयत्न से 1829 ई. में सती प्रथा कानूनन बंद कर दी गई। ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने बहु–पत्नी विवाह का विरोध और विधवा–पुनर्विवाह का समर्थन किया। इनके प्रयत्नों के फलस्वरूप सन् 1856 में ''विधवा पुनर्विवाह अधिनियम'' पारित किया गया। केशवचन्द्र सेन के प्रयासों के कारण 1872 ई. में ''विशेष विवाह अधिनियम'' पास हुआ, जिसके द्वारा लड़कियों के विवाह की आयु चौदह वर्ष, अन्तर्जातीय विवाह एवं विधवा–पुनर्विवाह को कानूनी मान्यता तथा एक–विवाह की प्रथा को आवश्यक कर दिया गया। सन् 1874 ई. में कानून द्वारा स्त्री–धन के क्षेत्र को विस्तारित किया गया और स्त्री द्वारा अर्जित किए गए धन पर उसका अधकार मान लिया गया। इसी शताब्दी में बहरामजी मालाबारी के प्रयत्नों से 12 वर्ष से कम आयु की लड़की के विवाह पर कानूनी प्रतिबन्ध लगा दिया गया। सुधार आंदोलन और महिला संगठनों के प्रयत्नों के परिणामस्वरूप संविधान में स्त्री को पुरुषों के समान अधिकार प्रदान किए गए। लिंग के आधार पर भेदभाव को स्वीकार नहीं किया गया।

आजादी के बाद 'हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955', 'हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956', 'हिन्दू नाबालिग और संरक्षता अधिनियम, 1956', 'हिन्दू दत्तक ग्रहण और भरण–पोषण अधिनियम, 1956' आदि से महिलाओं को कई अधिकार प्रदान किए गए हैं। दहेज प्रथा को रोकने के लिए 1961 में दहेज निरोधक अधिनियम भी बनाया गया।

समकालीन समय में स्त्रियों की प्रस्थिति में महत्वपूर्ण सुधार और बदलाव आए हैं। स्त्रियों ने खुद अपने साहस और कर्मठता से उन बदलावों को जन्म दिया है तथा कई कानूनी प्रयास और सरकार क कल्याणकारी योजनाओं ने इसे जमीनी स्तर पर उतारा है–

1. स्त्रियों ने आधुनिकता और परम्परात्मकता के बीच सही सन्तुलन बना दिया है।
2. उन्होंने निश्चय रूप से यह सिद्ध करने का निर्णय कर लिया है कि वे पुरुष के बराबर हैं।
3. आज स्त्रियां अपनी स्वतंत्र पहचान बना रही हैं।
4. अब उनके विश्वास रूढ़िवादी नहीं हैं, वे अपनी क्षमताओं व गुणों का लाभ उठा रही हैं और अपने लिए नया रास्ता बना रही हैं जो पहले समाज द्वारा उनके लिए निषिद्ध था।
5. वे आक्रामक, कठोर और दृढ़ होने से डरती नहीं हैं। साथ ही वह सुलभ, सज्जन, भावुक, ममता पूर्ण और समझदारी में भी पीछे नहीं हैं।[7]

स्मकालीन भरतीय समाज में स्त्रियों की प्रस्थिति को देखते हुए यह कहा जा सकात है कि संसद, विधान मंडलों, पंचायतों और नगर निगमों में स्त्रियों के प्रतिनिधित्व में अब गुणात्मक वृद्धि हुई है। स्त्री उद्यमियों, नौकरशाहों, व्यवसायियों, प्रबन्धकों और प्रशासनिक अधिकारियों की संख्या बढ़ गई है। ग्रामीण स्त्रियाँ अभी भी पारम्परिक तथा अत्यधिक संस्कारिक व्यवहार में रूढ़िवादी हैं, लेकिन शहरी स्त्रियाँ जीवन की वास्तविक लड़ाई लड़ रही हैं। वास्तव में शहरी क्षेत्रों में निम्न मध्यवर्गीय स्त्रियाँ हैं जो गृहिणी, शिक्षिकाओं, नर्सों, लिपिकों, टेलीफोन ऑपरेटरों के रूप में कार्य करती हैं और निम्न वर्गीय स्त्रियां भी हैं जो श्रमिकों, घरेलू नौकरानियों, सफाई कर्मचारियों और कचरा बीनने वालों के रूप में काम करती हैं जिनके लिए जीवन अधिक नहीं बदला है। वे आज भी समाज में हीन हैं। आर्थिक दृष्टि से भी उनकी स्थिति पुरुषों से मुक्त नहीं हो पाई है।

आज भी भारत में महिलाएँ कई तरह की समस्याओं से जूझ रहीं हैं। घरेलू हिंसा, दहेज उत्पीड़न, कम उम्र में विवाह, शिक्षा का अभाव, पुरुषों के मुकाबले स्वतंत्र निर्णय न ले पाने की विवशता, आर्थिक विषमता का सामना आदि।धीरे–धीरे कानूनी रूप से सक्षम बनाकर और सरकारी और गैरसरकारी प्रयास द्वारा पुरुष के मुकाबले महिलाओं के सशक्तीकरण के प्रयास जारी हैं।

संदर्भ सूची :

1. भारत में समाज, मोतीलाल गुप्ता, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, पृष्ठ–430
2. सामाजिक मुद्दे, जी. एल. शर्मा, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, पृष्ठ–419
3. वही, पृष्ठ–420
4. भारत में समाज, मोतीलाल गुप्ता, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, पृष्ठ–431
1. 5 वही, पृष्ठ–431
5. मनुस्मृति, उद्धृत–भारत में समाज, मोतीलाल गुप्ता, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, पृष्ठ–435

6- भारतीय समाज, राम आहूजा, रावत पब्लिकेशन, जयपुर एवं नई दिल्ली, पृष्ठ–125

ISSN :23197137, Volume: 09/Issue: 05, Journal No.- 48910, Jan-June : 2019

वेदों का सामान्य परिचय

डॉ0 सुधा कुमारी
पूर्व शोधच्छात्रा,
संस्कृत विभाग,
मगध विश्वविद्यालय, बोधगया (बिहार)

भारतीय संस्कृति के मूल स्रोत, इस सभ्यता को उच्चकोटि तक पहुँचाने वाले, विश्व के आदि ग्रंथ, भारतीय धर्म के प्रतिपादक एवं आर्य संस्कृति के प्राणदाता वेद हमारे अमूल्य साहित्य रत्न हैं। वेद न केवल भारतीय समाज द्वारा समादृत है बल्कि विश्व के महान विद्वानों ने भी उन्हें श्रद्धा की दृष्टि से देखा है तथा उनकी महत्ता को स्वीकारा है। वेदों में ज्ञान-विज्ञान, धर्म, दर्शन, सदाचार, संस्कृति, सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन से सम्बन्धित सभी विषय उपलब्ध हैं। अतएव विद्वानों ने इसे विश्वकोष के रूप में मान्य किया है। वेदों के अध्ययन के बिना भारतीय संस्कृति एवं भारतीयों के जीवन दर्शन को समझना बड़ा कठिन है। मनु ने तो उन्हें सभी धर्मों का मूल कहा है- ''वेदोऽखिलो धर्ममूलम्''[1]

इतनी महत्ता को प्राप्त होते हुए भी वेदों के प्रति भारतीय उतने जिज्ञासु नहीं रहे हैं जितना होना चाहिए था। साधारण शिक्षित लोगों की तो बात ही अलग है। हमारे संस्कृत के शिक्षा-दीक्षा से मंडित-पंडित जन भी वेद से बहुत ही कम परिचय रखते हैं। अतएव वेद किसे कहते हैं, वेदों की संख्या कितनी है, इनकी सृष्टि किसने की आदि प्रश्न एक वेद अध्ययन कर्ता के समक्ष सर्वप्रथम उपस्थित होते हैं। अतः वेद क्या है, इनकी व्युत्पत्ति एवं रचना काल आदि इसी पक्षों पर प्रकाश डालना आवश्यक है।

वेद शब्द की व्युत्पत्ति-

वेद शब्द की व्युत्पत्ति पर संहिताओं से लेकर उपनिषद, आयुर्वेद, नाट्यशास्त्र, कोश, कल्प और मनुस्मृति आदि ग्रन्थों तक व्यापक रूप से प्रकाश डाला गया है। वेद शब्द ज्ञानार्थक विद् धातु से निष्पन्न होता है। विष्णुमित्र ने ऋग्वेद प्रातिशाख्य वर्गद्वय वृत्ति की प्रस्तावना में वेद शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की है-

''विद्यन्ते ज्ञायन्ते लभ्यन्ते वा एभिर्धर्मादिपुरुषार्थाइति वेदाः''

अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्षरूप पुरुषार्थ जिसके द्वारा जाना जाय अथवा प्राप्त किया जाय वह वेद है। ''अमरकोष की टीका में क्षीरस्वामी'' ने लिखा है- ''विदन्त्यनेन धर्मः वेदः'' क्षीरस्वामी ने वेद का अर्थ स्पष्ट करते समय उसे धर्म को जानने का साधन बताया। उन्होंने कहा कि जिसके द्वारा धर्म को जाना जाता है, उसको वेद कहते हैं। 'विष्णुमित्र' एवं क्षीरस्वामी के इन वेद विषयक मान्यताओं का डॉ0 बृजबिहारी चौबे ने अपने ''वैदिक वाङ्मय एवं अनुशीलन'' में उल्लेख किया है। इसी प्रकार पं0 भगवदत्त ने अपनी पुस्तक ''वैदिक वाङ्मय का इतिहास'' के प्रथम भाग में विभिन्न विद्वानों के मतों को रचते हुए अपने वेद विषयक विचारधारा का प्रतिपादन किया है। सर्वप्रथम उन्होंने आनन्दतीर्थ के विचार को सामने रखा है- ''आनन्दतीर्थ'' ने अपने विष्णुतत्त्व निर्णय'' में वेद शब्द की व्युत्पत्ति दिखानेवाला एक श्लोक उद्धृत किया है-

''नेन्द्रियाणि नानुमानं वेदा हेवेनं वेदयन्ति।
तस्मादाहर्वेदा इति पिप्पलाद श्रुतिः॥''

आनन्दतीर्थ के अनुसार इन्द्रिय और अनुमान प्रमाण से जिसको नहीं जाना जा सकता उसको वेद ही बता सकते हैं, इसीलिए उसे वेद कहते हैं। इसी प्रकार 'सुश्रुतसंहिता' के अनुसार-

''आयुरस्मिन् विद्यतेऽनेन वा आयुर्विन्दतीत्यायुर्वेदः।''

चरक संहिता में वेद को ''तन्त्रायुर्वेदयतीत्यायुर्वेदः'' कहा गया है।

भारतीय परम्परा के अनुसार 'वेद' शब्द किसी एक ग्रन्थ का वाचक न होकर अलौकिक ज्ञान का सूचक है। 'वेद' शब्द का व्याकरण निष्पन्न शास्त्रीय अर्थ ज्ञान है, क्योंकि वेद शब्द की व्युत्पत्ति ज्ञानार्थक 'विद्' धातु से है। ऋग्वेद- भाष्यभूमिका में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने वेद शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की है-

''विदन्ति जानन्ति विद्यन्ते भवन्ति,

विन्दन्ति अथवा विन्दते लभन्ते,

विन्दनित विचारयान्ति, सर्वेमनुष्याः

सर्वाः सत्यविद्यायैर्येषु वा विद्वांसश्च भवन्ति ते वेदाः।''

इसके अनुसार जिनसे सभी मनुष्य सत्यविद्या को जानते हैं अथवा प्राप्त करते हैं, अथवा विचारते हैं, अथवा विधान होते हैं, अथवा सत्यविद्या की प्राप्ति के लिए जिनमें प्रवृत्त होते हैं, वे वेद हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वेद शब्द का अर्थ 'ज्ञान' है। इसमें किसी भी वेद आचार्य को आपत्ति नहीं है। वैसे ज्ञान शब्द अत्यन्त ही व्यापक अर्थ को सूचित करता है। इतिहास, भूगोल, गणित, प्रौद्योगिक यहाँ तक मानव जीवन के प्रत्येक क्षण में अनुभूति होने वाली क्रियायें ज्ञान उत्पन्न करती है। किन्तु 'वेद' शब्द को इन सभी विषयों से अलग होता हुआ उस ईश्वरीय ज्ञान को प्रस्तुत करता है जिसे पहले-पहल ऋषि महर्षियों ने खोजा अथवा जिससे उन्होंने साक्षात्कार किया था। विद्या का अभिप्राय यहाँ अत्यन्त पवित्र विद्या से है जो स्वयं प्रमाण्य हो, जिसको प्रमाणित करने के लिए अन्य प्रमाणों की आवश्यकता न पड़े।

वेदों की संख्या-

वेदों की महत्ता निर्विवाद है और वेदों का अध्ययन करने वाला वेदज्ञ भी महान है। वेदज्ञ की प्रशंसा में मनु की यह उक्ति बड़ी ही मार्मिक है- 'वेदशास्त्र के तत्व को जानने वाला व्यक्ति जिस किसी आश्रम में निवास करता हुआ कार्य का सम्पादन करता है, वह इसी लोक में रहते हुए भी ब्रह्म का साक्षात्कार करता है-

वेदशास्त्रार्थतत्वज्ञो यत्र कुत्राश्रमे वसन्।

इहैव लोके तिष्ठन् स ब्रह्मभूयाय कल्पते॥

इतनी महानता को प्राप्त वेद संख्या में कितने हैं? जिनका अध्ययन अत्यन्त महान कार्य है यह प्रश्न भी एक कौतूहल का विषय है। अतः वेद की संख्या कितनी है, यह स्पष्ट करना आवश्यक है।

ऋग्वेद सबसे प्राचीन ग्रन्थ है किन्तु उसमें वेदों की संख्या के विषय में कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है। यद्यपि ''चात्वारिऋङा त्रयो अस्य पादाः'' इस मंत्र के भाष्य में यास्क ने चत्वारि का अर्थ चार वेद ही किया है। सायण भी इस मत के समर्थक हैं तथापि इस अर्थ की प्रमाणिकता के विषय में निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता।

वेदों में वेदों की संख्या के बारे में उल्लेख है ही इसके पश्चात् पुराणों में वेदों की संख्या के विषय में अनेक मत मिलते हैं। विष्णुपुराण, भागवत पुराण तथा मत्स्य पुराण में यह मत व्यक्त किया गया है कि प्रारम्भ में वेद एक ही था जिसे व्यास ने वेद के चार विभाग किये- ''एको वेदश्चतुर्धा तु यैः कृतो द्वापरा दिषु''। (विष्णुपुराण)

इस मत की पुष्टि हम मत्स्य पुराण द्वारा भी कर सकते हैं-

''वेदश्चैकश्चतुर्धा तु व्यस्यते द्वापरादिषु''।

वायुपुराण के अनुसार भी पहले वेद एक था और उसका नाम यजुर्वेद था। कृष्णद्वैपायन व्यास ने यज्ञानुष्ठान के अनुसार उस एक वेद के चार विभाग किये। वेद के एकल संख्या का समर्थन मध्यकालीन भारतीय विद्वानों ने भी किया है उनके अनुसार द्वापर तक वेद एक ही चला आया और द्वापर के अंत में व्यास ने उसके चार विभाग- ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद किये। महीधर ने यजुर्वेद के भाष्य के आरम्भ में लिखा है कि-

तत्रादौब्रह्मपरम्परा प्राप्तं वेदं वेदव्यासो मन्दमतीन् मनुष्यान्

विचिन्त्य तत्कृपया व्यस्य ऋग्यजुः सामाथर्वाख्यांश्चतुरो वेदान्

पैलवैशम्पायनजैमिनि सुमन्तुभ्यः क्रमादुपदिदेश।

महीधर के पूर्ववर्ती भट्टभास्कर ने अपने तैत्तरीय संहिता भाष्य में तथा उससे भी पूर्ववर्ती आचार्य दुर्ग ने निरुक्त की वृत्ति में वेद को प्रारम्भ में एक ही बताया।

वेदों की चार संख्या- किन्तु इन सब मतों के विपरीत कुछ विद्वानों का विचार है- दयानन्द सरस्वती के अनुसार जो कोई यह कहते हैं कि वेदों को व्यास जी ने इकट्ठे किये हैं, यह बात झूठी है क्योंकि व्यास के पिता, पितामह, प्रपितामह (पराशर) शक्ति, वशिष्ठ और ब्रह्मा आदि ने भी चारों वेद पढ़े थे। ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, सूत्र एवं महाभारत, रामायण में भी वेदों की संख्या चार बताई गई है।

वेद- वैदिक मंत्रों में भी बहुवचनान्त वेदाः पद आया है, जो निश्चित करता है कि आदि से ही वेद दो से अधिक थे। जैसे-

स्मिन् वेदा निहिता विश्वरूपाः। (अथर्ववेद 4/35/6)

इस प्रकार तैत्तिरीय संहिता में एक मंत्र है- **'वेदेश्यः स्वाहा।'**

ब्राह्मण- वेदों के पश्चात् हम देखते हैं कि ब्राह्मण साहित्य में भी वेदों की संख्या चार बताई गई है। कठ ब्राह्मण में लिखा है- 'चत्वारि शृंगा इति वेदा वा एतदुक्ता'।

गोपथ ब्राह्मण के अनुसार 'ब्रह्म है वे ब्राह्मणं पुष्ठकरे ससृजे। स..... सर्वाश्च वेदान.....1/16, इसमें कहा गया है कि परमात्मा ने ब्रह्मा को पृथिवी कमल पर उत्पन्न किया उसे चिन्ता हुई किसी एक अक्षर से सारे वेदों को अनुभव करूँ। सर्वास्ववेदान् से इससे प्रतीत होता है कि वेदों की संख्या एक से अधिक थी।

उपनिषद्- श्वेताश्वरों की उपनिषद् मंत्रोपनिषद् कही जाती है। उसका एक मंत्र अत्यन्त प्रसिद्ध है जिससे व्यास से पूर्व ही वेदों का एक से अधिक होना लक्षित होता है-

यो ब्राह्मणं विदधाति पूर्वयो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।

अर्थात् जो ब्रह्मा आदि में उजल करता और उसके लिए वेदों को दिलवाता है। इस मंत्र के वेदाँश्च शब्द से वेद की एक से अधिक संख्या का बोध होता है। इसी प्रकार के विचारों के समर्थक शंकराचार्य, वेदान्त सूत्र के व्याख्याकार श्री गोविन्द एवं आनन्दगिरी हैं।

रामायण और महाभारत- हमारा भारतीय इतिहास रामायण, महाभारत आदि ग्रंथों में मिलता है। महाभारत में भी शल्य पर्व के अध्याय 41 में कृतयुग की एक वार्ता सुनाते हुए मुनि वैशम्पायन महाराज जनमेजय से कहते हैं 'प्राचीनकाल में कृतयुग में अर्स्टिषेण गुरुकुल में पढ़ता था। तब वह न ही विद्या समाप्त कर सका और न ही वेदों

को। यहाँ भी वेदों से वेद के बहुवचन्त होने की बात सिद्ध होती है। इसी प्रकार आदि पर्व 76/13 में ययाति देवयानी से कहता है कि मैंने सम्पूर्ण वेद पढ़ा है- 'ब्रह्मचर्येण कृत्स्नो मे वेदः श्रुतिपर्थ गतः।'

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भी वेदों की संख्या चार मानी है किन्तु आर्य समाज के तृतीय सिद्धान्त में उन्होंने वेद शब्द का प्रयोग एकवचन में ही किया है। स्वामी विद्यानन्द विदेह का कहना है कि ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद ये जो चार वेद माने जाते हैं, वे स्वतंत्र वेद नहीं बल्कि एक ही वेद के चार अध्याय हैं। वेद का प्रथम अध्याय ज्ञानकाण्ड है जो ऋग्वेद के नाम से प्रसिद्ध है, द्वितीय अध्याय कर्मकाण्ड है जो यजुर्वेद के नाम से प्रसिद्ध है, तृतीय अध्याय उपासना काण्ड है जो सामवेद के नाम से प्रसिद्ध है तथा चतुर्थ अध्याय विज्ञान काण्ड है जो अथर्ववेद के नाम से प्रसिद्ध है।

वेदों के सृष्टिकर्ता- प्राचीन काल से ही वेदों के कृतित्व का विषय एक विचारणीय मुद्दा रहा है। कुछ प्राचीन भारतीय विद्वानों की अवधारणा रही है कि वेद अपौरुषेय है। 18वीं सदी के अंत तक भारतीय विद्वानों की यही अवधारणा थी कि वेद अपौरुषय हैं, उसका कर्ता कोई मनुष्य नहीं। इस प्रकार वेदों के संबंध में दो तरह की विचारधारा देखने में आती है। पहला यह है कि वेद अपौरुषेय है और दूसरा यह कि इसके सृष्टिकर्ता ऋषि हैं। अतः हम यहाँ संक्षेप में इन दोनों मतों को प्रकट करने की चेष्टा करेंगे।

वेद अपौरुषेय है- भारत के वेद मर्मज्ञ प्राचीन शास्त्रों तथा शास्त्रज्ञों ने एक स्वर से ऋषियों को वैदिक मंत्रों का द्रष्टा ही माना है, कर्ता नहीं। वेदों को अपौरुषेय सिद्ध करने में संहिताओं, ब्राह्मणों, दार्शनिक ग्रन्थों, पुराणों एवं अन्य परवर्ती साहित्य में अनेक उद्धरण प्राप्त होते हैं।

डॉ0 ब्रजबिहारी चौबे ने अपनी पुस्तक में ऋग्वेद का उदाहरण दिया कि ऋक्, यजुष एवं साम रूपात्मक वेद की उत्पत्ति सर्वहुत् यज्ञ से हुई है-

तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत् ऋचः सामानि जज्ञिरे।

छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत॥ (ऋ. 10.90.90)

इसी प्रकार अथर्ववेद में परमेश्वर से ऋगादि की उत्पत्ति का कथन किया गया है-

यत्र ऋषयः प्रथमजा ऋचः साम चजुर्महीी।

एकर्षिर्यस्मिन्नार्पितः स्कम्भंतं ब्रूहि कतमः सर्वदेव सः॥

(अथर्व0 10/7/14)

शतपथ ब्राह्मण में एक जगह कहा गया है कि तपस्या के द्वारा प्रजापति ने त्रिवृत् वेद विज्ञान को उत्पन्न किया-

सोऽयं पुरुषः प्रजापतिरकामयर्तभूयानस्यां प्रजायेय इति।

सोऽश्राम्यत। स तथोऽतप्यत् श्रान्तस्तेपानो ब्रह्म एवं प्रथममसृजत

त्रयीमेव विधाम्॥'' (श0ब्रा0 6.11.8)

वेदों को अपौरुषेय बताने की शृंखला में उपनिषदों का भी स्थान है। वृहदारण्यक उपनिषद् का कथन है कि ये जो ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास, पुराण, विद्या, उपनिषद् आदि हैं वे सब उस महान् पुरुष के निःश्वास हैं।

इसी प्रकार पुराणों में भी वेदों को अपौरुषेय बताया गया है किन्तु उनके कथन में सूक्ष्मता नहीं स्थूलता अधिक है। विष्णु और भागवत पुराणों में वेदों की उत्पत्ति के विषय में यह कहा गया है कि चतुरानन ने अपने चारों मुखों से चारों वेदों को उत्पन्न किया।

मार्कण्डेयपुराण, हरिवंशपुराण आदि में भी वेद को अपौरुषेय सिद्ध किया गया है।

दार्शनिक पक्ष में मीमांसक एवं वेदांत मत भी वेद को किसी ऋषि की कृति मानने से इंकार करते हैं एवं उसे अपौरुषेय सिद्ध करते हैं। ''वेदान्तसूत्र'' में वादरायण ने परमात्मा को सभी वेदादि शास्त्रों का उद्‌गम स्थल माना है। वेदान्तसूत्र के भाष्य में शंकराचार्य ने लिखा है कि अनेक विद्यास्थानों से उपकृत प्रदीप के समान समस्त अर्थों के प्रकाशक ऋग्वेद आदि शास्त्रों का कर्ता ब्रह्म के अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं हो सकता। रचयिता अपने रचित शास्त्र से अधिक ज्ञानवान होता है। इस लोकोक्ति के अनुसार ब्रह्म ही वेदों का कर्ता सिद्ध होता है।

पं0 भगवद्‌त्त ने अपने पुस्तक 'वैदिक वाङ्‌मय का इतिहास' में वेद को अपौरुषेय अर्थात् ईश्वरकृत कहा है।

आचार्य बलदेव उपाध्यायने भी अपने 'वैदिक साहित्य और संस्कृति' पुस्तक में वेद को ईश्वर की कृति के रूप में स्पष्ट किया है।

वेद मानवकृत है-

डॉ0 ब्रजबिहारी चौबे ने अपनी पुस्तक में पश्चिमी विद्वानों की विचारधारा का उल्लेख किया है। पश्चिमी विद्वानों की आधिभौतिक दृष्टि में वेद ऋषियों के द्वारा प्रणीत शब्दराशि है। सामान्य ग्रन्थों के समान वेद भी ग्रन्थ ही है। अतः जो ऋषि उसके मंत्र विशेष से सम्बद्ध हैं वे वस्तुतः उसके रचयिता हैं। 1805 ई0 में कोलबक ने वेद के ऊपर सर्वप्रथम एक लेख लिखा है जिसमें उसने वेद की महत्ता, उसकी विषय-वस्तु तथा उससे सम्बन्धित साहित्य पर विस्तार से प्रकाश डाला। उनके अनुसार जो वेद के नाम से विशाल साहित्य उपलब्ध हैं, वह आर्यों की रचना है। यह दावा है कि वेद आज जिस रूप में मिलता है वह मानवकृत ही हैं। पाश्चात्य विद्वानों ने ऋग्वेद के कुछ पदों का उदाहरण बताते हुए वेद को मानवकृत सिद्ध किया है।

''इदं ब्रह्म क्रियमाणं नवीयः (ऋ. 7.35.4)

ब्रह्म कृण्वन्तो हरियो वसिष्ठाः (ऋ. 7.37.4)

ब्रह्मेन्द्राय वाज्रिणे अकारि (ऋ. 7.97.9) आदि।

मंत्रों में इस बात का उल्लेख मिलता है कि वेद मानवकृत हैं।[2] देवताओं को सम्बोधित करते हुए ऋषि जगह-जगह पर अपने द्वारा मंत्रों के निर्माण का उल्लेख करता है। गौतम के पुत्र नोधा इन्द्र को सम्बोधित करते हुए कहते हैं ''हे शक्तिशाली इन्द्र रथ में अश्वों को जीतने वाले तथा सुन्दर नेतृत्व करने वाले तुम्हारे लिए गौतम के पुत्र नोधा ने इस नूतन मंत्र का निर्माण किया है''-

''सनायते गौतम इन्द्र नव्यमतक्षद् ब्रह्म हरियोजनाय।

सुनीथाम नः श्वसान नोधाः प्रातर्मक्षधियावसुजगम्यात्॥''

(ऋ. 1.62.13)

इसमें संदेह नहीं कि वेदमंत्रों की रचना ऋषियों ने की। डॉ0 ब्रज बिहारी चौबे ने अपने ''ट्रीटमेंट ऑफ नेचर इन द ऋग्वेद'' के ऋग्वैदिक कन्सेप्ट ऑव ब्यूटी'' शीर्षक परिच्छेद में इस बात की पुष्टि करते हुए कहा कि ''कवि, कारू, मनीषा आदि पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग को देखकर ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि ऋग्वेद के ऋषि केवल काव्य निर्माण ही करना नहीं जानते थे बल्कि काव्य समीक्षा के सिद्धांतों से भी परिचित थे।

प्राचीन भारतीय विद्वानों द्वारा वेद को अपौरुषेय कहने का एकमात्र कारण यही रहा होगा कि ईश्वरकृत वेद कहने से उसके प्रामाण्य में संदेह नहीं किया जा सकेगा। इस प्रकार विभिन्न ब्राह्मणों, मीमांसकों आदि द्वारा वेद को अपौरुषेय बताना एक विशेष परिस्थिति में उसकी रक्षा के लिए था। मनुष्यकृत रचना को कोई भुला भी सकता है किन्तु जो ईश्वरकृत रचना है उसे सभी याद रखते हैं, कभी भुलाते नहीं हैं। वेद को अपौरुषेय बताने का ही यह परिणाम था कि कई विरोधों के बावजूद लेखन कला के अभाव में भी वेद श्रुति परम्परा में भी सुरक्षित रहा।[3]

वेदों का रचनाकाल-

भारतीय सभ्यता का प्राचीन रूप जानने के लिए वैदिक ग्रंथों की उपयोगिता नितांत माननीय है, इस सिद्धान्त के मानने में किसी भी विद्वान को आपत्ति नहीं है, परन्तु इस वैदिक सभ्यता की ज्योति किस काल में इस पवित्र आर्यावर्त की भूमि को आलोकित कर उठी? किस समय पावन चरित ऋषियों के हृदय में आध्यात्मिक ज्ञान से ओत-प्रोत, दिव्य संदेश देने की कामना पहले जाग उठी? जिसे कार्यान्वित करने के लिए उन्होंने इन आलोकसामान्य गूढ़ार्थ विजृम्भित मंत्रों की रचना कर डाली। इन प्रश्नों का यथार्थ उत्तर न अभी दिया गया है और न भविष्य में दिये जाने की आशा है।

भारतीय दृष्टि में श्रद्धा रखने वाले विद्वानों के सामने तो वेदों के काल निर्णय का प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि जैसा हम पहले दिखला चुके हैं, उनकी दृष्टि में वेद अनादि है, नित्य है, काल से अनवच्छिन्न है।

कुछ विद्वानों के मतानुसार वैदिक मंत्र पहले मौखिक रूप में ही जीवित थे- 'श्रुति' नाम इसी कारण पड़ा। उसके बाद 1800 ई0पू0 भारत में लेखन-कला का जन्म होने के कारण वैदिक मंत्र लिपिबद्ध होने लगे और उनका पहिला संपादन महाभारतयुगीन कृष्णद्वैपायन ने किया। महाभारत का समय 1400 ई0पू0 है। लेखन कला के जन्म से 700 वर्ष पूर्व अर्थात् 2500 ई0पू0 में वैदिक ऋचाओं का निर्माण होना आरम्भ हो गया था और बाद में ऋचा निर्माण के 400 वर्ष बाद 1400 ई0पू0 में कृष्णद्वैपायन द्वारा संहिताओं में वर्गीकृत हुआ।

मैक्समूलर पहला विदेशी था, जिसने वेदों पर विशेषतः ऋग्वेद पर और उसके निर्माण काल को खोज निकालने के लिए जीवनपर्यन्त श्रम किया। उसके मत से ऋग्वेद की प्राचीनतम ऋचाएं 1200-1000 ई0पू0 के बीच में रची गयीं।

मैक्समूलर के इस अभिमत की बड़ी आलोचनाएं हुई जब से तुर्की में 1400 ई0पू0 के उपलब्ध कुछ प्राचीन आलेखों में उल्लिखित वैदिक संस्कृति और विशेषतः वैदिक देवताओं के नामों का पता लगा है।

सुप्रसिद्ध प्राच्यविद्याविशारद दूसरे जर्मन विद्वान विंटरनित्स ने वैदिक साहित्य के निर्माण की सीमा 2500 से 200 ई0पू0 के बीच निर्धारित की है किन्तु उन्हें अपने ही मत के सम्बन्ध में संदेह है।

तीसरे इतिहासज्ञ और ज्योतिर्विद् जर्मन विद्वान याकोबी ने कल्पसूत्रों के सम्यक् शोध और ग्रहमंडल के अध्ययन द्वारा वेदों का निर्माण आज से 6500 वर्ष पूर्व निर्धारित किया है।

भारतीय विद्वानों में लोकमान्य तिलक प्रथम विद्वान हैं जिन्होंने वैदिक साहित्य पर वर्षों खोज करके भारतीय दृष्टि से उनका गंभीरता से विश्लेषण किया। वेदों की निर्माण तिथि खोज निकालने का आधार याकोबी की ही भांति ज्योतिर्विज्ञान ही हैं। खगोलविद्या तथा ज्योतिष के आधार पर स्थिति आज से लगभग 4500 वर्ष प्राचीन बैठती है।

वैदिक काल की पूर्व मर्यादा के सम्बन्ध में लोकमान्य तिलक ने जो सीमा बांधी थी, पश्चिमी विद्वानों ने भी पीछे चलकर उसी पर विश्वास किया और लोकमान्य के मत को सर्वोपरि मान्यता प्रदान की।

वेदकाल मर्यादा को निर्धारित करने में विभिन्न विद्वानों के विभिन्न मत हैं। सभी विद्वानों के मत इस प्रकार हैं:-

गौतम	4,00,000	वर्ष पूर्व
चुटेल	3,00,000	" "
अमलेकर	66,000	" "
दास	25,000	" "
तिलक	8,500	" "
पावमी	8,000	" "
दीक्षित	6,000	श0पू0
जेकोबी	4,000	" "
वैद्य	3,100	" "
भंडारकर	3,000	" "
विद्यालंकार	3,000	" "
विंटरनित्स	2,500	" "
हाग, प्राट	2,000	" "
मैक्समूलर	2,000	" "

वैदिक वाङ्मय के रचनाकाल विषयक उपर्युक्त विवेचना को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि इन विषय में किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचना अत्यन्त कठिन है। एक तरफ तो विद्वानों का एक वर्ग ऐसा है जो वैदिक वाङ्मय को अधिक से अधिक अर्वाचीन सिद्ध करने की कोशिश करता है और दूसरी तरफ एक ऐसा वर्ग है जो वैदिक वाङ्मय को अधिक से अधिक प्राचीन सिद्ध करने की कोशिश करता है। वस्तुतः वैदिक वाङ्मय न तो इतना अर्वाचीन ही है कि उसे ई0पू0 दूसरी या तीसरी शताब्दी में रखा जा सकता है और न इतना प्राचीन ही है कि उसे सृष्टि के आदिकाल का माना जाये। मध्य मार्ग का आश्रय लेने पर तिलक द्वारा निर्धारित वैदिक वाङ्मय का रचनाकाल अधिक प्रामाणिक माना जा सकता है। इसके मानने से हम दोनों भ्रांतियों से बच जाते हैं। ज्योतिष सम्बन्धी प्रमाण साहित्यिक प्रमाण से अधिक बलवान होता है।

संदर्भ-सूची :

1. मनुस्मृति 2/6
2. डॉ0 बलदेव उपाध्याय- ''वेद एवं ब्राह्मण दर्शन पाठ''
3. वाचस्पति गैरोला।